आर्गेनन

(Organon)

मूल लेखक

महात्मा सैमुएल हैनिमैन

मूल सूत्र, उनका हिन्दी-भाषान्तर

तथा

विशद व्याख्या सहित

एम० भट्टाचार्य एण्ड कं० प्रा० लि०

होमियोपैथिक केमिष्ट्स, फार्मासिष्ट्स एण्ड पाब्लिशार्स

७३, नेताजी सुभाष रोड,

कलकत्ता—१

भूमिका

होमियोपैथीके इस महान ग्रन्थ आर्गेननके सम्बन्धमें हमारा कुछ कहना सूर्यको दीपक दिखाना है। हम तो यही कह सकते हैं, कि जिसने आर्गेननका अध्ययन नहीं किया, उन्हें होमियोपैथीका ज्ञान हो ही नहीं सकता। महात्मा हैनिमैनने किस आधारपर, इस इतने उपकारी और लाभदायक चिकित्सा-शास्त्रकी रचना कर डाली है, इस चिकित्सा-विज्ञानके मूल सिद्धान्त क्या हैं, इस विज्ञानकी नीव किस आधारपर खड़ी है, यह आर्गेननका मनन किये विना मालूम ही नहीं हो सकता और न यही जाना जा सकता है, कि रोगका प्रकार भेद क्या है, दवाका चुनाव कैसे हो सकता है, होमियोपैथिक औषधियाँ इतनी उपकारिणी क्यों होती हैं तथा किस अवसरपर, किस ढंगकी और कैसी दवाका प्रयोग करना चाहिये। महात्मा हैनिमैनने अपने समस्त जीवनका चिकित्साका अनुभव इस ग्रन्थमें भर दिया है तथा तत्कालीन प्रचलित चिकित्सा-प्रणालियोंकी आलोचना करते हुए, होमियो-चिकित्सा-पद्धतिकी श्रेष्ठताका कारण इसीमें निर्दिष्ट किया है। यही एक ग्रन्थ है, जिसमें तत्कालीन धुरन्धर चिकित्सकोंके छक्के छुड़ाकर होमियोपैथीके अनेकानेक भक्त उत्पन्न कर दिये थे ; पर आर्गेनन" ग्रन्थका समझना सरल कार्य नहीं है ; इसमें गागरमें सागर भरा गया है। एतएव, विषयोंका निरूपण और प्रतिपादन करनेमें जटिलताका आ जाना एक स्वाभाविक-सी बात है।

हमारी अनेक दिनोंसे यह इच्छा थी कि इसका एक ऐसा भाषान्तर हिन्दी जनताके सामने रखा जाये, जिससे इस अमूल्य ग्रन्थको लोग

अच्छी तरह समझ सकें। इसीलिये बहुत कुछ चेष्टाकर यह ग्रन्थ इस रूपमें हम हिन्दी-जगतके सम्मुख रख सके हैं।

इसीलिये, इसमें मोटे अक्षरोंमें पहले प्रश्न-रूपमें यह बता दिया गया है, कि हैनिमैनने किस सूत्रमें क्या बात कही है।

प्रकाशक

सातवें संस्करणकी भूमिका

होमियोपैथीके इस महान ग्रन्थका सातवाँ संस्करण अपने पाठकोंके सामने रखते हुए बहुत ही आनन्द हो रहा है। इसकी भाषाकी सरलता और आधुनिक ढंगसे लिखे जानेकी वजहसे यह कितनी लोक-प्रिय ग्रन्थ बनी हुई है, यह शायद छिपी नहीं है।

आशा है, हमारे पाठक पूर्व संस्करणके भाँति ही इस संस्करणको भी अपनाकर हमें कृतार्थ करेंगे।

कलकत्ता
२१ दिसम्बर १९६७ } **एम० भट्टाचार्य एण्ड कं० प्रा० लि०**

विषय-सूची

विषय | सूत्र संख्या

विषय | सूत्र संख्या

विषय	सूत्र संख्या

महात्मा हैनिमैन लिखित

छठे संस्करणकी भूमिका

पुरानी चिकित्सा-प्रणालीया ऐलोपैथीके मतसे किस ढंगकी चिकित्सा होती है, यह बात सर्वसाधारणको संक्षेपमें समझा देनेके लिये कहना पड़ता है कि प्राचीन प्रणालीके चिकित्सक कितनी ही बार ऐसा समझ लेते हैं कि शरीरमें रक्तकी अधिकता हो गई है (अर्थात् रक्त अनावश्यक रूपसे अधिक हो गया है, जो कभी सम्भव नहीं है) अथवा कभी-कभी वे बाहरी रोग-जनक पदार्थ या उग्र पदार्थोंका अस्तित्व पहलेसे ही अनुमान कर लेते हैं और समझते हैं कि इसी कारणसे रोग हुआ है। इसलिये वे खून निकालकर उस रक्तको निकाल देते हैं, जिसे वह अधिक समझते हैं अथवा वमन करानेवाली, दस्त लानेवाली, लार बहानेवाली या बलगम निकाल डालनेवाली, पेशाब लानेवाली अथवा पसीना बहनेवाली या छालेके रूपमें दोष निकालनेवाली, दवाएँ देकर या मरहम लगाकर रोगके स्वकल्पित उपादानोंको निकाल डालनेकी चेष्टा करते हैं, ये कार्य, इस असार, भ्रान्ति-मूलक विश्वासपर निर्भर रहकर करते हैं, कि उससे रोग घटकर जड़से आराम हो जायगा ; परन्तु होता यह है कि इससे आरोग्य होनेके बदले, रोगीकी तकलीफ बढ़ जाती है और ऐसे तथा अन्य कष्टदायक प्रयोग होनेपर, शरीरका बल और शरीरका वह सार-पदार्थ जो आरोग्यमें सहायक होता है, उनको निकाल लिया जाता है और रोगी उत्तरोत्तर दुर्बल होता जाता है। वे तेज दवाएँ और साथ ही अधिक मात्रा, अर्थात् बड़ी-बड़ी मात्राओंका बारम्बार बहुत दिनोंतक प्रयोगकर—ऐसा भयंकर दुष्परिणाम उत्पन्न कर देते हैं, जो जल्द मालूम

नहीं होता और बहुतसे अपरिचित पदार्थका एक साथ संम्मिश्रण कर, उनका बार-बार अधिक मात्रामें, बहुत दिनोंतक, सेवन करानेके कारण उनके अनजानमें ही शरीरमें विष-क्रिया होती रहती है और उसके दुष्परिणाम-रूप नयी और दुरारोग्य औषधज व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इस श्रेणीके चिकित्सकगण मौका मिलते ही रोगीको सन्तुष्ट रखनेके लिये विपरीत—असम क्रिया करनेवाली दवाएँ खिलाकर तकलीफ देनेवाले लक्षणोंको कुछ दिनोंके लिये दबा देते हैं या छिपा देते हैं—इसका ही यह परिणाम होता है कि रोगीको पहले जो कुछ आराम मालूम होता है, वह भी अन्तमें नहीं रहता, बल्कि उसकी तकलीफ और भी बढ़ जाती है। सच तो यह है कि उक्त लक्षणोंकी कारण-रूप मूल व्याधिको वे शक्तिशाली कर बढ़ा देते हैं। वे शरीरके ऊपर रोगोंको (चर्म-रोग) सिर्फ स्थानीय (उसी स्थानके) और एक अलग ही रोग समझकर बाहरी प्रयोगकी दवाएँ (मरहम) आदि लगाकर, उन्हें हटा देते हैं और वृथा ही यह समझ लेते हैं कि हमने उन्हें आरोग्य कर दिया है। इसका परिणाम यह होता है कि वह रोग रोगीके शरीरके और भी कोमल और विशेष आवश्यक अंगोंपर अपना प्रभाव डालता हैं और अवसर पाकर कहीं-न-कहीं प्रकट होता है (आर्थात् चर्म-रोग दब जानेके कारण या दबा दिये जानेके कारण, कोई दूसरा ही रूप धारणकर दूसरे और भी कोमल और मार्मिक स्थानमें पैदा होता है)। इसके बाद, जब उन्हें आरोग्य करनेका कोई पथ दिखाई नहीं देता, रोग उनके वशमें नहीं आता और दिनोंदिन बढ़ता ही जाता है, तब पुरानी चिकित्सा-प्रणाली,—अर्थात् ऐलोपैथी किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो जाती है, उस समय केलोमेल, कोरोसिव सब्लाइमेट तथा पारद या पारद-जात नाना प्रकारकी अन्य जीवन ह्रासकर दवाएँ अधिक मात्रामें प्रयोगकर, बदल देनेवाली प्रथाके अनुसार, उस रोगको अनजानमें, एक दूसरेसे ही रोगमें परिवर्त्तित कर देती है।

प्राचीन औषध-विज्ञान (ऐलोपैथी) का एक प्रधान सार-रहित कार्य यह जान पड़ता है कि उन अधिकांश रोगोंको, जिन्हें उन्होंने अपनी अज्ञतावश कष्टसाध्य बना दिया है, यदि घातक नहीं तो असाध्य अवश्य बना दें—और रोगीको जो पहले ही निरन्तर क्षीण होता जा रहा था—अधिक क्षीण और कष्ट-पीड़ित बना दें। जब यह लम्पटतापूर्ण धन्धा उनकी आदत बन जाती है और अन्तरात्माकी फटकारका कोई असर नहीं होता, तो फिर निश्चय ही, यह धन्धा सरल बन जाता है।

इतनेपर भी इन सब दुष्टतापूर्ण कार्योंके लिये प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीवाले साधारण चिकित्सक भी अपनी युक्तियाँ लड़ानेको तैयार रहते हैं और उस युक्तिका आधार होता है, उनके ग्रन्थ या शिक्षकोंका सिद्धान्त और ऐलोपैथीके एक या अन्य विख्यात चिकित्सकका मत। आश्चर्यकी बात यह है कि सबसे अधिक विपरीत और सबसे निरर्थक चिकित्सा-प्रणाली भी समर्थन तथा प्रमाण प्राप्त कर ही लेती है—चाहे उसका ध्वंसकारी प्रभाव कितने ही जोर-जोरसे उसके विपक्षमें क्यों न चिल्ला रहा हो। बहुत दिनोंतक इस तरहके खोटे कार्य करनेके बाद, जब कुछ वृद्ध चिकित्सक अपनी इस आरोग्यकारी कलाकी नुकसान पहुँचानेवाली कलाके विषयमें समझ गये हैं और इसी वजहसे अब वे कड़ी बीमारियोंमें केलेके पानीमें स्ट्रावेरी (अर्थात् कुछ न देना) मिलाकर देनेके सिवा और किसी तेज दवा द्वारा चिकित्सा नहीं करते। केवल ऐसे ही चिकित्सकके हाथोंसे सबसे कम रोगी बिगड़ते या मरते हैं।

यह आरोग्य न करनेवाली कला, जो सैकड़ों वर्षोंसे अपनी भरपूर शक्ति द्वारा परिचालित हो रही है और जीवन-मरणकी समस्याको अपनी इच्छाके अनुसार ही दूर करनेकी क्षमता प्राप्त किये हुए हैं; अपनी विपरीत चिकित्सा या कु-चिकित्सा द्वारा युद्धकी अपेक्षा भी दसगुने मानव-जीवनके ध्वंसका कारण बन रही है। इसने लाखों रोगियोंको अधिक विषाक्त और तेज दवाएँ खिलाकर मूल रोगकी अपेक्षा, अधिक

रोगी और दुर्दशाग्रस्त बना दिया है। इस ऐलोपैथीके सम्बन्धमें पूर्व संस्करणकी भूमिकामें हम बहुत कुछ कह चुके हैं। अब हम इससे सम्पूर्ण विपरीत मत द्वारा आविष्कृत, सच्ची आरोग्यकारी उस कलापर ही विचार करेंगे, जिसका आविष्कार मैंने किया है और जिसका इतने दिनोंमें पूर्णतासे बहुत कुछ सामीप्य हो चुका है। यह सिद्ध करनेके लिये उदाहरण दिये गये हैं कि इससे पहले, रोगियोंको जो आश्चर्यजनक लाभ पहुँचा—उसका एकमात्र कारण यही था कि उनकी औषध मूल रूपसे होमियोपैथिक (समान लक्षण पैदा करनेमें समर्थ) थी ; चिकित्सकको उनका ज्ञान यों ही घटनावश हो गया था वह चिकित्सा उन दिनोंकी प्रचलित चिकित्सा-पद्धतिके सर्वथा विपरीत थी।

सम-लक्षण-सम्पन्न चिकित्सा-पद्धति अर्थात् होमियोपैथीके विषयमें सच तो यह है, कि यह एकदम दूसरी ही चीज है। यह प्रत्येक विचार-शील मनुष्यके सरलतासे विश्वास दिला सकती है कि मनुष्यकी बीमारियाँ, किसी दूषित पदार्थ या किसी उग्र वस्तु या किसी स्थूल रोगवाही तत्वके कारण पैदा नहीं होती, बल्कि वे उसी सूक्ष्म-शक्ति या जीवनी-शक्ति (The vital principle) में सहसा (Dynamic) विकार आ जानेके कारण ही पैदा होती हैं, जो शरीरको धारण किये हुए है। होमियोपैथी यह जानती है, कि ठीक-ठीक चुनी हुई और दी हुई दवाके सहारे जीवनी-शक्तिकी जो प्रतिक्रिया जागरित होती है, उसीसे रोग आरोग्य होता है और रोगीकी उस जीवनी-शक्तिमें जितना बल रहता है, उसीके अनुसार—उतने ही परिमाणमें तेजीसे और निश्चित रूपसे आरोग्यकी क्रिया होती है। इसीलिये होमियोपैथी थोड़े परिमाणमें भी कमजोर करनेवाले कार्योंसे अलग रहती है* और इस बातका ख्याल

---

* यह एक बून्द रक्त भी नहीं गिरने देती, जुलाबकी दवा नहीं देती, वमनकारक औषधियोंका प्रयोग नहीं करती, वाह्य प्रयोगसे वाह्य चर्म-रोगोंको नहीं हटाती, गर्म अज्ञात खनिज स्नानोंकी व्यवस्था नहीं देती, मक्खी या सरसोंका

रखती है कि रोगीको किसी तरहकी तकलीफ न हो जाये ; क्योंकि वह जानती है कि दर्दसे भी ताकत घटती है और इसी कारणसे आरोग्य करनेके लिये यह वैसी ही औषधिका प्रयोग करती है जिसकी गुणावाली और परिवर्त्तन करनेवाली शक्तिको वह अच्छी तरह जानती है तथा उनमेंसे ही वह ऐसी दवा चुनती है, जिसकी रोग उत्पन्न करनेवाली शक्ति, स्वाभाविक रोगको हटानेकी शक्ति रखती है अर्थात् सम-लक्षण-सम्पन्न औषधिका ही प्रयोग करती है। यह दवा भी वह रोगीको विना किसी मिश्रणके अकेली ही और इतनी सूक्ष्म मात्रामें देती है, कि उससे रोगीमें किसी तरहका दर्द या दुर्बलता न पैदा हो जाये। वह इस ढंगसे मूल व्याधिको दूर करना चाहती है कि रोगी कमजोर न हो, उसको जरा भी आघात या कष्ट न पहुँचे और स्वाभाविक रूपसे रोग दूर हो जाये। इस तरह ज्यों-ज्यों रोग अच्छा होता जाता है, रोगीमें आप ही ताकत आती जाती है और इस तरह वह एकदम चंगा हो जाता है। यह देखनेमें तो सहज काम है, पर वास्तवमें यह कष्टसाध्य और बहुत कठिन कार्य है। इसमें बहुत-कुछ सोच-विचारकी जरूरत पड़ती है यह विना तकलीफके, रोगीको बहुत ही थोड़े समयमें आरोग्य कर देती है और इसलिये, यह पवित्र और मंगलकर कार्य है।

इससे यह सिद्ध होता है कि होमियोपैथी एक पूर्ण, सफल और सरल चिकित्सा-विधान है। इसके सिद्धान्त और प्रयोग निश्चित हैं। इसका वह मूल सिद्धान्त, जिसपर इसकी भित्ति स्थापित है, उसपर विचार करनेसे, उसीकी तरह यह भी सम्पूर्ण और कार्यकारी-शक्तिसे परिपूर्ण

लेप लगानेको नहीं कहती, किसी तरहसे छेदकर या काटकर भीतरी पदार्थ नहीं निकलती और न छुरीको लाल लोहेसे दाग देने प्रभृति क्रियाओंका ही आश्रय लेती हैं ; वल्कि अपने हाथों तैयार की हुई, अपनी सरल अमिश्रित दवाओंका प्रयोग करती है, जो सम-लक्षण मिल जानेपर आरोग्य कर देती है, यह दर्दको कमी अफीमका प्रयोग कर नहीं दवा देती।

मालूम होगा। जो सिद्धान्त और व्यवहार दोनोंमें ही परम शुद्ध है, वह स्वतः सिद्ध है। रात जिस तरह दिनके विपरीत रहती है, नुकसान पहुँचानेवाली पश्चाद्धावनकी ऐलोपैथिक वैध-नियमसे काम करनेवाली प्रथा भी वैसी ही विपरीत है। इसलिये, होमियोपैथी सम्मानपूर्ण नामके साथ उसका प्रदर्शन अब बन्द होना चाहिये।

कोथेन, मार्च २६, १८३३ }
पेरिस, १८४३ }

सैमुएल हैनिमैन

उपक्रमणिका

प्रचीन-प्रणालीके चिकित्सकों द्वारा परिचालित ऐलोपैथी
और रोगको दवा देनेवाली तथा परिवर्त्तक
चिकित्सा-पद्धतिकी

आलोचना

शारीरिक या नैतिक—किसी भी कारणसे हो, जवतक इस संसारमें मनुष्य व्यैक्तिक भावसे या सामूहिक भावसे रहेगा, तबतक उसे बीमारी होगी ही। सृष्टिकी आरम्भिक अवस्थामें लोगोंकी रहन-सहनकी प्रणाली बहुत ही सादा और सरल थी। इसी कारणसे दवाकी भी बहुत कम जरूरत पड़ती थी और रोग भी बहुत कम होते थे। इसके विपरीत ज्यों-ज्यों सभ्यताका प्रसार बढ़ता गया, त्यों-त्यों रोग भी बढ़ते गये और उसी अनुपातसे दवाओंकी जरूरत भी बढ़ती गई। इसीलिये, उसी समयसे (हिमेक्रिटीसके वादसे, करीब २५०० वर्षोंसे) रोज बढ़नेवाले रोगकी चिकित्सामें मनुष्य जाति लगी हुई है और अपने-अपने ज्ञानके गर्वमें भरकर चिकित्सा-साहाय्यकी नाना प्रकारके तर्क और अनुमानके बलपर चला रही है। कितने ही रोग-सम्बन्धी अगणित और असम तथा उनकी चिकित्साके सम्बन्धमें कितनी ही बातें इतने असम मस्तिष्कसे उत्पन्न हुई हैं तथा प्रणालीके सम्बन्धमें इतने असम विचार सामने आये हैं। इनमेंसे प्रत्येककी सूक्ष्म व्याख्याओंने, पहले तो पाठकोंको अपने अबोध्य ज्ञानके कारण आश्चर्य-चकित बना दिया। ये सभी उनके अस्वाभाविक कुतर्कोंका ही बखान करते थे ; परन्तु इससे रोग दूर करनेमें

किसीको भी सहारा न पहुँचा। इसके बाद ही पहलेके बिलकुल विपरीत नवीन प्रणाली आ जाती थी और कुछ दिनोंतक कीर्त्ति प्राप्तकर विलुप्त हो जाती थी। इसी तरह कितनी ही प्रणालियाँ जन्म लेती गयीं, पर इनमेंसे कोई भी प्रकृत और अनुभवके आधारपर न थी; सभी असार भावी-फलकी आकांक्षा करनेवाली दुर्बुद्धि द्वारा गठित वाक्य जाल-मात्र थीं। इसीलिये, वे अपनी अत्यधिक छलना तथा प्रकृति-विरुद्धताके कारण रोग-चिकित्सामें उपयुक्त प्रमाणित न हो सकीं और सभी तर्कक्षेत्रकी असार युक्तियाँ ही बनी रह गयीं।

उसी समय, परन्तु इन वादों तथा सिद्धान्तोंसे एकदम विपरीत तर्क और सिद्धान्त लेकर एक और भी चिकित्सा-प्रणालीका आविर्भाव हुआ। इस चिकित्सा-प्रणालीमें कितनी अज्ञात गुण-सम्पन्न औषधियाँ मिलाकर रोगियोंको एक सम्मिश्रण दिया जाने लगा। इसका उद्देश्य इतना स्थूल था कि वह परीक्षाकी कसौटीपर पूरा न उतरा। इसीलिये इसका परिणाम भी प्राचीन चिकित्साकी तरह हितकर सिद्ध हुआ और इसीलिये इसका नाम ऐलोपैथी पड़ा।

इसके कितने ही चिकित्सकोंने प्राकृतिक-विज्ञान, रसायन-शास्त्र कितने ही विषयोंके स्वाभाविक इतिहास, शरीर-विज्ञान (physiology), शरीर-तत्व (Anatomy) तथा व्यवच्छेद-विद्याके सम्बन्धमें जो कुछ सेवा की है, उसके लिये वे अवश्य ही धन्यवादके पात्र हैं; परन्तु यहाँ मैं औषधियोंके व्यवहार, विषय तथा आरोग्यकारी कलाके सम्बन्धमें, यह प्रदर्शित करनेकी दृष्टिसे ही विचार करूँगा और दिखाऊँगा, कि इसमें रोगोंकी अबतक किस भाँति असम्पूर्ण रूपसे चिकित्सा की गयी है। मैं एक ढर्रेसे चलनेवाली उस चिकित्सा-प्रणालीकी निन्दा करता हूँ, जिससे बहुमूल्य मानव-जीवनकी रक्षा करनेका दंभ रचा जाता है—यह वास्तविकता और भी खेदजनक है कि उक्त चिकित्सा-ग्रन्थोंका निरन्तर ही प्रकाशन होता रहता है और यह निरन्तर प्रकाशन इस बातका प्रमाण

है कि अब भी उनका कितना अधिक व्यवहार हो रहा है, उसे हम निम्न-श्रेणीके साधारण चिकित्सकोंका जघन्य धंधा समझकर बिना ध्यान दिये ही छोड़ देते हैं। हम तो केवल अबतक व्यवहृत चिकित्सा-कलाके सम्बन्धमें ही कहना चाहते हैं, जो प्राचीनताकी पोशाक पहनकर अपनेको विज्ञान-सिद्ध प्रणाली समझनेका दावा कर रही है।

प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीके चिकित्सक यह डींग मारते हैं कि केवल वे ही यह दावा करनेके हकदार हैं कि उन्होने ही विज्ञान-सिद्ध चिकित्साका आविष्कार किया है और केवल यही विज्ञान-सम्मत चिकित्सा है; क्योंकि केवल उन्होंने ही चेष्टाकर रोगका कारण दूर करनेका पथ खोजा है और उसी आरोग्यकर प्रणालीका अवलम्बनकर चिकित्सा करते हैं, जिसके द्वारा स्वयं प्रकृति रोग-चिकित्सा करती है।

वे अनवरत यही चिल्लाया करते हैं कि उनकी चिकित्सा-प्रणाली रोगके मूल कारणको नाश करनेवाली है, पर वे इस सारहीन गर्वोक्तिसे आगे नहीं बढ़ सके। वे यही सोचकर मस्त हैं कि वे रोगका मूल कारण खोज निकाला जा सके या जो ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभव की जा सके; क्योंकि अधिकांश रोगोंका कारण अदृश्य शक्ति-विशेष (Dynamic) है तथा उनकी उत्पत्ति भी अदृश्य शक्ति द्वारा ही है। इसलिये, उसका कारण इन्द्रिय-गम्य कदापि नहीं हो सकता। इतनेपर भी उन्होंने रोगका कारण जाननेके लिये मृत व्यक्तिकी देह चीरकर और रोग-ग्रस्त व्यक्तिका शरीर चीरकर दोनोंमें तुलना की; रोग-हीन मनुष्य शरीरके भिन्न-भिन्न स्थानोंकी क्रियाकी तुलना की; और कितने ही भीतरी हेर-फेर या अदल-बदलको ही रोगका मूल कारण समझ लिया। इस तरह उन्होंने एक काल्पनिक सिद्धान्त बना लिया और इसको प्राचीन चिकित्सा पद्धतिने रोगका मूल कारण[1] मान लिया। इस तरह उन्होंने रोगका

---

१. यदि वे रोगका उन्मूलन करनेमें समर्थ होते, तो उनके लिये यह कहना अधिक युक्तिसंगत था कि रोगका मूल कारण हो उपद्रवको जड़ (*Causa morbi*)

मूल कारण, रोगका भीतरी तत्व और स्वयं रोग—इन तीनोंको ही एक मान लिया ; परन्तु कोई भी स्थिर बुद्धिवाला मनुष्य सरलतापूर्वक यह सोच सकता है कि किसी पदार्थ या घटनाका कारण, कभी वही पदार्थ या घटना नहीं हो सकती। फिर उन लोगोंने अपनेको धोखा दिये विना ही, कैसे यह मान लिया कि यह अदृश्य भीतरी तत्व ही चिकित्साकी प्रधान सामग्री है और इसी तरह उन औषधियोंका प्रयोग करने लगे, जिनको आरोग्यकारिणी गुणावली या शक्तिसे वे विलकुल ही अपरिचित थे और इसके साथ ही नुस्खेमें कितनी ही औषधियाँ सम्मिलित कर सम्मिश्रण देने लगे, जिनका गुणावगुण वे विलगुल ही नहीं जानते। इसको वे कहते हैं—नुस्खा लिखना ; व्यवस्था।

है और उसे खोजनेका यत्न करते और इस तरह वे उस चिचित्सा-प्रणालीका प्रश्रय लेनेमें समर्थ हो जाते, जो उन्हीं उत्तेजक या उपद्रवजनक कारणोंको दूर करनेमें सफलता होती। उदाहरणार्थ :—

पारा लिंगमुण्डके उस घावको दूर करनेमें हितकर है, जो आतशकग्रस्त स्त्रीसे संगम करनेके वाद आया हो, इसी तरह पारा आतशकके पहले घावोंको दूर करनेमें भी हितकर है। अब यदि उन्होंने कभी यह मालूम कर लिया हो कि अमुक पुराना रोग (गैरआतशकी) संक्रामक था और उसके साथ खारिश (Psora) भी थी और—इन दोनों प्रकारके विकारोंके लिये उन्होंने एक ही इलाज मालूम कर लिया हो और रोगियोंकी वैयक्तिक विशेषताओंपर भी ध्यान दिया हो—और शायद वे न्यायपूर्वक यह डींग मार सकें कि पुराने रोगोंके लिये हमारी चिकित्सा ही एकमात्र सफल चिचित्सा है और वह आतशकके अतिरिक्त अन्य पुराने रोगोंकी सफल चिकित्सा है। इस आधारपर वे शायद ऐसे रोगोंकी चिकित्सा सर्वोत्तम सफलताके साथ कर सकते ; परन्तु वास्तविकता यह है कि कितनी ही शताब्दियाँ गुजर जानेपर भी, वे ऐसे पुराने रोगोंमें ग्रस्त लाखों रोगियोंको आरोग्य बनानेमें असमर्थ रहे हैं। कारण यह है कि उन्हें अभीतक यह पता ही नहीं है कि ये पुराने रोग खाज-खुजली (Psora) के उपद्रवस्वरूप भी आते हैं (यह आविष्कार पहले-पहल होमियोपैथीने किया और वादमें इसके लिये चिकित्साकी नियमित व्यवस्था की गई)। इतनेपर भी वे—ऐलोपैथिक चिकित्सक, यह शेखी मारते हैं कि हम इन रोगोंकी चिकित्सा

परन्तु यह महान प्रश्न—यह खोज—अर्थात् रोगका मूल कारण—भीतरी अदृश्य कारण खोज निकालना—भ्रान्त प्राचीन पन्थियोंका यह कार्य—यह इच्छा रोग लक्षणोंपर जाकर अड़ गयी। वे रोग-लक्षणोंको ही परिचालक मानकर हरेक रोगको जहाँतक सम्भव हो, उसको साधारण प्रकृति मानकर, उसकी जड़में जो क्रियाकी गड़बड़ी उन्हें मालूम हुई, उसको ही उन्होंने मूल कारण मान लिया। वह भले ही अकड़न हो या स्नायविक दौर्बल्य अथवा पक्षाघात, ज्वर, प्रदाह, किसी स्थानका कड़ापन अथवा किसी नस नाड़ी या अंगका अवरोध, रक्तकी अधिकता, आक्सिजन, कार्बन, हाइड्रोजन या नाइट्रोजन प्रभृतिकी रक्तमें अधिकता या कमी, शिरा, धमनी अथवा कैशिकाओंकी उत्तेजना शक्ति या उत्पादिका शक्तिकी क्रियामें उत्तेजना या सुस्ती, अनुभव-शक्ति—इन सबको—अर्थात् इनमेंसे हरएकको एक-एक प्रकारकी बीमारीका मूल कारण मान लिया जाता था और इसी भ्रम-पूर्ण तथा व्यावहारिक उपयोगिताको प्रमाणित करनेके अनुपयुक्त तथा इसके आधारपर किसी रोगकी चिकित्सा करनेके अयोग्य विषयको विज्ञान-सम्मत चिकित्सा मान लिया जाता था। इसी तरह आनुमानिक सिद्धान्तसे फूलकर ये विद्वान सिद्धान्तवादी कार्य करते थे, पर अधिकतर चिकित्साके समय वे रोड़ा ही खड़ा कर देते थे, तथा यह भी देखा गया था, कि उनमें आरोग्यकर उपायोंकी खोजकी अपेक्षा दाम्भिकता ही विशेष प्रदर्शित होती थी।

उदाहरणार्थ, ऐसा भी कितनी ही बार हुआ है कि आक्षेप या पक्षाघात तो शरीरके एक भागमें हुआ है, पर दूसरे भागमें प्रदाह स्पष्ट रूपसे मौजूद है।

करते समय, उनके मूल कारणोंपर ध्यान रखते हैं और यह कि, केवल हम ही मौलिक चिकित्सा करते हैं। हालांकि सचाई यह है कि उन्हें इस रहस्यका ज्ञान ही नहीं है कि खाज-खुजली भी पुराने रोगोंका मूल कारण है और इस तरह उन्होंने पुराने रोगोंके उपचारार्थ अपनी मूल भित्तिको कमजोर बना लिया है।

या दूसरी ओर, यह भी कैसे सम्भव है कि भ्रमपूर्ण साधारण लक्षणोंके लिये विशेष-विशेष औषधियाँ पायी जायें। ऐसी दवा रोगके सम-लक्षण-सम्पन्न दवाके सिवा दूसरी हो ही नहीं सकती, जो रोगात्मक उपदाहोंमें फायदा[1] करे ; चाहे इन दवाओंका व्यवहार अत्यन्त हानि-कारक बताकर ऐलोपैथिक चिकित्सकोंने भले ही रोक दिया हो ; क्योंकि बड़ी-बड़ी मात्राओंमें इन सम-लक्षणवाली दवाओंका प्रयोग जीवनके लिये भयकी सामग्री बन जाता है। इधर ऐलोपैथिक चिकित्सा-पद्धतिवाले कम तथा सूक्ष्म मात्राकी बात कभी सपनेमें भी नहीं सोच सकते। इसीलिये सीधे ढंगसे (स्वाभाविक रूपसे (सदृश लक्षणवाली लाभप्रद दवाओंसे आरोग्य करनेकी कभी चेष्टा ही नहीं की गयी और न ऐसा किया जाना सम्भव ही था ; क्योंकि अधिकांश दवाओंका गुण उन्हें अज्ञात था और अज्ञात ही रहा। यदि वे उनका गुण जानते भी होते, तो उनके लिये उचित औषधका प्रयोग सम्भव न था ; क्योंकि उनके हृदयकी धारणा ही कुछ दूसरे ढङ्गकी थी।

जो हो, जब प्राचीन पद्धतिवालोंने यह देखा कि इससे काम नहीं निकलता तथा इस आड़ी-तिरछी राहको छोड़कर उन्होंने कोई सीधी राह पकड़नी चाही, तब सीधी राहसे रोग आरोग्य करनेका उपाया उन्होंने यह सोचा कि रोगका भौतिक कारण (खयाली) ही दूर किया जाय। इसके सिवा उनके लिये दूसरा पथ ही न था, क्योंकि प्राचीन प्रणालीके

---

१. जहाँ 'जहरकी दवा जहर' के सिद्धान्तपर काम करनेवाली दवाओंकी सफलता सिद्ध हो गई, तो उन्हें 'विशेष औषध' कहकर टला दिया गया। कारण यह है कि इन औषधोंकी कार्य-पद्धतिकी व्याख्या नहीं की जा सकती और उन्हें 'विशेष औषध' का निरर्थक नाम देकर इस रहस्यकी खोजकी उत्सुकताका गला घोंट दिया गया। सच्चाई यह है कि होमियोपैथीमें ऐसी विशेष औषधियोंका व्यवहार देरसे वर्जित है, क्योंकि वे बहुत हानिकारक हैं।

—एड्ड, होमियोपैथिक चिकित्सा-पद्धति ; पृष्ठ १०१, १८२४।

चिकित्सक तो रोगके सम्बन्धमें जाँच करते समय और कोई राय कायम करते समय, आरोग्यकर प्रदर्शनोंकी ओर ध्यान ही नहीं देते। इस वास्ते उनके लिये इन भौतिक विचारोंको त्याग देना असम्भव-सा ही रहता है तथा इसी कारणसे शरीरके भीतर रहनेवाली शक्ति-सम्पन्न अजड़ वस्तुका उपलब्ध करना और प्रत्येक रोग जीवनी-शक्तिकी विशृ-ङ्खलतासे उत्पन्न होते हैं, इस बातको समझना, उसकी क्रिया तथा भाव सम्बन्धी उन परिवर्त्तनोंको देखना, जो रोग कहलाता है तथा यह समझना कि किसी अजड़ शक्तिपूर्ण पदार्थ द्वारा आक्रान्त हुए बिना जिवनी-शक्तिमें विशृङ्खलता नहीं पैदा होती, प्रभृति बातोंको तो वे ध्यानमें ही नहीं ला सकते।

ऐलोपैथिक चिकित्सक उन सब पदार्थोंको जो रोगके कारण परिवर्त्तित हो जाते हैं, उन अस्वाभाविक पदार्थोंको जो रक्त-संचयके कारण पैदा होते हैं तथा उन पदार्थोंकी जो रोगोत्पादक कहकर निकाल दिये जाते हैं अथवा कम-से-कम उनकी मानी हुई पुनः क्रियमाण शक्तिको, रोगका प्रतिपोषक मान लेते हैं और यही अन्तिम धारणा अबतक कार्य कर रही है।

इसीलिये, वे रोगके इन खयाली भौतिक कारणोंको दूर करनेकी चेष्टा करते हुए रोग आरोग्यका सुख-स्वप्न देखा करते हैं और इसी वजहसे पित्त ज्वरमें, के कराकर पित्त निकाल देनेकी उनकी क्रिया ; पेटकी गड़बड़ीमें साधारण वमनकारक औषधियोंका व्यवहार ; जो रक्त-हीन बच्चे भरपूर खानेपर भी शीर्णता और अजीर्ण रोग भोगा करते हैं, तथा जिनका पेट बढ़ा रहता है, उनको जुलाब देकर श्लेष्मा या क्रमि निकाल देना ; रक्त स्रावमें उनका शिरा बन्धन और खासकर उनकी रक्त निकालनेकी प्रक्रियाएँ, जो उनके पास प्रदाह दूर करनेका एकमात्र उपाय है, जिसका वे अबतक रक्तपिपासु पारिसियन चिकित्सकोंकी तरह प्रयोग करते आ रहे हैं (जैसे—भेड़के झुण्डकी कोई भेड़ जब कसाई-

खानेमें घुसती है, तो सब-की-सब भेड़ें उसमें घुस जाती हैं)। इसी तरह वे अपने रोगीको जड़से आरोग्य करते हैं और उनकी चिकित्सा रोगके मूल कारणको इसी तरह उखाड़ फेंकना चाहती है। कभी-कभी वे शरीरमें बहुत-सी जोंकें तक लगवा दिया करते हैं। ऐसा करनेपर वे यह समझते हैं कि वे एकाएक उत्पन्न हुए आकस्मिक लक्षणोंके अनुसार ही कार्य कर रहे हैं और इस तरह वैज्ञानिक ढंगसे ही चिकित्सा कर रहे हैं। प्राचीन प्रणालीके परिपोषक, यह भी विश्वास करते हैं कि अर्बुदको बन्धनीसे बाँधने, उसे काट लेने या ग्रन्थि-प्रदाहमें स्थानिक उपदाह पैदा करनेवाले मरहम आदि लगाकर पीप कर देने, कोषावृत्त अर्बुदको छेद देने अथवा आँखोंके तथा मलद्वारके नासूर प्रभृतिको काट देने या स्तनके अर्बुदको छुरीसे चीर देने या पचनशील अंशको काटकर दूसरा लगा देनेकी क्रिया कर वे रोगीका रोग जड़से आरोग्य कर देते हैं और उनकी यह चिकित्सा-प्रणली रोगके मूल कारणको दूर करनेकी ओर ठीक-ठीक हो रही है। इसके अलावा, जब वे निवारक या निरोधक औषधियोंका प्रयोग करते हैं तथा पैरके पुराने जखमको सीसा, तांबा या जस्ता मिले मरहम (साथ ही जुलाब भी देते जाते हैं, जो रोगको दुर्बल तो बनाता जाता है ; परन्तु रोगपर कोई प्रभाव नहीं पहुँचाता), उपदंशके कारण पैदा हुए जखमको दाहक औषधि द्वारा जला देते हैं, स्थानिक प्रमेहके कारण पैदा हुए मसाको उसी स्थानपर दवा लगाकर ध्वंस करते हैं, गन्धक, सीसा, पारा या जस्ता मिले मरहमको लगवाकर खुजली दूर करते हैं, जस्ता या सीसाका द्रव लगाकर नेत्र प्रदाहादि दूर करना चाहते हैं तथा दालचीनी, अम्बर आदिका धुआँ देकर अंग-प्रत्यंगका दर्द भगाना चाहते हैं अथवा नौसादरका प्रयोगकर शरीरका तेज दर्द हटाना चाहते हैं—इन सभी रोगोंका इस तरह उपचार करते समय वे यही सोचते हैं कि उन्होंने उपसर्गोंको दूर कर दिया है, रोगपर विजय पा ली है तथा इस तरह वैज्ञानिक उपायसे रोगका कारण दूर करनेके

प्रति उनकी उचित चिकित्सा हुई है ; पर
ढंगसे की हुई चिकित्सा द्वारा दवे हुए रोग, जल्द हिया है। किसी ज्योतिषीने
अवश्य उत्पन्न हो जाते हैं (इसको वे नयी ही बीमारी बताते है मृत्यु होगी,
मूल रोगकी अपेक्षा और भी वदतर अवस्थामें उत्पन्न होते हैं। ये इस नीच
अवस्थामें उत्पन्न होकर उन चिकित्सकोंकी भूल बता देना चाहते हैं और
इस विषयमें उनकी आँखें खोल देना चाहते हैं कि रोग बहुत गहरा है, रोग भौतिक पदार्थ नहीं है, उसका मूल विद्युत्गति-सम्पन्न है और वह उसी तरहके शक्ति-सम्पन्न उपायोंसे ही दूर हो सकता है।

प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीवालोंकी कुछ दिनों पहलेतक यह धारणा थी, कि प्रत्येक रोगके समय-ही कोई-न-कोई अत्यधिक उग्र पदा अवश्य ही शरीरमें छिपा रहता है, जिसे लसिकावाहिनियों तथा रक्त-वाहिनियोंसे अवश्य ही श्लेष्मा निकालकर अथवा पसीनेके द्वारा या पेशावके द्वारा या कै-दस्त कराकर पेटसे निकाल देना चाहिये, ताकि रोग उत्पन्न करनेवाला भौतिक कारण दूर हो जाये और इस तरह शामक चिकित्सा हो जाये।

पुराने जखमोंसे भरे शरीरमें जिनमें बहुत दिनोंसे बाहरी पदार्थ भरा जा रहा था, छिद्रकर रोगग्रस्त शरीर या शरीरांशसे वे रक्तके साथ रोगका मूल कारणवाला पदार्थ भी उसी तरह निकाल देना चाहते थे, जिस तरह किसी पीपेकी बगलमें छेदकर मैला तरहल पदार्थ निकाल दिया जाता है। इसके अलावा लगातार फ्लाइ-प्लैस्टर (मक्खियोंका प्रलेप) प्रभृति दाहक औषधियाँ लगातार तथा पारदका प्रयोगकर, वे सब रोगोत्पादक पदार्थोंको देहसे निकालकर शरीरको साफ कर देना चाहते थे। इन अज्ञानतापूर्ण अस्वाभाविक उपायोंसे, वे शरीरकी कमजोरी खूब बढ़ा देते थे और मूल रोगको और भी असाध्य बना देते थे।

मैं यह मनता हूँ कि मनुष्य-मात्रमें यह दुर्वलता रहती है, कि वह सोचने लगता है कि जिस रोगकी आरोग्य करनेके लिये वह बुलाया गया

खानेमें घुसती है, तो रोगोत्पादक भौतिक पदार्थ अवश्य है। मन तरह वे अपने सोच्चिना लेता है (खासकर इसलिये, कि रोगीका भी ऐसा रोगके भाव रहता है)। इस अवस्थामें चिकित्सकको और किसी बातपर विचार करनेकी जरूरत नहीं रहती, बल्कि उसका काम हो जाता है, रक्त-शोधक तथा अन्य रसोंकी शोधन करनेवाली दवाएँ देना, जिनसे बलगम निकल जाये तथा आंतें, उदर प्रभृति साफ हो जायें ; परन्तु फिर भी दिमाग लड़ानेकी जरूरत रहती है। यही वजह है कि डायस कोटाइडिसके समयसे आरम्भकर आजतकके मेटीरिया-मेडिका-सम्बन्धी प्रकाशित ग्रन्थोंमें, प्रत्येक औषधकी विशेष अद्भुत क्रियाके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहा गया। औषधकी इस क्रिया-विशेषताके सम्बन्धमें ध्यान न देकर केवल यही दिखाया गया कि अमुक औषधि मूत्र बढ़ानेवाली है या नहीं अथवा अमुक श्लेष्मा निकालनेवाली है या नहीं और खासकर यह दिखाया गया है कि पाकाशय और उदरके ऊपरी भागसे अथवा नीचेकी ओरसे, भीतरके दूषित पदार्थ निकाल सकती है या नहीं क्योंकि चिकित्सकोंके सम्पूर्ण विचार और समस्त चेष्टाएँ भौतिक रोगोत्पादक पदार्थोंके निकालनेकी ओर ही थी और उपदाहक पदार्थोंकी ओर, जिनको वे रोगका मूल कारण समझते थे।

ये ही सब, सुखमय आलस्यपूर्ण स्वप्न और निराधार आनुमानिक वे कल्पनाएँ थीं, जिनका चिकित्सामें दुरुपयोग किया था ; क्योंकि यह समझा जाता था कि रोग आरोग्य करनेका सबसे सरल पथ है—रोगोत्पादक भौतिक पदार्थोंका निकाल बाहर करना।

परन्तु रोगकी सारभूत प्रकृति और उसका उपाय इन कल्पनाप्रसूत विचारोंके अनुकूल नहीं आता और चिकित्सकोंकी सुविधा-असुविधाओंका भी विचार नहीं करता। कल्पित, मूर्खतापूर्ण और निराधार वादोंका मुख उज्वल बनानेके लिये बीमारियाँ अपने धर्म—गतिशालीनताको जलांजलि नहीं देंगी ; अर्थात् रोग, उसके मूल, प्रेरक कारणकी व्याख्या

चाहे जो कुछ हो—वे हमारे शरीरकी ` यतु है। किसी ज्योतिषीने क्रियाओंको विद्युत गतिसे प्रभावित करती रहेंगी। ` पत्यु होगी,

हमारे रोगोंका कभी कोई स्थूल कारण नहीं हो सकता, ५ नीम्र जरा-सा भी विजातीय पदार्थ,[1] वह हमलोगोंको चाहे कितना ही कोमल क्यों न प्रतीत हो, जब हमारी रक्त-वाहिनियोंमें प्रवेश कर जाता है, तो जीवनी-शक्ति उसे तुरन्त निकाल बाहर करती है, मानो यह कोई विष था और जब यह नहीं हो पाता, तो मौत आ पहुँचती है। यदि हमारे शरीरके किसी चैतन्य स्थानमें काँटा गड़ जाता है, तो सारे शरीरमें व्याप्त रहनेवाली जीवनी-शक्ति तबतक चैन नहीं लेती, जबतक उसे ज्वर, पीप या सड़न आदि उत्पन्न करके बाहर निकाल नहीं डालती। ऐसी अवस्थामें, क्या यह माना जा सकता है कि बीस-बीस बरसकी पुरानी बीमारीमें, यह सक्रिय जीवनी-शक्ति विविध प्रकारके चर्म-रोगों, गंडमाला और आमवात प्रवणता आदि विकारों और हानिकारक विजातीय पदार्थोंकी, शरीरके रस-रक्तादि धातुओंमें, उपस्थितिको चुपचाप सहन कर लेगी? क्या किसी प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीवाले ने अपने चर्म-चक्षु द्वारा कभी देखा है कि ऐसा भी कोई रोगोत्पादक पदार्थ होता है, जिसपर वह विश्वासपूर्वक बोल सके और जिसको आधार मानकर चिकित्सा की जा सके? क्या अबतक कभी कोई गठिया उत्पन्न करनेवाला पदार्थ या गण्डमालाका विष देख सका है?

---

१. (क) शिरामें शुद्ध जलका इंजेक्शन देनेसे जीवन संकटमें पड़ गया।
—मुलेन (देखिये हिस्टरी आव रायल सोसाइटी)।

(ख) जब आकाशमण्डलकी हवाका रक्तवहा नाड़ीमें इंजेक्शन दिया गया, तो मृत्यु हो गई। —डा० जे० एम० बादगट।

(ग) कोमलतम तरलने रक्तशिरातें पहुँचते ही जीवनके लिये संकट उपस्थित कर दिया। —आटनरीय लिखित फिजियोलोजी, भाग २, पृष्ठ ७८४।

...र्थका प्रलेप हमारी त्वचापर लगा दिया खानेमें घुसती है, तो दिया जाय तथा संसर्गज रोग हो जाये, तो भी तरह वे अपने गैर कर सकता है (निदान-तत्वमें जो अकसर माना जाता है) रोगके इस पदार्थका कुछ भौतिक अंश हमारे रस-रक्त आदिमें मिल गया है ... शोषण कर लिया गया है।[1] जननेन्द्रियको खूब अच्छी तरह रगड़कर सावधानतासे धो देनेपर भी तो रंजित-रोग होनेसे नहीं ...या जा सकता। चेचकके रोगीके साँसकी हवा दूसरे स्वस्थ बालकमें भयंकर बीमारी पैदा करनेके लिये काफी होती है।

भौतिक या जड़ पदार्थकी कितनी मात्रा रस-रक्तादिमें मिल जानेपर शरीरमें उपदंशका विष फैल सकता है, जो यदि तुरन्त आराम न कर दिया जाये, तो जीवनके अन्तिम कालतक नाना प्रकारके रूपोंमें (उपसर्गोंमें) दिखाई देता रह सकता है ? किस परिमाणमें जड़ पदार्थकी सहायतासे पीप-भरी चेचक आदिकी गोटियोंकी तरहके रोग पैदा हो सकते हैं और अकसर मारात्मक हो सकते हैं ? इन सब बातोंको सोचकर देखनेपर, क्या यह सम्भव है कि कोई विचारशील मनुष्य यह धारणा करे, कि मनुष्यके रक्तमें व्याधि उत्पन्न करनेवाले जड़ पदार्थोंके पैदा हो जानेके कारण ही रोग होता है ? किसी संक्रामक रोगवाले मनुष्यका रोगवाले कमरेमें बैठाकर लिखा हुआ पत्र यदि बहुत दूरसे आकर भी पत्र पानेवालेमें वही बीमारी पैदा कर दे, तो क्या इस उदाहरणसे भी यह स्थिर कर लिया जा सकता है कि भौतिक रोगोत्पादक तत्वने रस-रक्तमें प्रवेशकर रोग उत्पन्न कर दिया ? इस सम्बन्धमें हम और कितने प्रमाण पेश करें ? कितनी भी बार तो ऐसा देखा जाता है कि एक उत्तेजक शब्दने

---

१. ग्लासगो (इङ्गलैंड) में एक आठ सालकी बच्चीको पागल कुत्तेने काट लिया था। सर्जनने तत्काल ही दन्तक्षत स्थानका मांस काटकर निकाल डाला। ३६ दिन बाद लड़कीको मृगी आ गई और वह दो दिन बाद मर गई।

—मेडिकल कोमेण्ट्री आव एडिनबरा ; दिसम्बर २, १७९३।

सुननेवालेमें मारात्मक पैत्तिक ज्वर उत्पन्न कर दिया है। किसी ज्योतिषीने यदि यह युक्तिहीन बातें बता दी है कि असुक समय तुम्हारी मृत्यु होगी, तो यह मनुष्य ठीक उसी समय मृत्यु-मुखमें जा पड़ा है ; इसी तरह तीव्र शोक या बहुत अधिक प्रसन्नताके कारण भी मनुष्य मृत्युके गलामें जा पड़े हैं। इन रोगियोंमें कहाँ वह भौतिक रोगोत्पादक पदार्थ हैं, जो शरीरके रस-रक्तमें प्रवेश कर गया और वहाँ इससे रोगको पैदा कर दिया। इन सब स्थानोंपर हमारा पूछना यह है कि किस विरेचक या निष्कासनका प्रयोगकर वे किस जड़ कारणको दूर करेंगे या निकाल देंगे, जिस भौतिक कारणको निकाले बिना रोग जड़से आरोग्य करना असम्भव है।

किसी स्थूल भौतिक जड़ पदार्थका रहना ही रोगके उत्पन्न होनेका मूल कारण जो बताते हैं, उन्हें इन सब उदाहरणोंके अनुसार लज्जित होना चाहिये ; क्योंकि उन्होंने जीवनकी इस चैतन्य शक्ति और रोग उत्पन्न करनेवाली शक्ति इन सूक्ष्म बल-शालिनी शक्तियोंपर ध्यान ही नहीं दिया और इस तरह उन्होंने अपनेको एक अज्ञानी चिकित्सक ही प्रमाणित किया है, जो रोगीके शरीरसे वह रोगोत्पादक तत्व निकाल बाहर करना चाहता है, जो कभी हो नहीं सकता। इस तरह वे रोगको आरोग्य करनेके बदले जीवनको ही नष्ट करते हैं।

तब क्या वे दूषित और कष्टदायक स्राव, जो रोगोंमें हुआ करते हैं, वे ही वास्तवमें वे पदार्थ हैं, जिनसे रोग पैदा होता और ठहरता है ? क्या वे तत्व सदा वे ही निकलनेवाले पदार्थ नहीं हैं, जिन्हें स्वयं बीमारियाँ निकालती हैं अर्थात् रुग्ण जीवनी-शक्तिसे निकले हुए स्राव वही हैं, जो रोगी या विकृत जीवनी-शक्तिसे निकले हैं ?

रोगकी उत्पत्ति तथा उसकी प्रकृतिके सम्बन्धमें इस तरहसे भित्तिहीन और जड़ विचारोंके कारण ही ऐसा होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है कि सभी समयमें अज्ञात तथा विख्यात चिकित्सा, यहाँतक कि चिकित्सा-

प्रणालीके आविष्कर्त्ताकी भी प्रधान चेष्टा और उद्योग यही रहा है कि यह आनुमानिक हानिकर विदेशी पदार्थ शरीरके भीतरसे निकाल दिया जाये। उसका प्रमाण इसी बातसे मिलता है कि वे लार बहाकर, बलगम निकालकर, पेशाब और पसीना लाकर रक्तको हानिकारक पदार्थोंसे साफ कर देना चाहते हैं और इसके लिये वे जड़ी बूटीसे तैयार की हुई दवाएँ देते हैं (पर यह विदेशी पदार्थ कभी नहीं रह जाता) अथवा वे चीर-फाड़कर, छेदकर, चमड़ेको खुला रखकर तथा छाले पैदा करनेवाले प्रलेप मेजेरियमका प्रयोगकर उस हानिकर पदार्थको खासकर निकालना चाहते हैं। जब उन्हें आँतोंकी सफाई करनी होती है, तो वे जुलाब या दस्तावर दवाएँ देते हैं, इसी तरह उनकी कार्य-प्रणालीसे यही मालूम होता है कि वे इनको ही रोगोत्पादक समझकर इनके द्वारा ही रोग-बीज निकाल बाहर करनेकी चेष्टा करते हैं, पर वास्तवमें ये पदार्थ मानव-यंत्रोंमें रोग उत्पन्न करनेके कारण नहीं हो सकते। रोग पैदा होनेका कारण तो है—चेतना-सम्पन्न शक्ति। अर्थात् जीवनी-शक्तिकी क्रिया और अनुभूतिमें गड़बड़ी पैदा हो जाना ही रोग है।

इसमें काई भी सन्देह नहीं और यह स्वीकार किया जा सकता है कि न पचे हुए खाद्य पदार्थ अथवा किसी दूसरी ही तरहके हानिकर पदार्थ पकाशय या शरीरके अन्य द्वारसे या गह्वरसे, यदि शरीरमें प्रवेश कर जायँ, अथवा कोई बाहरी पदार्थ त्वचामें या शरीरके किसी अन्य स्थानमें रुक जाये और कोई रोग न पैदा हो, तो सारांश एक शब्दमें यह निकलेगा कि कोई भी रोग जड़ या भौतिक पदार्थसे उत्पन्न नहीं हो सकता। सच तो यह है कि हरेक बीमारी एक आश्चर्यमय रोग पैदा करनेवाली खास शक्तिसे उत्पन्न होता है और यह विशेष शक्ति, अदृश्य रूपसे, जीवनी-शक्तिको रोगी बनाकर स्वास्थ्यमें बड़बड़ी पैदा कर देती है। अतएव, ऐसी अवस्थामें ऊपर कहे आनुमानिक या कल्पना-प्रसूत भौतिक पदार्थ बाहर निकालनेवाली चिकित्सा-प्रणालीको कोई भी

विचारशील, विवेक-सम्पन्न व्यक्ति स्वीकार नहीं कर सकता है। इससे कोई लाभ तो होता नहीं, बल्कि मनुष्योंकी बीमारी, खासकर पुरानी बीमारीमें, लाभ दिखाई देनेके बदले, उससे केवल दुष्परिणाम ही प्रकट होता है।

अतएव, संक्षेपमें यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि अलग-अलग प्रकारकी बीमारियोंमें जो खराब और दूषित पदार्थ दिखाई देते हैं, वे इसीलिये दिखाई देते हैं कि शरीरकी जीवनी-शक्तिमें गड़बड़ी आ गई है। ये वास्तवमें उसीके परिणामस्वरूपमें दिखाई देते हैं। इसके सिवा वे और कुछ नहीं हैं। कभी-कभी ये सब दूषित-पदार्थ स्वयं बीमारीके द्वारा बहुत तेजीसे—अकसर अत्यन्त प्रबल वेगसे—बिना किसी कृत्रिम उपायके सहारे—बहुत ही जल्दी-जल्दी निकला करते हैं। जबतक शरीरके भीतरकी बीमारी अपना काम किया करती है, तबतक कितनी ही बार, बराबर इन सब पदार्थोंका बनना और निकलना—ये दोनों ही काम समान भावसे जारी रहा करते हैं : परन्तु उससे रोगमें कुछ भी कमी नहीं होती। जो वास्तविक चिकित्सक हैं, वे इन सबको रोग लक्षणभर समझ लेते हैं, जिससें उन्हें रोगको प्रकृति समझ लेनेमें सहारा मिलता है। इनके द्वारा ही वे रोगकी प्रतिमूर्त्ति चित्रित कर लेते हैं और इनके ही द्वारा उन्हें ऐसा आरोग्यकर सूत्र मिल जाता है कि समान लक्षणोंवाली औषधिका प्रयोगकर वे रोगको आरोग्य कर देते हैं।

पर अपेक्षाकृत आधुनिक कालके प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीके चिकित्सक यह नहीं प्रकट करना चाहते कि इलाज करते समय उनका उद्देशय रोगोत्पादक भौतिक तत्वोंको निकाल देना ही होता है। उनका कथन है कि उनकी वमन, विरेचन आदि निष्कासनकी प्रक्रिया द्वारा वे प्रकृतिका उदाहरण ग्रहण करते हैं ; क्योंकि यह देखनेमें आता है कि रोग-ग्रस्त शरीर यंत्रोंके सहारे स्वयं प्रकृति पेशाब लाकर और पसीना निकालकर बुखारको हटा देती है, नाकसे खून गिराकर, पसीना और

श्लेष्मा निकालकर वक्षावरक-झिल्ली-प्रदाह (Pleurisy) दूर करती है। इसी तरह वमन, अतिसार और मलद्वारसे रक्तस्राव करा, नाना प्रकारकी बीमारियाँ आरोग्य कर देती है, पैरमें जखम पैदा कर शरीरके अस्थियोंका वातका दर्द आराम कर देती है—लार निकालकर कण्ठनलीके नाना प्रकारके प्रदाह दूर कर देती है, रोगके मूल देशसे बहुत दूरपर फोड़ा या अन्य रोग पैदाकर उन्हें आरोग्य कर देती है।

इसीलिये, उन्होंने सोचा कि चिकित्सा करनेका सबसे अच्छा ढंग प्रकृतिकी नकल करना है और इसी वजहसे रोगीकी प्रतिक्रियाके कारण जीवनी-शक्तिके द्वारा रोगवाली जगहके अलावा, शरीरके और-और स्थानोंपर जो कितने ही प्रकारके विपरीत परिवर्त्तन दिखाई देते हैं, उनका ही अनुकरणकर वे रोगकी चिकित्सा करनेके समय, मूल रोगवाली जगहसे दूर, शरीरके साधारण अन्यान्य अंग-प्रत्यंगमें विजातीय उत्तेजक पदार्थका प्रयोगकर, रोगको दूर करनेकी इच्छासे निष्कासनकी प्रक्रिया पैदा करनेकी चेष्टा करते हैं, मानो रोग वहीं हो। यही वजह है कि मूल रोगकी चिकित्सा ही नहीं होती।

प्राचीन प्रकारके चिकित्सकोंमें यह निष्कासनकी क्रिया बहुत दिनोंसे चली आ रही है और अब भी ज्यों-की-त्यों चल रही है।

कुछ प्राचीन चिकित्सकोंके कथनके अनुसार, प्रकृति द्वारा परिचालित इन क्रियाओंकी नकल करनेकी इच्छासे, वे शरीरके उन अंशोंमें, जो बहुत कम रोग-ग्रस्त रहते हैं और इसी वजहसे उनमें इतनी ताकत रहती है कि वे दवासे पैदा हुए उपसर्ग सहन कर सकें, दवा देकर नाना प्रकारके उपसर्ग उत्पन्न करनेकी चेष्टा करते हैं। ऐसा कर, वे यह समझ लेते हैं कि इस उपायसे अर्थात् दूषित पदार्थको निकालनेकी प्रक्रियाके द्वारा वे मूल रोगका तेजीसे बढ़ना रोक देते हैं और क्रमशः उसे आरोग्यकी ओर बढ़नेमें सहायता पहुँचाते हैं।

पसीना निकालनेवाली और पेशाब लानेवाली दवाका प्रयोग कर या खून निकालकर अथवा छेदनेवाले यंत्र आदिकी सहायतासे तथा खासकर अन्नवहानालीपर क्रिया करनेवाली वमनकारक और आँतोंपर क्रिया करनेवाली विरेचक प्रभृति उत्तेजक दवाओंका प्रयोगकर वे ऊपर बतायी प्रणालीका अनुसरण किया करते हैं।

इस निष्कासन प्रणालीको सहायता पहुँचानेके लिये, वे रोगके विरुद्ध नाना प्राकारके उत्तेजक पदार्थोंका प्रयोग किया करते हैं। जैसे खाली बदन-पर ऊनी वस्त्र पहनना, गर्म पानीसे पैर धोना, वमन लानेके लिये वमन करानेवाली दवा खिलाना, भुख लगानेवाली दवाको पेटमें डालकर भूखको उत्तेजित करना, सरसोंका प्लास्टर, कैन्थराइडिस, छाले पैदा करनेवाले प्रलेप, मेजेरियमका मलहम, टार्टर एमिटिकका मलहम, मोक्सा प्रदाह पैदा करनेवाला प्रलेप है, वास्तविक दाहक—छेदकर प्रभृति दर्द, प्रदाह और पीप पैदा करनेवाली दवाएँ रोगके पास या दूरके स्थानमें प्रयोग करते हैं। यहाँ भी वे मूल असहाय प्रकृतिका ही अनुकरण करते जाते हैं; क्योंकि यह प्रकृति शक्ति-सम्पन्न रोगसे अपनेको छुड़ानेके लिये (पुरानी बीमारीमें) शरीरके दूर-दूरवाले अंगोंमें दर्द आदि पैदा करती हैं तथा फोड़े-फुन्सियाँ या उद्भेद और पीप उत्पन्न किया करती है।

यह केवल नकलभर थी और कोई मौलिक सिद्धान्त नहीं था। ऐलोपैथीवालोंने चिकित्सा कार्यको सरल बनानेके लिये ही, प्रत्युपदाह और निष्कासन अर्थात् वमन, विरेचन तथा कफ निकालने आदिकी व्यर्थ और हानिकर प्रणालियोंको अपनाया। परिणाम यह हुआ कि रोगीके शरीरके हानि पहुँची और वह दुर्बल हुआ ;—हाँ, प्रकटतया रोग कुछ कालके लिये घट गया या वह ऐसे किसी और रोगके रूपमें बदल गया, जो पहले रोगसे भी अधिक बुरा था। निश्चय ही इस तरहकी नाशकर प्रणालीको आरोग्य करनेवाली प्रणाली नहीं कहा जा सकता।

स्वतः क्रियाशील उस जीवनी-शक्ति द्वारा रोगी शरीरपर जो सब स्थूल क्रियाएँ दिखाई देती हैं, प्राचीन प्रणालीके चिकित्साकी उनकी भद्दी नकल करते हैं[1] ; परन्तु वे केवल हलकी नयी बीमारीमें ही लाभकर मालूम होती हैं। इसके अलावा वे सिर्फ नकल करते हैं, उस अयौक्तिक जीव-रक्षक शक्तिकी, जिसमें निरोग अवस्थामें जीवन-रक्षा करनेकी सब तरहकी सामर्थ रहनेपर भी जब वह रुग्ण अवस्थामें जा पड़ती है, तब किसी तरहकी दवाकी सहायता न मिलनेपर केवल अपनी शक्ति द्वारा परिचालित होती है और शरीरके यंत्रोंके नियमके अनुसार ही उसे काम करना पड़ता है। अतएव, इस जीवनी शक्तिकी नकल करनेके कारण उन्होंने वास्तवमें उसी ढंगकी प्रकृतिकी नकल की है, जिस ढंगसे एक वह सुदक्ष चिकित्सक करता है, जो सब घावोंके किनारे तो मिला देता है, परन्तु उसे आरोग्य नही कर सकता। जो नहीं जानता कि उन टूटी हुई हड्डियोंका दोनों मुँह किस तरह सीधाकर मिला दिया जाता है, जो दूर-दूरपर पड़े हैं और जिनसे अस्थि-रस बहता रहता है ; जो जखमी शिरापर बन्धन नहीं रख सकता, बल्कि अपने आरोग्यकी चेष्टामें ही रोगीको मृत्युके मुँहमें पहुँचा देता है। जो नहीं जानता कि कन्धेकी हड्डी यदि खिसक जाये, तो किस तरह उसे पुनः बैठा दिया जाता है ; परन्तु उसके चारों ओर प्रदाह पैदाकर उसके बैठानेकी क्रियामें बाधा पहुँचा देता है, जो कीनिकासे कोई बाहरी पदार्थ निकालनेके लिये पीप

---

१. प्रकृति औषधके बिना रोगी शरीरको स्वस्थ बनानेके लिये जो प्रयत्न करती है, उसे आदर्श समझकर उसकी नकल करना उचित समझा गया परन्तु यह भारी भूल थी। जीवनी-शक्ति किसी तरुण रोगके पंजेसे अपने-आपको मुक्त करानेके लिये जो प्रयत्न करती है—वह बहुत ही दयनीय और अपूर्ण होता है। उसे हमारी विवेक-शक्तिकी सहायताकी आवश्यकता है, ताकि वह रोगमुक्त हो और वास्तविक स्वास्थ्य प्राप्त कर सके। कारण यह है कि शरीरस्थ रोगको दूर करनेके लिये प्रकृति उससे मिलता-जुलता दूसरा रोग वहाँ पैदा नहीं कर सकती और परिणाम यह होता है कि रोगी अनेक प्रकारके कष्ट भुगतकर पञ्चतत्वसे मुक्त पा जाता है।

पैदाकर समूची आँख ही नष्ट कर देता है अथवा जो अपनी अकातर चेष्टासे आँत उतरनेकी बीमारीमें ऐसा कर देते हैं कि आँतें सड़ जाती हैं और रोगी मृत्यु-मुखमें जा पहुँचता है और जो ईलाज करते समय रोगको एक स्थानसे दूसरेमें हटा-हटाकर उसे भी खराब अवस्थामें पहुँचा देते हैं। इसके अलावा, यह विवेकहीन जीवनी-शक्ति, बिना किसी दुविधाके, पार्थिव जीवके प्रतिकूल अतिश्रेष्ठ महामारी, सोरा (खाज-खुजली), साइकोसिस प्रमेह विष और सिफिलिस (आतशक विष)—ये समस्त सूक्ष्म रोग-बीज हमारे शरीरके भीतर लगातार ग्रहण करती रहती है और इन सब भयंकर रोगोंसे पीड़ित मनुष्योंकी कातर-ध्वनि युग-युगान्तरसे सुनी जा रही है और ये विविध चिकित्सा-प्राणालियाँ रोगियोंको रत्तीभर भी आराम नहीं पहुँचा सकीं। इसके विपरीत,—वे रोगीको उन भयंकर व्याधियोंमें उलझाये रखती हैं। प्रायः ऐसा देखा गया है कि जीवभर दुःख भुगतनेके बाद, उन्हें छुटकारा केवल तभी मिला, जब मौतने उनकी आँखें बन्द कर लीं।

आरोग्य जैसे आवश्यक काममें, जिसमें यथेष्ट बुद्धि, विचारशीलता और निर्णयक्षमताकी जरूरत है, हम नहीं समझते कि किस तरह प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीवाले अपनेको विवेक-सम्पन्न समझ लेते हैं, जब वे रोग आराम करनेकी भाँतिके जवाबदेहीके काममें विचारहीन जीवनी-शक्तिको ही उनकी परिचालिका या सर्वोत्कृष्ट शिक्षयित्री मान लेते हैं। और इस तरह आँख मूँदकर उसका अनुसरण भी करते हैं। किस तरह वे रोगमें उस जीवनी-शक्तिकी परिवर्त्तन करनेवाली उन सब प्रक्रियाओंको सबसे बढ़िया मानकर उसके वशावर्त्ती हो जाते हैं, जब कि रोगक्लिष्ट मनुष्य-जातिके कल्याणके लिये परमात्माका सर्वश्रेष्ठ दान चिन्ताशील, विवेक-स्वाधीन, अचल न्याय बुद्धि हमलोगोंको मिली हुई है।

प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीके चिकित्सक जब बिना विचारे चैतन्य-रहित, स्वतः क्रियाशील जीवनी-शक्तिके स्थूल क्रियाओंका अनुसरणकर

तेज प्रतिषेधक और निःसारक प्रक्रियाका प्रयोग करते हैं तथा अपनी प्राचीन रीतिके अनुसार शरीरके निरोग अंशपर या तो दर्द पैदा करते हैं अथवा विरेचक दवाएँ देकर रोगीको दुर्बल कर देते हैं, जिससे उनके शरीरका रस क्षय हो जाता है, उस समय अस्वस्थ जीवनी-शक्तिकी क्रियाको रोगके प्रधान या मूल स्थानसे कृत्रिम उपायों द्वारा दूसरी जगह हटा देना ही उनका उद्देश्य रहता है या उसे वे विपरीत प्रणालीसे आरोग्य करना चाहते हैं, लेकिन होता यह है कि इससे एक दूसरे ही प्रकारकी तथा और भी तेज बीमारी शरीरके स्वस्थ स्थानमें पैदा हो जाती है तथा इससे रोगीके शरीरसे स्वाभाविक रस आदिका बहुत अधिक क्षय हो जाता है, दुर्बलता बढ़ जाती है और रोगीको बहुत कष्ट भोगना पड़ता है।

यदि बीमारी नयी और थोड़े दिनोंकी हुई, तो इन दूरके तथा दूसरे स्थानोंमें दूसरी बीमारी पैदा कर देनेपर दब भी जाती है ; पर वह वास्तवमें अच्छी नहीं हो जाती। इस परिवर्त्तनकारी चिकित्सा-पद्धतिके लिये, जिसमें रोग पीड़ित तन्तुसे कोई भी वास्तविक, सीधा और विज्ञान-सम्भव सम्बन्ध नहीं रहता, जिससे उसके साथ "आरोग्यप्रद" सूचक सम्मानपूर्ण शब्द लगाया जाये। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि वास्तवमें कितनी ही गुरुतर नयी बीमारियाँ आप-से-आप आरोग्य हो जाती हैं। उस अवस्थामें चिकित्साके नामपर जो गुरुतर व्याधियाँ मिला दी जाती हैं, उनकी अपेक्षा बहुत ही कम तकलीफ भोगनी पड़ती है और बल भी उतना क्षय नहीं होता ; लेकिन न तो प्रकृतिकी स्थूल क्रिया और न उसकी ऐलोपैथिक नकल—इन दोनोंमेंसे किसकी भी तुलना शक्तिकृत (होमियोपैथिक) इलाज से जरा भी हो सकती है, जिसमें ताकत ज्यों-की-त्यों बनी रहती है तथा सरल भावसे तेजीसे स्वास्थ्य लाभ हो जाता है।

इसके विपरीत पुरानी बीमरियोंकी चिकित्सामें प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीवालोंकी इस तरहकी कमजोरी उत्पन्न करनेवाली विपरीत चिकित्सा-

पद्धति कभी भी लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकती। यद्यपि उससे कोई-कोई कष्टदायक उपसर्ग कुछ समयके लिये दूर हो जाते हैं, तथापि जभी शरीर दुःखकी यंत्रणा सहन करनेके योग्य अभ्यस्त हो जाता है, तभी ये सब उपसर्ग और भी भयंकर रूप धारणकर पुनः आ पहुँचते हैं। शरीरकी अवस्थाके विरुद्ध जलन तथा दर्दका पैदा करना और बिना किसी लाभ-दायक कारणके जुलाब आदिके द्वारा जीवनी-शक्तिका बल घटा देना ही उसका कारण हुआ करता है।

जब प्राचीन पद्धतिके चिकित्सकगण रुग्ण असहाय प्रकृतिकी शरीरपर होनेवाली स्थूल क्रियाकी नकल करते हैं, तब अपनी चिकित्सा-पद्धतिमें, अनुमानके बलपर इसी तरह प्रयोग करते हैं और इस तरह आत्म संरक्षणकी चेष्टा करते हैं। इसी तरह कुछ दूसरे, इनसे भी अधिक उद्देश्य प्रकट करते हैं और कहते हैं कि वे भी जीवनी शक्तिकी क्रियामें निष्कासन द्वारा रोगको दूसरे स्थानमें पैदा करना तथा विपरीत चिकित्सा द्वारा सहायता पहुँचाते हैं। यह भी ठीक उसी तरह जैसा कि रोगमें दिखाई देता है और इसीलिये निरेचन आदिकी क्रिया बढ़ा देते हैं। इसके द्वारा वे यह समझते हैं कि इस हानिकर पथका अवलम्बनकर वे प्रकृतिके नियमकी समतामें ही कार्य कर रहे हैं और इस तरह प्रकृतिके मंत्रीकी पदवी ग्रहण करना चाहते हैं।

पुरानी बीमारियोंमें कभी-कभी ऐसा दिखाई देता है कि स्वभाविक शक्तिके द्वारा जो समय-समयपर स्राव आदि होता है, उससे दर्द, अकड़न, पक्षाघात प्रभृति सांघातिक लक्षण दब जाते हैं। इसीसे ऐलोपैथिक चिकित्सक यह समझ लेते हैं कि रोगको घटानेके लिये यह जुलाब आदि विरेचक और निःसारक क्रिया बहुत फायदेमन्द है। इसीलिये वे हरेक पुरानी बीमारीमें, बढ़ी हुई मात्रामें, दवा देकर निःसारक क्रिया पैदा करते हैं और उसको बनाये रखनेकी चेष्टा भी करते हैं; परन्तु वे यह नहीं समझ सकते कि प्रकृतिके द्वारा उत्पन्न यह निःसारक क्रिया, जब उसी

भरोसे छोड़ दी जाती है, तो केवल कुछ समयके लिये तकलीफ घट जाती है, उससे कभी स्थायी लाभ नहीं होता ; वल्कि इस निःसारक क्रियाके कारण रोगकी तकलीफ पहलेकी अपेक्षा अधिक बढ़ जाती है, शरीरका रस और ताकत घट जानेके कारण भीतरी मूल रोग और भी बढ़ जाता है। प्रकृतिकी इस स्थूल क्रियाके द्वारा कभी भी किसीने पुराने रोगको आरोग्य होते नहीं देखा और न यंत्रोंसे इस तरह निःसारक प्रयोगके द्वारा ही किसीने रोग आराम होते देखा है। इसके विपरीत, ऐसे रोगियोंको पहले-पहल कुछ आराम आते देखा जाता है ; परन्तु यह आराम या रोगके घटे रहनेका समय धीरे-धीरे घटता जाता है, तथा यह निःसारक चिकित्सा जारी रहनेपर भी, वारम्वार भयंकर उपसर्ग पैदा होने लगते हैं। इसी तरह, जीवन-नाशकी धमकी देनेवाले पुराने रोगोंका भीतर वार-वार आक्रमण होनेपर एक ऐसी अवस्था आ जाती है, जब शरीरमें यह शक्ति नहीं रह जाती, कि वह कुछ कर सके और वह निःसारण क्रिया नहीं कर सकती, तव वाह्य स्थानिक लक्षण इसलिये प्रकट कर देती है कि जीवनके आवश्यक अंशोंपर रोगका हमला न हो जाये तथा उन्हें कम आवश्यक तन्तुओंपर भेज देती है। इस तीव्र, पर अविवेकी अयौक्तिक तथा अपरिणामदर्शी जीवनी-शक्तिकी ये क्रियाएँ पूरी तरह आराम या आरोग्य देनेके सिवा और कोई भी काम कर सकती हैं, अर्थात् वह कुछ समयके लिये भीतरी यंत्रोंको आराम पहुँचा देती है ; परन्तु इसके वदले ताकत वहुत कुछ घट जाती है और रोग एक वाल वरावर भी नहीं घटता। विना सदृश मतसे चिकित्सा किये इन रोगोंसे होनेवाली मृत्युको कोई भी रोक नहीं सकता।

ऐलोपैथिक चिकित्सकोंने प्रकृतिकी इन स्थूल क्रियाओंका वहुत वहूमूल्य ही नहीं समझ रखा है, वल्कि उनको गलत भी समझा है उन्हें भ्रमवश पूर्ण आरोग्यकर मान लिया है और वृथा ही उन्हें इस आशामें बढ़ाने और उन्नत करनेकी चेष्टा कर रहे हैं कि इससे समस्त रोगोंको वे

जड़से आरोग्यकर सकेंगे। पुरानी बीमारीमें जब जीवनी-शक्ति इधर-उधरके कष्टदायक लक्षणोंको, जो भीतरी रोगके कारण पैदा हो जाते हैं, चर्मपर कुछ उद्‌भेदके रूपमें पैदा कर देती है, तब उस जड़ प्रकृतिके समर्थक उस अंशपर केन्थराइडिस प्लेस्टर या मेजेरियमका प्रयोग इसलिये करते हैं कि ये कुछ और भी रस चर्मसे खींच लें और इस तरह प्रकृतिके उद्देश्य और कार्यमें सहायता पहुँचाय, तथा रोगको (शरीरसे दूषित पदार्थ निकालकर) आरोग्य कर दें, पर इन दवाओंका असर इतना तेज होता है कि बहुत दिनोंका अकौता निकल आता है तथा शरीर बहुत ही उत्तेजना-प्रवण हो जाता है, पर मूल भीतरी रोगमें जरा भी परिवर्त्तन नहीं होता और बाहरी रोग और भी बढ़ जाता है। दर्द और तकलीफ बढ़ जाती है, तकलीफसे रोगी सो नहीं सकता और उसकी ताकत घट जाती है (और कभी-कभी मारात्मक ज्वर मिला विसर्प पैदा हो जाता है) ; परन्तु यदि बाहरी प्रयोगकी दवाओंका असर धीमा हुआ, तो रोग अपनी जगहसे हट जाता है और इस तरह भीतरी रोगको कम रखनेके लिये चर्मपर जो लक्षण प्रकृतिने पैदा कर दिये थे, उनके दब जानेके कारण भीतरी रोग और भी भयंकर रूपसे बढ़ जाता है और स्थानिक रोगके इस तरह दब जानेके कारण प्रकृतिको बाध्य होकर शरीरके अन्य आवश्यक अंशोंपर बहुत भयंकर क्रिया प्रकट करनी पड़ती है। रोगीको भयानक आँखोंका प्रदाह, बहरापन, पेटमें मरोड़ या मृगीकी भाँति अकड़न, दमा, संन्यास या मानसिक विकार आदि रोग हो जाया करते हैं और ये सभी रोग उस चर्म रोगके बदलेमें होते हैं, जिसको बाहरी दवाएँ लगाकर भीतर धकेल दिया गया है।

बादी बवासीर (जिसमें रक्त नहीं निकलता) रोगमें रोगी जीवनी शक्तिको, बाध्य होकर, मलनाली या मलद्वारमें बहुत ज्यादा रक्त भेजना पड़ता है ; बादी बवासीरमें ऐसा ही होता है ; परन्तु ये प्रकृतिके मंत्री (ऐलोपैथगण) प्रकृतिकी आरोग्यक्रियामें सहायता पहुँचानेके उद्देश्यसे

जोंक लगवा देते हैं। कभी-कभी रक्त निकालनेके लिये यह जोंकें अधिक संख्यामें लगाई जाती हैं। इससे आराम तो बहुत थोड़ा, और, कभी-कभी ज्यादा भी, हो जाता है ; परन्तु इससे शरीर दुर्बल हो जाता है और उस अंशमें और भी अधिक रक्त-संचय होता है तथा मूल रोग तो किसी तरह घटता नहीं है।

ठीक इसी तरह, किसी-किसी रोगमें रोगकी तेजी या भयंकरता घटानेके लिये, रोगी जीवनी-शक्तिको वमन द्वारा रक्त निकालना पड़ता है या रक्त मिली खाँसी पैदा करनी पड़ती है। यही देखकर ऐलोपैथ चिकित्सकगण भी इन सब स्थानोंसे बहुत अधिक रक्त निकालकर रोगको घटानेकी चेष्टा किया करते हैं। उससे शरीर तो दुर्बल हो ही जाता है, साथ ही, अन्यान्य नाना प्रकारके हानिकर परिणाम भी पैदा हो जाया करते हैं।

बार-बार होनेवाली पुरानी मिचलीके रोगियोंमें प्रकृतिकी उस जल्दी-जल्दी रोग घटानेवाली चेष्टाकी नकलकर ऐलोपैथ तेज वमन लानेवाली दवाका प्रयोग करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि फायदा होना तो दूरकी बात रही, और भी भयंकर अवस्था पैदा हो जाती है, और, कभी-कभी रोगीकी मृत्यु भी हो जाया करती है।

भीतर रोगको आराम पहुँचानेके लिये कभी-कभी जीवनी-शक्ति शरीरके भिन्न-भिन्न स्थानोंकी ग्रन्थियोंमें सूजन पैदा कर देती है और उनका आकार बढ़ा देती है। ऐसी अवस्थामें प्रकृतिके मंत्री समझ लेते हैं कि इन सब ग्रन्थियोंमें पीप पैदा कर, उस पीपको बाहर निकाल देनेसे ही, असली रोग आरोग्य हो जायगा। यह सोचकर, वे नाना प्रकारके तेज प्रलेप या मरहम आदि लगवाया करते हैं। परन्तु अनुभवसे मालूम हुआ है कि सैकड़ों बार, इससे प्रायः स्थायी दुष्परिणाम ही पैदा होते हैं।

किसी पुरानी बीमारीकी भयंकर अवस्थामें, अक्सर यह देखकर कि पुराने रोगोंके तीव्र उपसर्ग रातमें पसीना होकर या बार-बार पहले दस्त आकर दब जाया करते हैं, वे समझते हैं कि उन्हें भी प्रकृतिका यह संकेत मानकर इसीके अनुसार चलना चाहिये। इसीलिये बरसोंतक पसीना निकलनेवाली दवाएँ अथवा हलका जुलाब देकर, प्रकृतिकी अविवेकी जीवनी-शक्तिकी इस चेष्टाको वे बढ़ानेकी चिकित्सा किया करते हैं, जिससे वे समझते हैं कि यह पुराना रोग आराम हो जायगा और रोगीको निश्चित रूपसे रोगसे छुटकारा मिल जायगा (उनकी बीमारीका तत्व ?)।

पर इसका एकदम विपरीत परिणाम होता है और मूल रोग बढ़ जाया करता है।

इस निराधार, परन्तु पूर्व कल्पित, विचारके अनुसार, प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीके चिकित्सक रोगी जीवनी-शक्तिकी क्रियाको इस तरह निःसारक और विरेचक औषध आदि रोगीको खिलाकर बढ़ाया करते हैं; परन्तु उससे रोग आरोग्य नहीं होता, बल्कि बराबर बीमारी बढ़ती ही जाती है। वे यह भी नहीं समझते कि समस्त स्थानिक रोगोंमें निःसरण और उपशम तथा बाहर निकालनेवाली चेष्टाएँ, अविवेकी जीवनी-शक्ति द्वारा की जाती हैं और जारी रखी जाती हैं। यह क्रियाएँ मूल रोगको आरोग्य करनेके लिये नहीं होती; पर इनके द्वारा ही मूल रोगकी अभिव्यक्ति होती है, अतः उस मूल रोगको दूर करनेके लिये ऐसी दवाकी जरूरत होती है, जो समस्त पूर्ववर्त्ती और वर्त्तमान रोगके लक्षणोंके साथ सदृश सम्बन्ध रखे और जिसके द्वारा क्रिया सरल रूपसे हो। वह दवा सदृश लक्षणके अनुसार चुनी हुई होमियोपैथिक दवा ही हो सकती है, दूसरी नहीं।

नयी बीमारीमें और खासकर पुरानी बीमारीमें तकलीफ देनेवाले लक्षणोंको दबानेके लिये जीवनी-शक्ति स्वयं जो कुछ किया करती है, वह

असम्पूर्ण और अनिश्चित रहा करता है और वास्तवमें यह क्रियाएँ भी रोग ही रहती हैं। अतएव यह सहजमें ही समझमें आ सकता है कि कृत्रिम उपायोंसे इस तरहकी क्रियाको, अर्थात् रोगको बढ़ाना कितना हानिकर है ; कम-से-कम नयी बीमारीमें तो प्रकृतिकी आराम पहुँचानेवाली चेष्टाकी वृद्धि नहीं की जा सकती ; क्योंकि चिकित्सा-कला उस गुप्त पथको नहीं खोज निकालती, जिससे जीवनी-शक्ति अपने रोगोंपर प्रभाव डालती है ; बल्कि तेज उपायों द्वारा बाहरसे उनका प्रयोग, जीवनी-शक्तिकी अपनी क्रियासे भी कम लाभदायक होता है, तथा उससे बहुत कुछ गड़बड़ी और कमजोरी पैदा हो जाती है। यहाँतक कि ऐलोपैथी इलाजसे उतना भी कम ह्रास नहीं होता, जितना कि प्रकृति अपने उपायोंसे स्वयं कर लेती है और लाख चेष्टा करनेपर भी यह उतना थोड़ा आराम नहीं पहुँचा सकती, जितना कि जीवनी-शक्ति स्वयं कर छोड़ती है।

कितने ही रोगियोंको पुराने सर-दर्दकी बीमारीमें नाकसे रक्त स्राव होता है और इस तरह नाकसे रक्तस्राव होनेपर तुरन्त सर-दर्द अच्छा हो जाता है। यह देखकर प्राचीन प्रणालीके चिकित्सकगण यंत्र द्वारा नाकसे बहुत अधिक रक्त निकाल देनेका उपाय ग्रहण करते हैं। इसका परिणाम यह दिखाई देता है कि प्रकृतिकी नकल तो वे करना चाहते हैं, पर सर-दर्द आराम नहीं होता और यदि सर-दर्द कुछ घटता भी है ; तो रोगीकी कमजोरी सौ-गुना बढ़ जाती है ; परन्तु प्रकृति यदि यही काम करती है, तो कई बून्द रक्त ही गिरकर रुक जाता है और रोग आरोग्य हो जाता है।

कितनी ही बार बहुत ज्यादा क्रोधकी उत्तेजना, भय या किसी अंगमें मोच आ जानेसे कोई नयी बीमारी पैदा होनेपर, आप-से-आप ज्यादा पसीना होने लगता है या पतले दस्त आने लगते हैं। जीवनी-शक्तिकी इस क्रियाके द्वारा कुछ समयके लिये वह तेज बीमारी दब जाती है।

इसीलिये, किसी भी बीमारीमें दस्तावर और पसीना लानेवाली दवा लाभ पहुँचायेगी, ऐसी कोई बात नहीं हो सकती, मेटिरिया-मेडिकामें पसीना लानेवाली और दस्तावर दवाकी जरूरत ही क्या है, जिससे रोगी बहुत कमजोर हो जाता है ? यह बात रोज ही अनुभवमें आती है।

वह जीवनी-शक्ति, जो हमारे यंत्रोंकी शारीरिक अवस्थाके अनुसार अपना कार्य करती है, उसका ज्ञान, तर्क, विद्या अथवा सोच-विचारसे नहीं प्राप्त किया जा सकता। अतः उसीका अनुकरण चिकित्सा-शास्त्रका आधार बना लेना कभी न्यायोचित नहीं मान लिया जा सकता है और न उसका अनुकरणकर बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य ही सुधारा जा सकता है। इसके अलावा इस जीवनी-शक्तिकी अपूर्ण रोग आरोग्यकर चेष्टाओंकी नकल करना और उसके कार्योंकी अपेक्षा भी तीव्र तथा अनुचित प्रयोगोंका करना तथा केवल इस तरह अनुकरणके लिये निरर्थक अपना तर्क, युक्ति और भाव तथा न्यायको उस खोज और अभ्यासमें व्यय करना, जो मानव-कलामें सर्वश्रेष्ठ है—जो सच्ची आरोग्य करनेवाली कला है—और वह भी जड़ प्रकृतिके संदेहपूर्ण उपयोगिताके कार्योंकी नकल—एक दासताके सिवा और क्या हो सकती है और इसीको वे आरोग्यकर कला—सच्ची वैज्ञानिक आरोग्य-प्रदायिनी कला कहते हैं।

यंत्र विशेषोंका अपनी रक्षाके लिये किये हुए उद्योगका कौन बुद्धिमान अनुकरण करेगा ? ये चेष्टाएँ तो वास्तवमें आप ही रोग हैं तथा रुग्ण जीवनी-शक्ति ही इन दृश्य रोगोंको पैदा करनेवाली है। अतएव यह निश्चय है कि इनकी सब कृत्रिम नकलें और इन चेष्टाओंको दबा देना या दमन करना या तो रोगको बढ़ा देंगे या उनको दबाकर और भी भयंकर बना देंगे ; परन्तु ऐलोपैथी यह दोनों ही काम कर रही है। ये इसके मारात्मक कार्य हैं, जिसे वह आरोग्यकर विज्ञान-पूर्ण आरोग्यदायिनी कला कहती है।

नहीं ; वह सूक्ष्म जीवनी-शक्ति मनुष्यके शरीरके सब स्थानोंमें, यहाँतक कि ज्ञान-तन्तु और उत्तेजना-तन्तु दोनोंमें ही मौजूद है, जब वह स्वस्थ अवस्थामें रहती है, तो जीवनके सभी कार्य अत्यन्त सम्पूर्णतासे किया करती है। वह शरीरकी स्वाभाविक क्रियाको न खराव होनेवाले स्प्रिङ्गकी तरह है। वह न तो अपनेको रोगमें डालने और न अनुकरण करनेके योग्य आरोग्यकर कालके कार्यके लिये ही है ; वल्कि वह सच्ची आरोग्यकर कला तो चिन्ताका कार्य है, मनुष्यकी बुद्धिकी उन्नत शक्तिका कार्य है तथा वह अटल न्याय और विचारका कार्य है, जिसके द्वारा ज्ञानहीन, स्वतः क्रियाशीलपर प्रभृति शक्तिशाली जीवनी-शक्ति जब रोग-ग्रस्त होती है, तो उस रोग-ग्रस्त जीवनी-शक्तिको फिरसे निरोग और स्वभाविक अवस्थामें लौटा लानेका सिद्धान्त तैयार हो सकता है। केवल होमियोपैथिक रूपसे अर्थात् सदृश चिकित्सासे चुनी हुई दवा द्वारा ही इस बिगड़ी हुई जीवनी-शक्तिको फिर स्वाभाविक अवस्थामें लाया जा सकता है, दूसरेसे नहीं। इस विधानके अनुसार एक ऐसी चुनी हुई दवाका प्रयोग करना पड़ता है, जिसकी सहायतासे जिवनी-शक्ति मूल रोगकी अपेक्षा अधिक वलशाली एक नकली बीमारीसे बाध्य होकर आक्रान्त हो जाती है। इससे होता यह है कि एक ही शरीरमें, एक ही समय, दो समान और सदृश क्रिया करनेवाली विभिन्न प्रकारकी बीमारी नहीं रह सकती। इस वजहसे मूल रोगको बाध्य होकर हट जाना पड़ता है। इसके वाद, जीवनी-शक्ति औषधिसे उत्पन्न केवल एक नकली बीमारीसे आक्रान्त रहती है ; परन्तु इसके वाद जीवनी-शक्तिकी सम्पूर्ण ताकत इन नकली बीमारीकी ही ओर लग जाती है और वह वहुत जल्द इससे छुटकारा पाकर फिर स्वस्थ और स्वाभाविक अवस्थामें लौटाकर अपनी स्वाभाविक क्रिया करने लगती है और इस प्रकारसे स्वाभाविक अवस्थामें लौट आनेके वाद, उसमें दवाके कारण पैदा हुई कोई भी गड़बड़ी, दर्द या कमजोरी नहीं रह जाती और फिर वह पूर्वकी भाँति ही शरीरके

स्वास्थ्य-सम्पादनके कार्यमें लग जाती है। इस तरहका आरोग्यकर किस तरह किया जाता है, होमियोपैथी यही हमलोगोंको सिखाती है।

जिस प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीके सम्बन्धमें मैंने इतना विशद रूपसे कहा है, उससे कम संख्यामें रोगी आरोग्य नहीं होते, पर पुरानी बीमारीके लक्षणवाले नहीं आरोग्य होते, सिर्फ नयी बीमारीके और वह भी खतरेसे रहित रोगी ही होते हैं अथवा वे इतनी कठिनता और कष्टकर पथसे तथा अकसर असम्पूर्ण आरोग्य होते हैं कि उस चिकित्साका जो परिणाम होता है, उसे सरल कला कभी भी नहीं कहा जा सकता। साधारण प्रकृतिकी भयहीन बीमारियोंमें भी वे रक्त निकालकर और विपरीत दवाएँ देकर रोगवाली जगहसे अलग दूसरी जगहपर उत्तेजक पदार्थसे रोग पैदाकर चिकित्सा किया करते हैं और इस तरह अपनी तबतक चिकित्सा चलाया करते हैं, जबतक उस बीमारीके ठहरानेका समय बीत न जाये। इस परोक्ष चिकित्सा-प्रणाली द्वारा चिकित्साका यह परिणाम होता है कि रोगी शक्ति और शरीरके तरल पदार्थ इतने चय हो जाते हैं कि रोगके कारण पैदा हुई कमजोरी और गड़बड़ियोंको ठीक करनेके लिये जिवनी-शक्तिकी ताकत लगनी चाहिये, उससे कहीं अधिक शक्ति जीवनी-शक्तिको प्रयोग करनी पड़ती है; क्योंकि उसकी स्वाभाविक नयी बीमारीके साथ-ही-साथ अनुचित चिकित्साके प्रभावका भी सामनाकर स्वाभाविक अवस्थामें रोगीको लाना पड़ता है; परन्तु अकसर यह बहुत ही कठिन, असम्पूर्ण और कष्टदायक ढगसे होता है।

यह भी एक सन्देहकी बात रह जाती है, कि प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीवालोंके इस तरह हस्तक्षेपसे, कोई नयी स्वाभाविक बीमारी विशेषकर घट जाती है या उसमें कुछ सुविधा मिल जाती है या नहीं; क्योंकि प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीवाले जीवनी-शक्तिके प्रदर्शनके अनुसार ही गौण भावसे चिकित्सा करते हैं; परन्तु इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं है कि

उनकी निष्कासक तथा उत्तेजक चिकित्सा-प्रणाली अधिक परिमाणमें दुर्बल करनेवाली और हानिकारक ही सिद्ध हुई है।

प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीवालोंका चिकित्सा करनेका एक और भी ढंग है, जिसे वे उत्तेजक और शक्तिवर्द्धक प्रणाली कहते हैं। इसमें उत्तेजना पैदा करना, स्नायुओंकी शक्ति बढ़ाना, बलकारक औषध देना, आराम पहुँचाना प्रभृति क्रियाएँ अधिक की जाती हैं। ये सब कार्य इसके अन्तर्गत हैं। यह भी एक आश्चर्यकी बात है कि वे किस तरह इन क्रियाओंपर गर्व करते हैं।

क्या कभी यह चिकित्सा-प्रणाली, पुरानी बीमारीके कारण पैदा हुई और बढ़ती हुई दुर्बलताको अपने टानिक वाइन या उत्तेजक औषधसे दूर कर सकी है? इस इलाजसे ताकत घटती ही जाती है और जितनी ही अधिक मात्रामें रोगीको शराब पीनेको कहा जाता है, उतनी ही उसकी कमजोरी बढ़ती जाती है; क्योंकि कमजोरीका मूल कारण,—पुरानी बीमारी, इससे अच्छी नहीं होती और कृत्रिम बलकारक जीवनी-शक्तिकी प्रक्रियाके कारण यह परिणाम होता है कि पीछे वह दुर्बलता पैदा करता है।

अपनी क्रियामें इस तरह विचित्र और नाना प्रकारकी हानियाँ उत्पन्न करनेवाली सिनकोनाकी छाल या सत, कितने तरहकी बारम्बार पैदा होनेवाली बीमारियोंमें बल देता है? क्या सभी अवस्थाओंमें ये उद्भिजके सत बलकारक और शक्तिवर्द्धक नहीं कहलाते हैं? क्या लोह सम्मिलित औषधियाँ पुरानी बीमारीमें और भी नयी बीमारी नहीं जोड़ देतीं? इन निदान-सम्बन्धी चिकित्साओंका यह परिणाम होता है कि बहुत दिनोंके अज्ञात रोगसे पैदा हुई दुर्बलताको ये दवाएँ किसी तरह हटा नहीं सकतीं।

स्नायविक शक्तिवर्द्धक, नशीले, शामक पदार्थ अथवा नाना प्रकारकी तुरन्त लाभ पहुँचानेवाली मालिशकी दवाएँ आदिका प्रयोगकर क्या

कोई कभी पुरानी बीमारियोंके कारण पैदा हुए और बार-बार आक्रमण-कारी बाँहका या पैरमें होनेवाले पक्षाघातको, उस पुरानी बीमारीको आरोग्य किये बिना स्थायी रूपसे आरोग्य कर सका है ? अथवा वैद्युतिक (Electric) या रसायनिक शक्तिके प्रयोगसे, इसके सिवा क्या और भी कोई परिणाम हुआ है कि रोग बढ़ता-बढ़ता एकदम पक्षाघातमें परिणत हो गया और पीड़ित अंगके समस्त स्नायु और मांशपेशियोंमें उत्तेजना पैदा हो गई।

क्या विख्यात उत्तेजक और नपुन्सकता दूर करने लिये एम्ब्रग्रिस, लैसर्टा साइनस, कैन्थराइडिस, टिंचर, इलायची, दालचीनी और वेनिला सम्पूर्ण नपुन्सकताको उस अवस्थामें नहीं उत्पन्न कर देते, जब क्रमशः घटती हुई काम-शक्तिको बहाल करनेके लिये उनका व्यवहार किया जाता है ? (यह विकार किसी पुराने और अदृष्ट उपद्रवपर आश्रित होता है)।

फिर ऐसी काम-शक्तिवर्द्धक, उत्तेजक और बलदायक औषधियोंकी तैयारीके लिये श्रेय कैसे लुटा जा सकता है, जिनका प्रभाव और गुण २-४ घण्टे ही जारी रहता हो, जब कि उसे निश्चय ही स्थायी होना चाहिये था—जैसा कि शामक उपचार पद्धतिके अनुसार होना चाहिये ; परन्तु यहाँ तो हालत ही दूसरी आ जाती है अर्थात् रोग असाध्य हो जाता है।

पुरानी चिकित्सा-प्रणालीके ढंगसे ईलाज होनेपर इन उत्तेजक और बलवर्द्धक दवाओंसे यदि नये रोगोंमें कुछ थोड़ा-बहुत आराम आता भी है और उससे कुछ भलाई होती भी है, तो पुरानी बीमारीमें उनसे हजार गुना अधिक बुरा प्रभाव पहुँचता है !

जब प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीके चिकित्सक यह समझ नहीं पाते कि पुरानी बीमारीका किस तरह ईलाज करना चाहिये, तो वे आँखें बन्दकर अपनी परिवर्त्तक (Alterative) दवाओंसे ईलाज करने लगते हैं। इनमें अनेक भयंकर चीजें शामिल हैं, जैसे—पारदसे बने पदार्थ

(Mercurialis—कैलोमेल, कोरोसिव सब्लिमेट और पारेका मलहम), जिनका वे इतनी अधिक मात्रामें और इतने दिनोंतक (गैर-आतशकी हालतोंमें भी), रोगी अंगपर प्रयोग करते हैं कि उनके हानिकर प्रभावोंके कारण, स्वास्थ्य एकदम बिगड़ जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि इस तरह वे बहुत बड़ा परिवर्त्तन पैदा कर देते हैं, परन्तु दुःख है कि वे लाभदायक नहीं होते और इन भयंकर हानिकर पदार्थोंके अनुचित प्रयोगके कारण वे स्वास्थ्यको एकदम नाश कर देते हैं।

जब वे अधिक मात्रामें सिनकोनाकी छालका (जो होमियोपैथी नियमके अनुसार केवल तेज सविराम ज्वरकी दवा है, जब कि साथ ही सोरा-दोष भी सम्मिलित रहता हो) सब तरहके सविराम ज्वरमें, जो कभी-कभी व्यापक रूपमें समस्त देशमें फैल जाता है, प्रयोग करते हैं, तो अपनी भयंकर आज्ञानता प्रकट करते हैं ; क्योंकि ये बीमारियाँ प्रति वर्ष एक नया ही रूप धारण करके आया करती हैं, इसलिये प्रति वर्ष एक नये ही प्रकारकी सदृश दवाकी आरोग्यके लिये जरूरत होती हैं, जिसकी एक या कई क्षुद्र मात्राओंसे ही, वे कुछ दिनोंमें ही सदाके लिये, चली जाती हैं। चूंकि व्यापक रूपसे फैलनेवाले इन ज्वरोंका आक्रमण सामयिक होता है (टाइफस) तथा प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीवाले अर्थात् एलोपैथ भी इसकी सामयिकता अर्थात् बँधे समयपर आना ही देखते हैं और नहीं जानते और यह जाननेका उद्योग भी नहीं करते कि सिनकोनाके सिवा इसकी कोई दूसरी ज्वरनाशक दवा भी है, वे केवल हर रोगीके लिये उसीका प्रयोग करते हैं। ये बँधे ढर्रेसे काम करनेवाले चिकित्सक सोचते हैं कि यदि इस व्यापक सविराम ज्वरका बँधे समयपर आना सिनकोना और उसके बहुमूल्य खारोंकी बड़ी-बड़ी खुराकोंसे बन्द कर सकें, तो उन्होंने सविराम ज्वरको आरोग्य कर लिया ; परन्तु इस तरह समयपर आना दब जानेके कारण दुर्बल रोगीकी अवस्था पहलेसे भी बदतर हो जाती है। उसका चेहरा पीला हो जाता है, उसे श्वास-कष्ट

पैदा हो जाता है, कुक्षि-देशमें खिंचाव पैदा हो जाता है ; पाखाना ठीक नहीं आता, भूख ठीक-ठीक नहीं लगती, निद्रा ठीक नहीं होती ; कमजोरी और निराशा-सी रहती है। अक्सर पैरोंमें भी बहुत सूजन पैदा हो जाती है। कभी-कभी पेट, चेहरा और हाथ भी फूल जाते हैं। उसे आरोग्य हो गया कहकर अस्पतालसे हटा दिया जाता है, तब उसे मृत्युसे बचनेके लिये बहुत दिनोंतक होमियोपैथिक चिकित्सा करनी पड़ती है और केवल इसीसे वह घोर दुर्बल तथा हानिकृत रोगी आरोग्य हो सकता है।

मोह ज्वर या सान्निपातिक ज्वरमें (टाइफस) विपरीत मतसे चिकित्साकर आच्छन्नता या बेहोशीको कई घण्टोंके लिये वेलेरियनका प्रयोगकर जब वे हटा देते हैं, तो बहुत प्रसन्न होते हैं ; परन्तु रोगीमें चेतनता अधिक देरतक न ठहरनेके कारण उन्हें बार-बार अधिक मात्रामें वेलेरियनका प्रयोग करना पड़ता है और फिर अन्तमें यह अवस्था भी आ पहुँचती है कि सबसे बड़ी मात्राका भी कोई प्रभाव नहीं होता। परन्तु अपनी प्राथमिक क्रियाके कारण यह उत्तेजक दवा जो बल दिखाती हैं, उसका यह नतीजा निकलता है कि बादमें जीवनी-शक्ति पक्षाघातग्रस्त हो जाती हैं और यह निश्चित है कि प्राचीन प्रणालीवालोंकी इस वैज्ञानिक चिकित्साके कारण रोगी मृत्युके मुँहमें तेजीसे जा पहुँचता है ; इससे उसे कोई भी बचा नहीं सकता। इतनेपर भी इस डरसे चिकित्साका काम करनेवाले यह नहीं देख पाते कि इन प्रक्रियाओंके कारण उनका रोगी मृत्युके मुखमें जा पहुँचता है। वे रोगकी भीषणताको ही मृत्युका कारण बताते हैं।

इससे भी बढ़कर भयंकर और उपशमकारिणी दवा है—डिजिटेलिस पर्प्युरिया, जिसका प्रयोगकर प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीवाले अर्थात् ऐलोपैथ उस समय समझते हैं कि वे बहुत सुन्दर कार्य कर रहे हैं, जब इसके सहारे वे पुरानी बीमारीमें (शुद्ध लाक्षणिक) नाड़ीकी तीव्र

गतिको धीमी कर देते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह भयंकर दवा, नाड़ीकी तेज और उत्तेजित गतिको, आश्चर्यजनक रूपसे बहुत जल्द धीमी कर देती और धमनियोंके स्पन्दनकी संख्या भी घटा देती है। यह बात पहली खुराक देते ही कुछ घण्टोंके लिये होती है; उसके बाद नाड़ीकी चाल पहलेकी अपेक्षा और भी तीव्रतर हो जाती है। अब इसकी तेजी घटानेके लिये मात्रा बढ़ा दी जाती है और इसका प्रभाव भी वही होता है, पर और भी कम समयके लिये। यहाँतक कि फिर बड़ी-से-बड़ी खुराक भी नाड़ीकी तेजी घटानेमें समर्थ नहीं होती। इसके बाद इसकी गौण-क्रिया यह होती है कि दवा देनेके पहले नाड़ीकी जितनी तेजी थी, उससे कहीं अधिक तेज हो जाती—यहाँतक कि उसकी गणना नहीं हो सकती। भूख, नींद और ताकत गायब हो जाती है और मृत्यु पास दिखाई देने लगती है; इस ढंगसे चिकित्सक एक भी रोगी या तो जीता नहीं रहता या फिर असाध्य पागलपनमें ग्रस्त[1] हो जाता है।

ऐलोपैथ इसी ढंगका इलाज करते थे। रोगियोंको बाध्य होकर सहायताके लिये उनकी शरणमें जाना ही पड़ता था; क्योंकि उन्हें दूसरे ऐलोपैथोंसे इससे अच्छी सहायता मिल नहीं सकती थी, क्योंकि वे भी धोखा-भरी पुस्तकोंसे ज्ञान प्राप्त करते थे।

इन चिकित्सकोंको पुराने (गैरआतशकी) रोगोंका मूल कारण तथा अपनी हुई औषधियोंकी क्रियाका ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त नहीं है। वे वृथा ही रोगका कारण जान लेनेके सम्बन्धमें अपने निदान-सम्बन्धी ज्ञानका अहंकार करते हैं। वे किस तरह अपनी विपरीत चिकित्सासे अनगिनती रोगी आरोग्य कर सकते हैं, जब कि उनकी चिकित्सा-प्रणाली

---

१. इतनेपर भी, ऐलोपैथिक चिकित्सा-प्रणालीके प्रमुख चिकित्सक—डा० हूफलैण्ड, ऐसे रोगियोंके लिये डिजिटेलिसकी प्रशंसा करते हैं। उसने लिखा है—"नाड़ीकी तेज चालको घटानेके लिये डिजिटेलिस अत्युत्तम है।"

परन्तु हूफलैण्ड दुर्भाग्य, कि ये अनुभव उनके पक्षमें नहीं है।

अविवेकी जीवनी-शक्तिकी निजीआराम पहुँचानेवाली क्रियाका अनुकरण-भर है और जो किसी भी अवस्थामें चिकित्साके लिये अनुकरणीय नहीं हो सकती।

रोगके दृश्यमान कारणोंको वे रोगका मूल कारण मान लेते हैं और इसीलिये आक्षेप, प्रदाह, ज्वर, आंशिक अथवा सर्वाङ्गीन दुर्बलता, श्लेष्मा, सड़न, रुकावट प्रभृति दूर करनेके लिये आक्षेप दूर करनेवाली, प्रदाह-निवारक, बलकारक, उत्तेजक, सड़ना बन्द करनेवाली, गलानेवाली, विश्लेशण करनेवाली, परिवर्त्तक, बाहर निकालनेवाली प्रभृति विपरीत धर्मकी दवाओंका प्रयोगकर रोगका कारण दूर किया करते हैं। सच तो यह है इन सब औषधोंकी वास्तविक क्रियाका ज्ञान भी उन्हें बहुत कम है।

इन सब लक्षणोंको दबानेके लिये वास्तव और योग्य औषधियोंको प्राचीन प्रणालीवालोंकी मेटिरिया-मेडिकामें खोजकर निकाला भी नहीं जा सकता; क्योंकि उनकी मेटिरिया-मेडिका काल्पनिक सिद्धान्त, मिथ्या और आत्म-प्रवञ्चनाके आधारपर प्रतिष्ठित हो रही है।

इसी ढंगके हठके साथ वे शरीरके रस-रक्तमें आक्सिजेन, नाइट्रोजेन, कार्बन या हाइड्रोजेनकी कमी या वृद्धि अथवा उत्तेजना, अनुभूत, पुनरुत्पादन, शिरा तथा धमनी और कैशिकाओंके संस्थानकी विशृङ्खलता प्रभृतिमें दवा ऐसे प्रत्यक्ष लक्षणोंपर प्रयोग करने लगते हैं; पर वास्तवमें ऐसी एक भी दवाका उन्हें ज्ञान नहीं रहता, जिसके द्वारा इन प्रत्यक्ष लक्षणोंपर भी वे अपना प्रभाव डाल सकें। इस ढंगकी चिकित्सासे कभी किसी रोगीको लाभ नहीं पहुँच सकता।

परन्तु उनकी जो चिकित्सा-प्रणाली प्राचीन कालसे चली आ रही है और जिसके अनुसार काम करना एक नियम-सा बन गया है, वह व्यवहार योग्य नहीं कही जा सकती। मेरा मतलब है कि उनके व्यवस्था-पत्रमें विभिन्न प्रकारकी क्रिया करनेवाली कितनी ही दवाओंका

एक साथ जो सम्मिश्रण या मिलावट रहती है और जिनमेंसे एककी भी वास्तविक क्रिया उनको मालूम नहीं होती और जिनमें सभी एक दूसरेसे गुणमें भिन्न रहती हैं। एक दवा (जिसका औषध-सम्बन्धी गुण अज्ञात है) सबसे प्रधान मानी जाती है। इसे खास दवा समझा जाता है (मूल औषध)। यह रोगके उस प्रधान लक्षणके अनुसार दी जाती है, जिसे चिकित्सक मूल रोग समझता है। इसमें कुछ अन्य दवाएँ मिलायी जाती हैं (इनकी भी औषध-सम्बन्धी क्रिया उनको मालुम नहीं रहती)। ये दवाएँ कुछ सहयोगी लक्षणोंको दूर करने और पहलेकी क्रियाको स्थायी बनानेके लिये मिलायी जाती हैं। इनके अलावा भी कुछ दूसरी दवाएँ (इनकी भी क्रिया मालूम नहीं रहती) इसलिये मिला दी जाती हैं कि प्रधान दवाकी क्रियाको ठीक जारी रखें। ये सब आपसमें मिला दी जाती हैं (खोलायी, गलायी जाती है) और उनके साथ कुछ दवाओंसे बना शर्बत या चुआया हुआ पानी मिलाकर एक सम्मिश्रण (मिकश्चर) तैयार कर दिया जाता है। इनसे यह समझा जाता है कि नुस्खा लिखनेवालेकी धारणाके अनुसार ये सभी दवाएँ रोगी अंशपर अपनी क्रिया प्रकट करेंगी और किसी दूसरे अंशपर कोई प्रभाव न पहुँचेगा; परन्तु यह कोई भी नहीं सोचता कि इसमें विभिन्न क्रियावाली जो कई दवाएँ मिलाई गई हैं, उनसे क्रियामें गड़बड़ी पैदा हो जायगी। यह प्रणाली किस तरह ठीक मान ली जाती हैं, समझमें नहीं आता। इनमें कई दवाएँ मिली रहनेके कारण एक ओर जिस तरह उनकी क्रियाके सम्बन्धमें पहलेसे ही कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता, दूसरी ओर उसी तरह असली बीमारीके साथ इन औषधियोंकी यौगिक क्रिया मिलकर, उससे जो औषधसे उत्पन्न रोग पैदा हो जाया करता है, उसको भी पूरी तरह जान लेनेका कोई उपाय नहीं रहता। इसके साथ ही ऐसा भी होता है कि एक नयी प्रकारकी गड़बड़ी भी पैदा हो जाया करती है। शरीरमें बहुत तरहकी विभिन्न क्रियावाली दवाएँ जानेके कारण

कितने ही परिवर्त्तन पैदा हो जाते हैं। असल रोग-लक्षण दृष्टिसे ओझल हो जाता है, मूल रोग अपना स्थान दृढ़ बना लेता है और बहुत दिनोंतक भिन्न-भिन्न दवाओंका यह सम्मिश्रण देनेके कारण—एक नयी ही कृत्रिम बीमारी मूल रोगमें मिलकर उसे जटिल बना देती है, या यदि ऐसा हुआ कि एक ही प्रकारका नुस्खा बहुत दिनोंतक न चलाया गया, बल्कि और भी कई, इसी तरहके नये नुस्खे बदल-बदलकर दवाओंका प्रयोग हुआ, जिनमें कितनी ही नयी-नयी दवाएँ दी गयीं, तो कम-से-कम इतना तो हो ही जायगा कि कमजोरी बहुत अधिक बढ़ जायगी ; क्योंकि इस तरह दी हुई दवाओंका मूल रोगपर तो कोई प्रभाव होगा ही नहीं, वरन एक प्रकारके वृथा और हानिकर ढंगसे वे उन स्थानोंपर आक्रमण करेंगी, जहाँ रोग नहीं है। अतएव औषधजनित विष-आ जाता है।

यदि प्रत्येक दवाका गुण और क्रिया मालूम भी रहे, तो मानव-शरीरमें, इस तरह अनेक औषधियोंका सम्मिश्रण देना (नुस्खा लिखने-वाला उनके गुणोंका हजारवाँ हिस्सा भी नहीं जानता), एक ही नुस्खेमें कई तरहकी दवाका सम्मिश्रणकर प्रयोग करना, जिनमें कितनी स्वयं सम्मिश्रित प्रकृति (अर्थात् एक-एककी कई प्रकारकी क्रिया होती है) की होती हैं तथा उनकी विचित्र कलाओंका बिलकुल ही ज्ञान न रहना—वास्तवमें इनका एक दूसरेकी प्रकृतिसे भिन्नता—इस तरहकी दवाओंका सम्मिश्रण अधिक मात्रामें और बारम्बार रोगीको निश्चित और लाभदायक या आरोग्य करनेवाले उद्देश्यसे देना—कोई भी विवेकी तथा ईर्षा-द्वेष-रहित मनुष्यको एक आडम्बर ही मालूम होगा और वह इसे धोखा ही समझेगा।

अतएव इसका परिणाम स्वभावतः उनकी आशाके विपरीत ही होता है। कुछ परिवर्त्तन तथा परिणाम तो अवश्य ही होता है ; परन्तु ठीक-ठीक नहीं और न जैसा चाहिये, वैसा लाभदायक होता है ; बल्कि हानिकारक और ध्वंसकारण परिणाम ही निकलता है।

मैं ऐसा एक ही मनुष्य देखना चाहता हूँ, जो इस तरहके अज्ञात और असंगत नुस्खेकी मानव-शरीरपर हुई क्रियाको प्रकृत आरोग्य कह सके।

उचित औषधिका प्रयोगकर, जीवनी-शक्तिको स्वाभाविक अवस्थामें लौटा लाना और यथोचित भावसे शारीरिक क्रियाको करनेके योग्य बना देना ही प्रकृत आरोग्य कहलाता है। औषधकी क्रियाके द्वारा शरीरके उपादानको ध्वंस करनेका नाम आरोग्य नहीं है। पुरानी बीमारीमें रोगीका इलाज करनेका तरीका इसके सिवा वे दूसरा जानते ही नहीं, कि उनको अनेक प्रकारकी जड़ी-बूटियाँ खिलाई जायें, जिनसे कोई फायदा तो नहीं होता, बल्कि वे रोगीको छिन्न-भिन्न कर डालती हैं, उनकी ताकत और रस-रक्तका क्षय कर डालती है और उनके जीवन-कालको संक्षेप बना देती है। क्या इस तरह ध्वंस करनेपर भी यह संरक्षक कला कही जा सकती है? क्या इनका नामकरज हानिकरकालके सिवा कोई दूसरा भी किया जा सकता है। इसे नुकसान करनेवाले चिकित्सा-विधानके सिवा और क्या कहा जा सकता है? जो कार्य होना चाहिये था, ठीक उसके विपरीत ही कार्य होता है? क्या इसे चिकित्सा-विधान कहा जा सकता है और क्या इसका अनुमोदन और उसको सहन किया जा सकता है?

आजकल तो इन प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीवालोंकी अपने रोगियोंके प्रति क्रूरता इतनी बढ़ गई है और उनके कार्य इतने अनुपयुक्त हो रहे हैं कि प्रत्येक पक्षपात-रहित, विवेकशील व्यक्तिको यह स्वीकार कर लेना पड़ता है और विवेककी ताड़नासे उन चिकित्सकोंमेंसे भी कितने ही (कूगर हैनसेनकी भाँति) अपनी कुचिकित्साके सम्बन्धमें, बाध्य होकर, जगतके सामने भूल स्वीकार करने लगे हैं।

अब मंगलमय, उपकार सृष्टिकर्त्ताके हस्तक्षेपका वह समय आ गाया है, जब कि तुरन्त ही उनके आदेशसे दुःखपूर्ण कार्य तथा क्रूरता और कष्ट बन्द होना चाहिये और इसके ठीक विपरीत एक दूसरी आरोग्यकारिणी

ऐसी कलाका प्रचार होना चाहिये, जो विरेचन, मूत्रकारक ओषण, गर्म-स्नान, पसीना या लार बहना आदि क्रियाओं द्वारा जीवनके लिये उपयोगी, रस-रक्तका क्षय न करे, एक बून्द रक्त भी न गिरने दे, दर्द और कष्ट पैदा करनेवाले प्रलेप न लगने दे और रोगीको आरोग्य करनेके बदले अत्यन्त तीव्र औषधियोंका अधिक मात्रामें तथा भ्रमपूर्ण ढङ्गसे सेवन कराके एक नयी ही औषध बीमारीको न पैदा कर दे। तेज जुलाब देकर गाड़ीको घोड़ेके आगे न जोत दे तथा रोगियोंको सहायता देनेके बदले मृत्यु-पथपर अग्रसर न होने दे। जैसा कि आजकल बँधी गतसे काम करनेवाले चिकित्सकोंके द्वारा हो रहा है, बल्कि इसके विपरीत, रोगीकी ताकत जहाँतक सम्भव हो, बनाये रखे और तेजी तथा सरलतासे, रोगीको सम्पूर्ण रूपसे आरोग्य कर दे तथा इस तरह उन्हें स्वास्थ्यमें लानेके लिये सावधानतासे चुनी हुई उन दवाओंकी सूक्ष्म मात्राओंका प्रयोग करे, जिनकी परीक्षा हो चुकी है। इस तरह समः समे शमयति (Similia Similibus Curentor) के आराम देनेवाले चिकित्सा-नियमसे रोगीको आरोग्य करे। यह वह उचित समय है कि वह परमात्मा होमियोपैथीके आविष्कारकी आज्ञा दे।

अनुभव, मनःसंयोग और निरीक्षणसे, मैंने आविष्कार किया है कि प्राचीन चिकित्सा-पद्धतिसे एकदम विपरीत सत्य, उचित तथा सर्वोत्तम चिकित्सा-प्रणाली यह है कि **सरलतासे, तेजीसे, निश्चित-रूपसे और सदाके लिये, रोगी आरोग्य होना चाहिये। प्रत्येक रोगके रोगीके लिये, उन्हीं और वैसे ही, लक्षण उत्पन्न करनेवाली दवाका चुनाव होना चाहिये, जैसे रोगीके हों। इसीसे रोगी आरोग्य होगा।**

अबतक किसीने भी रोग आरोग्य करनेका यह होमियोपैथिक ढंग नहीं बताया है, किसीने भी इसका प्रयोग नहीं किया है। लेकिन यदि इस प्रणालीमें सत्य है, जैसा कि प्रमाणित करनेके लिये मैं तैयार हूँ, तो

मैं यह भी दिखा सकता हूँ, कि यद्यपि हजारों वर्षोंसे यह प्रत्यक्ष प्रचलनमें नहीं आया है, तो इसका प्रत्यक्ष व्यवहार प्रत्येक युगमें वर्त्तमान रहा है।

यही सत्य बात है। सभी युगोंमें जो रोगी वास्तवमें तेजीसे, सम्पूर्ण रूपसे और निश्चित रूपसे, औषधोपचार द्वारा, आरोग्य हुए हैं, और, जो किसी आकस्मिक घटनावश या किसी नयी बीमारीसे, जिसने अपना पथ वदल दिया है, या उस प्रणालीसे जिसने कुछ दिनोंसे अपनी प्रधानता जमा रखी है—ऐलोपैथिक और विपरीत चिकित्सासे—क्योंकि सरल पथसे आरोग्य होने और विपरीत पथसे आरोग्य होनेमें बहुत बड़ा भेद है—वैसे रोगी, केवल उस होमियोथिक औषधिसे ही आरोग्य हुए हैं, जिसमें वैसे ही रोग उत्पन्न कर देनेकी शक्ति रहती है।

यद्यपि ऐसा बहुत कम ही हुआ करता है, पर यदि इन सम्मिश्रणोंसे भी कोई आरोग्य हुआ है, तो उसमें भी कोई-न-कोई होमियोपैथी ढंगकी ही प्रधान दवा थी, जिसके लक्षण रोगके लक्षणसे मिल गये थे।

ऐसे रोगियोंमें यह बात और भी स्पष्ट रूपसे तब दिखाई देती है, जब चिकित्सक अपनी पुरानी प्रथा, सम्मिश्रण या मिलानेका ढंग छोड़कर, केवल एक दवा देकर रोगीको तेजीसे आरोग्य करता है। यहाँ हमलोगोंको यह देखकर आश्चर्य होता है कि ऐसा केवल उसी दवासे होता है, जिसमें उस रोगीके रोगकी तरह उपसर्ग पैदा करनेकी शक्ति है। यद्यपि चिकित्सक नहीं जानते की वे क्या कर रहे हैं और वे भ्रमसे अपने सिद्धान्तके विपरीत कार्य कर जाते हैं तथा ठीक उसके विपरीत दवा भी दे देते हैं; जिसको वे अबतक मानते आये हैं और केवल ऐसा हो जानेकी वजहसे ही रोगी शीघ्रतासे स्वास्थ हो जाता है।

यदि उन रोगियोंकी छांट लिया जाये, जिनमें पुरानी परिपाटीके चिकित्सकोंकी अपरिवर्त्तनशील प्रणालीके रोगोंकी दवा (उनकी अपनी गवेषणाके कारण नहीं), सर्वसाधारणके व्यवहार करनेके अभ्यासके कारण मालुम हो गई है और जिससे वे साधारण ढंगसे रोगीको आरोग्य कर

सके हैं, जैसे—उपदंशमें पारा, चोट या आघात वगैरहमें आर्निका, तर जगहोंके कम्प ज्वरमें क्विनाइन, नयी खुजलीमें सल्फर आदि, तो दिखाई देता है कि वे इनके सिवा सभी रोगोंमें, खासकर पुरानी बीमारियोंमें उनकी चिकित्सा रोगीको दुर्बल करनेवाली, कष्ट देनेवाली तथा हानि पहुँचानेवाली हैं। उससे चिकित्सकको फायदा तो होता है, परन्तु रोग बढ़कर ध्वंस करनेवाला हो जाता है तथा रोगीका खर्च भी असाधारण रूपसे बढ़ जाता है।

यद्यपि अन्ध अनुभवके कारण वे कभी-कभी होमियोपैथिक ढंगसे चिकित्सा कर बैठते हैं, तथापि वे प्रकृतिके उस सार्वजनिक नियमको उपलब्ध नहीं कर पाते, जिसकी वजहसे रोगी इस तरह आरोग्य होते हैं।

इसलिये मानव-जातिके मंगलके लिये, इस बातका पता लगाना बहुत ही आवश्यक है कि कभी-कभी प्रयोगमें आनेवाली इस दवासे कौन-सी बीमारी निश्चित रूपसे आरोग्य हुई और उनकी आरोग्यकारिणी क्रिया क्यों हुई? इस प्रश्नका जो उत्तर प्राप्त हो, वह बहुत ही उपयोगी होगा। वे आरोग्यकर होमियोपैथिक शक्तिसे सम्पन्न औषध-प्रयोगके सिवा और किसी प्रणालीसे न हुए थे अर्थात् उन दवाओंमें यह शक्ति थी, कि जिस विकृत अवस्थाको वे हटाना चाहते थे, वैसा ही दूसरा रोग पैदा कर दें। उन्हीं दवाओंसे रोग शीघ्रतापूर्वक और जड़से आरोग्य होते हैं; परन्तु चिकित्सकोंने उन्हें पूर्वके समस्त सिद्धान्तों और प्रणालियोंके विरुद्ध, भ्रमवश तथा अपनी इच्छाके विरुद्ध प्रयोग कर दिया। ऐसे प्रयोग होनेसे ही रोगी आरोग्य हुए। इक तरह अपनी इच्छाके विपरीत—उन्होंने होमियोपैथी—प्रकृतिके आरोग्यकर नियम तथा एक चिकित्साके ऐसे नियमकी आवश्यकता प्रतिपादित कर दी, जिसको नाना प्रकारके संकेत और चिह्न विद्यमान होनेपर भी, इससे पहले कोई आविष्कृत न कर सका था; क्योंकि वे सभी चिकित्साके सम्बन्धमें सोच-विचार करनेके लिये स्वतन्त्र न थे।

चिकित्सा न करनेवाले साधारण गृहस्थ-समाजतकने भी अपनी सुन्दर पर्यवेक्षण प्रणालीके कारण, कितनी ही बार, इस ढंगके इलाजको निश्चित, रोगको जड़से आराम करनेवाला, तथा एकदम भ्रम-रहित प्रमाणित कर दिया है।

आजकल वरफसे अंग-प्रत्यंगमें चोट आकर जखम हो जानेपर, उस व्यक्तिके अंगपर या तो सद प्रयोग (Sour crout) किया जाता है अथवा आहत स्थानपर बरफ घस दिया जाता है।

अभिज्ञ रसोइया, अपना हाथ जला लेनेपर, आगसे कुछ दूरीपर अपना हाथ बराबर इसलिये रखता है कि वह जानता है कि यद्यपि ऐसा करनेसे पहले हाथकी तकलीफ कुछ बढ़ेगी ; पर थोड़ी ही देर बाद, कुछ ही मिनटोंमें, सभी तकलीफे घटकर जला हुआ हाथा स्वाभाविक अवस्थामें आ जायगा।

एक दूसरे प्रकारके बुद्धिमान, परन्तु चिकित्सा-शास्त्रसे अनभिज्ञ मनुष्य, जैसे—वानिश की हुई चजें तैयार करनेवाले कभी-कभी गर्म वार्निशसे अपना हाथ जला लेते हैं ; परन्तु उस जले हुए भागपर वे गर्म स्पिरिट या तारपीनका तेल लगाते हैं ; क्योंकि ये चीजें वैसी ही जलन पैदा करती हैं और इस तरह हो कुछ घण्टोंमें अपनेको आरोग्य कर लेते हैं ; परन्तु वे ठण्डा प्रयोग नहीं करते ; क्योंकि वे जानते हैं कि इससे महीनोंमें भी उनकी तकलीफ दूर न होगी, वल्कि उससे रोग बढ़ हो जायगा।

अभिज्ञ कृषक, जिसे शराब पीनेका बिलकुल हो अभ्याम नहीं है, जब धूपमें काम करते-करते एककम उत्तम अवस्थामें जा पहुँचता है, तो कभी पानी नहीं पीता ; क्योंकि वह जाता है कि इसका क्या परिणाम होगा, वल्कि वह अल्प मात्रामें गर्म करनेवाली शराव ही पीता है, जो कि सत्यके शिक्षक, अनुभवने होमियोपैथिक प्रणालीकी आरोग्यकारिणी नीति उसे अच्छी तरह बता दी है और इसलिये, शराबसे उसकी गर्मी और थकन दोनों ही तेजीसे दूर हो जाती हैं।

अकसर ऐसे भी चिकित्सक दिखाई देते हैं, जिन्होंने आपेक्षित भावसे इसपर लक्ष्य किया है कि औषध सदृश रोग पैदाकर कितने ही स्थानोंमें रोगको जड़से आरोग्य कर देते हैं।

हिपोक्रेटिसने स्वयं भी किसी पुस्तकमें लिखा है कि सदृश-रोग पैदा कर सकनेवाली दवाएँ, वैसे ही रोगको आरोग्य भी कर सकती हैं।

बादके चिकित्सकोंने भी सदृश-विधानकी आरोग्यकारणी शक्तिको समझ लिया था। डा० बोलडकने परीक्षण किया था कि रूबर्ब नामक विरेचक दवासे अतिसार रोग आरोग्य होता है।

डा० डेथरडिंगने देखा था कि सनायकी पत्ती सेवन करनेपर स्वस्थ पुरुषोंमें जिस तरहका शूल पैदा होता है, उसी तरहके शूलको यह आरोग्य कर देता है।

डा० वर्थोलोनने स्वीकार किया है कि वैद्युतिक क्रियाकी सहायतासे ठीक जिस तरहका दर्द पैदा किया जाता है, उसी तरहका, किसीको स्वाभाविक दर्द होनेपर, वैद्युतिक क्रियाकी सहायतासे, सदृश-विधान मतके अनुसार, वह आरोग्य किया जा सकता है।

डा० थाउरी स्वीकार करते हैं कि प्रत्यक्ष वैद्युतिक शक्तिकी सहायतासे नाड़ीकी गति बढ़ जाती है, इसीलिये प्राकृतिक रोगके कारण किसी नाड़ीकी गति बढ़ जानेपर, उसी वैद्युतिक क्रियाकी सहायतासे, उसकी गति घटायी जा सकती है।

डा० वान स्टोर्कने लिखा है :—"यदि स्ट्रैमोनियमसे स्वस्थ मनुष्योंमें गड़बड़ी और उन्माद पैदा होता है, तो उसका प्रयोगकर उन्माद रोग अच्छा हो सकता है या नहीं, इसकी परीक्षा करनी चाहिये।"

पर डेनमार्ककी सेनाके एक चिकित्सक—स्टाइलेन सदृश-विधानके सम्बन्धमें सबसे स्पष्ट बात कही है। उन्होंने कहा है—"विपरीत क्रिया करनेवाली दवासे रोगकी चिकित्सा करना एकदम गलत है और उसका परिणाम आरोग्य क्रियाके बिलकुल ही विपरीत होता है। मैं इसे दृढ़ता-

पूर्वक कह सकता हूँ कि उसी दवासे रोग आरोग्य हो सकता है, जिस दवामें वैसे ही लक्षणवाले रोग प्रकट करनेकी शक्ति है। उदाहरणार्थ—जला हुआ स्थान सेंकनेसे, बरफसे गले शरीरपर एकदमसे ठण्डे पानीका प्रयोग करनेसे, और प्रदाह प्रभृति चुआये हुए स्पिरिट या सुरासरसे[1] आराम होते हैं। इसी तरह मैंने सल्फ्यूरिक एसिडकी बहुत थोड़ी मात्रा देकर अम्लपित्तकी शिकायत बहुत सफलताके साथ दूर की, जब कि उन रोगियोंको अनेक शोषक औषधियोंका व्यवहार कराया गया था और वे सब व्यर्थ सिद्ध हो चुकी थीं।

यह महान सत्य किस तरह अनेक बार मानवी बुद्धिके सन्निकट आ पहुँचा था; परन्तु उसपर क्षण भरके लिये भी ध्यान नहीं दिया गया और वह ज्यों-का-त्यों बिना लक्ष्यमें आये ही फिर गायब हो गया और इस तरह इतने दिनोंके चिकित्सा-विधानको एकदम बदल देने और उस अनुपयुक्त चिकित्साके बदले सत्य, वास्तविक और चिकित्सा-कलाका प्रवर्त्तन करनेका समय, अब हमलोगोंके सम्मुख आ पहुँचता है।

---

१. डा० सिडनहमने लिखा है कि अग्निदग्धके लिये सुरासार अग्निदग्धके लिये उपयोगी अन्य सभी दवाओंसे बढ़कर गुणकारी है।

बैंजामिनबेलने (सिस्टम आफ सर्जरी, तृतीय संस्करण, १७८६) लिखा है कि अनुभवसे मैंने यह देखा है कि अग्निदग्धके लिये तथा अन्य रोगोंके लिये होमियोपैथिक दवाएँ ही लाभकर हैं। तेज ब्रांडी या कोई और सुरासार अग्निदग्धका सर्वोत्कृष्ट उपाय है। इसके लगते ही दो-एक क्षणके लिये दर्द बढ़ता है, परन्तु तात्काल ही आराम आने लगता है। यदि आगसे जली जगहको सुरासारमें डुबाकर रखा जा सके, तो और भी अधिक लाभ होता है और जहाँ ऐसा करना सम्भव न हो, वहाँ सुरासरसे तर किये हुए टुकड़ेसे उस जगहको ढँक देना चाहिये और यह लिंट बदलते रहना चाहिये।'

मैं इसमें इतनी बात और बढ़ाना चाहता हूँ कि जब काफी गरम सुरासारका व्यवहार किया जाय, तो वह और भी लाभदायक है।

डा० एडवर्ड कैण्टिश (१७९८) ने लिखा है कि कोयलेकी खानोंमें काम करनेवाले मजदूर आगसे जल जानेपर तारपीनका गरम तेल या गरम सुरासरका व्यवहार करते हैं और यह हर तरहके जले हुएमें लाभदायक है।

इससे बढ़कर होमियोपैथिक चिकित्सा और क्या होगी?

आर्गेनन

[१]

चिकित्सकका सर्व-प्रधान कर्त्तव्य क्या है ? आरोग्य किसे कहते हैं ?

रोगीका रोग दूरकर उसे स्वाभाविक अवस्थामें फिर ला देना ही चिकित्सकका प्रधान और एकमात्र कर्त्तव्य है। इसका ही नाम आरोग्य है।

खुलासा—रोग किसे कहते हैं ? शरीरकी स्वाभाविक [illegible]में विकार या गड़बड़ी पैदा हो जाना ही रोग है। यह जिसे होता है, उसे रोगी कहते हैं। हैनिमैन कहते हैं—रोगीको पूर्ण स्वस्थ अवस्थामें ला देना ही रोगका आरोग्य कहलाता है। हमलोग आरोग्यका कुछ दूसरा ही मतलब लगा लेते हैं। एक उदाहरण देखिये—किसीको बुखार आया, शरीरका ताप बढ़ गया। इस ताप-वृद्धिको ही हमलोग ज्वर या बुखार कहते हैं। अब यदि हमने केवल ताप हटा दिया, तो ज्वर रोग तो आरोग्य हो गया। इसे ही हमलोग आरोग्य कहते हैं ; पर यह वास्तविक आरोग्य नहीं हुआ। रोगी सम्पूर्ण रूपसे आरोग्य उसी अवस्थामें समझा जायगा, जब ज्वरके सारे आनुसंगिक उपसर्ग भी दूर हो जायँगे। उसका ताप जानेके साथ-ही-साथ मन प्रफुल्ल होना चाहिये, भूख पहले जैसी होनी चाहिये, शरीका बल पूर्वावस्थाकी भाँति ही हो

जान चाहिये, पाखाना साफ, अच्छी नींद आये, मुँहका स्वाद उत्तम— यदि इतना सब औषध-प्रयोग द्वारा हो जाये—तब समझना चाहिये कि रोग जड़से गया और वह रोगी स्वस्थ अवस्थामें आया। यही चिकित्सकका प्रधान कर्त्तव्य है। केवल बुखार या ताप हटा देना ही नहीं ; पर इस तरह कितने दिनोंमें, कैसे और किस ढंगसे स्वस्थ अवस्थामें लाया जाये, यह आगे देखिये :—

[२]

आरोग्यका सबसे उच्च आदर्श क्या है? वह किस ढंगसे किया जाये, जिससे रोगी भी प्रसन्न हो और चिकित्सक भी यशस्वी हों।

आरोग्यका सबसे उच्चतम आदर्श वह चिकित्सका-प्रणाली है, जिससे बहुत जल्द, बिना कष्टके और स्थायी रूपसे, स्वस्थ अवस्था प्राप्त हो जाये—सम्पूर्ण रूपसे रोग मिट जाये, दुहराये नहीं—रोगीकी किसी तरहकी हानि न हो। कम-से-कम समयमें, अत्यन्त विश्वस्त रूपसे तथा सहज, सरल पद्धतिसे रोगी आरोग्य हो जाये। वह प्रणाली सीधेसादे सिद्धान्तोंपर आश्रित हो। यही चिकित्सा आदर्श है।

खुलासा—सबसे पहली बात तो यह है कि रोगीको बहुत दिनोंतक रोग झेलना न पड़े ; क्योंकि इससे दुर्बलता बढ़ती है, रोग पुराना पड़ जाता है, अतः इससे रोगीको विशेष कष्ट होता है। मानव-प्रकृतिके अन्वेषक, दुःखियोंके, सहायक हैनिमैनने इन सभी बातों पर विचार किया है, इसीलिये उनकी चिकित्सा-प्रणाली सर्वोच्च आसनपर बैठी है। खैर, रोग जल्द आरोग्य तो हुआ, पर यदि नश्तर लगना, रक्त निकालना, अति मात्रामें कटु-तिक्त औषधियोंका सेवन करना पड़ा, तो यह भी उसके लिये रुचिकर नहीं है। रोगीको कष्ट न हो—उसको

चिकित्सा भारस्वरूप न मालूम हो। यह सब भी हुआ, पर यदि रोग ऊपरसे आरोग्य हो गया अर्थात् जिन लक्षणोंको या उपसर्गोंको देखकर हम यह समझते थे कि रोग हुआ है—वे लक्षण तो गायब हो गये, पर वास्तवमें वे ऊपरसे हटकर भीतर छिप बैठे। पहले सूत्रकी व्याख्यामें आरोग्यके जो लक्षण बताये गये हैं, वे न आ सके, तो रोग आरोग्य न हो सका (चर्म-रोगमें ऐसा ही होता है)। अब एक तो सम्पूर्ण आरोग्य न हुआ—दूसरे उसी रूपमें या दूसरा वेष बनाकर, उसके पुनराक्रमणकी सम्भावना बनी रही। यह भी न होना चाहिये। रोग जड़से आरम होना चाहिये। ऐसा होनेसे ही रोगके पुनराक्रमणकी सम्भावना जाती रहेगी और तभी वह स्थायी भावसे आरोग्य कहलायेगा। इस तरह आरोग्य हुआ रोगी आप-से-आप स्वाभाविक स्वस्थ अवस्थामें आ जायगा इतना सब होनेपर भी, वह चिकित्सा-प्रणाली सुगम और ऐसी होनी चाहिये, जो समझमें आ सके—जटिल न हो। वही चिकित्सा-प्रणाली आदर्श और सर्वश्रेष्ठ।

[३]

चिकित्सकको किन-किन विषयोंकी जानकारी होनी चाहिये?

यदि चिकित्सक यह बात स्पष्ट रूपसे समझता हो कि पीड़ित व्यक्तिके रोगोंमेंसे क्या साध्य है और किसकी चिकित्सा की जाती है अर्थात् उसे निदान-शास्त्रका पूरा ज्ञान है—और यदि वह भी समझता हो कि अमुक औषधमें किस रोगपर उपद्रवको दूर करनेकी शक्ति है—अर्थात् उसे निघण्टु—औषध तत्वका ज्ञान भी हो—और, यदि वह यह भी जानता हो कि चिकित्साके सुस्पष्ट सिद्धान्तोंके अनुसार, उन औषध गुणोंको कैसे ग्रहण करना है अर्थात् उनका सही व्यवहार समझता

हो ;—रोगीके शरीरमें क्या विकार है ; उसके विचाराधीन रोगीकी शारीरिक स्थितिके साथ कौन-सी औषध समता और अनुकूलता रखती है—अर्थात् उसे औषध-निर्वाचन, मात्रा औषध-निर्माणका भी ज्ञान हो—अगली मात्रा कितनी देरके बाद दी जानी चाहिये, वह यह भी समझता हो ; अन्तमें, यदि वह यह भी समझता हो कि प्रत्येक रोगीकी दशामें—स्वास्थ्य सुधारकी गतिमें क्या-क्या बाधा आती है और उसे कैसे दूर किया जाता है, ताकि स्वास्थ्य स्थायी रूपसे बहाल हो जाये—तो समझना चाहिये कि वह चिकित्सक यह जानता है कि रोगीका न्यायपूर्वक और मौलिक रूपसे कैसे इलाज किया जाता है। केवल ऐसा व्यक्ति ही सच्चा चिकित्सक है।

खुलासा—सच्चा चिकित्सक बननेके लिये जिन बातोंकी जानकारीकी आवश्यकता है, वही ऊपर बताया गया है अर्थात्—(१) सबसे पहली बात तो यह है कि चिकित्सक यह जाननेकी चेष्टा करे कि रोगीको क्या रोग हुआ है। यह कैसे मालूम होगा ? रोग लक्षणको देखकर। रोगके नामकी जरूरत नहीं है। जरूरत है, रोगके सम्बन्धके ज्ञानकी—इस ज्ञानकी किन-किन लक्षणोंसे रोग प्रकट होता है। रोगके लक्षणोंपर ध्यान देना और उन लक्षणों द्वारा समझना कि रोग कहाँ छिपा बैठा है। रोगका नाम निर्णय करनेपर चिकित्सा आरम्भ करना ऐलोपैथी है। उसमें जटिलता बढ़ जाती है। रोगीके लक्षणोंका अध्ययन करना और जिस दवामें वैसे ही लक्षण स्वस्थ शरीरपर प्रकट करनेकी शक्ति है, वैसी ही दवाका प्रयोग करना होमियोपैथी अर्थात् सम-लक्षण-सम्पन्न चिकित्सा-प्रणाली है। अतएव, चिकित्सकका पहला कर्त्तव्य यह होना चाहिये कि रोग-लक्षणोंका सम्पूर्ण अध्ययन करे—इसके बाद कौन-सी दवा रोगीको दी जाये, इसकी जानकारी प्राप्त करे। इसकी जानकारीके लिये यह मालूम होना बहुत जरूरी है कि किस दवाकी क्रियासे कैसे लक्षण स्वस्थ शरीरमें पैदा होते हैं। यदि मेटीरिया-मेडिकाका अच्छा

अध्ययन है, तो यह सहजमें ही मालूम हो जायगा। अतः चुनकर वही दवा प्रयोग करनी होगी, जिसमें रोगीके लक्षणोंकी भाँति लक्षण स्वस्थ शरीरमें उत्पन्न करनेकी शक्ति हो। तीसरा कार्य है—औषध किस तरह तैयार होते हैं, यह प्रणाली जानना। जो यह न जानेगा, वह समयपर ठीक दवाका प्रयोग न कर सकेगा। चौथा कार्य—ठीक-ठीक मात्राका निर्णय करना, समयके अन्तरका ज्ञान अर्थात् कितने-कितने समयपर दवाकी मात्रा देनी चाहिये।

इन चारों बातोंके आलावा ऐसा भी होता है कि रोगके आरोग्य होनेमें अनेक बाधायें पैदा हो जाती हैं। ये बाधायें नवीन उपसर्गोंके रूपमें प्रकट होती हैं अथवा दवा भी ठीक दी गई हैं, मात्रा भी ठीक है, पर रोगी अपना पूर्वका स्वास्थ्य नहीं प्राप्त करता—ऐसी अवस्थामें निश्चय ही कोई विष भीतर छिपा बैठा है, जो बाधा प्रदान कर रहा है। वह क्या है? लक्षणों द्वारा जानकर उसे दूर करना ही बाधा-विघ्न दूर करना है।

इन ऊपर लिखी सभी बातोंका जिसे ज्ञान हो, वही सच्चा चिकित्सक कहला सकता है।

[४]

चिकित्सकको और क्या जानना चाहिये?

वह स्वास्थ्य-रक्षक भी है। वह अपनी इस विशेषतका पालन केवल उसी दशामें कर सकता है, जब वह यह जानता हो कि मानवका स्वास्थ्य कैसे नष्ट हो जाता है, रोग किन कारणोंसे आते हैं—और उन कारणोंको, स्वस्थ व्यक्तियोंसे कैसे दूर रखा जा सकता है?

खुलासा—बहुत-सी ऐसी चीजें हैं, जिनसे सबल और स्वास्थ्य मनुष्योंका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। इनमें अस्वास्थ्यकर स्थानमें

रहना, नाना प्रकारकी अण्ट-सण्ट चीजें खाना अथवा अतिरिक्त मात्रामें खाना, शराब पीना, रातमें जागरण आदि अस्वाभाविक कारणोंसे रोग उत्पन्न होते हैं। उन रोग-उत्तेजक कारणोंका भी ज्ञान रहना आवश्यक है।

पदार्थ-गुण-सम्बन्धी ज्ञान चिकित्सामें अत्यन्त सहायक होता है। अतएव चिकित्सकके लिये पदार्थोंके गुण-अवगुणकी जानकारी भी ज़रूरी है।

मान लीजिये, कोई ऐसी बीमारी है, जो स्थूल कारणसे हुई है और उसकी स्थूल चिकित्साकी ही आवश्यकता भी है, तो उसकी जानकारी प्राप्त करके रोगीको वैसा ही उपदेश देनेकी जरूरत है।

[५]

रोगका उत्तेजक 'और मूल कारण क्या है? उन्हें कैसे खोजना चाहिये?

चिकित्सकके लिये नयी या पुरानी, दोनों तरहकी बीमारियोंको आरोग्य करनेके लिये, रोगका संभावित प्रधान करण खोज निकालना हितकर और सहायक है। नये रोगमें उसे रोग लानेवाले तथा उसे उत्तेजना देनेवाले कारणोंपर ध्यान देना चाहिये और पुराने रोगकी दशामें उसे उसके इतिहासकी मोटी-मोटी बातोंपर निगाह करनी चाहिये, ताकि वह उससे मूल कारणका पता लगा सके और यह मूल कारण, साधारणतः कोई पुराना विष होता है। अतएव, इस मूल कारणकी जाँच-पड़ताल करते समय (खासकर पुरानी बीमारीमें), रोगकी शारीरिक गठन, रोगीकी मानसिक गति, आचरण, उसके धंधे, रहन-सहनके ढंग, आदतों उसके समाजिक तथा पारिवारिक सम्बन्ध, उमर, जननेन्द्रियका व्यवहार प्रभृति सब बातोंपर विचार करना चाहिये।

खुलासा—बिना कारणके कोई कार्य नहीं होता। नयी और पुरानी दोनों तरहकी बीमारियोंका भी कारण होता है। जैसे—सर्दी लग जाना, नयी बीमारीका कारण है। रातमें अधिक भोजन हो गया, सवेरे जी मिचलाया, पेटमें दर्द हुआ, कै हुई, यह नयी बीमारीके उत्तेजक कारण हुए। चिकित्सकको इन उत्तेजक कारणोंपर भी ध्यान रखना पड़ता है।

यहाँ यह विषय भी ध्यानमें रखना आवश्यक है कि रोगका आक्रमण कहाँ होता है। ऊपर जो उदाहरण उत्तेजक कारणोंके दिये गये हैं, उनपर ध्यान देनेसे मालूम होगा कि ये स्थूल रोग हैं अर्थात् इनका आक्रमण सामयिक होता है। एकदम जीवनी-शक्तिपर इनका प्रभाव नहीं पहुँचता ; परन्तु ऐसे भी रोग हैं, जो खासकर जीवनी-शक्तिपर अपना प्रभाव डालते हैं और जीवनी-शक्ति रोगणी हो जाती है। अतएव, सूक्ष्म जीवनी-शक्तिको आरोग्य करनेके लिये सूक्ष्म क्रियाशील औषधियाँ तथा सूक्ष्म मात्राकी जरूरत पड़ती है। हैजा आदि रोग और पुरानी बीमारियाँ भी इनके ही अन्दर आ जाती हैं। हैनिमैनका यह भी सिद्धान्त है कि सभी पुरानी बीमारियोंमें सोरा (Psora) अर्थात् खाज-खुजली, साइकोसिस (Sycosis) या प्रमेह विष अथवा सिफिलिस (Syphilis) या आतशक—इन तीनोंमेंसे कोई-न-कोई विष कारण बनता है। इसीलिये हैनिमैनका कथन है कि रोगीका सम्पूर्ण पूर्व और वर्त्तमान इतिहास चिकित्सकको जान लेना चाहिये। इनके जाननेसे ही पता चल जायगा, कि कौन-सा विष भीतर क्या कार्य कर रहा है तथा मूल रोग कहाँ है।

[६]

रोगकी प्रतिमूर्ति किस तरह अंकित करनी चाहिये ?

केवल वही निष्पक्ष अभिद्रष्टा, जिसकी बुद्धि बहुत ही सूक्ष्म और विषयगम्य हो, और, जो निराधार कल्पनाओंकी निस्सारता और निरर्थकता खूब अच्छी तरह समझता हो, उन मानसिक और शारीरिक परिवर्त्तनोंपर ध्यान दे सकता है, जिन्हें ज्ञानेन्द्रियोंकी सहायतासे देखा जाना सम्भव है, अर्थात्, वह उस रोगी व्यक्तिकी स्वास्थ्य-दशा और रोगाक्रान्त दशाके ऐसे मोटे-मोटे अन्तरोंपर ध्यान देता है, जिन्हें स्वयं रोगी अनुभव करता है, उसके घरवाले बताते हैं और वह (चिकित्सक) स्वयं उन्हें देखता है। ये ही सब लक्षण रोगका प्रतिनिधित्व करते हैं अर्थात् इनका समष्टि रूप ही, रोगका सच्चा और एकमात्र चिन्तनीय चित्र है।

खुलासा—यह रोग परीक्षाका विषय है। चिकित्सक चाहे कितना ही बुद्धिमान और अनुभवशील क्यों न हो, उसको निम्नलिखित ढंगसे जाँच किये बिना रोगीके सर्वाङ्गिक लक्षण मालूम नहीं हो सकते। वह रोगीके पास जाकर पहले बाह्य परीक्षा करता,—बदनका ताप कितना है, जीभ कैसी है, वक्षकी गति, नाड़ीकी चाल, कहीं सूजन आदि है या नहीं, पर इतना ही करनेसे उसे सारी बातें नहीं मालूम हो जातीं, उसे रोगीपर भी निर्भर करना पड़ता है। रोगी अपनी मानसिक अवस्था, दर्द, पाखाना पेशाब आदिका हाल बताता है ; परन्तु इनके आलावा भी कुछ ऐसे लक्षण हैं, जो उसके घरवाले ही बता सकते हैं। जैसे—प्यास, दस्त, कै, पूर्वकी तथा वर्त्तमानकी कुछ अवस्थाएँ, और उपसर्ग अथवा जो बातें कष्टके समय रोगी स्वयं बीच-बीचमें कहता था या वे देखते थे अथवा रोगीके वर्णनमें जो छूट गया था—इस तरह तीनों प्रकारसे जो लक्षण प्राप्त हुए, वे रोगीके सर्वाङ्गीन लक्षण हुए। इन लक्षणोंके पूर्ण विवरणके साथ, अब चिकित्सकको अपनी देखी बातें, और लक्षण मिलाकर औषधका चुनाव करना चाहिये।

[७]

लक्षण-समिष्टि किसे कहते हैं? रोग क्या स्वयं ही अपनी दवा बता देता है?

जब कोई ऐसी बीमारी हो, जिसमें उत्तेजक या पोषक कारणके रूपमें, कोई ऐसी स्थूल चीज दिखाई न दे, जिसे हटाया जा सके, तो उस दशामें हमलोग इसके सिवा और कुछ भी सोच नहीं सकते, कि बीमार बतलाने-वाले कुछ लक्षण हैं (सोरा, साइकोसिस और सिफिलिस आदि दोषोंकी उपस्थितिकी संभावना तथा अन्य सहायक बातोंपर भी ध्यान देना चाहिये)। लक्षण ही साधन है, जिसके माध्यमसे रोग औषधकी मांग करता है और यह बताता है कि कौन-सी औषध उसे दूर कर सकेगी। शरीरके भीतर आया हुआ कोई रोग—लक्षणों द्वारा बाहर आता है। इन लक्षणोंकी सामूहिकता या लक्षण-समष्टि ही रोगको समझने और उसकी दवा मालुम करनेका एकमात्र साधन है। इसी लक्षण-समष्टिके आधारपर हम उपयुक्ततम और अनुकूलतम दवाका चुनाव कर सकते हैं।

संक्षेपमें, लक्षण-समूह ही एकमात्र ऐसा सिद्धान्त होना चाहिये और हो सकता है—जिसपर प्रत्येक रोगकी दशामें, चिकित्सकको ध्यान देना चाहिये और इस कलाकी सहायतासे रोगको दूर और स्वास्थ्यको बहाल करना चाहिये।

खुलासा—रोगका आक्रमण जीवनी-शक्तिपर होता है—यह पहले बताया जा चुका है। रोग भीतर होता है और बाहर जो लक्षण प्रकट होते हैं, वे उसकी भाषा हैं? इन लक्षणोंसे दो काम होते हैं—प्रथम, यह हमारे लिये एक सूचना कि रोग हुआ है या जीवनी-शक्ति रोगाक्रान्त हो गई है। दूसरा यह है कि यह दवा चुननेके लिये संकेत है। मान लीजिये कि ये लक्षण प्रकट न हों, तो हम कोई भी दवा नहीं चुन सकते; क्योंकि दवा चुनने या जाननेका कोई जरिया ही हमारे हाथोंमें नहीं है। छठे अनुच्छेदमें बताये ढंगसे जिस समय चिकित्सक

समस्त लक्षणोंको जानकर रोगकी एक प्रतिमूर्ति बना लेता है, तब वह, वही प्रतिमूर्ति पैदा करनेवाली दवाओंमेंसे, उपयुक्त दवा चुनकर, प्रयोग करता है और इस आरोग्यकारिणी-कलाका ज्ञात रहनेके कारण वह रोग आरोग्य कर सकता है। इसीलिये, हैनिमैन कहते हैं कि ये लक्षण ही दवा बता देते है और दवा जाननेका जरिया लक्षण हैं, जो रोगीके मन, मस्तिष्क और शीरपर पैदा होते हैं। इन सब लक्षणोंका समूह लक्षण-समष्टि या लक्षण-समुच्चय (Totality of symptoms) कहलाता है।

[८]

क्या लक्षणोंके दूर होनेपर भी रोग शेष रह सकता है ?

न तो यह बुद्धिमें ही आता है और न संसारके अनुभवसे प्रमाणित ही हो सकता है, कि रोगके सब लक्षणोंके सम्पूर्ण रूपसे और स्थायी भावसे दूर हो जानेपर भी पूर्ण स्वस्थ अवस्था न आ जायगी या किसी-न-किसी स्थानमें शरीरके भीतर रोग छिपा ही रह जायगा[१]।

खुलासा—ऊपर बताया जा चुका है कि भीतरी रोगकी उपस्थितिका प्रमाण बाहरी लक्षण हैं। अतएव, यदि ऐसी दवाका प्रयोग हो कि वे सब मानसिक और शारीरिक लक्षण—रोग-समष्टि दूर हो जायें, तो किस तरह रोग भीतर दबा रह सकता है ? रोग भीतर छिपा रहनेका मतलब सम्पूर्ण लक्षणोंका, यहाँतक कि दुर्बलताका भी दूर न होता है; परन्तु ऐसा समचिकित्सा-प्रणालीके औषध प्रयोग द्वारा हो नहीं सकता। इस अवस्थामें यह प्रश्न हो सकता है कि—तो क्या

---

१. प्रमुख ऐलोपैथ डा० हूफलैण्डने लिखा है :—"होमियोपैथी लक्षणोंको दूर कर सकती है—परन्तु रोग शेष रह जाता है।" (देखिये—होमियोपैथी, पृष्ठ २२, १, १५)।

जब रोगके लक्षण मिट गये और पीड़ित व्यक्तिका स्वास्थ्य बहाल हो गया, तो यह कैसे माना जा सकता है कि लक्षण मिट गये और शेष रह गया ? रोग कोई स्थूल वस्तु नहीं है।

उपदंश रोगका वाह्य-लक्षण जखम आरोग्य हो जानेपर रोग भी आरोग्य हो जाता ? उत्तरमें कहा जा सकता है,—यदि ध्यानसे रोगीको देखा जाये, तो मालुम होगा कि उपदंशका जखम आराम हो जानेपर भी रोगीको शारीरिक और मानसिक अवस्थामें कोई परिवर्त्तन नहीं होता, अतएव स्थायी भावसे वह आरोग्य नहीं हुआ। इसका यह प्रमाण मिलता है कि बार-बार अन्यान्य उपसर्ग पैदा हो जाते हैं। यह जखमका आरोग्य होना—लक्षण-समूहोंमेंसे एक लक्षण है। यदि सम्पूर्ण आरोग्य न होकर थोड़ा भी लक्षण रह जाये, तो समझना होगा कि रोग आरोग्य नहीं हुआ। सारे शरीर और मनकी अस्वाभाविक अवस्थाका दूर हो जाना ही पूर्ण स्वास्थता है।

[९]

जीवनी-शक्ति क्या है, उसका काम क्या है ?

मानव-शरीरकी स्वास्थावस्थामें, स्वतन्त्र अध्यात्मिक शक्ति (मन), जो मानवके इस भौतिक शरीरका परिपोषण करती है, अवाध रूपसे उसपर शासन करती है, और, उस मानव-शरीरके सभी अंगोंमें, जहाँतक अनुभूतियों और शारीरिक क्रियाओंका सम्बन्ध है—प्रशंसनीय सामञ्जस्य, सहयोग और गति बनाये रखती है, ताकि उस शरीरके भीतर रहनेवाला तार्किक मन, इस जीवन-सम्पन्न स्वस्थ, नीरोग शरीरको—जीवनके अधिक ऊँचे उद्देश्ययोंके लिये स्वतंत्र रूपसे उपयोगमें ला सके।

खुलासा—हमारा यह शरीर जड़ है, यदि इसमें चेतनता न रहती, तो यह किसी कामका न रहता। उसी तरह यह भी कहा जा सकता है कि इस जड़-शरीरको कायम रखनेवाली, कामके उपयुक्त बनानेवाली अथवा इन शारीरिक यंत्रोंमें सहयोग तथा कार्य-शक्ति भरनेवाली जो चीज है—वह जीवनी-शक्ति है। यह सूक्ष्म, अतएव अदृश्य है; परन्तु

हमलोगोंका जीवन और हमारा स्वास्थ्य इसीपर निर्भर करता है। इसका ही यह काम है कि मानव-शरीरके समस्त अंगोंसे, मनका सामंजस्य रखकर, सम्पूर्ण कार्य करा लेती है, नहीं तो इन जड़ अंगोंमें काम करनेकी शक्ति आ ही नहीं सकती थी। जब शरीर स्वस्थ अवस्थामें रहता है, तो इस जीवनी-शक्तिकी क्रिया, इसी तरह चला करती है। वह मनुष्यकी इन्द्रियोंमें बल भरकर, उसे उच्च उद्देश्यकी पूर्तिकी ओर प्रेरित रखती है।

[१०]

यदि जीवनी-शक्ति न रहती, तो शरीरकी क्या अवस्था होती ?

यदि इस जड़ शरीरमें यह जीवनी-शक्ति न रहती, तो इस शरीरमें कुछ भी अनुभव करनेकी शक्ति न रहती ; यह शरीर कोई भी काम नहीं कर सकता और अपनी आत्म-रक्षा भी यह नहीं कर सकता[१] ; क्योंकि स्वस्थ और अस्वस्थ दोनों ही अवस्थाओंमें, जो अशरीरी (सूक्ष्म पदार्थ—जीवनी-शक्ति) हमारी इस जड़-देहको सजीव रखती है, उसके ही द्वारा शरीरमें अनुभवशक्ति प्राप्त होती है तथा शारीरिक क्रिया भी सम्पन्न होती है।

खुलासा—हमारे इस शरीरकी रानी जीवनी-शक्ति है। इस शरीर-रूपी राज्यपर वही शासन करती है। अतएव, जिस तरह राजा न रहनेपर, राज्य विश्रृङ्खलित हो जाता है, कर्मचारीगण अपने काम नियमित रूपसे नहीं करते, अन्तमें यह अवस्था होती है कि राज्यकी रक्षा नहीं होती और राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है ; ठीक वही अवस्था इस शरीर-

१. तब यह मुर्दा है और बाह्य भौतिक संस्कारकी शक्तियोंके अधीन हो जाता है। तब वह सड़ जाता है और पंचतत्वमें जा मिलता है।

राज्य की भी है। जबतक इसमें जीवनी-शक्ति वर्त्तमान है, चाहे वह दिखाई भले ही न देती हो। पर्देमें रहनेवाली रानीको लोग नहीं देख पाते, पर उसकी संचालन-शक्तिसे ही अनुभव करते हैं कि वह है। ठीक उसी तरह इस जीवनी-शक्तिके दिखाई न देनेपर भी सामान्य बुद्धिवाला मनुष्य भी समझ सकता है कि इस शरीरके भीतर, किसी स्थानपर ऐसी कोई चीज है, जो इस राज्य या यंत्रका परिचालन कर रही है। जीवनी-शक्तिके परिचालनमें दो बातें प्रकट होती हैं—एक तो यह कि शरीर जब स्वस्थ रहता है, तब सुख अनुभव होता है और अस्वस्थ होता है, तो दुःख अनुभव होता है। इस तरह यह शरीरको बनाये रखती है। अतएव, इससे यह प्रमाणित होता है कि जीवनी-शक्ति द्वारा हमें अनुभव होता है, जीवनी-शक्तिके द्वारा ही कार्य करनेकी शक्ति प्राप्त होती है। यदि यह नहीं रहती, तो शरीर जड़ बना रहता।

[११]

अस्वस्थावस्थामें जीवनी-शक्ति क्या करती है ?

मानव-शरीरमें यह जीवनी-शक्ति सभी जगह मौजूद रहती है और स्वयं ही अपना सब काम करती रहती है (Selfacting)। यह सूक्ष्म है, दिखाई नहीं देती ; परन्तु रहती शरीरके सभी स्थानोंमें है। जब कोई मनुष्य बीमार पड़ता है, तो इस जीवनका शत्रु अर्थात् रोग, इसी तरहकी किसी अदृश्य शक्तिके द्वारा सबसे पहले जीवनी-शक्तिपर आक्रमण करता है और जीवनी-शक्ति रोग-ग्रस्त हो पड़ती है। इसी तरह मनुष्य बीमार पड़ता है। किसी रोग द्वारा जीवनी-शक्तिपर आक्रमण होनेके बाद मानव-शरीरमें विशृङ्खलता दिखाई देती है, यंत्रोंकी क्रिया अनियमित होने लगती है, तकलीफ पैदा हो जाती है—इसीसे हमलोग समझते हैं कि रोग हुआ है। क्योंकि जीवनी-शक्ति स्वयं

अदृश्य है—परन्तु शरीरपर उसकी क्रियाएँ प्रकट होती हैं, उससे जिस तरह उसका परिचय प्राप्त होता है, उसी तरह उसके रोगी होनेपर देह और मनकी स्वाभाविक अवस्थामें जो परिवर्त्तन दिखाई देते हैं, उनको देखकर ही समझ लेना पड़ता है कि कोई रोग हुआ है, नहीं तो रोग समझनेका और कोई दूसरा उपाय नहीं है।

खुलासा—मनुष्य जब स्वस्थ रहता है, तो जीवनी-शक्ति स्वस्थ रहती है अथवा इसे इस तरह समझिये कि जबतक यह जीवनी-शक्ति पूर्ण स्वस्थ है, तबतक मनुष्य रोगी नहीं हो सकता। उस समयतक मानव-देहकी सारी क्रियाएँ नियमित रूपसे हुआ करती हैं—अस्वाभाविक या अनियमित कुछ भी नहीं होता। तब रोग क्यों होता है? इस जीवनी-शक्तिके भी कुछ शत्रु हैं। जिस तरह किसी राजाका राज्य कितना भी सुदृढ़ क्यों न हो, उसके कुछ मित्र और कुछ शत्रु अवश्य ही रहते हैं और मौका देखा करते हैं कि कब उसे धर दबायें। उसी तरह इस जीवनी-शक्तिके भी कुछ शत्रु—रोगोंके रूपमें, वर्त्तमान रहते हैं और मौका मिलते ही उसे धर दबाते हैं। जीवनी-शक्ति सूक्ष्म अथवा अदृश्य है, उसी तरह ये शत्रु भी अदृश्य शक्तिके रूपसे ही रहते हैं और जरा दुर्बलता या थोड़ा-सा मौका पाते ही उसपर हमला कर बैठते हैं। जबर्दस्त जीवनी-शक्ति अपने बलके सहारे उनके आक्रमणोंसे अपनी रक्षा करती रहती है। ये शत्रु हैं—मानसिक अशान्ति, पाप-चिंता, बुरी वासना, प्रकृतिका नियम उल्लंघन करना तथा मनका साम्यावस्थामें न रहना। हमारी पाप-वासना ही जीवनी-शक्तिको दुर्बल करती है और उसी समय शत्रुको अवसर मिलता है। उस समय अदृश्य शत्रुके आक्रमणसे जीवनी-शक्ति रोगिणी हो जाती है। यहाँतक तो ठीक हुआ; पर हमें यह कैसे मालूम हो कि जीवनी-शक्ति रोगिणी हो गई है? इस अवस्थामें रोगग्रस्त जीवनी-शक्ति (१) कुछ लक्षण शरीरपर—बाह्य शरीरपर और मानस-पटपर ऐसे पैदा कर देती है, जिनसे मालूम होता है कि जीवनी-शक्ति रुग्ण है—

उसे मददकी जरूरत है। (२) शारीरिक यंत्रोंके जो कार्य पहले सुखप्रद और स्वाभाविक अवस्थामें होते थे, उनका होना या तो बन्द हो जाता है अथवा बिगड़े—नियम-विरुद्ध रूपमें होता है। अतएव, विकृत मानसिक तथा शारीरिक अवस्था और यंत्रोंकी अस्वाभाविक क्रियाको देखकर ही हमें मालूम होता है कि जीवनी-शक्ति रुग्ण है। इसे ही हम इस तरह कहते हैं कि अमुक बीमार है ; ये ही रोग पहचाननेके उपाय हैं।

[१२]

स्वास्थ्य फिरसे कैसे प्राप्त होता है ?

सच तो यह है कि रोगग्रस्त जीवनी-शक्ति ही रोग उत्पन्न करती है। ऐसा करनेका उद्देश्य यह रहता है कि जीवनी-शक्ति रोगग्रस्त रहनेपर, अपनी उस समयकी अवस्था—सभी भीतरी परिवर्त्तन बाहर प्रकट कर देती है अर्थात् समस्त रोगको ही प्रकट कर देती है। रोगके लक्षण-समूह ही रोगके परिचायक हैं। स्वस्थ अवस्थाके स्वाभाविक लक्षणोंमें विकार आकर जो सब लक्षण दिखाई देते हैं, यदि उनको चिकित्सा द्वारा दूर कर दिया जाये, तो फिर स्वास्थ्य प्राप्त हो जाता है और रोगिणी जीवनी-शक्तिको भी रोगसे छुटकारा मिल जाता है तथा सम्पूर्ण यंत्र भी रोग-रहित हो जाते हैं।

खुलासा—इस सूत्रपर ध्यान देनेसे दो बातें मालूम होती हैं :— (१) यह कि सूक्ष्मसे ही स्थूलकी उत्पत्ति होती है। स्थूल और सूक्ष्मका सम्पूर्ण रूपसे सामंजस्य है। एक उदाहरण लीजिये—आपके हाथमें कांटा गड़ा—कांटा गड़नेकी क्रिया स्थूल शरीरमें हुई ; पर जीवनी-शक्ति—इस सूक्ष्मसे पूर्ण सम्बन्ध रहनेके कारण उसपर भी कुछ प्रभाव पहुँचा। कष्ट अनुभव हुआ। (२) रोगकी सूक्ष्म शक्तिने अदृश्य सूक्ष्म जीवनी-शक्तिपर आक्रमण किया। जीवनी-शक्ति रोगिणी हुई, पर स्थूलसे

सम्बन्ध रहनेके कारण उसने अपना—भीतरका जो कुछ विकार, जो कुछ परिवर्त्तन है, वह स्थूलपर प्रकट कर दिया। सूक्ष्म मूल है, उसके विकासका आधार स्थूल है। जैसे—वेदान्तके अनुसार ब्रह्म-सूत्र और चैतन्य है; परन्तु उसकी सत्ताका विकास प्रकृतिकी लीला द्वारा ही होता है। अस्तु, सूक्ष्म जीवनी-शक्तिने अपने रोगग्रस्त होनेके प्रमाण स्थूल शरीरपर भेजे। चिकित्सकने उसे देखकर रोग-रूपी शत्रुका निर्णय किया। जैसा शत्रु पाया, उसी ढंगका उपचार किया; बाह्य लक्षण चले गये, मानसिक दुर्लक्षण गायब हो गये, मानसिक तथा शारीरिक क्रियाएँ स्वाभाविक रूपमें आ गयीं। इस तरह स्वास्थ्य प्राप्त हो गया। जीवनी-शक्ति साम्यावस्थामें जा पहुँची।

[१३]

जीवनी-शक्ति, शरीर और रोगमें क्या सम्बन्ध है? क्या रोग भी शरीरमें छिपा हुआ कोई स्थूल पदार्थ है?

अतएव रोगको (जो सर्जरीकी सीमासे बाहरकी चीज है), जैसा कि ऐलोपैथीवालोंने समझा है,—अर्थात् वे समझते हैं कि रोग जीवन-सम्पन्न शरीरसे अलग कोई और चीज है—और वह मानवके शरीरके भीतर छिपी हुई है और उसकी जीवनी-शक्ति उसका परिपोषण करती है—नितान्त भ्रमपूर्ण और मूर्खतापूर्ण है। ऐसी कल्पना करना केवल भौतिकवादियोंका ही काम है। हजारों वर्षोंसे प्रचलित चिकित्सा-प्रणालीको ऐसी हानिकर और नाशकारी उत्तेजनाएँ तथा उकसाहटें दी गयी हैं कि उन्होंने चिकित्सा-प्रणालीको सचमुच ही दुष्टतापूर्ण धन्धा बना दिया है; अर्थात् उससे रोग दूर नहीं होता।

खुलासा—ऐलोपैथोंके मतसे रोगका कारण कीटाणु हो रहा है। इन कीटाणुओं द्वारा ही वे रोगकी उत्पत्ति बताते हैं और इसीलिये वे

कहते हैं कि रोग-बीज कहीं-न-कहीं शरीरमें छिपा बैठा रहता है ; पर आजतक भी समस्त रोगोंके कीटाणु अनुवीक्षण यंत्रसे भी नहीं मालुम हो सके। महात्मा हैनिमैन इस कीटाणु-सिद्धान्तको नहीं मानते। उनका कथन यही है कि कुछ ऐसी बीमारियाँ होती हैं, जिनमें नश्तर लगवानेकी जरूरत पड़ती है, बाकी सभी रोग उसी जीवनी-शक्तिपर रोग-शक्तिके आक्रमणके कारण उत्पन्न होते हैं। जीवनी-शक्ति अमिताचारोंके कारण जब दुर्बल हो पड़ती है, तब उसपर रोगका आक्रमण होता है ; पर ज्योंही वह रोगग्रस्त होती है, त्योंही अपनी विकारावस्थाका सारा रूप बाहरी शरीरपर प्रकट कर देती है। अतएव, स्थूल शरीरसे जीवनी-शक्तिका आधार रूपका सम्बन्ध है तथा जीवनी-शक्तिकी विकारावस्थाका दिखावा ही रोग है। रोग शरीरमें छिपा हुआ कोई स्थूल पदार्थ इसलिये नहीं हो सकता, कि उसका कोई प्रमाण नहीं है। यह जड़-वादियोंकी एक धारणाभर है। कीटाणु-सिद्धान्त रोगका लक्षण-मात्र है।

[१४]

क्या मनुष्य शरीरके भीतर कोई साध्य रोग छिपा रह सकता है ?

मनुष्यके भीतर कोई साध्य विकार या रोगसे उत्पन्न कोई ऐसा साध्य परिवर्त्तन छिपा नहीं रह सकता, जो रोग-सूचक लक्षणोंके द्वारा सूक्ष्मदर्शी चिकित्सकके सम्मुख अपनेको प्रकट न कर दे। परमेश्वरकी यही तो अपार महिमा है।

खुलासा—विकार या परिवर्त्तनके सम्बन्धमें ऊपर बताया जा चुका है। अब यहाँ एक साध्य शब्द नवीन आता है। साध्यका अर्थ है—आराम होने योग्य (Curable)। साध्य शब्दका व्यवहार करते

ही यह सवाल आ जाता है, कि क्या कोई बीमारी असाध्य भी है। अतएव, यहाँ यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि साध्य बीमारियाँ वे हैं, जिनमें रोगी जीवनी-शक्ति मानसिक और शारीरिक लक्षण प्रकट कर देती है अर्थात् उस जीवनी-शक्तिमें इतना सामर्थ्य रहता है कि वह रोग-लक्षणोंको बाहर भेज सके ; परन्तु जब वही जीवनी-शक्ति इतनी बलहीन हो जाती है कि उसमें किसी प्रकारका भी लक्षण प्रकट करनेकी शक्ति नहीं रहती। जैसे—मुमूर्ष अवस्था—तो रोग असाध्य कहलाता है। साध्य बीमारियाँ जितनी हैं, उनमें भगवानकी दयासे समस्त भीतरी लक्षण प्रकट हो जाते हैं, कोई भी लक्षण सूक्ष्मदर्शी चिकित्सकके* सामने आये बिना नहीं रह सकता। इस तरह वह चिकित्सक रोग-लक्षणोंको समझ, लक्षण-समष्टिकी मूर्त्ति बना, सम-लक्षणवाली दवाका प्रयोगकर उसे आरोग्य कर देता है। कोई लक्षण छिपा नहीं रहता।

[१५]

भीतरी विकार और बाहरी रोग-लक्षणोंमें क्या सम्बन्ध है ?

जो जीवनी-शक्ति, शरीरके अदृष्ट भीतरी भागमें रहकर उसका परिपोषण करती है, उसके विकार और वह लक्षण-समूह जिसे वह शरीरके बाह्य भागपर प्रकट करती है और जो वर्त्तमान विकार या रोगका प्रतिनिधित्व करता है—वस्तुतः एक ही चीज है। भीतरी और बाहरी उपद्रव मिलकर विकारको पूर्ण रूपमें चित्रित करते हैं। निश्चय ही यह शरीर जीवनका भौतिक साधन है, परन्तु उस जीवनी शक्तिके बिना, जो इसका परिपोषण करती है—इसकी कल्पना नहीं की जा

---

* सूक्ष्मदर्शी चिकित्सकको परिभाषा सूत्र नं० ३ में देखिये।

सकती और इसी तरह इस शरीरके अभावमें उस प्राण-शक्तिकी भी कल्पना नहीं की जा सकती, फलतः दोनोंका सामञ्जस्य इस इकाईको उपस्थित करता है ; हम बातको सरलतापूर्वक समझनेके लिये अपने मनमें उसके दो स्पष्ट भाग कर लेते हैं।

खुलासा—जिस तरह मनुष्य कहनेपर उसके भीतर छिपा हुआ आत्मातक आ जाता है ; "वृक्ष" कहनेपर मिट्टीमें छिपी हुई जड़तक आ जाती है, ठीक उसी तरह जीवनी-शक्तिका विकार और उसके प्रकट किये हुए बाहरी लक्षण—इन दोनोंका ही सम्मिलित नाम रोग है। ऊपर हम बता चुके हैं कि सूक्ष्मका अनुभव करनेके लिये—सूक्ष्मका अस्तित्व प्रकट करनेके लिये स्थूलकी जरूरत पड़ती है। वास्तवमें यह सूक्ष्म और स्थूल ओत-प्रोत भावसे आपसमें सम्मिलित हो रहे हैं। यह इस तरह कि सूक्ष्मके बिना स्थूलकी सत्ता नहीं रहती—वह जीवित ही नहीं रह सकता, स्थूलके बिना सूक्ष्मका अस्तित्व प्रमाणित नहीं होता। अतएव दोनों एक हो जाते हैं। इस संसारके समस्त प्राणियोंकी यही अवस्था है। सूक्ष्म-शक्ति जहाँ घटी कि स्थूलता भी घटी और अन्तमें जहाँ सूक्ष्म-शक्ति गायब हुई कि जीवन अन्त हो गया। यह सूक्ष्म ही वह जीवनी-शक्ति है—और शरीर ही उस सूक्ष्म-शक्तिके प्रकट होनेका आधार है। यहाँ भी वही नियम काम कर रहा है। यदि सूक्ष्म शरीर स्वस्थ रहा—जीवनी-शक्ति स्वस्थ रही, तो मनुष्यका शरीर उन्नत और विकाशील रहता है। उसके रोगी होते ही—विकारग्रस्त होते ही—वह भी रोगी हो जाता है, घट जाता है। इसी तरहसे जब सूक्ष्म-शक्ति विकृत होकर स्थूल पदार्थमें अपने विकृत-रूप रोग-लक्षणोंको भेजती है, तब उसे हमलोग देखते हैं, परन्तु उस विकृतावस्था रोग-लक्षणमें भी जीवनी-शक्ति न हो, ऐसा नहीं है, प्रतिबिम्बमें भी बिम्बका अंश रहता ही है। अतएव, भीतरी विकार और बाहरी लक्षण वास्तवमें एक ही हैं कोई अन्तर नहीं ; यही इन दोनोंका सम्बन्ध है।

[१६]

रोगकी उत्पत्ति और आरोग्य—इन दोनोंमेंसे जीवनी-शक्तिपर किसका प्रभाव होता है? सूक्ष्म या स्थूलका?

हमारी जीवनी-शक्ति चेतन पदार्थ है, जड़ नहीं। अतएव, इसको बिगाड़ देनेवाला, जीवनकी समता नष्ट करनेवाला, प्रतिद्वन्द्वी-रूपमें, कोई बाहरी जड़-पदार्थ इसपर आक्रमण नहीं कर सकता। उसपर आक्रमण करनेवाला कोई शक्ति-सम्पन्न पदार्थ ही होना चाहिये। इसलिये जिस तरह जीवनी-शक्ति नहीं दिखाई देती, उसी तरह वह कारण भी नहीं दिखाई दे सकता। अतएव, जिन कारणोंसे जीवनी-शक्तिपर रोगका आक्रमण होता है और वह रोगिणी हो जाया करती हैं, शक्तिके रूपमें होनेके कारण वह भी सदा ही ऐसा रहेगा कि मानव-दृष्टि उसे देख न सकेगी। इसके आलावा, जीवनी-शक्तिका रोग दूर करनेके लिये चिकित्सक जो दवाएँ देते हैं, उनकी भी शक्ति दिखाई नहीं देती और अदृश्य रूपमें ही वे जीवनी-शक्तिपर क्रिया किया करती हैं। इसके बाद चिकित्सक जब अपनी सूक्ष्म-दृष्टि और जाँचके सहारे, जहाँ-जहाँ रोग-लक्षण देखते हैं, उसी अनुसार जब औषध-प्रयोग करते हैं, तो समस्त यंत्रोंमें रहनेवाली जीवनी-शक्ति समस्त सूक्ष्म स्नायुमण्डलपर भीतरसे अपनी सूक्ष्म औषध-क्रिया प्रकट करती हुई, मूल रोगको दूर कर देती है और पुनः जीवनमें समता और स्वास्थ्य ला देती है।

खुलासा—जीवनी-शक्ति सूक्ष्म है, उसमें चेतना है—चेतना न रहती, तो उसमें कार्यकर शक्ति न रहती। इस सूक्ष्म और चैतन्य शक्तिपर, कभी स्थूल शक्तिका प्रभाव नहीं पहुँच सकता। सूक्ष्मपर सूक्ष्म ही अपना प्रभाव डाल सकता है, चेतनपर चेतनकी ही क्रिया हो सकती है; क्योंकि जड़में तो कोई शक्ति ही नहीं रहती, वह चेतनकी शक्तिके कारण ही चैतन्य दिखाई देता है, बलवान रहता है। इसलिये

जीवनी-शक्ति और रोग-शक्ति ये दोनों ही शक्तियाँ, जो प्रतिद्वन्द्वी रूपमें रहती हैं, वे जड़ नहीं हैं। इन दोनोंके संघर्षमें यदि रोग-शक्ति विजयी हुई तो वह जीवनी-शक्तिपर अधिकार जमा लेती है। यह बात—ये दोनों ही शक्तियाँ—आज भी मानव-दृष्टिमें नहीं आती और कभी भी न दिखाई देंगी ; क्योंकि वे सूक्ष्म और अशरीरी हैं। अब यदि रोग-शक्तिपर जड़ औषधियोंका प्रयोग किया जाये, तो कोई कार्य न होगा ; चेतनपर चेतन ही प्रभाव जमा सकेगा। इसलिये महात्मा हैनिमैनने होमियोपैथीमें शक्तिकरण (Dynamization) नामक प्रक्रियाका प्रयोग किया है। इस प्रक्रिया द्वारा जड़ भेषजमें वह शक्ति आ जाती है, जिससे वह सूक्ष्म चेतना-पूर्ण शक्तिपर अपना प्रभाव डालकर उसे वशीभूत करती है। इसीलिये होमियोपैथिक दवाएँ ३०, २००, १०००, १०,००० प्रभृति शक्तिके रूपमें रोगीकी शक्तिके तारतम्यके अनुसार प्रयोग की जाती हैं। सूक्ष्मपर सूक्ष्मकी ही क्रिया हो सकती है, स्थूलकी नहीं।

[१७]

रोग दूर करनेके लिये चिकित्सकको क्या करना पड़ेगा ?

जीवनी-शक्ति रोग-ग्रस्त हो जानेपर मानव-शरीरकी स्वाभाविक अवस्थामें जो परिवर्त्तन हो जाते हैं, वे परिवर्त्तन सब अर्थात् रोगके लक्षण और चिह्न, यदि सम्पूर्ण रूपसे और स्थायी भावसे दूर कर दिये जायें, तो यह मालुम होगा कि जीवनी-शक्ति रोग-मुक्त हो गयी ; क्योंकि जीवनी-शक्तिकी बीमारी और लक्षण-समूह ये दोनों ही एक हैं, इनमें किसीको भी छोड़ा नहीं जा सकता अतएव, यदि चिकित्सक लक्षण-समूहको दूर कर सकें तो समझना होगा, कि रोग दूर हो गया। इस तरह चिकित्सा द्वारा स्वास्थ्यको फिरसे लौटा लाना ही चिकित्सकका

उद्देश्य रहता है। रोगका न समझमें आनेवाला उत्कट और अद्भुत नाम रखकर जन-समाजमें वाहवाही लूटना चिकित्सकका उद्देश्य नहीं है। उसका प्रकृत उद्देश्य है, रोगीको एकदम नीरोग कर देना।

खुलासा—इस सूत्रमें कुछ द्विरुक्ति-सी मालूम होती है। ऐसा मालूम होता है कि हैनिमैन बार-बार एक ही बातको कह रहे हैं, पर जरा गम्भीर भावसे विचार करनेपर यह धारणा हट जाती है। ऊपरके १५वें सूत्रमें यह बताया जा चुका है कि बाह्य और अन्तर रोग लक्षण अलग नहीं हो सकते, अतः जीवनी-शक्ति और बाह्य-रोगके रूपमें बहुत बड़ा सामञ्जस्य है। इस सूत्रमें इन दोनोंके सामंजस्यके साथ ही उन्होंने यह बताया कि क्योंकि (१) बाहरी और भीतरी परिवर्त्तन ही रोग है; क्योंकि (२) जीवनी-शक्ति और शरीरको पूर्वावस्थामें ला देना ही आरोग्य है। इसलिये, किस कारणसे रोग हुआ और अब इस रोगका क्या नाम रखा जाये प्रभृति कार्य, ऐलोपैथोंके अनुसार पहले निदान करना, फिर लम्बा-चौड़ा, समझमें न आनेवाला नाम रखना, इस तरह चिकित्साका एक आडम्बर दिखाना—इन बातोंकी कोई भी आवश्यकता नहीं है। भगवानकी अनन्त महिमासे जीवनी-शक्ति अपने रोगी होनेका प्रमाण स्वयं ही उपस्थित कर देती है, चिकित्सकको उस प्रमाण अर्थात् लक्षण-समूहोंको खूब ध्यानसे देखकर अध्ययन करना और उसीके अनुसार दवा देनी चाहिये। निदान तत्वके फेरमें पड़कर वृथा ही समय नष्ट करने और झंझटमें पड़नेकी जरूरत नहीं है।

इसके अलावा, इससे एक आभास और भी मिलता है—वह "लक्षण-समूह" या "लक्षण-समष्टि" शब्दपर ध्यान देनेसे मालूम होता है कि स्नायविक दुर्बलता दिखाई देती है—फास्फोरस दो, प्यास बहुत है—"ब्रायोनिया" दो। इस तरहकी चिकित्सा-प्रणालीसे काम न चलेगा। सारे लक्षणोंको देखकर, समस्त लक्षणोंके लिये समगुण प्रकट करनेवाली दवाका चुनाव ही करना पड़ेगा, नहीं तो रोगी सम्पूर्ण

आरोग्य न होगा और इस तरह चिकित्सकका कर्त्तव्य पालन भी न होगा।

[१८]

क्या दवा चुननेके लिये लक्षण-समूहका अवलम्बन करनेके अतिरिक्त और भी कोई उपाय है ?

पूर्वोक्त सूत्रोंपर विचार करनेके बाद यह स्पष्ट मालूम होता है और निःसन्देह रूपसे इस सिद्धान्तपर पहुँच जाता है कि दवा चुननेका साधन इस लक्षण-समूहके सिवा और कुछ भी नहीं है। अतएव लक्षण-समूहको ही दिग्दर्शन मानकर दवा चुनी जा सकती है और रोगका निर्णय किया जा सकता है।

खुलासा—इस सूत्र द्वारा जिस तरह हैनिमैनने चिकित्सकोंको बहुत तरहके झंझटोंसे बचा दिया है, उसी तरह रोग-निदानके लिये नवीन-नवीन आविष्कारोंकी भी असारता बता दी है। बहुत तरहके "टेस्ट" चले हुए हैं, जैसे—वासरमैन टेस्ट—रक्त परीक्षा, मल-परीक्षा—ये सारी परीक्षाएँ यन्त्रों द्वारा होती है ; परन्तु इनसे कोई चिकित्सक किसी निश्चित सिद्धान्तपर नहीं पहुँच सकता। उपदंश रोग होते ही, या उसका भ्रम होते ही, वासरमैन टेस्टकी ऐलोपैथी द्वारा आज्ञा होती है, पर कितनी ही बार ऐसा देखा जाता है कि वासरमैन टेस्टमें उपदंश बीज न मिलनेपर भी शरीरमें उपदंश विष मौजूद रहता है। इतना और हो जाता है कि रोगीके रोगी शरीरसे रक्त निकलनेसे कुछ दुर्बलता बढ़ती है और अपव्यय होता है। हैनिमैनका कथन है, कि इनमें क्यों धन और समय तथा बलका अपव्यय किया जाये। यदि भीतर रोग है, तो उसका लक्षण बाहर आये बिना रह नहीं सकता, और उसको अध्ययन करनेसे ही निश्चित रूपसे रोगका पता इस तरह लग

जाता है कि भ्रम हो नहीं सकता। ऐसा निश्चित उपाय कोई दूसरा नहीं है।

इस स्थानपर एक सिद्धान्त और भी कार्य करता है। मान लीजिये—दो मनुष्योंको उपदंश हुआ। वासरमैन टेस्टमें भी मालुम हुआ कि दोनोंमें उपदंश विष है, परन्तु दोनोंकी दो प्रकृतियाँ—दो प्रकारकी धातु रहनेके कारण, दोनोंको एक ही दवा कार्यकारी नहीं हो सकती। ऐलोपैथी इस बातपर विचार नहीं करती। उपदंश विष मालुम होते ही दोनों प्रकारके रोगीकी एक ही प्रकारकी दवासे चिकित्सा होगी। रोगका निदान हुआ, नामकरण हुआ, फिर दवा तो बँधी हुई है ही। सभी समान रोगवाले रोगीको एक ही दवा दी जायगी। होमियोपैथी इस सिद्धान्तके विपरीत मत देती है। उसका कथन है कि प्रकृतिने सबकी अलग-अलग धातु और विभिन्न प्रकृतियाँ बनायी हैं। इसका प्रमाण यह है कि एक ही रोगके दो रोगियोंमें एक ही तरहके लक्षण प्रकट नहीं होते। अतएव, यह निदान—रोगका यह नामकरण—यंत्रों द्वारा इस प्रकारका निर्णय निःसार और वृथा है। रोगको पकड़नेका एक ही तरीका है और वह है—**रोगीके शरीरमें जीवनी-शक्तिकी प्रतिक्रिया द्वारा उत्पन्न किये हुए लक्षण।** ये लक्षण हरएक रोगीमें अलग-अलग पैदा होते हैं, अतएव दवा भी लक्षणोंके अनुरूप अलग-अलग ही देनी पड़ती है। यही होमियोपैथिक रोग-निदान और यही चिकित्सा-सिद्धान्त है।

[१९]

यदि औषधोंमें स्वस्थको अस्वस्थ बनानेकी शक्ति रहती, तो औषधसे रोग आरोग्य होते या नहीं ?

अब यह मालूम हो गया है कि रोग स्वाभाविक अवस्थामें विकार आनेके सिवा और कुछ भी नहीं है। यह विकार रोग-सूचक लक्षण-

समूहके रूपमें प्रकट होते हैं। अतएव, अस्वस्थ अवस्थाका परिवर्त्तन होकर यदि स्वस्थ अवस्था आ जाये, तो समझना होगा कि रोग आरोग्य हो गया। इसीलिये, औषध-रूपमें जिन चीजोंका प्रयोग किया जाये, उनमें यह सामर्थ्य रहनी चाहिये कि रोगको मिटाकर स्वास्थ्यका बहाल कर सकें। यदि दवाएँ इन्द्रिय आदिकी अनुभूति और क्रियापर निर्भर करनेवाले मानव-स्वास्थ्यमें सुखद परिवर्त्तन न ला सकें, तो वे कभी रोगको आरोग्य नहीं कर सकतीं। औषधियोंकी रोगनाशक शक्तिका एकमात्र यही प्रमाण है कि उनमें मानव-स्वास्थ्यमें परिवर्त्तन लानेकी क्षमता है।

खुलासा—ऊपर जो कुछ लिखा जा चुका है, उससे यह साबित हो गया कि स्वस्थ अवस्थामें जो विकार पैदा हो जाते हैं—इन्द्रियाँ अपना काम ठीक-ठीक नहीं करतीं, कार्यक्रम अनियमित हो जाता है—वही **रोग** है। रोगके साथ नाना प्रकारके अन्य उपसर्ग आते हैं, जिनसे पता लगता है कि यह रोग इस ढंगका है। मान लीजिये कि यह पता लग गया, पर उसके दूर करनेका उपाय? हैनिमैनने रोगके सम्बन्धमें वताकर अब वही उपाय बताना आरम्भ किया है। **दवा किसे कहते हैं?** दवा या औषध उसे कहते हैं, जो स्वस्थ शरीरको अस्वस्थ और बीमारीको स्वस्थ बना सके। जो चीज स्वस्थको अस्वस्थ नहीं बना सकती, वह दवा नहीं है, उसमें भेषज-गुण नहीं है। उसे केवल अपरीक्षित भेषज (Drug) कहा जा सकता है ; क्योंकि उसकी क्रिया प्रकट नहीं है। इसी तरह खाद्य-पदार्थ या पथ्यके पदार्थ औषध नहीं हैं। एक उदाहरण लीजिये—आप पिस्तौल रखते हैं ; पिस्तौल प्राण नाश करता है, इसीलिये आपकी जीवन-रक्षा भी करता है। औषधमें भी यही शक्ति है। अतएव, लोगोंकी यह बिलकुल ही गलत धारणा है कि होमियोपैथिक दवाएँ नुकसान नहीं करती। जो नुकसान नहीं करता, वह लाभ भी नहीं कर सकता। अतएव, औषधमें अस्वस्थ बना देनेकी शक्ति न रहती, तो उससे रोग भी आरोग्य न होते।

[२०]

औषधकी वास्तविक शक्ति किस तरह जानी जाती है ?

औषधोंमें मानव-स्वास्थ्यकी परिवर्त्तन करनेकी जो शक्ति छिपी हुई है, वह केवल तर्क या युक्तियोंसे जानी नहीं जा सकती। वह जानी जाती है, मानव-स्वास्थ्यपर अपना प्रभाव दिखानेके समय जो परिवर्त्तन प्रकट करती है, उससे। उन्हीं परिवर्त्तनोंसे ही हम उसकी शक्तिका पता पाते हैं।

खुलासा—हरेक औषधमें यह ताकत है कि वह स्वास्थ्यको अच्छेसे बुरा या बुरेसे अच्छा कर दे। इसीलिये जब ठीक-ठीक दवाका प्रयोग नहीं होता, तब हम कह देते हैं कि इस दवाने नुकसान कर दिया अर्थात् कुछ ऐसे लक्षण प्रकट हो गये, जिससे हमारा कष्ट बढ़ गया। यह कष्ट बढ़ जाना, दवाकी कार्यकर शक्तिका द्योतक है। यह शक्ति कब मालूम हुई, जब दवाका प्रयोग हुवा ; केवल अनुमान या तर्कसे नहीं मालूम हो गई। इसलिये हैनिमैनका यह मन्तव्य है कि प्रत्येक दवाकी स्वस्थ शरीरपर पहले परीक्षा होनी चाहिये। उससे जो लक्षण—केवल शारीरिक नहीं, मानसिक भी प्रकट हों, वैसे ही लक्षण प्रकट करनेवाले रोगमें वह दवा उपयोगी होगी। यही वास्तविक शक्तिकी जानकारीका अर्थ है।

लोग चूहे, बिल्ली आदि पशु-पक्षीपर दवाका प्रयोगकर, उसकी परीक्षा करते हैं, परन्तु इससे सच्ची परीक्षा नहीं होती ; क्योंकि यद्यपि कुछ शारीरिक लक्षण जैसे—उद्भेद—दाने, ग्रन्थियोंका फूलना, गर्मीका बढ़ जाना प्रभृति भले ही मालूम हो जायें ; परन्तु वास्तविक अनुभूति, मस्तिष्कका विकार, बुद्धिका विकार, दर्द आदिका कष्ट नहीं जाना जा सकता है। सारांश यह कि इन प्राणियोंमें औषधकी परीक्षा करनेपर मानसिक लक्षण कुछ भी प्रकट नहीं हो सकते, अतएव यह अधूरी परीक्षा

है। साथ ही रोगी मनुष्यपर भी किसी दवाकी परीक्षा नहीं हो सकती ; क्योंकि उसके रोग-लक्षण और दवाके लक्षण मिलकर गड़बड़ी पैदा कर देते हैं। औषधकी वास्तविक क्रिया तभी जानी जा सकती है, जब स्वस्थ सबल शरीरपर उसका प्रयोग होता है।

[२१]

क्या औषधकी रोग पैदा करनेवाली और नाश करनेवाली शक्ति एक ही है ?

अब इससे इनकार नहीं किया जा सकता, कि दवाकी आरोग्य करनेवाली शक्तिका पता आप-से-आप ही नहीं लग जाता, सूक्ष्मदर्शियों द्वारा उसकी परीक्षा होनेपर भी इतना ही पता लगता है कि मानव-शरीरपर, खासकर स्वस्थ मानव-शरीरपर उसकी यह क्रिया होती है कि स्वास्थ्यमें स्पष्ट परिवर्त्तन आ जाता है। अतएव मालूम होता है कि कितने ही अस्वाभाविक लक्षण उत्पन्न करनेके कारण मानव-स्वास्थ्यमें उससे जो परिवर्त्तन आ जाता है, वही दवाकी क्रिया है। अब उन्हीं प्रकारके लक्षणोंको परिवर्त्तन करनेकी शक्ति भी उनमें रहनेके कारण ही दवाएँ रोगको आरोग्य भी कर सकती हैं। अतएव, इससे यह सिद्धान्त निकलता है कि जब किसी दवासे रोग आरोग्य होता है, तो उसी दवाके द्वारा जो स्पष्ट और विशेष लक्षण पैदा होते हैं, उनके ही सहारे आरोग्य होता है। इसी वजहसे दवाओंकी अदृश्य रोग आरोग्यकारिणी शक्तिको समझनेके लिये पहले प्रत्येक दवाकी रोग पैदा करनेकी शक्ति पूरी तरह जाँच लेनी होगी, तभी यह मालूम हो सकेगा कि उसमें किस तरहके रोगको नाश करनेकी शक्ति है।

खुलासा—रोग क्या है—यह ऊपर खुलासा बताया जा चुका है और यह भी बता दिया गया है कि औषध किसे कहते हैं? पर यहाँ

हैनिमैन उसी बातको और भी स्पष्ट करते हैं और कहते हैं कि तबतक उस चीजको औषधकी श्रेणीमें न मान लेना चाहिये, जबतक उससे यह प्रमाणित न हो जाये कि वास्तवमें अमुक औषधसे अमुक-अमुक लक्षण पैदा हुए। प्रत्येक औषधमें रोग पैदा करनेवाली, अतएव रोगकी नाश करनेवाली शक्ति मिली हुई है। जो दवा स्वस्थ शरीरमें जिस ढङ्गका लक्षण पैदा करती है, अस्वस्थ शरीरमें वे ही लक्षण रहनेपर वही दवा उसे आरोग्य कर देती है। अतएव किसी दवासे किसी रोगको आरोग्य करनेके लिये स्वस्थ शरीरपर उसका प्रयोगकर देखना चाहिये कि इससे कोई रोग-लक्षण प्रकट होता है या नहीं। इसी तरह औषधकी रोगोत्पादक और रोग-नाशक शक्तिका ज्ञान होता है।

[२२]

औषधकी सदृश और विपरीत क्रिया क्या है?

जिस तरह मूल रोग चिह्न और लक्षण-समूहोंके सिवा और किसी तरह जाना नहीं जाता, उसी तरह दवाएँ भी जो स्वास्थ्यकी विपरीत अवस्था अर्थात् अस्वस्थ अवस्थाके लक्षण पैदा करती हैं और अस्वस्थ अवस्थामें प्रयोग करनेपर स्वस्थ अवस्थाके लक्षण लाती हैं, उनके सिवा और किसी तरह उन्हें जाना नहीं जा सकता। अब इसका एक निष्कर्ष तो यह है कि औषधियाँ रोग-नाशक केवल उसी दशामें मानी जा सकती हैं, जब वे कुछ विशेष लक्षण और गुण प्रकट करें अर्थात् जब वे शरीरके भीतर कोई निश्चित कृत्रिम रोगावस्था पैदा कर दें और उन उपद्रवों तथा लक्षणोंको मिटा दें और दूर कर दें, जो उनका व्यवहार होनेसे पहले मौजूद थीं। इस तरह मानव-शरीरका वह विकार दूर हो जाता है, जो उसके भीतर स्वतः आ गया था। दूसरा निष्कर्ष यह है कि औषध लक्षण-समूहके लिये होनी चाहिये; अर्थात् विचाराधीन रोगीकी ऐसी

औषध मिलनी चाहिये, जो रोगके उपद्रवों और लक्षणोंको तुरन्त, निश्चयपूर्वक और सदाके लिये दूर कर दे। वह औषध समान लक्षण प्रकट करती है या विपरीत[1]—यह बात अनुभवसे सिद्ध होनी चाहिये।

खुलासा—उदार हैनिमैन इस विज्ञानको परीक्षाकी भित्तिपर स्थापित करनेके उद्देश्यसे ही यह कहते हैं कि रोगीका मूल रोग जाननेका सिर्फ एक उपाय है—रोगके लक्षणोंका अध्ययन। दवाओंके गुण-अवगुण अर्थात् क्रियाको जाननेकी एक ही राह है—उनकी परीक्षा। स्वस्थ शरीरपर परीक्षा कीजिये, उस समय जो लक्षण प्रकट होंगे, उनसे दवाकी क्रिया मालूम हो जायगी। अब रही इस बातकी जाँच कि समान लक्षण उत्पन्न करनेवाली दवासे रोग आरोग्य होता है अथवा रोगसे उल्टे लक्षण—विपरीत लक्षण पैदा करनेवाली दवासे। इसकी जाँच

---

१. औषधियोंके गुणावगुण मालूम करनेका एक और तीसरा उपाय भी है—ऐलोपैथिक पद्धति। वहाँ ऐसी दवाएँ भी दी जाती हैं, जिनका रोगके लक्षणोंसे कोई सम्बन्ध नहीं होता। यह वह गैरजिम्मेदार और घातक खेल है, जो ऐसी भयानक और उग्र औषधों द्वारा मानव-जीवनके साथ खेला जाता है, जिनके गुणावगुणका पता नहीं। इन औषधोंकी व्यवस्था और निर्वाचन केवल अनुमानके सहारे किया जाता है—उनका बार-बार और बड़ी मात्रामें व्यवहार किया जाता है।

फिर कष्टकर आपरेशनोंकी बारी आती है, जो रोगको स्थानान्तरित कर देते हैं; रोगीकी शक्ति क्षीण कर देते हैं; वमन, विरेचन, लार और पसीना लाकर रस-रक्तादि धातुओंका विनाश करते हैं। सबसे बढ़कर हानिकर और निन्दनीय उपचार है, रस निकलना—जिसकी क्षतिपूर्ति असम्भव है। ये सब क्रियाएँ बड़ी बेदर्दी और बेजिगरीके साथ की जाती है। इतना करनेपर भी, वे, स्वास्थ्य बहाल नहीं कर पाते।

यह सब कुछ होता है प्रकृतिकी नकलके नामपर। यदि रोगी ही चल बसे, तो फिर प्रकृतिकी ऐसी नकलसे क्या लाभ?

कीजिये। जाँच लेनेपर यह अच्छी तरह मालुम हो जायगा कि किस प्रकारकी औषधसे रोग आरोग्य होता है।

[२३]

क्या विपरीत प्रणालीसे रोग आरोग्य होते हैं ?

अनेक प्रकारके परीक्षणों तथा सही-सही खोजसे यह सिद्ध हो गया है कि कोई भी विपरीत या असदृश लक्षणवाली प्रणाली (ऐण्टिपैथिक, एनैण्टियोपैथिक) या शामक पद्धति (पैलियेटिव), जिनमें रोग-लक्षणोंके विपरीत लक्षणवाली औषधका प्रयोग किया जाता है, रोगको आरोग्य नहीं कर सकतीं। ऐसी दवाओंका प्रयोग करनेपर सम्भव है कि कुछ समयतक रोग दब जाये, पर कुछ ही दिनोंके बाद, मूल रोग बढ़ता हुआ दिखाई देता है और पहलेसे भी अधिक भयंकर रूप धारण करके आता है (५८—६२ और ६९ सूत्र देखिये)।

खुलासा—अपने "समः समे शमयति" का सिद्धान्त प्रतिपादन करते हुए, हैनिमैन कहते हैं कि दो प्रकारकी दवाएँ हैं—रोगके अनुसार ही सम-लक्षण प्रकट करनेवाली, और उससे विपरीत लक्षण प्रकट करनेवाली। परन्तु वैसी दवाओंके सिवा—जिनमें रोगके अनुसार ही लक्षण, स्वस्थ शरीरपर परीक्षा करनेपर प्रकट हुए हैं और किसी भी दवासे रोग आरोग्य नहीं हो सकता। क्यों नहीं आरोग्य हो सकता ? इस विषयमें आगे बताया जायगा ; पर यह अनुभव और जाँचसे अच्छी तरह मालुम हो गया है कि विपरीत दवाओंसे रोग आरोग्य नहीं होता। यदि आरोग्य होता मालुम भी हो, तो वह स्थायी आरोग्य नहीं है, बल्कि रोग दब जाता है, भीतर छिप रहता है और इसके बाद कुछ दिनोंतक दबा रहकर अनुकूल अवसर आते ही रोग और भयंकर रूप धारण करके उपस्थित हो जाता है।

[२४]

रोग जड़से नाश कैसे होता है ?

इसलिये होमियोपैथी अर्थात् सम-लक्षण-सम्पन्न प्रणालीके सिवा और किसी भी प्रणालीसे दवाका प्रयोगकर लाभ नहीं उठाया जा सकता ; क्योंकि होमियोपैथी मतसे रोग आराम करनेके लिये कोई ऐसी दवा खोज निकालनी पड़ती है, जिसको स्वस्थ शरीरमें सेवन कराकर देखा गया है कि उससे जो रोगके ऐसे कृत्रिम लक्षण प्रकट हुए थे, वे रोगके लक्षणोंके सदृश हैं और इन्हीं सम-लक्षणवाली दवाके प्रयोगसे रोग जड़से आरोग्य होते हैं।

खुलासा—ऊपरके सूत्रोंसे यह अच्छी तरह प्रकट हो गया कि सदृश-विधान क्या है और उसमें औषधका प्रयोग किस प्रणालीके अनुसार होता है। उस समय विदेशोंमें ऐलोपैथी प्रभृति जो चिकित्सा-प्रणालियाँ प्रचलित थीं, उनकी असारता दिखानेके उद्देश्यसे ही यह बात कही है। स्वयं हेनिमैन बहुत बड़े ऐलोपैथ थे। उस चिकित्सा-प्रणालीकी असारता देखकर ही, उन्होंने उसे त्यागा था और सबसे बड़ी बात तो यह थी—विज्ञान-सम्मत-प्रणाली होनेका दावा, जो उनको उस चिकित्सा-पद्धतिमें दिखाई न दिया। उन्हें इसके सिवा और कोई सच्ची प्रणाली ही न दिखाई दी, कि रोगीकी चिकित्सा इसी प्रणालीसे होनी चाहिये, जिसमें उन्हीं दवाओंका प्रयोग हो, जिनमें रोगीके रोग-लक्षणके समान ही लक्षण उत्पन्न करनेकी शक्ति हो। यही सम-लक्षण-सम्पन्न प्रणाली आरोग्यकर चिकित्सा-प्रणाली है। जिसमें लक्षणोंके विपरीत लक्षण पैदा करनेवाली दवाका प्रयोग होता है, वह नहीं आरोग्य कर सकती।

[२५]

औषधका प्रयोग कैसे होना चाहिये ?

चिकित्सा-शास्त्रके शुद्ध परीक्षणों[1] और सावधानीके साथ की गई आजमाईशोंका एकमात्र निर्भ्रान्त सार यह है कि विचाराधीन रोगीके लिये, वास्तविक औषध वही है, जो स्वस्थ व्यक्तिके शरीरमें उसी तरहके लक्षण पैदाकर सकनेकी क्षमता सिद्ध कर सकी हो। जब ऐसे रोगी और ऐसी औषधके लक्षणोंमें अधिक-से-अधिक समता नजर आये, तो उस औषधको सम औषध कहा जाता है। ऐसी औषधको जब उचित शक्तिमें दिया जाता है, तो वह रोगीके अधिक-से-अधिक लक्षणोंको बहुत तेजीसे, मौलिक रूपमें और सदाके लिये दूर कर देती है। या यों कहिये, कि, रोग समष्टि रूपमें मिट जाता है और पूर्ण स्वास्थ्यमें परिवर्त्तित हो जाता है। इस नियमके अनुसार केवल वही दवा लाभकर है, जो उसी तरहके लक्षण पैदा करनेमें समर्थ है। ऐसी दवा एक भी लक्षण शेष नहीं छोड़ती।

खुलासा—इस सूत्रके अनुसार एक बात यह मालूम हुई कि सभी दवाओंमें आरोग्य करनेकी शक्ति है ; परन्तु यह उस अवस्थामें—यदि रोगके लक्षणोंके साथ उसके अधिकांश लक्षण मिल जायें। चिकित्सकको यह दवा चुनते समय ऐसी बहुत-सी दवाएँ मिलेंगी, जिनके लक्षणोंमें

---

१. मैं उन परीक्षणोंको शुद्ध परीक्षण नहीं समझता, जिनके बारेमें ऐलोपैथीवाले यह डींग मारते हैं और बताते हैं कि उन्होंने असुक रोगपर बरसातोंतक परीक्षण किये। उनके नुस्खोंमें अनेक दवाइयाँ रहती हैं। किस दवाका क्या गुण हुआ—इसकी वे सावधानीके साथ कभी जाँच नहीं करते। मानव तो मानव, देवता भी उन्हें मालूम नहीं कर सकते।

यह क्या परीक्षण हुआ ? तो वैसी ही बात है, जैसे कोई काँचके ग्लासमें काँचके टुकड़ेभर प्रकाश-रश्मियोंको विकोर्णित होते देखता रहे और गिननेका यत्न करता रहे।

बहुत थोड़ा अन्तर है। इस समय बहुत सावधान रहनेकी जरूरत है; क्योंकि इसीपर सारा दारमदार रहता है। उन सम-लक्षण-सम्पन्न दवाओंमेंसे भी चुनकर ऐसी दवाका प्रयोग करना पड़ेगा, जिसके लक्षण सबसे अधिक मिलते हों। दवा चुननेकी यही परिपाटी या प्रणाली है। अब दूसरी बात आती है—"मात्रा"। हैनिमैनका कथन है कि कम मात्रामें दवाका प्रयोग होना चाहिये। तीसरी बात यह है—वे दवाएँ शक्तिकृत होनी चाहिये। ठीक ओषध, सूक्ष्म मात्रा, शक्तिकृत दवाएँ—इन तीनोंका जब ठीक-ठीक सम्मिलन होकर ओषधका प्रयोग होता है, तब वे रोगको तेजीसे, जड़से और सदाके लिये आरोग्य करती हैं। इन तीनोंका ठीक चुनाव होनेपर कभी असफल नहीं होना पड़ता।

[२६]

हैनिमैनने आरोग्यका कौन-सा प्राकृतिक नियम आविष्कार किया है?

प्रकृतिका सम-चिकित्सा-सम्बन्धी एक नियम है। इस नियमको अबतक लोगोंने संदेहकी ही दृष्टिसे देखा है, किसीने भी इसे सम्पूर्ण रूपसे नहीं समझा; अर्थात्—

"जब शरीरमें एक ही प्रकारकी दो बीमारियोंके लक्षण उत्पन्न हुए हों, तो जो अधिकतर बलवान होगा, वह सम-लक्षणवाले, दुर्बल रोगको, बिलकुल ही नष्ट कर देगा।"

खुलासा—हैनिमैनका यही आरोग्यकर नियम है। इसी नियमपर होमियोपैथीकी भित्त स्थापित है। यह नियम कभी-कभी लोगोंकी दृष्टिमें आ जाता था। लोग इसे देखकर समझते भी थे, कि इसी नियमके अनुसार बीमारी दूर हो जाती है; परन्तु कुसंस्कारवश, इस नियमपर किसीका भी पूरा ध्यान न गया। वह नियम है—बलवान

अपने ही जैसे दुर्बलका नाश कर देता है। सूर्य उदय होनेके साथ ही, तारोंका लोप हो जाता है, चन्द्र-ज्योति दिखाई नहीं देती। पिछले दोनोंमें ही तेज है; परन्तु सूर्य तेजमें बलवान हैं। यही नियम सर्वत्र प्रचलित है और इसी नियमको चिकित्सा-कालमें सभी व्यवहार कर सकते हैं।

रोगका लक्षण दिखाई देने और अच्छी तरह अध्ययन कर लेनेपर, यह जाँचना जरूरी होता है, कि किस दवामें यही लक्षण है। यह दवा मिल जानेपर, उसे शक्तिकृतकर, इतना बलवान बनाना पड़ता है कि रोग-शक्तिसे औषध-शक्ति बढ़ जाये; यही शक्ति या क्रम-निरूपण है। औषधमें भी वही लक्षण रहनेके कारण, जिस समय उसका प्रयोग होता है, तो शरीरमें वे ही लक्षण पैदा कर देता है और शक्तिकृत रहनेके कारण वह औषध और भी बलवान रूपमें वे ही लक्षण पैदा करता है। अतएव, वह मूल रोगको ग्रास कर जाता है। इस तरह मूल रोग आरोग्य हो जाता है और चूँकि औषधकी क्रिया अस्थायी होती है; इसलिये, उससे उत्पन्न लक्षण भी आप-से-आप ही गायब हो जाते हैं। यही प्रकृतिका नियम है और इसी नियमके अनुसार समस्त रोग आरोग्य होते हैं।

होमियोपैथिक चिकित्सासे सम्बन्ध रखनेवाले अच्छी तरह जानते हैं, कि इसमें १ दशमिकसे लेकर लाख-लाखतकके क्रम तैयार किये जाते हैं। यह इसीलिये, कि रोग-शक्तिसे प्रबल शक्तिमान औषधका प्रयोग हो, यही बात वे आगे और भी खुलासा करते हैं।

[२७]

औषधके लक्षण-समूह, रोग लक्षण-समूहके समान होनेसे ही, क्या रोग आरोग्य हो जायगा?

किसी औषधकी आरोग्यकर शक्तिका रहस्य यह है कि वह रोग जैसे ही लक्षण पैदा कर सके, और ये लक्षण रोगके लक्षणोंसे अधिक बलवान हो (सूत्र १२—२६) ; इस तरह यह सिद्ध हुआ कि किसी रोगको, केवल वही दवा तत्काल, जड़से और सदाके लिये दूर कर सकती है, जो मानव-शरीरमें, उसी जैसे, परन्तु उससे भी अधिक बलवान लक्षण पैदा कर सके।

खुलासा—बारहवें सूत्रसे लेकर २६वें सूत्रतक, औषधके लक्षण और रोगके लक्षणकी समताके सम्बन्धमें बताया गया है और इन सबका तात्पर्य यही प्रमाणित करना है कि रोग तथा औषधके लक्षणोंमें समता होनी चाहिये। इस सूत्रमें यह बताया गया है कि रोगसे प्रबल शक्ति अर्थात् रोगकी जितनी तेजी है, दवा उससे अधिक तेज लक्षण प्रकट करनेवाली होनी चाहिये। इन दोनों शर्तोंके पूरा होनेसे ही रोग आरोग्य होगा।

[२८]

इस नियमकी सत्यता कैसे जाँची गयी ?

चिकित्साका यह प्राकृतिक सिद्धान्त प्रत्येक शुद्ध परीक्षण द्वारा सत्य सिद्ध हो चुका है और संसारभरमें देखभालकी सभी सच्ची कसौटियोंपर परखा जा चुका है, अतः परिणाम स्वतः सिद्ध है। यह सिद्धान्त कैसे कार्यान्विति होता है इसकी वैज्ञानिक व्याख्याका कोई महत्व नहीं है। इसकी व्याख्याके लिये जो चेष्टाएँ की गई हैं—मैं उन्हें भी कोई महत्व नहीं देता। हाँ ; परिणाम स्वतः सिद्ध है, क्योंकि वह कसौटीपर कसा जा चुका है।

खुलासा—होमियोपैथिक दवाओंकी परीक्षा क्या है? इसके विषयमें ऊपर बताया जा चुका है अर्थात् ठीक परीक्षा वह है, जिसमें जीव-जन्तुको नहीं, बल्कि निरोग मनुष्यको औषध खिलाकर उसमें पैदा

हुए लक्षण संग्रह किये गये हैं। यह सच्ची परीक्षा है और इस परीक्षा द्वारा सभी शारीरिक और मानसिक लक्षण सामने आ जाते हैं; परन्तु अभी भी यह परीक्षा सर्वाङ्ग-पूर्ण नहीं हुई—१०-१२-१५ स्वस्थ मनुष्योंको लगातार दवा खिलानेपर यदि समान ही लक्षण प्रकट हों, तो समझना चाहिये कि यह दवा ऐसे ही उपसर्ग प्रकट करनेवाली है। इसके बाद उसके भिन्न-भिन्न क्रमोंकी परीक्षा, जिससे मालूम होता है कि इस क्रममें यह इतना कार्य करती है; दूसरी परीक्षा हुई। अब "अनुभव" देखिये। बहुत वर्षोंसे हैनिमैन रोग आरोग्य सम्बन्धी नीतिका अध्ययन कर रहे थे, विभिन्न रोगियोंके आरोग्यकी जटिल प्रणालियाँ उन्होंने आजमाई थीं। इससे उन्हें आरोग्यकारणी शक्तिका बहुत अधिक ज्ञान प्राप्त हुआ था। यही उनका अनुभव था और यही अनुभव जगतका उपकार करनेके लिये होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणालीके रूपमें उन्होंने उस समय प्रकट किया, जब अच्छी तरह जाँच लिया कि इसका आधार सत्य है। अब आगे वह यही अनुभव-सिद्ध परिणाम बता रहे हैं।

[२९]

होमियोपैथीमें आरोग्य किस प्रक्रिया द्वारा होता है?

चीड़-फाड़ द्वारा आरोग्य होनेवाली कुछ बीमारियोंके सिवा संसारकी प्रायः सभी बीमारियाँ, रोगीकी शारीरिक और मानसिक अवस्थाओंसे प्रकट होती हैं। जीवनी-शक्तिसे पहले रोग दूर करनेके लिये, जब सदृश-विधानके अनुसार औषधका प्रयोग किया जाता है तो उस समय वह दवा मूल व्याधिपर एक ऐसा प्रबल रोग पैदा कर देती है कि मूल व्याधि उससे कमजोर पड़ जाती है, और अपने स्थानको छोड़ देती है, और अन्तमें उसको शरीरसे निकल जाना पड़ता है। अब जीवनी-शक्तिपर केवल औषधसे उत्पन्न

कृत्रिम व्याधि रह जाती है और इस व्याधिको दूर करनेमें यद्यपि जीवनी-शक्तिको बल प्रयोग करना पड़ता है ; परन्तु औषधकी शक्ति अल्पकालतक ही रहती है। इसलिये जीवनी-शक्ति उसे शीघ्र ही पराजित कर देती है। इस तरह असली तथा नकली दोनों ही व्याधियोंसे जीवनी-शक्ति मुक्त हो जाती है और स्वाभाविक भावसे काम करनेकी शक्ति उसमें लौट आती है ; यह सर्वोच्च, सम्भव प्रथा निम्नलिखित विषयोंपर निर्भर करती है।

खुलासा—इस सूत्रपर ध्यान देनेसे ही मालुम होता है कि जीवनी-शक्ति दो प्रकारसे विशृङ्खल हो सकती है। एक तो मूल व्याधिके आक्रमणसे ; दूसरे औषधज व्याधिके आक्रमणसे। शक्तिकृत, सम-लक्षण-वाली होमियोपैथिक दवाका जब प्रयोग होता है और यदि उसका प्रयोग ठीक होता है, तो वह उस लक्षणसे जबर्दस्त लक्षण पैदा करनेवाली होती है, जो पहले अर्थात् मूल रोगमें वर्त्तमान रहते हैं, अर्थात् जितनी ताकतका रोग जीवनी-शक्ति भोग रही है, उससे दवाकी रोग पैदा करनेवाली ताकत ज्यादा रहती है। अतएव, इस दवाकी रोग पैदा करनेवाली शक्ति, जबर्दस्त रहनेके कारण, उसी स्थानपर ठीक हमला करती है, जहाँ बीमारी है और जबर्दस्त कमजोरको हटाकर अपना दखल जमा बैठता है। होता यह है कि मूल रोग कमजोर होनेके कारण, पहले वह रोगवाली जगहसे भागता है और फिर शरीर ही में छोड़कर चला जाता है। इस अवस्थामें भी, जीवनी-शक्ति रोग-मुक्त नहीं हो जाती, दवासे पैदा हुई बीमारी वहाँ दखल जमाये बैठी रहती है ; परन्तु जीवनी-शक्ति इस समय जबर्दस्त हो जाती है ; क्योंकि इस नकली बीमारीमें अधिक दिवस ठहरनेकी शक्ति नहीं रहती। अतएव, जीवनी-शक्ति जोर लगाकर उसे हटा देती है और इस तरह वह स्वस्थ होकर अपना स्वाभाविक काम करने योग्य बन जाती है। इसी प्रणालीसे रोग आरोग्य होता है।

[३०]

रोगीका शरीर कैसे विगड़ता है ? रोगसे या दवासे ?

मनुष्य शरीरमें साधारणतः जो सव वीमारियाँ पैदा होती हैं, उनसे मनुष्यका स्वास्थ्य जितना विगड़ता है, उससे कहीं अधिक विगड़ता है दवाओंसे उत्पन्न वीमारीसे ; क्योंकि उचित दवाओंसे ही स्वाभाविक मूल व्याधि हटती और आरोग्य होती है। इसका वहुत कुछ कारण यह है कि मात्राका घटाना-वढ़ाना हमारे (चिकित्सकके) ही हाथोंमें है।

खुलासा—रोग-शक्ति और ओषध-शक्ति दोनोंका ही प्रभाव जीवनी-शक्तिपर पड़ता है। ओषध-शक्ति जवर्दस्त होनेके कारण रोग-शक्तिको भगा देती है ; पर ओषध-शक्तिको घटाना-वढ़ाना हमारे हाथोंकी वात है। यदि हमारी दवाकी शक्ति और मात्रा वहुत ही अधिक हो गई, तो वह जीवनी-शक्तिपर निश्चय ही अपना भयंकर प्रभाव पहुँचा देती है। उस समय वीमारी वढ़ जाती है। इसीलिये होमियोपैथीके विज्ञ चिकित्सक रोगकी तेजीके तारतम्यके अनुसार ही दवाका चुनाव करते हैं। उच्चतर और उच्चतम शक्तियोंकी क्रिया वहुत ही गम्भीर होती है और इनसे सर्वाङ्गिक परिवर्त्तन हो जानेकी सम्भावना रहती है। अतएव ओषधकी शक्ति शरीरको नुकसान पहुँचा सकती है। इस तरह यह एक सरल सिद्धान्त सामने आता है कि जीवनी-शक्तिसे जवर्दस्त है रोग-शक्ति जो जीवनी शक्तिको पराजित कर रोगी वनाती है ; रोग-शक्तिसे प्रवल ओषधज-शक्ति है, जो रोग-ग्रस्तको हटाकर वहाँ अपना अधिकार कर लेती है। अतएव, इसके दुरुपयोगसे स्वास्थ्य अधिक विगड़ जानेकी सम्भावना रहती है।

[३१]

रोग क्यों होते हैं ?

कुछ मानसिक तथा शारीरिक विपरीत रोग-शक्तियाँ, जिनके द्वारा जीवनी-शक्ति रोग-ग्रस्त हो जाती है और शारीरिक तथा मानसिक परिवर्त्तन हो जाता है और जो रोग-दूत कहलाती है। वे विना किसी कारणके ही स्वास्थ्यमें यह खरावी नहीं ला लेतीं; वल्कि उनके द्वारा हम उसी अवस्थामें रोगी वनाये जा सकते हैं, जब हमारी जीवनी-शक्ति रोग-प्रवण हो जाती है। इसी अवस्थामें वे स्वास्थ्यमें परिवर्त्तन तथा अस्वाभाविक भाव और क्रिया पैदा कर सकती हैं। यही कारण है कि वे सब किसीपर सभी समय आक्रमण नहीं करतीं।

खुलासा—वहुतसे ऐसे सूक्ष्म या स्थूल पदार्थ हैं, जो इस शरीरको ध्वंस करनेके लिये तैयार रहते हैं; क्योंकि यह नाशमान है। इसके द्वारा ही जीवनी-शक्तिपर उस अवस्थामें आक्रमण होता है, जब कितने ही कारणोंसे उसमें रोग ग्रहण करनेवाली अवस्था आ जाती है। सच तो यह है कि इस संसारके सभी व्यापारोंका प्रभाव हमारे शरीर, मन अथवा जीवनी-शक्तिपर पड़ा करता है। जाड़ा, गर्मी तथा अन्य वाह्य कारण, आनन्द, भय, शोक, दुःख प्रभृति आन्तरिक कारण—हमारे शास्त्रकारोंने इन्हें त्रिताप कहा है—इनकी वजहसे ही, हममें रोग हो सकता है; परन्तु इन सभी रोगोत्पादक कारणोंका प्रभाव हमपर उसी समय होता है, जब हमारी जीवनी-शक्ति दुर्वल हो गई हो। उसमें रोग ग्रहण करनेकी प्रवृत्ति पैदा हो जाती है और तभी उसपर रोगका आक्रमण होता है। वहुत वार यह भी देखनेमें आया है कि किसी गांवमें हैजा फैला है, पर सभी वीमार नहीं हो जाते। इसका यही कारण है कि जीवनी-शक्ति रोग-प्रवण होनेपर ही रोग होता है।

[३२]

औषध-शक्ति क्या है ?

परन्तु नकली रोग पैदा करनेवाली शक्ति—जिसे दवा कहा जाता है, वह किसी दूसरी ही तरहकी है। जो वास्तविक औषध है, वह उसी समय, सभी अवस्थाओंमें, और, प्रत्येक जीवित मनुष्यपर, अपनी क्रिया प्रकटकर, मानव-शरीरपर अपने विशेष लक्षण अर्थात् परिवर्त्तन प्रकट करता है, जब कि मात्रा पर्याप्त अधिक हो। अतएव यह स्पष्ट है कि प्रत्येक जीवित प्राणीपर हर समय औषधज व्याधिका आक्रमण होना निश्चित है ; परन्तु स्वाभाविक रोगकी अवस्था कुछ दूसरी होती है।

खुलासा—रोग-शक्ति वह है, जो रोग-प्रवण जीवनी-शक्तिपर ही, अपना प्रभाव डाल सकती है। औषधज शक्ति वह है, जो जीवनी-शक्ति रोग-प्रवण हो या न हो, इसका प्रभाव पैदा होगा ही, दवा अपना उपसर्ग प्रकट करेगी ही। कोई भी दवा खिला देनेपर शरीरके बाहर उसके लक्षण प्रकट अवश्य ही होंगे। शरीरपर लक्षण प्रकट होनेका मतलब है, जीवनी-शक्तिपर उसका प्रभाव हुआ है और जीवनी-शक्तिने वे लक्षण बाहर भेजे हैं। इन औषधोंकी मात्रा यदि बड़ी हुई तो रोग-लक्षण स्पष्ट दिखाई देते हैं ; यही वजह है कि स्वस्थ शरीरपर औषधकी परीक्षा होती है और उसके लक्षण प्रकट हो जाते हैं।

[३३]

औधषज रोग और प्राकृतिक रोग—इनमें कौन बलवान होता है ?

इससे यह निश्चय रूपसे प्रतिपादित होता है, कि मानव-शरीरपर रोग-बीज, यहाँतक कि संक्रामक रोगोंकी अपेक्षा भी औषधकी शक्तिकी क्रिया अधिक तेजीसे होती है। इसे ही दूसरे शब्दोंमें इस तरह कहा

जा सकता है कि प्राकृतिक रोग-समूह मानव-स्वास्थ्यमें जो गड़बड़ी और विशृङ्खलता पैदा कर सकते हैं, वह कितने ही विषयोंके और शर्तोंके अधीन हैं ; परन्तु औषधज शक्ति निखिल स्वतंत्र और किसी सर्तके अधीन नहीं है। अतएव, यह रोगज शक्तिसे कहीं जबर्दस्त और विशेष है।

खुलासा—रोग होनेका कारण जीवनी-शक्तिकी रोग-प्रवणता है। जबतक जीवनी-शक्तिकी यह अवस्था नहीं हो जाती, कि वह रोग ग्रहण कर सकती है, तबतक रोग नहीं हो सकते। तात्पर्य यह कि कोई रोग पैदा होनेके लिये, यह शर्त है कि जीवनी-शक्ति दुर्बल हो और वह रोग-प्रवण हो ; परन्तु औषधकी किया होने अर्थात् जीवनी-शक्तिपर उसका प्रभाव होनेके लिये, जीवनी-शक्तिकी अवस्थामें किसी पूर्व परिवर्त्तन या प्रवणता या अनुकूलताकी जरूरत नहीं है। औषधकी क्रियाकी गति और औषधकी शक्ति इतनी जबर्दस्त होती हैं कि उसे कोई शर्त या कोई भी अड़चन नहीं रोक सकती। इसका प्रमाण यह है कि स्वस्थ शरीरपर औषधकी सम्पूर्ण शक्ति प्रकट होती है। इससे मालूम होता है कि औषधसे उत्पन्न हुआ रोग या उपसर्ग अथवा कृत्रिम रोग-शक्ति, स्वाभाविक रोग-शक्तिकी अपेक्षा, बलवती हैं।

[३४]

रोग कैसे दूर होता है? सम-लक्षणवाली औषधसे या असम लक्षणवालीसे।

दवासे उत्पन्न कृत्रिम रोगोंमें अधिक शक्ति रहती है, केवल इसी वास्तविकताके कारण रोग आरोग्य नहीं होते। पूर्ण आरोग्यके लिये, अत्यन्त आवश्यक है कि यथासम्भव रोगसे सम-लक्षणवाला कृत्रिम रोग मानव-शरीरमें उस दवासे उत्पन्न हो ; उसकी ताकत कुछ अधिक हो, जिसमें यह प्राकृतिक रोगका स्थान ग्रहणकर, उसका समस्त प्रभाव जीवनी-

शक्तिके ऊपरसे दूर कर सके। यह सम्पूर्ण सत्य है कि कोई भी पूर्वका रोग स्वयं प्रकृतिके द्वारा भी असम रोग उत्पन्नकर आरोग्य नहीं किया जा सकता है। यह असम रोग चाहे कितना ही बलवान क्यों न हो, पर यह ठीक उसी तरह, रोगको आरोग्य नहीं कर सकता, जिस तरह असदृश या वह विपरीत दवा आरोग्य नहीं कर सकती, जो स्वस्थ मानव-शरीर-पर वैसे ही लक्षण नहीं पैदा कर सकती।

खुलासा—रोग आरोग्य कैसे होता है? (१) रोगकी शक्तिसे औषधकी शक्ति जबर्दस्त होनी चाहिये; परन्तु यह बात सबको अच्छी तरह ध्यानमें रखनी चाहिये, कि किसी जबर्दस्त शक्तिवाली दवाका प्रयोग कर देनेसे ही रोग आरोग्य न हो जायगा। क्यों नहीं हो जायगा? इसलिये नहीं होगा कि जीवनी-शक्तिपर जिन लक्षणोंवाले रोगने अपना प्रभाव डाल रखा है, उसके विपरीत लक्षणवाली या ऐसे लक्षणवाली यदि दवा पड़ गई, जो वैसे ही लक्षण प्रकट नहीं कर सकती, तो मूल रोगको वह परास्त नहीं कर सकती और न उसका स्थान ही ग्रहण कर सकती है। अतएव, रोग आरोग्य करनेके लिये (२) वैसी ही दवाका (परन्तु रोग-शक्तिसे जबर्दस्त शक्तिवाली) प्रयोग करना होगा, जिसने स्वास्थ शरीरमें वैसे ही लक्षण प्रकट किये हैं, जैसे—वर्त्तमान रोगीमें हैं। असम या विपरीत लक्षणवाली दवासे बीमारी आरोग्य नहीं हो सकती।

[३५]

असम लक्षणवाले रोग या दवाएँ अधिकतर शक्ति-सम्पन्न होनेपर ही क्या रोग आरोग्य कर सकती है?

तीन ढंगके उदाहरणोंसे यह विषय समझाया जायगा और उनपर ध्यान देनेसे मालूम होगा, कि रोगीमें जब दो असम लक्षणवाली

बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं, तब क्या होता है तथा रोगकी साधारण चिकित्सामें जब ऐसी अनुपयुक्त ऐलोपैथिक दवा पड़ती है, जो उसी ढंगके कृत्रिम लक्षण नहीं पैदा करती, जो मूल रोगमें हैं, तब क्या नतीजा निकलता है ? इससे मालूम होगा कि स्वयं प्रकृति भी शरीरमें पहलेसे वर्त्तमान किसी रोगको असम लक्षणवाली किसी बलवान बीमारीसे दूर नहीं कर सकती। जबर्दस्त-से-जबर्दस्त दवा भी यदि समान लक्षणवाली न हो, तो कोई भी बीमारी आरोग्य नहीं हो सकती।

खुलासा—यहाँ भी रोग आरोग्यके सम्बन्धका ही नियम बताया जाता है। पहले बता चुके हैं कि रोग आरोग्य करनेके लिये वैसे ही लक्षण पैदा करनेवाली मूल रोगसे अधिक शक्तिवाली दवा चाहिये। अब यही प्रमाणित करनेके लिये आगे विशेष उदाहरण देकर समझाया जाता है ; परन्तु सबके पहले हैनिमैन यह बता देना चाहते हैं, कि सम-लक्षण द्वारा ही रोग आरोग्य होता है, असम लक्षण द्वारा नहीं। आरोग्य-प्रणाली क्या है ? रोगको आरोग्य करनेके लिये एक दूसरा कृत्रिम रोग पैदा करना पड़ता है। मान लिजिये, प्रकृतिने एक ही शरीरमें दो रोग पैदा कर दिये हैं, तो क्या वह आरोग्य हो जायगा ? नहीं, इसके लिये दो बातोंकी जरूरत है :—(१) वैसे ही लक्षणवाला कृत्रिम रोग हो। (२) मूल रोगसे कृत्रिम रोग बलवान हो। अतएव, यह सिद्ध होता है कि दो रोग रहनेसे ही कोई रोग अच्छा न होगा। इसी बातको और भी खुलासा करनेके लिये कहते हैं कि मान लीजिये, अनुपयुक्त ऐलोपैथिक दवाएँ दी गयीं, तो विपरीत लक्षणवाली अनुपयुक्त ऐलोपैथिक दवाएँ दी गयीं, तो विपरीत लक्षणवाला रोग उत्पन्न न होगा। जो होगा, उसके लक्षण विपरीत ही होंगे। इसलिये मूल रोग अच्छा न होगा। चाहे वह दवा कितनी ही जबर्दस्त या शक्तिशाली क्यों न हो ; सिद्धान्त यह निकला कि सम-प्रकृतिवाली दवा ही

अरोग्यके लिये आवश्यक है। असम लक्षणवाले रोग अथवा दवा, इन दोनोंमें कोई भी मूल रोगको आरोग्य नहीं कर सकते।

[३६]

क्या शरीरमें कोई तेज बीमारी रहनेपर नयी बीमारी हो सकती है ?

१। यदि किसी एक शरीरमें दो समान लक्षणवाले रोग पैदा हो जायें और उनकी शक्ति भी समान हो या पहला कुछ अधिक बलवान हों, तो परिणाम यह होगा कि पहली बीमारी दूसरीको अपना प्रभाव न जमाने देगी। जैसे—यदि किसीको कोई सख्त पुरानी बीमारी रहे, तो शरत् ऋतुमें होनेवाले आमाशय रोगका उसपर कदापि आक्रमण न होगा और किसी महामारीका भी उसपर प्रभाव न पहुँचेगा। लैरीके कथानुसार, जिस स्थानपर शीताद (Scurvy) रोग फैला हुआ हो, वहाँ साधारण जातिके प्लेगका आक्रमण नहीं होता तथा जिन्हें एक्जिमाकी बीमारी रहती है, उनपर भी इसका प्रभाव नहीं होता। डाक्टर जेनरका कथन है कि रेकाइटिस (बालास्थि-विकृति) वाले बच्चेपर चेचकका टीका लेने (Vaccination) से कोई प्रभाव नहीं होता। डा० फान हिल्डेनब्रैण्ड (Von Hildenbrand) का कथन है, कि जिन्हें फेफड़ोंकी क्षयकी (Pulmonary consumption) बीमारी रहती है, उन्हें साधारण तेजीवाला महामारीके रूपमें फैला हुआ ज्वर कभी नहीं सताता।

खुलासा—यह पहला उदाहरण हैनिमैनने दिया है। इस उदाहरणपर ध्यान देनेसे दो बातें प्रकट हुईं। एक तो यह कि कोई दूसरा रोग शरीरपर उस अवस्थामें अपना प्रभाव नहीं जमा सकता, यदि उतना ही शक्तिशाली या उससे थोड़ा भी अधिक शक्तिवाला रोग भीतर

मौजूद हो। अब पुरानी तेज बीमारी, जो भीतर जड़ जमाये बैठी है, वह ऊपरी अन्य उत्कट रोगोंको भी अपने पाँव जमानेका अवसर नहीं देती।

[३७]

असदृश औषधका क्या परिणाम होता है ?

इसी तरह जब किसी पुराने रोगकी चिकित्सा साधारण-चिकित्सा-प्रणाली अर्थात् ऐलोपैथिक-प्रणालीसे हुई हो, तो वह बहुत दिनोंकी पुरानी बीमारी, आराम नहीं होती और ज्यों-की-त्यों अवस्थामें रह जाती है अर्थात् रोगके लक्षणोंके साथ यदि दवाका लक्षण नहीं मिलता, तो इस असदृश लक्षणवाली (बहुत तेज नहीं) दवासे बरसोंतक चिकित्सा करते रहनेपर भी, कोई लाभ नहीं होता। यह वास्तविकता चिकित्सामें नित्य-प्रति दिखाई देती है। अतएव, उदाहरण देनेकी कोई जरूरत नहीं है।

खुलासा—जो दवा स्वस्थ शरीरपर वैसे ही लक्षण प्रकट नहीं कर सकती, जो मूल रोगमें है ; तो उस दवाके प्रयोगसे रोग आरोग्य नहीं होता—यही इस सूत्रमें खुलासा बताया गया है ; बल्कि यह बीमारी उस अवस्थामें ज्यों-की-त्यों पड़ी रह जाती है, यदि दवाएँ बहुत तेज न हों। यदि ऐलोपैथिक दवाएँ बहुत तीव्र (Of violent character) दी गई हों, तो बहुत ही भयंकर, प्राणघातक अन्य बीमारियाँ उसके स्थानमें पैदा हो जायँगी ; पर जो रोग है, वह न जायगा। असदृश धीमी दवाका परिणाम होता है—रोगका अपरिवर्त्तित आकारमें पड़े रहना। तीव्र औषधका परिणाम प्राणघातक भयंकर रोग पैदा हो जाना। सारांश यह कि असम लक्षणवाली दवासे किसी भी दशामें रोग आरोग्य नहीं होता।

[३८]

नयी तेज बीमारीका आक्रमण होनेपर पुरानी असम लक्षणवाली बीमारीका क्या हाल होता है ?

२। यदि नयी भिन्न लक्षणवाली बीमारी उससे जबर्दस्त हुई ? ऐसी अवस्थामें यदि वह बीमारी, जो रोगी भोग रहा है, कमजोर है और नयी बीमारी जबर्दस्त है, तो पुरानी बीमारी निर्जीवकी तरह दबी पड़ी रहेगी और नयी बीमारीका उसपर अधिकार हो जायगा। यह अधिकार तबतक बना रहेगा, जबतक उस नयी बीमारीका समय पूरा न हो जाय या वह आरोग्य न हो जाये ; इसके बाद वह पुरानी बीमारी फिर विना आरोग्य हुए ही प्रकट हो जायगी। डा० टलपियस (Tulpius) का कथन है कि दो छोटे बच्चोंको मृगीकी बीमारी थी, पर जबसे उन्हें दाद हुइ, मृगीका दौरा आना बन्द हो गया ; परन्तु ज्योंही उनके सरके दादके उद्भेद आरोग्य हुए, त्योंही पहलेकी तरह मृगी पैदा हो गई। डा० स्काफ (Schopf) का अनुभव है कि शीताद पैदा होते ही खुजलीकी बीमारी अच्छी हो जाती है, पर शीतादके आराम होते ही खुजली फिर आ पहुँचती है। इसी तरह रोगीपर तेज मोह-ज्वर (Typhus) का आक्रकण होते ही फेफड़ोंका टी० बी० निर्जीव-सा पड़ा रहा और जैसे ही मोह-ज्वरका काल पूरा हुआ कि अपनी पूर्वावस्थामें फिर आ पहुँचा। यदि किसी क्षय रोगीमें उन्माद आरोग्य हो जाता है, तो उन्माद क्षयके सारे लक्षण हटा देता है, पर यदि उन्माद आरोग्य हो जाता है, तो तुरन्त क्षय प्रकट होकर प्राणघातक वन जाता है। जब खसरा और चेचक दोनों फैले हों और किसी बच्चेपर दोनोंका एक साथ ही आक्रमण हुआ हो, तो पहले पैदा होनेवाले खसरेको हमेशा कुछ पीछे पैदा होनेवाली चेचक दवा देती है और जबतक चेचक आरोग्य नहीं हो जाती, जबतक खसरा अपना

प्रभाव नहीं दिखा सकता। वह ज्यों-का-त्यों दबा पड़ा रहता है ; पर मैंगेटने लिखा है कि चेचकका टीका लेनेके बाद उसकी गोटियाँ, खसरा हो जानेपर, चार दिनोंतक दबी रहती हैं। इसके बाद जब खसरा आरोग्य हो जाता है, तब चेचक अपना काम शुरू करती है। यहाँतक कि चेचकके टीकेका प्रभाव छः दिनोंतक रहनेपर यदि खसरा होता है, तो टीकेका प्रदाह ज्यों-का-त्यों रहता है और जबतक खसरा अपना सात दिनोंका समय नहीं पूर्ण कर लेता, तबतक चेचककी गोटियाँ नहीं बढ़तीं (जान हण्टर)। डा० रैनी (Rainey) 'एडिनबरा मेडिकल कोमेण्टस' भाग ३, पृष्ठ ४०० पर लिखा है कि चेचकका टीका लगनेके ६ दिन बाद, जब खसरा निकल आया, तो टीकेका प्रदाह ज्यों-का-त्यों रुक गया और जब उसका ७ दिनका कोर्स पूरा हो गया, तो छोटी चेचक पुनः आ गई। जब खसरा महामारीके रूपमें फैला, तो छोटी चेचकका टीका लगनेके ४-५ दिन बाद, उसका आक्रमण अनेक व्यक्तियोंपर हुआ और जबतक उसने अपना कोर्स पूरा किया, छोटी चेचकको उभरने न दिया। उसका कोर्स पूरा होनेपर छोटी चेचक आई और नियमपूर्वक अपना समय (कोर्स) पूरा किया। सच्चा आरक्त ज्वर जो विसर्प जैसा नजर आता था और जिसके साथ गलक्षत भी आया था—चौथे दिन, गो-स्तन सीतलाके दाने निकलनेपर दब गया और जबतक गो-स्तन सीतलाने अपना कोर्स पूरा न कर लिया, उभर न सका ; परन्तु एक दूसरे अवसरपर ऐसा दिखाई दिया है कि दोनों ही रोग समान शक्तिके रहनेके कारण, आरक्त ज्वर आनेके आठवें दिन गोस्तन सीतला (Cow-pox) दब गया और उसके लाल चकत्ते तबतक गायब रहे, जबतक आरक्त ज्वर रहा। इसके बाद जब आरक्त ज्वर आरोग्य हो गया, तो गोस्तन सीतला तुरन्त पैदा हो गई और उसने अपना समय पूरा किया (जेनर)। खसरेने गो-स्तन सीतलाको दबा लिया, ८वें दिन, गो-स्तन सीतला जब पूरे जोरपर आई—तो सहसा

खसरा निकल आया, अब गो-स्तन सीतला दब गई और निष्क्रिय बन गई—और जबतक खसरेका कोर्स पूरा न हुआ—दुबारा उभर न सकी। इस हालतमें वह १६वें दिन नजर आयी, जब कि साधाणतया उसे १०वें दिन दिखाई दे जाना चाहिये था, जैसा कि डा० कोर्टमने लिखा है।

कोर्टमने ही यह भी देखा है कि खसरा होनेके बाद यदि चेचकका टीका लगवाया गया है, तो उसने उसराको दबा दिया है और टीकाके चेचकका क्रिया-काल समाप्त हो जाने बाद खसराने प्रकट होकर अपना काम किया।

मैंने स्वयं यह देखा है कि जैसे ही चेचकके टीकेका असर आया, गलेकी सूजन (गलफेड) तत्काल तिरोहित हो गई और ज्योंही उसका असर बीत गया और उसके उपद्रवस्वरूप आये लाल दाने, ज्वर तथा निचले जबड़ेकी ग्रन्थियोंकी सूजन पूर्णतः मिट गई—गलेकी सूजन पुनः आ गई और अपना ७ दिनका कोर्स पूरा किया।

ठीक ऐसा ही सभी असम लक्षणवाले रोगोंमें होता है। जबर्दस्त कमजोरको दबा देता है (यदि वे दोनों एक साथ मिलकर जटिल न बन जाये और तरुण रोगमें ऐसा बहुत कम होता है), पर वे कभी दूसरेको आरोग्य नहीं करते।

खुलासा—ऊपर लिखे उदाहरण इसीलिये दिये गये हैं, कि पाठक समझ लें कि रोग आरोग्यके लिये सम-लक्षणवाली दूसरी बीमारी पैदा होनी चाहिये, ताकि मूल रोग मिट जाये। विपरीत या असम लक्षण-वाली बीमारी एक दूसरेको आरोग्य नहीं कर सकती।

[३९]

बार-बार जुलाब तथा ऐसी ही अन्य ऐलोपैथिक दवाएँ देनेका क्या परिणाम होता है ?

प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीके चिकित्सक यह सब कुछ कितनी ही शताब्दियोंसे देखते आ रहे हैं। उन्होंने देखा है कि स्वयं प्रकृति भी नयी बीमारीसे पुरानी बीमारी, उस अवस्थामें नहीं आरोग्य कर सकती, यदि नयी बीमारी पूर्वसे शरीरमें रहनेवाला बीमारीके सम-लक्षणोंवाली नहीं है। अब इस बातपर हमलोग उनके विषयमें क्या सोचें, जब कि इतना देखनेपर भी वे लगातार ऐलोपैथिक दवाओंसे—ईश्वर ही जाने इन दवाओंमें क्या आरोग्यकर शक्तिनिहित है—पुरानी बीमारियोंका इलाज करते आ रहे हैं और जो उस रोगके लक्षणके विलकुल असम लक्षण पैदा करनेवाली होती हैं, उनसे कैसे वे रोग आरोग्य करते हैं। यद्यपि इन चिकित्सकोंने प्रकृतिका अच्छी तरह अध्ययन नहीं किया है, तथापि उनकी चिकित्साका जो दुःखद परिणाम हो रहा है, उससे तो उन्हें सीख लेना चाहता था कि वे एक अनुपयुक्त और गलत रास्तेपर अग्रसर हो रहे हैं। क्या उन्होंने यह नहीं देखा कि अपनी प्रथाके अनुसार, जब किसी पुरानी बीमारीमें उन्होंने कोई जबर्दस्त ऐलोपैथिक दवा दी, तो उससे मूल रोगके असदृश लक्षणवाला एक और नया रोग पैदा हो गया और जबतक उस दवाकी क्रिया जारी रही, तबतक प्रधान बीमारी सिर्फ रुकी और दबी रह गई और उस समय फिर ज्यों-की-त्यों अवस्थामें लौट आयी, जब रोगी शक्ति-हीन और दुर्वल हो गया तथा उसकी जीवनी-शक्तिमें ऐलोपैथिक आक्रमणोंकी अधिक सहन करनेकी शक्ति न रही। उसी तरह बार-बार तेज जुलाब देनेपर खुजली त्वचाके ऊपरसे आरोग्य हो जाती है; परन्तु इसके बाद जब रोगीमें उदरका असदृश रोग सहन करनेकी शक्ति नहीं रह जाती और वह फिर जुलाब नहीं ले सकता, तो, या तो त्वचापर खुजली पहलेकी ही तरह फिरसे निकल आती है अथवा भीतरी सोरा कुछ भयंकर लक्षणोंको धारणकर प्रकट होता है। रोगीकी मूल व्याधि तो ज्यों-की-त्यों रहती है, बल्कि साथ-ही-साथ पाचन-शक्तिका नाश और शक्ति-हीनताका भी कष्ट

भोगना पड़ता है। इसी तरह साधारण चिकित्सक पुरानी बीमारीको जड़से दूर करनेके लिये ऐसी दवा देते हैं, जिससे शरीरकी त्वचापर नकली जखम पैदा हो जायें, तो इससे भी उनका उद्देश्य सिद्ध नहीं होता ; क्योंकि त्वचाके इन जखमोंका भीतरी मूल रोगसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता, वल्कि इसे रोगके लक्षणका असम दिखावा या असदृश लक्षण समझना चाहिये ; पर बहुतसे स्थानोंपर जखम निकल आनेके कारण उसमें जो उत्तेजना होती है, वह असदृश लक्षण होनेपर भी भीतरी रोगकी अपेक्षा बहुत बलवान होता है। इसी कारणसे मूल रोग सप्ताह, दो सप्ताहतक रह जाता है ; लेकिन यह केवल दवा रहता है और वह भी सिर्फ कुछ समयके लिये और रोगीकी शक्ति दिनोंदिन क्षीण होती चली जाती है। पेचलिन (Pechlin) तथा अन्य चिकित्सकोंने देखा है कि इसी तरहके जखमोंसे कई वर्षोंतक दवा हुआ रोग फिरसे और कुछ बढ़ी हुई बीमारीके साथ फिरसे पैदा हो गया, जब वे जखम आरोग्य कर दिये गये ; परन्तु खुजलीमें जुलाब और मृगीमें दागना उतना नुकसान नहीं करता, जितना कि ऐलोपैथोंके असदृश लक्षण पैदा करनेवाली दवाएँ, कमजोरी पैदा करनेवाली चिकित्सा करनेकी प्रणाली और वे निश्चित नुस्खे, जिनमें ऐसे औषधें सम्मिलित रहते हैं, जिनकी क्रियाका उन्हें स्वयं भी ज्ञान नहीं होता और जिन्हें साधारण चिकित्सा-कालमें तथा कितने ही तरहकी बीमारियोंमें, वे प्रयोग किया करते हैं। इनसे, इनके सिवा और कुछ लाभ नहीं होता कि रोगी कमजोर होता चला जाता है, आराम हुए बिना ही कुछ दिनोंके लिये, रोग दवा या रुका रहता है, और, जब अधिक दिनोंतक, इस ढंगकी दवाका सेवन होता है, तो पुरानी बीमारीमें कुछ-न-कुछ नया रोग मिलता ही जाता है।

खुलासा—इस ३८ और ३९वें सूत्रमें यही दिखानेकी चेष्टा की गई है, कि सम-लक्षणवाली दवा ही रोगको आरोग्य कर सकती है। इसी विषयको और भी उदाहरणोंके साथ इसमें समझाया गया है।

[४०]

पुरानी बीमारीके समय यदि कोई नयी बीमारी पैदा हो जाये और उसके लक्षण असदृश रहें, तो वह आरोग्यकर हो सकती है या नहीं ?

३। अथवा नयी बीमारी, शरीरपर बहुत दिनोंतक क्रिया करनेके बाद, अन्तमें, असदृश पुरानी बीमारीसे मिल जाती है और इस तरह एक जटिल रोग पैदा कर देती है। इनमेंसे हरेक बीमारी, शरीरमें अपने-अपने योग्य स्थानपर अधिकार कर लेता है और बाकी स्थान अन्य असदृश रोगके लिये छोड़ देता है। इस तरह उपदंशके एक रोगीको सोरा या सोराके रोगीको उपदंश भी हो सकता है; परन्तु दो रोग जो आपसमें सदृश हैं, एक दूसरेको आरोग्य नहीं कर सकते। जब सोराके उद्भेद निकलनेके आरम्भ होते हैं, तो पहले तो उपदंशके कारण जननेन्द्रियका रोग गायब होता दिखाई देता है, पर उपदंश भी सोराकी भाँति बलवान रहनेके कारण समय पाकर दोनों ही मिल जाते हैं अर्थात् दोनों ही अपने-अपने योग्य स्थान चुन लेते हैं और इस तरह रोगी और भी रोग-पीड़ित तथा कष्टसाध्य बन जाता है।

जब दो असदृश नयी बीमारियाँ आपसमें मिलती हैं, जैसे चेचक और खसरेका जब सम्मिलन होता है, तो जैसे पहले कहा गया है, एक दूसरे को दबा रखती हैं; इस तरहकी कितनी ही व्यापक बीमारियाँ होती हैं, जिनमें दो असदृश नयी बीमारियाँ एक ही शरीरमें सम्मिलित हो रहती हैं। ऐसा बहुत कम होता है और ये बहुत थोड़े कालके लिये मिली रहती हैं। व्यापक रूपसे रोग फैलनेके समय, जब एक ही कालमें चेचक और खसरा दोनोंका ही जोर रहता है; तीन सौ रोगियोंमें (जिनमें इन बीमारियोंने एक दूसरेका प्रकट होना स्थगित रखा, खसरेने

चेचक होनेके २० दिन वाद, रोगीपर आक्रमण किया, चेचकने खसरा होनेके समयसे अठारह दिन वाद आक्रमण किया, अर्थात् यह आक्रमण तब हुआ, जब पहली बीमारीने अपना भोग-काल समाप्त कर लिया), डाक्टर बी० रसेलको केवल एक रोगी ऐसा मिला, जिसमें एक ही समय और एक ही शरीरमें दोनों विसदृश रोग मौजूद हों। डा० रेनीने दो लड़कियोंको खसरा और चेचक एक साथ होते देखा। डा० जे० मौरिसने अपने सम्पूर्ण चिकित्सा कालमें इस ढंगके दो ही रोगी देखे। एरसुलरके ग्रन्थोंमें भी ऐसे ही हवाले मिलते हैं, तथा, कुछ अन्य चिकित्सकोंके लेख भी यही प्रमाणित करते हैं।

जेङ्कर (Zencker) ने टीका लगाई हुई चेचक तथा खसरा और पर्पुरा नामक चर्म रोगको एक ही समय उपस्थित होते देखा।

जेनरने देखा है, कि जिस समय एक रोगीके उपदंशकी चिकित्सा पारे (Mrrcury) से हो रही थी, उस समय गो-बीजके कारण पैदा हुई चेचक भी प्रकट हुई। इन्होंने एक दूसरेके काममें, किसी तरहकी, वाधा नहीं पहुँचायी।

खुलासा—इस सूत्रका तात्पर्य यह है कि किसी एक ही रोगमें, ऐसे दो रोग पैदा हो जायें, जिनके कारण मिलते न हों, वे, शरीरके एक ही स्थानपर कदापि प्रकट न होंगे। वे अपना-अपना उपयुक्त स्थान खोज लेंगे—और दोनों ही अपना बाहरी लक्षण, अलग-अलग स्थान प्रकट करेंगे ; परन्तु ऐसा नहीं होगा कि एकने दूसरेको आरोग्य कर दिया ; क्योंकि दोनों ही सम-लक्षणवाले नहीं हैं। दो तरहकी व्याधियाँ मानव-शरीरमें उत्पन्न जरूर होती हैं ; परन्तु ऐसे उदाहरण कम मिलते हैं—यही वात इस सूत्रमें उदाहरण देकर बतायी है और बताया है कि उनका विकास पूर्व सूत्रमें बताये ढंगसे एकका कार्य-काल समाप्त होनेपर होता है। दोनोंका विकास एक साथ होते बहुत ही कम देखा गया है।

[४१]

रोगीको एकसे अधिक रोग होने, और, बहुत दिनोंतक, ऐलोपैथिक चिकित्सा करनेपर, क्या परिणाम होता है ?

जब ऐलोपैथिक ढंगसे किसी रोगकी चिकित्सा, बहुत समयतक अनुपयुक्त औषधों द्वारा की जाती है, तो, परिणाम यह होता है कि रोगीके शरीरमें, ऐसी अनेक उलझनें पैदा हो जाती हैं, जो स्वभाविक रूपसे आयी बीमारियोंमें आमतौरपर नहीं आतीं। इन अनुपयुक्त औषधोंके निरन्तर और बार-बार व्यवहारसे, स्वाभाविक रूपसे आये रोगमें, अन्य कितनी ही नयी शिकायतें आ जाती हैं, जो इन औषधोंके गुणके अनुरूप होती हैं। ये नयी शिकायतें प्रायः अधिक कष्टदायक, कष्टसाध्य और जटिल होती हैं। ये नवागन्तुक उपद्रव धीरे-धीरे पुराने रोगसे मेल बढ़ा लेते हैं और इस तरह इन नये-पुराने उपद्रवोंका संयोग अनेक प्रकारकी जटिलतायें पैदा कर देता है, जो भिन्न प्रकृतिकी होती हैं। इस तरह वे गुण-भेदके कारण एक दूसरेको दूर न कर सकीं। पुराने रोगमें एक नया, भिन्न जातिवाला और नकली रोग जब आ मिला, तो वह भी पुराना पड़ गया। इस तरह रोगीके शरीरमें एककी जगह दो बीमारियाँ आ गईं। रोगीकी दशा और खराब हो गई, चिकित्सा भी अधिक कठिन हो गई—यहाँतक कि रोग अधिकांशतया असाध्य बन जाता है। चिकित्सा-सम्बन्धी पत्रिकाओंमें, ऐसे अनेक रोगियोंके लिये परामर्श मांगे जाते हैं और उनकी हालत इस कथनकी सम्पुष्टि करती है। इनमें अधिक संख्या एक ही जैसे रोगवाले व्यक्तियोंकी होती है, जो प्रायः आतशकमें ग्रस्त होते हैं। उसके साथ साधारणतः सोरा विष (खाज-खुजली) या सुजाककी संधि पायी जाती है। इन रोगियोंको मुद्दततक और बार-बार पारदके सम्मिश्रण खिलाये गये, जो अनुपयुक्त सिद्ध हुए और रोगको दूर करनेमें विफल सिद्ध हुए,

अब रोगकी इन उलझनोंके साथ-साथ शरीरमें पारद-विष भी आया और वह भी पुराना पड़ गया। इस बीचमें यह पारद विष भी धीरे-धीरे पनपा और नयी उलझन लानेका कारण बना (इसे भी आमतौरपर आतशकका ही नाम दिया जाता है)। यदि यह सारा उपद्रव-समूह एकदम असाध्य न बन गया हो, तो, रोगीका स्वास्थ्य बहाल करना अत्यन्त कष्टसाध्य जरूरी है।

खुलासा—ऐलोपैथिक दवाएँ असदृश लक्षण पैदा करनेवाली होती हैं। इनका अधिक मात्रामें बारम्बार प्रयोग होता है, इसलिये वे असदृश लक्षणवाली एक दूसरी ही बीमारी पैदा करती हैं। उपदंश रोगमें तो पारेका इतना अपव्यवहार होता है कि उसके कारण एक दूसरी ही बीमारी पैदा हो जाती है, जो उपदंशसे मिलकर उसे असाध्य-सा बना डालती है। यह एक रोगका उदाहरण दिया गया है। अधिकांश रोगोंमें ऐसा ही होता है; क्योंकि असदृश चिकित्सा-प्रणालीका परिणाम ऐसा ही होता है। इसीलिये किसी रोगीको यदि दो रोग हों और बहुत दिनोंतक उनकी ऐलोपैथिक चिकित्सा होती रहे, तो रोग प्रायः असाध्य हो जाता है और बहुत कठिनतासे वशमें आता है।

[४२]

दो असदृश लक्षणवाली बीमारियाँ यदि किसीपर आक्रमण करें, तो क्या परिणाम होगा?

जैसा ऊपर बताया जा चुका है, प्रकृति स्वयं ही एक शरीरमें एक ही समय दो (कभी-कभी तीन) बीमारियाँ पैदा होने देती है। इस बातपर ध्यान रखना चाहिये कि यह जटिलता तब पैदा होती है, जब दो असदृश बीमारियाँ सम्मिलित होती हैं। ये प्रकृतिके चिरस्थायी नियमके अनुसार एक दूसरेको आरोग्य नहीं कर सकतीं, पर जैसा कि

देखनेमें आया है, दोनों (या तीनों) ही शरीरमें अलग-अलग रहती हैं और अपने लिये उपयुक्त स्थान चुन लेती हैं, परन्तु इनमें सादृश्य न रहनेके कारण, योंही पड़ी रहती हैं और जीवनी-शक्तिकी एकतामें किसी तरहका व्याघात पैदा नहीं करतीं।

खुलासा—ऊपर जो दृष्टान्त दिये जा चुके हैं, उनसे मालूम होता है कि यदि लक्षणोंमें समानता न हो, और दो या तीन बीमारियाँ, एक ही जीवनी-शक्तिका अवलम्बन किये रहें, तो जीवनी-शक्तिको कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकती तथा सदृश न रहनेके कारण, एक दूसरेको दूर भी नहीं कर सकतीं ; क्योंकि उनमें सादृश्य नहीं है और वे अपनी विभिन्न रूपताके कारण रोगीके शरीरको किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचा सकतीं।

[४३]

एक ही शरीरमें जब दो सम-लक्षणवाली बीमारियाँ एक ही साथ होती हैं, तब क्या परिणाम होता है ?

जब किसी शरीरमें दो सम-लक्षणवाली बीमारियाँ मिलती हैं, अर्थात् जब वर्त्तमान रोगमें उसी लक्षणवाला कोई दूसरा रोग आ मिलता है, तब कुछ दूसरा ही प्रभाव होता है। ऐसे रोगियोंमें प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि प्रकृति द्वारा किस तरह आरोग्यकी क्रिया होती है तथा रोगीको आरोग्य करनेका सबक हमें सिखाया जाता है।

खुलासा—४२वें सूत्रतक तो यह बताया गया है कि एक ही शरीरमें दो असम-लक्षणवाले रोग जब होते हैं, तो दोनों ही अपना-अपना प्रभाव दिखाते हैं तथा एक दूसरेको आरोग्य नहीं कर सकते। अब ४३वें सूत्रसे दो सम-लक्षणवाले रोग होनेका वर्णन आरम्भ हुआ। हैनिमैन कहते हैं कि जब दो समलक्षणवाले रोग एक ही शरीरमें पैदा

होते हैं, तो उनका प्रभाव दूसरा होता है, अर्थात् दोनों ही शरीरमें रह नहीं सकते। इन दोनोंमें जो अधिक ताकतवर होता है—वह दूसरेको हटाकर अपना प्रभाव जमा लेता है।

[४४]

दो सदृश बीमारियाँ एक ही शरीरमें उत्पन्न होनेपर क्या एक दूसरेको दबा रखती है, अथवा दोनों ही अपना-अपना कार्य करती रहती है ?

दो सदृश- बीमारियाँ एक ही शरीरमें एकत्र होनेपर (३६वें सूत्रके कथानुसार) एक दूसरेको क्रियामें बाधा नहीं डालतीं या [सूत्र ३८ (२) के अनुसार] एक दूसरेकी क्रिया कुछ दिनोंतक स्थगित नहीं रखती हैं, जिसमें कि नयी बीमारीका क्रिया-काल समाप्त हो जानेपर फिर पुरानी पैदा हो जाती है और अपना भोग-काल पूरा करती हैं अथवा [४०वें सूत्र (३) के अनुसार] दोनों आस-पास रहकर काम नहीं कर सकती हैं अर्थात् रोगी एक ही समय दो जटिल बीमारियोंका कष्ट नहीं भोग करता।

खुलासा—३६वें सूत्रमें बताया गया है कि यदि पुरानी बीमारी नयी बीमारीके समान ताकतवाली हो या उसकी अपेक्षा बलवान हो, तो नयी बीमारी पैदा नहीं हो सकती। ३८वें सूत्रमें यह कहा है कि यदि पुरानी बीमारी नयीकी अपेक्षा कमजोर हो, तो नयी बीमारी पुरानीकी क्रिया स्थगित कर देती है और अपना भोग-काल पहले समाप्त कर लेती है। इसके बाद पुरनी बीमारी ज्यों-की-त्यों अवस्थामें फिरसे पैदा हो जाती है ; परन्तु एकदम आरोग्य नहीं हो जाती। ४०वें सूत्रके (३) में बताया है कि नयी और पुरानी बीमारियाँ शरीरमें अपना-अपना स्थान बना लेती हैं और रोगीको दोनों ही रोगोंका कष्ट भोग करना

पड़ता है ; परन्तु यह होता है, कब ?—जब असम लक्षणवाली बीमारीका आक्रमण होता है अथवा जब दो या अधिक असम लक्षणवाली बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं ; पर यदि सम-लक्षणवाली दो बीमारियोंकी ऊपर बतायी हुई अवस्था हो अर्थात् (१) यदि पुरानीके भोग करते समय किसी वैसे ही लक्षणवाली नयी बीमारीका आक्रमण हो जाये, तो इन दोनोंमें जो जबर्दस्त होगी, वह दूसरेको जड़से आरोग्य कर देगी। (२) ऐसा नहीं होगा कि नयी बीमारी पुरानीकी क्रिया स्थगितकर अपना भोगकाल समाप्त कर ले। इसके बाद पुरानी पैदा होकर अपना भोगकाल पूरा करे या उनमें जो जबर्दस्त हो, वह कमजोरको अपनी क्रिया करनेसे रोककर अपना काम पहले करे और कमजोरको उसके हटनेपर अपना काम करना पड़े अथवा (३) दोनों ही सम-लक्षणवाले रोग आस-पास अपना प्रिय स्थान बना लें और रोगीको दोनोंकी ही तकलीफ भोगनी पड़े। ऐसा केवल असम लक्षणवाली दो बीमारियोंका एक ही शरीरपर आक्रमण करनेपर ही होता है, सम-लक्षणवालीमें नहीं।

[४५]

दो सम-लक्षणवाले रोग एक ही शरीरमें होनेपर जीवनी-शक्तिपर किसका प्रभाव अधिक होता है, नये या पुरानेका ?

विभिन्न कारणोंसे उत्पन्न, पर एक समान लक्षण और प्रभाव पैदा करनेवाले दो रोग, जब एक ही शरीरमें सम्मिलित होते हैं, तो सहजमें ही एक ही रोग दूसरेके स्थानपर अधिकार जमाकर एक ही प्रकारके लक्षण पैदा करनेकी चेष्टा करता है। होता यह है कि बलवान रोग कमजोरको हटा देता है। यह इस वजहसे कि शरीरपर जब पहलेवाले रोगसे बलवान रोगका आक्रमण होता है, तो लक्षण सादृश्य रहनेके कारण यह उसी क्षेत्रपर आक्रमण करता है, जिसमें पहलेसे वह कमजोर रोग

अधिकार जमाये हुए था। इसका परिणाम यह होता है कि पहलेवाला कमजोर फिर काम नहीं कर सकता और हट जाता है या दूसरे शब्दोंमें इसे इस तरह कह सकते हैं कि नयी सम-लक्षण-सम्पन्न, पर जबर्दस्त रोग-शक्ति रोगीके शरीरपर अपना प्रभाव जमा लेती है और इसीलिये, जीवनी-शक्ति, इस नयी तेजीके कारण कमजोर पुराने लक्षणोंको अनुभव नहीं कर सकती और वह गायब हो जाता है, वहाँ नहीं ठहरता ; क्योंकि यह भी कोई भौतिक पदार्थ नहीं था, बल्कि एक शक्ति-सम्पन्न सूक्ष्म-शक्तिके रूपमें था। इसीलिये, जीवनी-शक्तिपर केवल एक उस जबर्दस्त रोग-शक्तिका ही प्रभाव रह जाता है और वह भी थोड़े दिनोंतक रहता है।

खुलासा—चाहे किसी भी कारणसे दो तरहकी बीमारियाँ हो जायें, यदि वे दोनों एक ही तरहके रोग-लक्षण पैदा करनेवाली हों, तो यह सहजमें ही अनुमान किया जा सकता है कि उनका आक्रमण-स्थान एक ही स्थान होगा ; क्योंकि उनकी क्रिया उसी जगह हो सकेगी। अब इन दोनोंमेंसे किसी-न-किसीको आक्रमण पहले अवश्य होगा। दोनों एक ही समय आक्रमण नहीं कर सकतीं। ऐसा भी हो सकता है कि रोगी एकको पहलेसे ही भोग रहा है, दूसरेका आक्रमण पीछे हुआ। बस यही स्थान ध्यान देने योग्य है। एक रोग भीतर बैठा है—उसने अपने लक्षण प्रकट कर रखे हैं ; दूसरेने आक्रमण किया। दोनों एक ही तरहके लक्षण पैदा करनेवाले हैं। अतएव, दोनोंको एक ही स्थान चाहिये। अतएव, उसने भी उन्हीं अंगोंपर अपना प्रभाव डाला और लक्षण पैदा किये। यदि नया कमजोर है, तो उसकी दाल वहाँ बिलकुल नहीं गल सकती, पर यदि जबर्दस्त है, तो उसने अपना रोब जमा दिया। हुआ यह कि पुरानी रोग गायब हो गया, उसे जगह छोड़ देनी पड़ी। जीवनी-शक्तिको उसका अनुभव न हुआ। एक उदाहरण देखिये—दीपककी रोशनीमें काम करते-करते जब सबेरा हो

जाता है और सूर्य-रश्मि छाती है, उस समय आँखोंपरसे उस दीयेकी ज्योतिका प्रभाव बिलकुल हट जाता है और छा जाता है—सूर्य-किरणोंका प्रभाव; क्योंकि सूर्य-किरणोंकी रोशनी दीपककी रोशनीसे अधिक जबर्दस्त होती है। ठीक यही अवस्था दो सम-लक्षणाले रोग आनेपर भी होती है, और, जीवनी-शक्तिपर केवल एकका ही प्रभाव पड़ता है।

[४६]

स्वाभाविक बीमारियाँ क्या होमियोपैथिक ढंगसे आरोग्य हुई है ?

प्रकृति द्वारा सदृश-विधान मतसे (होमियोपैथिक प्रणालीसे) उसी लक्षणवाले रोग पैदाकर रोग आरोग्य होनेके बहुतसे उदाहरण दिये जा सकते हैं, परन्तु हमारा उद्देश्य निःसंशय और स्थिर नियम ग्रहण करना है। इसीलिये, उदाहरणमें हम वैसी ही चन्द बीमारियाँ लेंगे, जो वास्तवमें वैसी हैं, जो एक ही प्रकारके रोग-बीजसे उत्पन्न होती हैं और इसीलिये विशेष-विशेष नामोंसे उल्लेख होने योग्य हैं।

इन सबमें नाना प्रकारके कुलक्षण मिली भयंकर बीमारी चेचक सर्वश्रेष्ठ है। इस रोगने सम-लक्षणवाली कितनी ही बीमारियाँ दूर और आरोग्य की हैं।

चेचक रोगमें प्रायः ही आँखोंका उग्र प्रदाह, यहाँतक कि कभी-कभी अन्धापन भी पैदा हो जाता है। अब देखिये कि—डा० डिजोटो (Dezoteux) और लिराय (Leroy) ने पुराने चक्षु-प्रदाहके रोगीको चेचकके बीजसे स्थायी रोग आरोग्य कर दिये थे।

क्लीन (Klein) का कथन है कि माथेके दबे हुए जखम (Suppressed scald-head) की वजहसे पैदा हुई २ सालकी दृष्टिहीनता गो-बीजसे एकदम आरोग्य हो गई थी।

चेचक कितनी बार बहरापन और श्वास-कष्ट पैदा करती है। डाक्टर जे० एफ० क्लास (Dr. J. F. Closs) का कथन है कि जब यह अपनी उन्नतिकी चरम सीमापर पहुँचती है, तो इन दोनों पुराने रोगोंको भगा देती है।

अण्डकोषका बेहतर बढ़ जाना चेचकका एक आम लक्षण है। डा० क्लीनने चोटके कारण उत्पन्न बायीं ओरका एक कड़ापन लिये कठिन अण्डकोष-प्रदाहको, सम-चिकित्सा-प्रणालीके आधारपर, चेचकसे आरोग्य होते देखा है। एक दूसरे चिकित्सकने इस सिद्धान्तपर, अण्डकोषकी सूजनको अच्छा होते देखा है।

आँतोंका आमाशय रोग चेचकका एक बहुत ही कष्टप्रद लक्षण है। डा० वेण्टने देखा कि एक रोगीका आमाशय रोग चेचक होनेपर आरोग्य हो गया।

टीका लेनेके बाद चेचक होनेपर सदृश और अधिकतर बलवान होनेके कारण टीकेके जखमको वह बढ़ने नहीं देता और एकदम सुखा देता है। दूसरी ओर यदि टीका भरपूर निकल आता है, तो अकसर चेचकको दबाता और हलका कर देता है। डा० (Murry) तथा अन्यान्य चिकित्सकोंका यही मत है ?

गो-बीजसे चेचकका टीका लेनेपर, चेचकसे रक्षा होनेके सिवा एक तरहका चर्म-रोग पैदा होता है। उससे एक दूसरी तरहके छोटे-छोटे सूखे (कभी-कभी बड़े और पीपभरे), चारों ओर लाली धारण किये फोड़े, गोल लाल चिह्नोंके साथ निकलते हैं। कितने ही बच्चोंको, इस तरहके फोड़े—गो-बीजके टीकेका जखम लाल हो जानेके बहुत दिन पहले या बादमें निकलते हैं ; इनमें बहुत खुजली होती है और कई दिन बाद ही ये गायब हो जाते हैं ; पर त्वचापर छोटे-छोटे लाल और कड़े दाग रह जाते हैं। बच्चोंका बहुत दिनोंतक स्थायी इस तरहका कष्ट-

दायक चर्म-रोग, सम-लक्षण रहनेकी वजहसे टीका उभर आनेके बाद, एकदम आराम हो जाते कितनों ही ने देखा है।

बाँहकी सूजन टीकाका एक विचित्र लक्षण है। इसीलिये, टीका लेने बाद, एक आदमीका प्रायः अर्द्ध-पक्षाघातग्रस्तकी तरह फूला हुआ बाँह आरोग्य हो गया था।

गो-बीजका टीका लेने बाद जो बुखार होता है, वह उस समय होता है, जब टीका लेनेकी जगह लाल घेरा बनने लगता है। इस ज्वरने होमियोपैथिक-प्रणालीसे दो मनुष्योंका सविराम ज्वर आरोग्य कर दिया। छोटे हार्डेज (Hardege) ने ऐसी ही रिपोर्ट दी और हण्टरकी इस बातको सिद्ध किया कि दो ज्वर (सदृश-रोग) एक ही शरीरमें नहीं रह सकते।

खसरेकी खाँसी और बुखार बहुत कुछ हूप खाँसीसे मिलता है। वासक्युलनने देखा है कि एक स्थानमें जहाँ हूप खाँसी और खसरा दोनों ही जोरसे फैले हुए थे; वहाँ जिन्हें खसरा निकल आया, उन्हें हूप खाँसी न हुई। यदि खसरेके साथ, हूप खाँसीका केवल आंशिक सादृश्य न रहता अर्थात् यदि हूप खाँसीमें भी खसरेकी भाँति ही त्वचापर उद्भेद निकलते, तो उस हूप खाँसीसे भरे बहुव्यापक रोगाक्रान्त स्थानमें तथा अन्य स्थानोंमें खसरेसे हूप खाँसी बन्द हो जाती। जो, हो, ऐसा दिखाई देता है कि खसरेने बहुत जगह हूप खाँसीको रोका है।

पर यदि खसरा अपने त्वचाके उद्भेदके प्रधान लक्षणके अनुसार किसी रोगसे सम्मिलित हो जाता है, तो निश्चय ही सम-लक्षणके अनुसार, उसे आरोग्य कर देता है। डा० कार्टूम (Kortum) ने देखा है कि खसरा होनेके बाद, एक मनुष्यका पुराना चर्म-रोग सम-लक्षणके अनुसार आरोग्य हो गया था। एक मनुष्यको छः बरसोंका पुराना मुँह, गर्दन और बाँहका चर्म-रोग था। उसमें बहुत जलन होती थी और प्रत्येक ऋतु परिवर्त्तनके समय, यह बढ़ जाता था।

खसरे होनेके बाद, ऐसा हुआ कि ये सभी उद्भेद, चर्मके ऊपरी भागमें फूल उठनेकी तरह हो गये, तथा, खसरा आरोग्य होनेके बाद, यह चर्म-रोग भी आरोग्य हो गया और फिर कभी नहीं हुआ।

खुलासा—ऊपर दिये हुए उदाहरण सम-लक्षणकी उपयोगिता प्रमाणित करनेके लिये दिये गये हैं। इसपर ध्यान देनेसे ही, मालूम होगा कि दो सम-लक्षणवाली व्याधियाँ, किसी शरीरमें, यदि प्रकट हो जाती हैं, तो, दोनोंमें जो जबर्दस्त होती है, वह कमजोरको आरोग्य कर देती है। यदि थोड़ी सदृशता रहती है, तो, जितने अंशमें सादृश्य रहता है, उतना ही अंश आरोग्य होता है, और ऐसा भी हो जाता है कि होती ही नहीं; परन्तु इन उदाहरणोंके देनेका तात्पर्य यह है कि प्रकृति इसी ढंगसे स्वयं रोग आरोग्य करती है। अतएव, चिकित्सक भी जबतक यह प्रणाली नहीं अपनावेंगे, तबतक वे रोग आरोग्य न कर सकेंगे।

[४७]

इन उदाहरणोंसे क्या शिक्षा मिलती है ?

प्राकृतिक नियमके अनुसार, किस प्रणालीसे कृत्रिम रोग पैदाकर रोग जड़से दूर करना चाहिये; इसकी शिक्षा देनेके लिये ऊपर लिखे उदाहरणोंकी अपेक्षा सरल तथा विश्वास योग्य उदाहरण और हो नहीं सकते।

खुलासा—ऊपरके उदाहरणोंसे यह मालूम हुआ कि चेचक लोगोंको अन्धा बना देती है, इसलिये वह अन्धापन दूर भी कर देती है। इसी तरह चेचकमें आमाशय होनेका लक्षण है। अतएव, उससे आमाशय रोग आरोग्य हो गया। प्रधान-प्रधान चिकित्सकोंने इन बातोंको देखकर यह निष्कर्ष निकाला कि प्रकृतिकी रोग आरोग्य करनेकी यही

प्रणाली है। जिस लक्षणवाला रोग रोगी भोग रहा हो, उसी लक्षणका दूसरा रोग पैदाकर वह रोग आरोग्य करती है। महात्मा हैनिमैनने इस विषयको अध्ययनकर यही स्थिर किया कि रोग आरोग्य करनेकी यही प्रणाली है कि मूल रोग जिन लक्षणोंवाला हो, उन्हीं लक्षणोंका नकली रोग पैदा कर दिया जाये, और उस रोगसे जबर्दस्त—बलवान पैदा किया जाये, सो बस रोग आरोग्य हो जायगा। यही शिक्षा इन उदाहरणोंसे प्राप्त होती है।

[४८]

ऊपर लिखे उदाहरणोंसे और क्या प्रकट होता है ?

ऊपर लिखे उदाहरणोंसे यह भी प्रकट होता है कि प्रकृति द्वारा अथवा चिकित्सककी चिकित्सामें निपुर्णता द्वारा, ऐसा एक भी उदाहरण नहीं प्राप्त होता, जिसमें किसी एक बीमारीने, किसी दूसरी बीमारीको, असदृश लक्षणों द्वारा दूर किया हो, चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो। बल्कि जब आरोग्य हुआ है, तब प्रकृतिके अविनश्वर और अपरिवर्त्तनशील **इसी नियमके अनुसार कि कुछ बलवान और सम-लक्षणवाले रोग** द्वारा ही पूर्वका कोई रोग आरोग्य किया जा सकता है। इसके विपरीत और कोई भी नियम नहीं मिलता।

खुलासा—ऊपर इतने उदाहरण देनेका खास मतलब था—रोग आरोग्य करनेकी प्रणाली बताना। प्रणालियाँ दो हैं—एक-सम-लक्षण-सम्पन्न कुछ जबर्दस्त रोग पैदाकर, मूल रोगको हटाना। दूसरा असम लक्षण-सम्पन्न रोग पैदाकर रोगको दूर करना। पहले सूत्र ३६ से ३८ तकसे, यह प्रमाणित हो गया कि असम लक्षणवाले रोग, चाहे कितने ही जबर्दस्त क्यों न पैदा हों, मूल रोगको दूर नहीं कर सकते। अतएव, रोग दूर करनेकी केवल एक ही प्रणाली रह जाती है अर्थात् मूल रोग

जिस लक्षणवाला वर्त्तमान हो, उसी लक्षणवाला यदि कृत्रिम और मूल रोगसे कुछ शक्तिशाली रोग शरीरमें पैदाकर दिया जाये, तो, मूल बीमारी आरोग्य हो जायगी। यही वह प्रकृतिका अपरिवर्त्तनीय आरोग्य नियम है।

[४९]

इसके अधिक उदाहरण क्यों नहीं मिलते ?

स्वाभाविक सम-लक्षणसे आरोग्य होनेके और भी अधिक उदाहरण मिलते, यदि चिकित्सकगण इस विषयपर अधिक दृष्टि रखते। दूसरी बात यह है कि सम लक्षण-सम्पन्न प्राकृतिक रोग, प्रकृति बहुत कम उत्पन्न करती है।

खुलासा—पर्यवेक्षक अर्थात् चिकित्सकोंके ध्यानमें ही यह बात साधारणतः नहो आती थी, कि प्रकृतिकी रोग आरोग्य करनेवाली प्रणाली यही है। हमलोगोंकी भी तो यही दशा है। ऐलोपैथी द्वारा परित्यक्त कितने ही असाध्य रोगियोंको होमियोपैथी चिकित्सा—इस सम-लक्षणवाली चिकित्सासे, आरोग्य होते देखकर भी तो विश्वास नहीं जमता। इसका कारण यह है कि बहुत दिनोंसे वही चिकित्सा-प्रणाली देखते रहनेके कारण, संस्कार वैसा ही जम गया है। इसी कारणसे चिकित्सकोंने भी उधर ध्यान न दिया। अतएव, इसके बहुत अधिक उदाहरण संग्रह न हो सके।

दूसरी बात यह है कि प्रकृति सम-लक्षणवाली चीजें बहुत कम, नहींके समान उत्पन्न करती है। एकसे दूसरेमें कुछ-न-कुछ प्रभेद रहता ही है। इसके वीपरीत जो होता है, वह बहुत कम होता है। इसीलिये, प्रकृति ऐसे रोगी भी कम पैदा करती है, जिसपर एक लक्षण-वाली दो बीमारियोंको आक्रमण हो। इस वजहसे भी इस ढंगका

प्रमाण कम मिलता है, परन्तु दूरदर्शी महानुभावोंके लिये जितना मिल जाता है, उतनेसे ही उनके ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं और वे एक सिद्धान्त बनाकर परीक्षा आरम्भ करते हैं और स्थिर तथा सत्य प्रमाणित होनेपर ग्रहण कर लेते हैं।

[५०]

प्राकृतिक रोग द्वारा रोग आरोग्य होनेमें कैसी बाधायें हैं ?

जैसा हमलोग देखते हैं, शक्तिशाली प्रकृतिके अधीन स्वाभाविक रोग द्वारा, होमियोपैथिक अर्थात् सदृश मतसे रोग पैदाकर दूर करनेके उपाय (खुजली, खसरा, चेचक प्रभृति रोगोंके सिवा और) बहुत कम हैं ; परन्तु इनसे रोग दूर करनेकी व्यवस्था, जीवनके लिये, मूल रोगसे कहीं अधिक भयंकर है। इसके अलावा, इन सब भयंकर बीमारियोंसे यदि कोई रोग दूर होता भी है, तो फिर इन्हें दूर करनेके लिये भी चिकित्सा करनी पड़ती है। इस तरह सदृश लक्षण पैदा करनेवाली औषधके रूपमें इनका व्यवहार अत्यन्त कठिन, अनिश्चित और खतरनाक है। फिर ऐसी कितनी बीमारियाँ हैं, जो मनुष्यको सताती हों और खसरा, चेचक या खारिश उनके लिये समौषध सिद्ध होती हों। इसलिये, प्रकृतिके इस मार्गका अनुसरण करते हुए, यह कहना होगा कि ऐसी बीमारियाँ बहुत ही कम हैं, जिनकी चिकित्सा ऐसी अनिश्चित और जोखिममें डालनेवाली, समौषधों (खसरा, चेचक आदि बीमारियों) द्वारा की जा सकती है। इन औषधों द्वारा ऐसे रोगोंकी चिकित्सा करना अत्यन्त कठिन है और खतरेसे खाली नहीं है। फिर एक और कठिनाई यह है कि स्थितिके अनुसार, इस रोगोत्पादक औषधियोंकी मात्रामें, कमी नहीं की जा सकती—जैसा कि हम अपनी

बनायी हुई साधारण दवाओंकी दशामें कर सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी पुरानी और मिलती-जुलती बीमारी द्वारा आक्रान्त हो, उसे वह सारी खतरनाक और उकता देनेवाली बीमारी भुगतने पड़ेगी अर्थात् उसे खसरा, चेचक या खारिश भुगतनी होगी और फिर पहला रोग मिट जानेपर इन्हे दूर करना होगा। इतना होनेपर भी, हम सम-चिकित्सा द्वारा आरोग्य होनेके आश्चर्यजनक उदाहरण दे सकते हैं, जो भाग्यकी अनुकूलतासे देखनेमें आये। इसके साथ ही, इन उदाहरणोंसे हमें प्रकृतिके महान और एकमात्र चिकित्सा-विधानकी श्रेष्ठताके असंख्या अकाट्य प्रमाण मिलते हैं।

लक्षणोंके आधारपर चिकित्सा करना ही सम-चिकित्सा है।

खुलासा—ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं, वे ऐसे हैं, जिनमें चेचक, खसरा वगैरहसे रोग आरोग्य हुए हैं, पर ये सब बीमारियाँ स्वयं भी बहुत भयंकर और जान ले लेनेवाली हैं ; अतएव इनपर निर्भर नहीं रहा जा सकता। दूसरी बात यह है कि इनको आरोग्य करनेके लिये फिर इलाज करना पड़ता है और जीवनका भय बना रहता है। इसके अलावा, यदि यह मान भी लिया जाये कि इनसे रोग आरोग्य होते हैं, परन्तु मानव-जातिमें जितनी बीमारियाँ फैली रहती हैं, उनमें अधिकांश ऐसी नहीं हैं, जो इस स्वाभाविक रोग-आरोग्य-सिद्धान्तके अन्तर्गत आ सकें। प्रकृति सदृश-विधानके अनुसार, बहुत कम रोग पैदा करती है। ये सब ऐसी कठिनाइयाँ हैं, जिनपर ध्यान देनेसे मालूम होता है कि रोग आरोग्य करनेके लिये प्रकृति स्वाभाविक रोग बहुत कम पैदा करती है, और, जो पैदा करती भी है, वह इसी तरहके भयंकर, घातक और जिनपर मानव नियन्त्रण नहीं कर पाता। अतएव, उनपर निर्भर नहीं किया जा सकता। ये सब बाधायें हैं ; परन्तु उनको देखकर, यह

निश्चय किया जा सकता है, कि रोग आरोग्य करनेका असली और प्राकृतिक तरीका क्या है ?

[५१]

दवासे रोग आरोग्य करनेमें क्या सुविधायें हैं ?

ऊपर लिखी चिकित्सा-प्रणालीको समझनेके लिये जो उदाहरण वहाँ दिये गये है, वे, इस विषयके निरूपणार्थ, बुद्धिमानोंके लिये यथेष्ट हैं। अब दूसरी ओर देखिये, तो मालूम होगा कि भाग्यवश हो जानेवाले, प्राकृतिक कार्योंपर मानवको क्या सुविधा प्राप्त है। प्रकृतिने हजारों प्रकारकी सम-लक्षणपूर्ण जड़ी-बूटियाँ तथा भेषज पदार्थ पृथ्वीमें चारों ओर पैदा कर रखे हैं, ताकि मानव उन्हें व्यवहार करके पीड़ित भाइयोंको राहत पहुँचाये। कल्पना-साध्य या कल्पनातीत सभी प्रकारके रोगोंको ये पैदा कर सकती हैं और इसी वजहसे सम-लक्षण नियमके अनुसार हजारों प्रकारकी व्याधियोंसे इनका प्रयोग हो सकता है। ये सब भेषज-पदार्थ, जब रोग-ग्रस्त जीवनी-शक्तिपर अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार सदृश लक्षण पैदा करते हैं, तब प्राकृतिक रोग स्वयं ही दूर हो जाते हैं और इन दवाओंके कारण पैदा हुआ रोगको दूर करनेके लिये भी कोई चिकित्सा नहीं करनी पड़ती ; पर यदि किसी प्राकृतिक व्याधिसे रोग दूर होता है, तो उस व्याधिको दूर करनेके लिये भी इलाज करना पड़ता है। औषधके कारण पैदा हुए रोगको दूर करनेके लिये इलाज नहीं करना पड़ता। इसका कारण यह है कि चिकित्सक अपने क्रम-विभाजन और शक्तिकरण द्वारा मात्राको खूब कम कर देनेपर भी दवाकी भीतरी क्रियाको इस तरह बढ़ा सकते हैं कि उससे रोग दूर करनेके लिये ठीक जितनी नकली बीमारी पैदा करना आवश्यक होता है ठीक उतनी ही, बल्कि कुछ

जबर्दस्त पैदा करते हैं और इस तरह चिकित्सामें सफलता प्राप्त किया करते हैं। अतएव, आरोग्यके इस अपरिवर्त्तनीय नियमके अनुसार कोई बहुत पुरानी दुरारोग्य बीमारीको भी जड़से आरोग्य करनेके लिये शरीरपर भयंकर रूपसे आक्रमण नहीं करना पड़ता। इस प्रथाके अनुसार बड़ी सरलतासे, अज्ञात भावसे और तेजीसे यंत्रणादायक स्वाभाविक व्याधि दूर होकर पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त हो जाता है।

खुलासा—५०वें सूत्रमें बताया जा चुका है कि प्रकृति, किस तरह रोगको आरोग्य करती है; परन्तु उसके उदाहरण कम मिलते हैं। यह है—स्वाभाविक रोगसे रोगका आरोग्य होना; परन्तु इसमें खतरा है। एक तो यह कि प्रकृति द्वारा जो दूसरा रोग पैदा किया जाता है, वह उचित मात्राके अनुसार नहीं होता, बहुत वेगवान, भयंकर और विपद्‌जनक आक्रमण होता है। तीसरे; उस रोगको भी आरोग्य करनेके लिये चिकित्सा करनी पड़ती है। ये तीनों खराबियाँ सामने आती हैं; परन्तु प्रकृतिने हमलोगोंको, इस नियमका पालन करनेके लिये सुविधा प्रदान कर रखी है, अर्थात् हजारों, लाखोंकी तादादमें अपनी सृष्टिभरमें, ऐसे भेषज पैदा कर दिये हैं, जिनमें नाना प्रकारके रोग पैदा कर देनेकी शक्तियाँ हैं। अब यदि इनका हमें ज्ञान रहे, तो हमलोग इस ढंगके भेषजका प्रयोग कर सकते हैं, जिसमें रोगीके रोगके अनुसार लक्षणवाले रोग पैदा करनेकी शक्ति हो। इससे तीन लाभ हैं—(१) चिकित्सक मूल रोगकी तेजी देखकर उससे कुछ ही जबर्दस्त, पर मात्रामें कम औषधका प्रयोग करेगा। (२) इससे जो सम-लक्षणवाला रोग पैदा होगा, वह औषधसे उत्पन्न कृत्रिम होगा; और इसीलिये (३) उसको आरोग्य करनेके लिये इलाज न करना पड़ेगा। इस तरह भयंकरता, विपत्ति तथा कष्टोंसे भी छुटकारा मिलेगा और रोग भी निरापद ढंगसे और शीघ्र आरोग्य हो जायगा।

[५२]

रोग आरोग्य करनेके क्या तरीके हैं? एक ही चिकित्सक किसी रोगीकी सदृश और किसीकी असदृश-विधानसे चिकित्सा कर सकता है या नहीं?

रोग आरोग्यके दो प्रधान तरीके हैं। एक होमियोपैथिक या सदृश-विधान, जिसका आधार प्रकृतिका अध्ययन, सावधानतापूर्वक परीक्षा और विशुद्ध अनुभव है (इस तरीकेका पहले प्रयोग नहीं हुआ और दूसरा होट्रोपैथिक या ऐलोपैथिक (असदृश-विधान) है। एकसे दूसरेको बाधा प्राप्त होती है और केवल वे ही—जो दोनोंको नहीं जानते, यह भ्रांत धारणा कर सकते हैं कि वे कभी आपसमें एक दूसरेकी ओर अग्रसर हो सकते हैं, यहाँतक कि मिल भी जा सकते हैं और वे ही रोगीकी इच्छाके अनुसार कभी ऐलोपैथिक और कभी होमियोपैथिक ढंगसे चिकित्साकर उपहासास्पद बन सकते हैं। इस चिकित्सा-प्रथाको भगवद्दत्त होमियोपैथीके विरुद्ध अपराधपूर्ण विद्रोह कहा जा सकता है।

खुलासा—ऐलोपैथिक या असदृश चिकित्सा-प्रणाली बहुत पहलेसे प्रचलित है। यह अनुभव करनेपर कि इससे रोगी आरोग्य नहीं होते, हैनिमैनने इस सम-लक्षण-सम्पन्न चिकित्सा-प्रणालीका आविष्कार किया। अतएव, रोग आरोग्यके दो तरीके हुए (शायद आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणालीकी उन्हें खबर न थी)। यह चिकित्सा-प्रणाली हैनिमैनने प्रकृतिकी आरोग्यकारिणी प्रणालीका अध्ययनकर ईजाद की थी। अतएव, उनका कथन है कि यही एक प्रणाली है, जिसके द्वारा रोगी रोगसे सर्वथा मुक्त हो जाते हैं। ये दोनों ही प्रणालियाँ विपरीत हैं। एकमें वही दवा दी जाती है, जो वैसा ही लक्षण पैदा कर सकती है, जैसा मूल रोगमें

है। दूसरीमें वह जिसमें असदृश या विपरीत चिकित्सा होती है। अतएव, दोनों ही एक दूसरेके विरुद्ध हैं। अब यदि कोई चिकित्सक, किसी रोगीकी इच्छानुसार, उसकी सदृश और असदृश दोनों ही विधानोंसे चिकित्सा करे, तो उसका यही परीणाम होगा कि रोगी रोगसे छूटकारा नहीं पायगा और चिकित्सक भी बदनाम होगा।

[५३]

वास्तविक आरोग्य कैसे होता है ?

रोगीको किसी प्रकारका कष्ट पहुँचाये बिना और सच्चा इलाज केवल सम-लक्षण-सम्पन्न चिकित्सा-पद्धति (होमियोपैथी) द्वारा ही हो सकता है, जिसे हमने अनुभव, परीक्षण और जाँच-पड़तालके बाद (सूत्र ७—२५) प्राप्त किया है। निःसन्देह रोगोंको दूर करनेकी यही एकमात्र और सही कला है, जो रोगको शीघ्रतम पूरे निश्चयके साथ और सदाके लिये दूर कर देती है। कारण यह है कि यह कला प्रकृतिके अटल, नित्य और बेखता कानूनपर आश्रित है।

शुद्ध होमियोपैथिक आरोग्यदायिनी कला ही सच्ची प्रणाली है, जिससे मनुष्यों द्वारा आरोग्य सम्भव है। यह आरोग्यकी सबसे सीधी और सरल प्रणाली और उतनी ही निश्चित आरोग्यदायिनी है, जितना यह निश्चित है कि दो विन्दुओंके बीचमें रेखा खींचनेपर वह सरल रेखाके सिवा दूसरी हो ही नहीं सकती।

खुलासा—यहाँ निर्भीक भावसे हैनिमैनने अपने मतका समर्थन किया है कि होमियोपैथीके सिवा ऐसी कोई दूसरी प्रणाली ही नहीं है, जिससे शीघ्रातिशीघ्र, निश्चत रूपसे और सदाके लिये, रोग जड़से आराम हो जाये।

[५४]

अन्य चिकित्सा-प्रणालियोंका आधार क्या है ?

ऐलोपैथिक चिकित्सा द्वारा रोगके विरुद्ध बहुत-सी चीजोंका प्रयोग होता है ; परन्तु साधारणतः अनुपयुक्त (Alloea) पदार्थोंका ही विशेष और बहुत समयसे नाना रूपसे व्यवहार होते हैं। ये पद्धतियाँ कहलाती हैं। इनमेंसे प्रत्येक पद्धति समय-समयपर, एकके बाद एक आती रही है, उनमें आपसमें भारी प्रभेद रहा है और उनमेंसे हरेक पद्धति अपने लिये विज्ञान-सम्मत पद्धति होनेका दावा और दंभ करती रही।

ऐसी पद्धतिका प्रत्येक आविष्कर्त्ता, अपने सम्बन्धमें यह गर्वोक्ति करता रहा है कि उसने स्वस्थ और अस्वस्थ दोनों प्रकारके जीवनके भीतरी रहस्योंको खूब अच्छी तरह जाँच और समझ लिया है और उसके अनुसार ही व्यवस्था-पत्र लिखता था। कौन-सा दूषित पदार्थ[१] रोगीके शरीरसे निकालना होगा तथा किस उपायसे निकालकर रोगीको स्वस्थ अवस्थामें लाना होगा—ये सभी कार्य अपनी इच्छानुसार और खोखले स्वाभिमानवश, ईमानदारीके साथ प्रकृतिपर आशंका किये विना और परीक्षण किये विना ही करते हैं। रोगोंके बारेमें यह समय लिया गया था कि वे कुछ ऐसी हालतें हैं, जो बार-बार उसी रूपमें प्रकट होती रहती हैं। अधिकांश चिकित्सा-पद्धतियोंने, अपने-अपने ढंगसे स्वकल्पित रोग-चित्रोंके नाल रखे और उनका श्रेणी-विभाजन किया। औषधोंके गुणोंके बारेमें भी कुछ ऐसी ही धारणा बना ली गयी कि वे असुक-असुक असाधारण स्थिति (रोग) को दूर करती है [इसी आधारपर अनेक निघण्टु (मेटेरिया-मेडिका) लिखे गये]।

---

१. अभी कुछ समय पहलेतक यही समझा जाता था कि रोगीके शरीरमें मानव स्वास्थ्यके लिये हानिकर पदार्थ है, उसे निकाल देना चाहिये, क्योंकि तबतक औषधोंके प्रभावकी विद्युत गतिको पहचाना नहीं था।

खुलासा—ऐलोपैथिक चिकित्साके पृष्ठपोषकोंका दल कुछ-न-कुछ खोज बराबर ही किया करता है, और एकके बाद दूसरी, इस तरह एक-न-एक, चिकित्सा-पद्धतिका नित्य-प्रति आविष्कार हुआ करता है। सभीका कहना है कि हमने प्रकृतिकी भीतरी-बाहरी समस्त अवस्थाओंकी जाँचकर यह सिद्धान्त स्थिर किया है; परन्तु हैनिमैन कहते हैं कि वह सब भ्रम है, क्योंकि सिद्धान्त निरूपण और अन्वेषण अनुमानके बलपर नहीं हुआ करता है। अभीतक तो उनका ध्यान ही इस बातपर न गया था कि रोग एक शक्ति-सम्पन्न पदार्थ है। वे तो इसे केवल भौतिक पदार्थ समझ रहे थे (सूत्र २)। अतएव, प्रकृतिकी क्रियातक तो उनकी पहुँच हुई ही नहीं।

[५५]

ऐलोपैथी द्वारा उपकार न होते रहनेपर भी यह चिकित्सा-प्रणाली अबतक बन्द क्यों न हुई ?

जल्द ही सर्वसाधारणकी समझमें आ गया कि इन पद्धतियों और तरीकोंके अनुसार औषध प्रयोग रोगियोंका कष्ट बढ़ गया और फैल गया। यदि इन औषधियोंसे समय-समयपर थोड़ी देरके लिये जो लाभ हो जाता है, वह न होता और तुरन्त रोगीको कुछ आराम न मिल जाता, तो बहुत दिन पहले ही सब ऐलोपैथिक चिकित्सकोंकी उपेक्षा हो जाती। इस क्षण-स्थायी फायदेने ही उनकी मान-रक्षा की है।

खुलासा—भूमिका पढ़ने तथा आगेके सूत्रोंपर ध्यान देनेवालोंसे यह बात छिपी नहीं है कि हैनिमैनके मतानुसार ऐलोपैथिक चिकित्सा असदृश चिकित्सा है और इससे क्षणिक लाभ होता है, परन्तु रोग दबकर रह जाता है, पूर्ण आरोग्य नहीं होता अथवा अधिक गहरा परिवर्त्तन आ जाता है। इसी क्षणिक आरोग्यको, आरोग्य समझकर, रोगी इस

चिकित्साके मोहमें पड़े रहते हैं। यदि यह न होता, तो न जाने, कितनी देर पहले, लोग ऐलोपैथिक चिकित्साको त्याग देते।

[५६]

विपरीत चिकित्सा-प्रणाली क्या है?

रोगका क्षणिक रूपसे शमन करनेवाली इस पद्धति (ऐण्टीपैथी, इनेण्टीपैथी) के अनुसार, जिसका प्रचार डा० गैलेनने, आजसे १७०० वर्ष पहले, "विपरीत कम" के सिद्धान्तके आधारपर किया था, चिकित्सा करनेवाले, आजतक, लोगोंका विश्वासपात्र बननेकी आशा करते रहे, जब कि वे रोगियोंको क्षणिक आराम पहुँचाकर, उनसे छल करते रहे। परन्तु अनुभव और परिणामसे हम देख चुके हैं कि यह चिकित्सा-पद्धति मौलिक रूपमें हानिकर है और इससे कोई लाभ नहीं पहुँचा। निश्चय ही ऐलोपैथी एकमात्र ऐसी चिकित्सा-पद्धति है, जिसका प्राकृतिक रोगके परिणामस्वरूप आये उपद्रवोंसे दूरका भी वास्ता नहीं है। फिर उसका सम्बन्ध क्या है? केवल मात्रा एक सत्य। और वह यह कि हमें इसका सावधानीके साथ त्याग कर देना चाहिये बशर्ते कि हम पुराने रोग द्वारा आक्रान्त रोगीको धोखा न दें, यह उससे दिल्लगी करना है।[1]

---

१. आइसोपैथी नामधारी दवाके प्रयोगकी एक और भी प्रथा निकली है अर्थात् किसी रोगको उसी संक्रामक रोगके बीजसे आरोग्य करना। यही इसका सिद्धान्त है। यदि इसे मान भी लिया जाये तो यह मालूम होता है कि यह रोग-बीज उच्च-शक्तिकृत औषधके रूपमें दिया जाता है। इसी वजहसे उसका परिवर्त्तित अवस्थामें प्रयोग होता है और इस तरह एक सदृशसे दूसरे सदृशमें रुकावट डालकर ही आरोग्य होता है।

उसी रोगकी शक्तिसे उसको आरोग्य करनेकी कोशिश करना, समस्त मानव अभिज्ञता और मानव बुद्धिका खण्डन करना हैं। आइसोपैथीके सर्वप्रथम आविष्कार करनेवालेने शायद मनुष्योंको गो-बीचके टीकेसे, जिससे कि भविष्यमें चेचक रुक

खुलासा—सदृश-चिकित्सा होमियोपैथिक है—असदृश चिकित्सा ऐलोपैथिक है। इसीका नाम एण्टिपैथी भी हैनिमैनने रखा है। रखा है। इसको विपरीत चिकित्सा भी कह सकते हैं। यह चिकित्सा-पद्धति सत्रह सौ वर्षोंसे प्रचलित है। इसके चिकित्सक जानते थे कि इससे रोग जड़से आराम न होकर थोड़े दिनोंके लिये गायब हो जाता है या छिप जाता है; परन्तु उन्होंने यह सोचा कि इस तरहसे रोगी बहुत सरलतापूर्वक वशमें रखे जा सकते हैं और सामयिक लाभ होनेके कारण रोगियोंको विश्वास भी हो जायगा; परन्तु वास्तवमें होता क्या था, रोग आरोग्य होनेके बदले, भीतर घुसकर कुछ दिन बाद और भी भयंकर रूपसे प्रकट होता था। पुरानी बीमारियोंमें तो इकका परिणाम और भी भयंकर होता था। हैनिमैनने कहते हैं कि और किसी बातका सम्बन्ध हो या न हो, इस बातका तो स्पस्ट ही सम्बन्ध था कि रोग घटनेके बदले बढ़ता था और यही एक चीज ऐसी थी, जिसको त्याग

जाती है, देखकर ही यह सिद्धान्त निकाला है; पर गो-वीजका चेचकका टीका और चेचक सदृश तो है, पर ये दोनों एक ही रोग नहीं हैं। उनमें बहुत तरहका प्रभेद है और खासकर यह प्रभेद तो अवश्य है कि उसमें गो-वीजकी तेजी तथा रोगकी क्षीणता रहती है। साथ ही गो-चेचक कभी मनुष्योंके लिये संक्रामक नहीं होती। सर्वसाधारणमें टीका लगवानेका यह प्रभाव हुआ है कि उस भयंकर चेचककी बहुव्यापकता उसने रोक दी और इतनी रोक दी कि वर्त्तमानमें पूर्वकी चेचक-रूपी महामारीकी उस भीषणताकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

इस तरह, इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि पशु-जातिमें होनेवाली कितनी ही विशेष बीमारियाँ उसी ढंगकी मानवी बीमारियोंके लिये औषध प्रदानकर हमारे होमियोपैथिक औषध-भण्डारको बढ़ाती जाती हैं।

पर मानव रोग-वीज (खुजलीसे ग्रहण किया हुआ सोरिमन) का औषध-रूपमें उसी मनुष्य जातिकी खुजली या रोगसे लेकक व्यवहार करना···?

इससे इसके सिवा और कुछ नहीं हो सकता कि कष्ट और रोगकी वृद्धि हो जायगी।

देना बहुत जरूरी था ; न त्यागना रोगीको धोखा देना और उसकी दिल्लगी उड़ाना था।

[५७]

गैलनके मतसे-औषध-प्रयोगका उदाहरण ?

इस विपरीत-प्रणालीके अनुसार, चिकित्सक किसी रोगमें जो सब लक्षण प्रकट होते हैं, उनमेंसे एक अधिक कष्टजनक लक्षणको पकड़ लेता है और बाकी लक्षणोंको विना ध्यान दिये ही छोड़ देता है। इसके बाद उस लक्षणको तेजीसे दवा देनेवाली उसके ठीक विपरीत लक्षण पैदा करनेवाली कोई दवा चुनता है, जिससे वह समझता है कि तुरन्त फायदा हो जायगा। सब प्रकारके दर्दोंके लिये वह अफीमका अधिक मात्रामें प्रयोग करता है ; क्योंकि यह चीज ज्ञान-तन्तुओंको तुरन्त चेतनाहीन बना देती है। वह यही चीज अतिसारमें भी देता है ; क्योंकि यह तुरन्त आंत्रपथकी मल-निष्कासिनी गतिको रोककर उसे निष्क्रय बना देता है। इसके अलावा, वे अनिद्रामें भी इसका प्रयोग करते हैं ; क्योंकि अफीमसे शीघ्र ही मस्तिष्कमें अवसाद लानेवाली अचैतन्यावस्था आ जाती है और उससे अचैतन्य करनेवाली निद्रा आती है। जब रोगीमें कब्जियत रहती है, तब वह जुलाब देता है ; वह जले हुए हाथको ठण्डे पानीमें रखवाता है, जो अपनी शीतलताके कारण पहले तो तुरन्त जलनको दूर कर देता है ; जिस रोगीमें सर्दी और जीवनप्रद गर्मीकी कमी मालुम होती है, उसे गर्म जलके झरनेमें स्नान कराता है, जिससे वह तुरन्तु गर्म हो जाये। बहुत दिनोंकी दुर्बलतावालेको वह शराब पिलाता है, जिससे उसमें तुरन्त तेजी आ जाती है और वह तरोताजा हो जाता है। इसी तरह वह अन्य विपरीत (Anti-pathic) उपचार तथा प्रयोग करता है, पर ऊपर बतायी चीजोंके

अलावा उसके पास बहुत थोड़ी ही दवाएँ हैं; क्योंकि साधारण चिकित्सा-प्रणालीवालोंको बहुत थोड़े द्रव्योंकी ही विशेष (प्राथमिक) क्रिया मालुम है।

खुलासा—ऊपर सभी उदाहरण विपरीत चिकित्साके लिये गये हैं, जिनका मतलब यह है कि इनसे तुरन्त फायदा दिखाकर ऐलोपैथिक चिकित्सक रोगीको फसाये रखते हैं; परन्तु उनमें एकदम आरोग्य कर देनेकी शक्ति नहीं रहती। कारण—एक तो असदृश विपरीत चिकित्सा-प्रणाली, दूसरे औषधकी प्राथमिक क्रिया-सम्बन्धी ज्ञानकी कमी।

[५८]

पेलोपैथिक चिकित्सासे सामयिक लाभ होनेपर, यदि रोग फिर बढ़ जाता है, तो पेलोपैथिक चिकित्सक क्या कहते हैं?

यदि इस ढंगके औषध-प्रयोगका मूल्य निर्द्धारित किया जाये, तो हमलोगोंको अच्छी तरह मालुम हो जायगा कि यह एक **अत्यन्त दोषावह चिकित्सा** है, जिसमें कि चिकित्सक केवल एकतरफा लक्षणपर ध्यान देता है। इसी वजहसे वह सम्पूर्णका केवल एक अंश देखता है। अतएव, रोगीकी इच्छाके अनुसार, इससे उसके समस्त कष्टोंका अवसान नहीं हो सकता। दूसरी ओर, अभिज्ञता क्या बतलाती है? किसी पुरानी बीमारीमें जब इस तरह औषधियोंका विपरीत चिकित्सा-प्रणालीसे प्रयोग होता है, तो सामयिक ह्रासके बाद क्या वे सब लक्षण नहीं बढ़ जाते, जो पहले दबा दिये गये थे? होता यह है कि लक्षण सब ओर भीषण रूपसे पैदा हो जाते हैं और समूची बीमारी बढ़ जाती है। प्रत्येक ध्यानपूर्वक देखनेवाल इससे सहमत होगा कि इस थोड़ी देरकी विपरीत चिकित्सासे आये ह्रासके बाद, वृद्धि सभी

रोगियोंमें, विना किसी बाधाके, होती है ; परन्तु साधारण चिकित्सकका यह अभ्यास रहता है कि वह अपने रोगीको इस वृद्धिका दूसरा ही कारण बताता है और या तो इसे मूल रोगकी भीषणता बताता है या कोई नया रोग हो गया है, कहकर समझा देता है।

खुलासा—हैनिमैनका मतलब है कि सभी कार्य स्वाभाविक रीतिसे होनेपर उसका परिणाम चिरस्थायी होता है। मान लीजिये, कि किसीको अफीम देकर उसका दर्द दूर कर दिया गया (आजकल मार्फिया इन्जेक्शनकी प्रथा ऐलोपैथीमें बहुत प्रचलित है), तो इसका परिणाम यह होता है कि उसके ज्ञानतन्तु मूर्च्छित हो जाते हैं और उस दर्दको अनुभव नहीं कर पाते ; परन्तु अफीमका प्रभाव दूर होते ही, वही दर्द, फिरसे अनुभव होने लगता है। इसी तरह, जबर्दस्ती तेज दवा देकर, यदि कोई रोग दबा दिया जाता है, तो वह छिपकर बैठा रहता है और फिर समय पाकर बहुत तेजीसे, उन्हीं लक्षणोंके साथ या कुछ रूप बदलकर पैदा होता है। दूसरी बात यह कि ऐलोपैथिक चिकित्सक एक लक्षणको ध्यानमें रखकर विपरीत चिकित्सा करते हैं, इससे यह लक्षण भी उसी तरह अपने आनुसंगिक लक्षणोंके साथ दबा और छिपा रहगा है और मौका पाते ही फीर भीषण वेगसे प्रकट होता है। यह एक नहीं, समस्त रोगियोंमें होता है और इसी कारणसे, ऐलोपैथिक चिकित्सा दोषावह कहलाती है। रोगके इस पुनराक्रमणका कारण जब चिकित्सकसे पूछा जाता है, तो वह रोगी या सम्बन्धियोंको या तो यह कह देता है कि रोगकी भयंकरताके कारण ऐसा हुआ है या कोई नयी बीमारीका हमला हो गया है ; यही उत्तर देकर वह अपनी विपरीत चिकित्साका परिणाम छिपा लेता है।

[५९]

एलोपैथीकी मुख्य और गौण-क्रियाका परिणाम

पुरानी बीमारीके किसी प्रधान लक्षणकी आजतक कभी, इन तात्कालिक तात्कालिक और विपरीत दवाओंसे, बिना विपरीत अवस्था पैदा हुए चिकित्सा ही न हो सकी ; अर्थात् इस ढंगसे पुरानी बीमारीका इलाज होनेपर, कई घण्टोंके भीतर ही, रोगकी वृद्धि दिखाई देने लगती है। दिनमें नींद आनेके रोगकी दवा काफीके रूपमें दी जाती है, पर काफीकी प्राथमिक क्रिया है—उत्तेजना लाना ; जब यह क्रिया समाप्त हो जाती है, तो दिनकी अनिद्रा और भी बढ़ जाती है। रातमें बार-बार नींद खुल जानेके कारण अन्यान्य लक्षणोंपर ध्यान दिये बिना ही प्राचीन प्रणालीके चिकित्सक सन्ध्यामें अफीमका प्रयोग करते थे ; पर अफीमकी क्रियाके कारण रातमें वह रोगी अर्द्धचेतना या तन्द्रामें अवश्य पड़ा रहता है, पर आगेकी रातें उसको अधिक निद्राहीन अवस्थामें बितानी पड़ती थीं। वे पुराने अतिसारके अन्य लक्षणोंपर ध्यान दिये बिना ही उसे अफीमसे रोक देते हैं, पर अफीमकी प्राथमिक क्रिया है—आँतोंमें कब्जियत पैदा करना और गौण क्रिया है—थोड़े दिनोंतक अतिसार रुका रहनेपर और भी जोरसे पतले दस्त आने लगते हैं। बार-बार और तेज दर्दका पैदा होना कुछ देरके लिये अफीमसे रुकता है ; [illegible] परन्तु इसके बाद वही दर्द और भी तेज, यहाँतक कि असह्य अवस्थामें [illegible] पैदा होने लगता है, अथवा ऐसा होता है कि उससे भी बदतर कोई [illegible] दूसरी बीमारी पैदा हो जाती है। बहुत दिनोंकी स्थायी, रातमें होनेवा[illegible] है तो खाँसीके लिये, प्राचीन चिकित्सक अफीम देनेसे बढ़कर कोई दूसरी [illegible] बीमारीकी दवा ही नहीं जानते ; पर अफीमकी प्राथमिक क्रिया है, स[illegible] तरहकी उत्तेजनाको एक बार दबा देना। उस रातमें तो शायद [illegible] सभी [illegible] नहीं आयगी, पर अगली रातमें और भी जोरकी खाँसी आयेगी [illegible]। इसके

बाद यदि मात्रा बढ़ा-बढ़ाकर यह बराबर रोकी गई हो, तो ज्वर और रातका पसीना भी इस रोगके साथ ही पैदा हो जायगा। मूत्राशयकी कमजोरीके कारण, पेशाब रुकनेपर, विषम लक्षणवाला केन्थराइडिसका प्रयोगकर मूत्रनलीको उत्तेजित किया जाता है। इससे होता यह है कि पहले तो निश्चित रूपसे पेशाब होता है, परन्तु इसके बाद ही मूत्राशयकी उत्तेजना घट जाती है और संकोचनी शक्तिका ही ह्रास होकर, मूत्राशयका पक्षाघात हो जाता है। अधिक मात्रामें दस्तावर दवाएँ और नमक आदि खिलानेपर आँतोंमें उत्तेजना होकर दस्त तो आते हैं, पुरानी कब्जियतकी शिकायत दूर करनेके लिये ऐसा किया जाता है; परन्तु इसकी गौण-क्रिया यह होती है कि कब्जियत और भी अधिक बढ़ जाती है। साधारण चिकित्सक शराब पिलाकर पुरानी दुर्बलता दूर किया चाहते हैं। यह सिर्फ अपनी प्राथमिक क्रिया द्वारा उत्तेजना तो लाती है; परन्तु गौण-क्रिया यह होती है कि शारीरिक शक्तियाँ और भी मन्द पड़ जाती हैं। तीते पदार्थ और गर्म मसाले खिलाकर दुर्बल और शीतल पाकस्थलीको सबल और गर्म करनेकी चेष्टा की जाती है, पर इन दवाओंकी प्राथमिक क्रिया उत्तेजित होनेपर भी, प्रतिक्रियामें पाकस्थली और भी अकर्मण्य बन जाती है। बहुत दिनोंकी शारीरिक उत्तापकी कमी और जड़ा मालूम होना, इसमें सन्देह नहीं कि गर्म पानीके प्रयोगसे आरोग्य होता है, परन्तु इसके बाद ही रोगी अधिक कमजोर, ठण्डा और शीतकातर हो पड़ता है। बहुत जले हुए अंगमें, ठण्डे पानीके प्रयोगसे तुरन्त आराम तो मालूम होता है, पर इसके बाद ही जलन असह्य रूपसे बढ़ जाती है और प्रदाह फैल जाता है तथा फफोले भी निकल आते हैं। बहुत दिनोंकी स्थायी सर्दीमें नाक बन्द होनेपर वे चीजें सुँघाई जाती हैं, जिनसे छींक आती है और इस तरह यह रोग दूर करनेकी चेष्टा की जाती है; परन्तु यह अक्सर देखा जाता है कि उनकी गौण-क्रियासे रोग और भी बढ़ जाता है तथा नाक और भी

अधिक बन्द होने लगती है। बहुत दिनोंके पुराने पक्षाघातग्रस्त दुर्बल हाथ-पैरके स्नायु और पेशियोंमें बिजलीकी शक्ति लगवानेपर उसकी प्राथमिक क्रियासे उनमें उत्तेजना पैदा होती है और प्रति-क्रियावस्था (गौण-क्रिया) यह होती है कि वे सब स्नायु एकदम मुर्दोंकी भाँति और सम्पूर्ण पक्षाघातग्रस्त हो जाते हैं। शिरा काटकर माथेका पुराना रक्त-संचय या खूनका दौरा रोकनेकी चेष्टा की जाती है ; परन्तु उसका परिणाम यह होता है कि उसके बाद और भी अधिक रक्त-संचय होने लगता है। साधारण चिकित्सक टाइफस (मोह-ज्वर) की शारीरिक और मानसिक अवसन्नता तथा उसके साथकी बेहोशी लानेवाले रोगकी पक्षाघातिक दुर्बलताकी वैलेरियनके सिवा और कोई दवा ही नहीं जानते ; क्योंकि यह जीवनी-शक्ति और गति-शक्तिको बढ़ता है ; परन्तु अपनी अज्ञानताकी वजहसे वे यह नहीं समझते कि यह वृद्धि तो इसकी प्राथमिक क्रियाका परिणाम है और जब इस क्रियाका प्रभाव समाप्त हो जाता है, तो शरीरकी पहले जैसी ही अवस्था हो जाती है तथा बेहोशी और गति-शक्ति-राहित्य और भी बढ़ जाता है अर्थात् शारीरिक और मानसिक पक्षाघातिक अवस्था आकर मृत्यु हो जाती है। क्या उन्होंने यह नहीं देखा कि जिन सब रोगोंमें विपरीत लक्षणके अनुसार अधिक परिमाणमें वैलेरियनका व्यवहार किया जा सकता है, उसके रोगी प्रायः ही मृत्युके मुँहमें जा पड़ते हैं। पुरानी चिकित्सा-प्रणालीवाले इससे बहुत प्रसन्न रहते हैं कि रक्त-हीन रोगियोंकी क्षुद्र नाड़ीका वेग डिजिटेलिसका प्रयोगकर कई घण्टोंतक घटा रखा आ सकता है (इसकी प्राथमिक क्रिया है, नाड़ीका वेग घटना) ; परन्तु नाड़ीकी तेजी फिर लौट आती है। इसके बाद मात्रा बढ़ा दी जाती है, पर इससे पहलेकी अपेक्षा तेजी कम घटती है और इसके बाद बिलकुल ही नहीं घटती। इसकी गौण-क्रिया यह होती है कि नाड़ीकी अवस्था ऐसी हो जाती है कि गिनी नहीं जा सकती। नींद, भूख, ताकत सभी गायब

हो जाते हैं और इसका नतीजा यह होता है कि, या तो तुरन्त मृत्यु हो जाती है अथवा उन्माद पैदा हो जाता है। सारांश यह कि इस विपरीत चिकित्सासे रोग बढ़ जाता है और रोगीकी अवस्था बदतर हो जाती है। यद्यपि प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीवाले अपने भ्रम-सिद्धान्तोंकी वजहसे यह नहीं देखते; परन्तु परीक्षण तथा अनुभव इसकी शिक्षा भयंकर रूपसे दे देते हैं।

खुलासा—इस सूत्रमें हैनिमैनने उदाहरण देकर बताया है कि ऐलोपैथ रोगियोंको किस तरह कठिन रोगोंमें फँसा देते हैं। उनकी औषधोंका प्रभाव कितना हानिकर है। औषधके विपरीत धर्मके कारण क्षणिक आराम आ जाता है—परन्तु मूलसे जाता नहीं; अब वह दवा एक और विकार छोड़ जाती है। इस तरह रोगी जहाँ पहली बीमारीसे छुटकारा नहीं पा सकता, वहाँ उसे एक और रोग दे दिया जाता है। आजकल टी० बी० के लिये स्ट्रेप्टोमाईसीनका अन्धाधुन्ध व्यवहार किया जाता है। यह औषध फेफड़ोंका क्या उपकार करती है, यह तो अब स्पष्ट है; परन्तु वह साथ ही बहरापन और मूत्राशयके अनेक विकार छोड़ जाती है। वे सिर-दर्द हटा देते हैं, परन्तु उनकी दवा दिलको कमजोर कर देती है। अपनी इन बुराइयोंको छिपानेके लिये ऐलोपैथी-वाले तरह-तरहके बहाने बनाते हैं।

[६०]

यह क्या सत्य है कि बारम्बार मात्रा चढ़ाकर ऐलोपैथिक औषध प्रयोग होनेके कारण उसकी क्रियासे रोगीकी मृत्यु हो जाती है?

विपरीत लक्षणके अनुसार औषध प्रयोगकी वजहसे यदि ये दुष्परिणाम होते हैं, तो साधारण चिकित्सक सोचते हैं कि प्रत्येक रोग-

वृद्धिमें मात्रा बढ़ाकर दवा देनेसे ही इस कठिनाईसे छुटकारा मिल जायगा और इससे रोगकी तेजी दब जाती है ; परन्तु उससे भी पहलेकी ही तरह थोड़ी देरके लिये रोग दब जाया करता है और इस तरह हर बार अधिक मात्रामें दवा देनेकी जरूरत बढ़ती जाती है। इसका नतीजा यह होता है कि यह तो कोई कठिन बीमारी पैदा हो जाती है या आम तौरपर रोग असाध्य हो जाता है अथवा जीवनका संशय और मृत्युतक आ पहुँचती है ; परन्तु बहुत दिनोंका स्थायी रोग कभी आरोग्य नहीं होता।

खुलासा—हैनिमैनकी इस बातकी सत्यता हमलोग नित्य-प्रति देखते हैं। ज्वरमें कभी-कभी क्विनाइनका इतना भयानक प्रयोग होता है कि रोगी मृत्यु-मुखमें ही जा पहुँचता है। ५ ग्रेनसे आरम्भकर १०-२० ग्रेनकी मात्रामें दी जाती है; परन्तु परिणाम यही होता है कि बुखार छूट-छूटकर फिर आता है। इस तरह मात्रा बराबर बढ़ती जाती है और अन्तमें पिलई, कामला, यक्ष्मा प्रभृति भयानक रोग होकर रोगी मृत्यु-मुखमें जा पहुँचता है।

[६१]

यदि एलोपैथिक चिकित्सकोंने इस विपरीत चिकित्साका परिणाम समझा होता, तो क्या फल होता ?

यदि इस विपरीत लक्षणके मतसे दवाके प्रयोगका विषादमय परिणाम समझनेकी उनमें शक्ति होती, तो बहुत दिन पहले ही, उन्हें यह सत्य समझमें आ गया होता कि वास्तविक आरोग्यकरकला, इस रोग-लक्षणके विपरीत चिकित्साके ठीक विपरीत आधारपर अवलम्बित है। वे समझ गये होते कि रोग-लक्षणके विपरीत लक्षणवाली दवाका प्रयोग करनेपर थोड़ी देरके लिये फायदा होता है, और, उसकी क्रिया समाप्त होनेपर,

सभी रोगियोंमें रोगकी वृद्धि होती है ; परन्तु इसके विपरीत करनेपर, अर्थात् रोगके सम-लक्षणके अनुसार औषध प्रयोग करनेपर—होमियोपैथिक प्रणालीसे, सदाके लिये सम्पूर्ण रूपसे, आरोग्य हो जाता है, और, यदि इसके साथ ही, उन बड़ी-बड़ी मात्राओंके बदले सूक्ष्म मात्रा भी दी गई, तो जरूर ही आरोग्य होता है। परन्तु न तो उनकी इस विपरीत चिकित्साके कारण होनेवाली रोगकी अति-वृद्धि और न इस बताने कि आजतक कोई भी चिकित्सक बहुत दिनोंकी पुरानी बीमारीको इस ढङ्गसे तबतक आरोग्य न कर सका, जबतक उसमें किसी तरहसे सम-लक्षणवाली दवा न मिल गयी है और न प्रकृतिका रोग आरोग्य करनेवाला यह तरीका ही कि मूल रोगके समान लक्षणोंवाला रोग पैदा करके ही, वह उस रोगको आरोग्य करती है—इतनी शताब्दियोंतक प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीवालोंकी आँखें खोल सका और यह सत्य बता सका कि इस ढङ्गकी चिकित्साके सिवा और किसी भी चिकित्सा-प्रणालीसे रोगी मनुष्यका कोई उपकार न होगा।

खुलासा—सम-लक्षणके सम्बन्धमें ऊपर बताया जा चुका है और यह भी बताया जा चुका है कि प्रकृतिका रोग आरोग्य करनेका कौन-सा तरीका है (सूत्र—४६)। यह भी बताया जा चुका है कि असम चिकित्सा अथवा विपरीत चिकित्सासे किस तरह नुकसान होता है। यह विपरीत या असम चिकित्सा सत्रह शताब्दीसे प्रचलित है ; परन्तु इतने दिनोंसे इस तरह रोगियोंका प्राणनाश, उनके रोगोंकी वृद्धि तथा प्रकृतिके दिये रोग आरोग्य आदिके उदाहरण देखकर भी ये विपरीत चिकित्सक यह न सीख सके कि उनकी प्रणाली वास्तवमें आरोग्यकर चिकित्सा-प्रणाली हो ही नहीं सकती ; स्वार्थ मनुष्यको अन्धा बना देता।

[६२]

विपरीत चिकित्साका फल शोचनीय और सदृश चिकित्साका सन्तोषजनक क्यों होता है ?

परन्तु किस वजहसे इस सामयिक शामक विपरीत चिकित्साका फल शोचनीय और सम-लक्षण चिकित्साका संतोषजनक होता है ; यह आगे लिखे सूत्रोंसे अच्छी तरह प्रकट होगा। ये सब तथ्य जाँच-पड़ताल और परीक्षणोंका परिणाम है। कितने आश्चर्यकी बात यह है कि इतने स्पष्ट और प्रत्यक्ष प्रमाण रहनेपर भी, मुझसे पहले, और किसीने भी, रोग दूर करनेके इस उत्तम पथको पूरी तरह हृदयङ्गम नहीं किया।

खुलासा—इस विषयको यद्यपि प्रकृति बराबर दिखाती रही है—औषधकी गौण और प्राथमिक क्रिया स्पष्ट दिखाई देती रही है ; परन्तु हैनिमैनके सिवा और किसीने भी इसपर इसके पहले ध्यान न दिया, हालांकि ऐलोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली प्रायः दो हजार वर्षसे चली आ रही है और उसमें कितने ही योग्य विचारक, चिकित्सक तथा विद्वान आये। अब आगे यह बताया जाता है कि दोनोंके क्या परिणाम होते हैं।

[६३]

प्राथमिक और गौण-क्रियाएँ क्या हैं ?

प्रत्येक पदार्थ जीवनी-शक्तिपर अपना असर छोड़ जाती हैं, प्रत्येक औषध जीवनी-शक्तिमें कुछ-न-कुछ परिवर्त्तन लाती है और कम या अधिक समयके लिये मानव-स्वास्थ्यमें विकार ला ही देती है। इसे प्राथमिक क्रिया (Primary action) कहते हैं। यद्यपि यह क्रिया औषध और जीवनी-शक्ति दोनोंका ही परिणाम है, तथापि यह मुख्यतः

औषधसे ही होता है। इसके बाद इस दवाकी क्रियाके विरुद्ध हमारी जीवनी-शक्ति अपने प्रभावका प्रयोग करती है। प्रतिरोधात्मक क्रिया हमारे जीवनकी रक्षा करनेवाली शक्तिका विशेष गुण है। यह उसकी स्वचालित क्रिया है। इसे गौण-गति या प्रतिक्रिया कहते हैं।

खुलासा—होमियोपैथिक चिकित्सकोंके लिये, इस **गौण-क्रिया** और **प्राथमिक क्रिया**को समझ लेना बहुत आवश्यक है; क्योंकि इसीपर होमियोपैथिक शिक्षाका दारमदार है। हैनिमैन कहते हैं कि हरएक दवा जीवनी-शक्तिपर अपना कुछ-न-कुछ प्रभाव डालती है। यह औषधकी प्राथमिक क्रिया है; पर इसके बाद ही कहते हैं कि यह प्राथमिक क्रिया औषध और जीवनी-शक्ति दोनों द्वारा मिलकर ही होती है। यह कैसी बात है?

मान लीजिये, किसी आदमीको आपने शराब पिला दी। परिणाम यह हुआ कि उसका चेहरा लाल हो गया, वह नशेमें आ गया; उन्मत्त होकर बकने लगा। अब एक मुर्देका मुँह फाड़कर शराब ढाल दीजिये, उसमें तो कोई भी परिवर्त्तन नहीं पैदा होता।

ये दोनों ही उदाहरण सामने हैं। खूब ध्यान दीजिये—दवा दोनोंमें ही है—शराब दोनोंको पिलायी गई है, परन्तु क्रिया एकमें होती है, दूसरेमें नहीं। इसका कारण क्या है? कारण यह है कि एकमें जीवनी-शक्ति है, दूसरेमें नहीं। जिसमें जीवनी-शक्ति है, उसमें तो दवाकी क्रिया होती है। इसलिये होती है कि जीवनी-शक्तिकी क्रिया भी उसमें सम्मिलित रहती है। दूसरेमें जीवनी-शक्ति नहीं है—इसलिये क्रिया नहीं होती। इसी वजहसे हैनिमैन कहते हैं कि यह उस दवाकी ही प्राथमिक क्रिया है, पर उनमें जीवनी-शक्तिका भी हाथ है। अतएव, यह स्थिर जानना चाहिये कि दवा अपनी जो क्रिया पहले प्रकट करती है (निश्चय ही उसीमें जीवनी-शक्तिका भी सहयोग है) वह **प्राथमिक क्रिया** कहलाता है।

गौण-क्रिया—वह है, जो औषधकी क्रिया समाप्त हो जानेपर, जीवनी-शक्ति द्वारा प्रकट की जाती है, अर्थात् दवाओं द्वारा आये हुए परिवर्त्तनको हटानेकी जीवनी-शक्ति जो चेष्टा करती है, उस क्रियाको गौण-क्रिया कहते हैं। यह जीवनी-शक्तिका प्रधान कार्य है और यह स्वतः ही हुआ करता है।

अब तीसरी बात समझनेकी यह है कि प्राथमिक क्रिया अच्छी या बुरी दोनों ही हो सकती है और उसी तरह गौण-क्रिया अच्छी या बुरी हो सकती है; पर यह अवश्य होता है कि प्राथमिक क्रियाके विपरीत गौण-क्रिया होती हैं। शराब पिलानेकी प्राथमिक क्रिया यह होती है कि शरीर और मन तथा मस्तिष्कमें उत्तेजना पैदा होती है, प्रतिक्रिया या गौण-क्रिया भी यह होती है कि सुस्ती छा जाती है, शरीर तथा मन और मस्तिष्क अवसन्न हो पड़ता है। इसी तरह प्राथमिक क्रियामें यदि बुराई या खराबी अथवा वृद्धि दिखाई देती है, तो गौण-क्रियामें शुभ फल होता है। इन बातोंको आगे और भी स्पष्ट कर किया है।

[६४]

प्राथमिक या गौण-क्रियाकी व्याख्या

कृत्रिम रोगोत्पादक शक्तियों (औषधों) की जब हमारे स्वस्थ शरीरपर क्रिया प्रकट होती है, तो आगे लिखे उदाहरणोंके अनुसार हमारी जीवनी-शक्ति निश्चेष्ट भावसे काम करती है और ऐसा मालूम होता है कि कृत्रिम शक्तिकी क्रियाको, जब बाहरसे हो रही है, विवश होकर अपना काम करनेका अवसर देती है और इस तरह अपने स्वास्थ्यमें परिवर्त्तन करा लेती है। अब वह फिर उठती है और अब (१) स्वास्थ्यके ठीक विपरीत स्थिति आती है अर्थात् प्रतिकिया आती है। इस प्रतिक्रियाका वेग भी उसी अनुपातसे होगा, जिससे प्राथमिक क्रिया

आयी थी। यह प्रतिक्रिया जीवनी-शक्तिकी सामर्थ्यके अनुसार भी आती है। और या—(२) यदि यह प्रतिक्रिया प्राथमिक क्रियाके ठीक विपरीत न हो, तो इसके रूप भिन्न हो जाता है। अर्थात् वह बाहरी (दवाके) प्रभावको नष्ट करनेका यत्न करती है और उसकी जगह अपनी स्वभाविक शक्तियोंको पुनः स्थापित कर देती है (गौण-क्रिया या रोगनाशक क्रिया)।

खुलासा—इसका तात्पर्य यह है कि दवा देनेपर जिस समय दवाकी क्रिया आरम्भ होती है, उस समय यद्यपि जीवनी-शक्तिसे सम्मिलन होनेके कारण ही उस दवाकी प्राथमिक क्रिया प्रकट होती है, तथापि जीवनी-शक्ति उस समय स्वाधीन कार्य नहीं करती, और निश्चेष्ट भावसे, पराधीनोंकी तरह, जो परिवर्त्तन उस दवाकी क्रियासे होना चाहिये, वह होने देती है। इसके बाद ही जीवनी-शक्ति और उस दी हुई दवाकी क्रियामें युद्ध होता है। उस समय वह प्राकृतिक क्रियाके लक्षणोंके विपरीत लक्षण प्रकट करती है और यदि ऐसा मौका हो कि कोई विपरीत अवस्था हो ही नहीं, तो ऐसे मौकेपर नकली क्रियाकी पराधीन अवस्थाको जीवनी-शक्ति दूर कर देती है और शरीरको रोगसे मुक्त कर देती है। इस सूत्रमें दोनों क्रियाएँ बताकर होमियो-चिकित्सा-सिद्धान्तका निर्देश किया गया है; अर्थात् चिकित्सको दवाकी प्राथमिक और गौण दोनों ही क्रियाओंको ध्यानमें रखकर औषधका प्रयोग करना चाहिये। औषधकी प्राथमिक क्रिया रोगीकी शारीरिक शक्ति और लक्षणोंके अनुरूप होनी चाहिये, अन्यथा उसका कष्ट बढ़ जायगा।

[६५]

उदाहरण—

(क) इस श्रेणीका उदाहरण सभी समझते हैं। यदि एक हाथ गर्म पानीमें डुबो दिया जाये, तो पहले उस दूसरे हाथकी अपेक्षा वह बहुत

ज्यादा गर्म हो जायगा, जो गर्म पानीमें नहीं डाला गया है (प्राथमिक क्रिया), पर वही जब गर्म पानीसे निकाल लिया जाता है और अच्छी तरह सुखा दिया जाता है, तो थोड़ी ही देर बाद ठण्डा और उस दूसरे हाथसे कुछ अधिक ठण्डा होता है (गौण-क्रिया)। तीव्र व्यायाम करनेके कारण यदि कोई मनुष्य बहुत गर्म हो जाये (प्राथमिक क्रिया), तो फिर उसे सर्दी और कम्प मालूम होने लगता है (गौण-क्रिया) : कल जो शराब पीकर बहुत गर्म हो रहा था (प्राथमिक क्रिया); आज उसे साँसके साथ जाती हुई हवा बहुत ही सर्द मालूम होती है (यंत्रोंकी प्रतिक्रिया गौण-क्रिया)। बहुत ठण्डे पानीमें बहुत देरतक रखा हुआ हाथ, दूसरे हाथकी अपेक्षा अधिक पीला और ठण्डा (प्राथमिक क्रिया) मालूम होता है; पर पानीसे निकालकर सुखा लेनेके बाद, दूसरेकी अपेक्षा यह गर्म ही नहीं, बल्कि बहुत गर्म, लाल और प्रादाहित (गौण-क्रिया, जीवनी-शक्तिकी प्रति-क्रिया) हो जाता है। काफी पीनेपर बहुत अधिक स्फूर्त्ति (प्राथमिक क्रिया) आती है, परन्तु इसके बाद ही आलस्य और निद्रालुता बहुत देरतक बनी रहती है, यदि फिर काफी पिलाकर उसे तरोताजा न कर दिया जाये। अफीमके द्वारा बेहोशी जैसी नींद (प्राथमिक क्रिया आनेके बाद, दूसरी, रातमें उससे बहुत ही अधिक अनिद्रावाली अवस्था रहती है (गौण-क्रिया)। अफीम द्वारा दस्त बन्द करने (प्राथमिक क्रिया) के बाद फिर पतले दस्त आने लगते हैं (गौण-क्रिया) और आँतोंको उत्तेजित करनेवाली (प्राथमिक क्रिया); जुलाबकी दवा लेनेपर कई दिनोंतक कब्जियत बनी रहती है (गौण-क्रिया) इसी तरह सबमें होता है अर्थात् स्वास्थ्यमें बहुत अधिक परिवर्त्तन लानेवाली दवाकी प्राथमिक क्रियाके बाद यदि वास्तवमें ठीक उसके विपरीत कोई अवस्था न रहे, तो जीवनी-शक्ति द्वारा वही विपरीत अवस्था गौण-क्रिया द्वारा प्रकट होती है।

खुलासा—इन उदाहरणोंसे हैनिमैनने समझाया है कि गौण-क्रिया प्राथमिक क्रियाके ठीक विपरीत होती है। अतएव, जिस चिकित्सा-प्रणालीमें इस गौण-क्रियापर ध्यान दिये बिना ही, केवल प्राथमिक क्रियाको लक्ष्यमें रखकर औषध प्रयोग होता है, वह घातक चिकित्सा-प्रणाली है।

[६६]

सूक्ष्म मात्रामें सम-लक्षणके अनुसार औषध प्रयोग करनेपर गौण-क्रिया कैसी होती है?

स्वस्थ शरीरमें बहुत सूक्ष्म मात्रामें प्रयोग की हुई दवा, यद्यपि अपनी प्राथमिक क्रियासे अस्वस्थ करती है, पर अनुमान द्वारा समझमें आता है कि गौण-क्रियामें विपरीत परिणाम होता होगा; परन्तु वास्तवमें प्रायः यह परिणम दिखाई नहीं देता। हरेक छोटी मात्रा प्राथमिक क्रिया उत्पन्न कर देती है और ध्यानसे देखनेवालेके अनुभवमें भी वह आती है; परन्तु जीव-शरीरमें यह उतनी ही गौण-क्रिया उत्पन्न करती है, जितनी स्वास्थ्य लौटा लानेके लिये जरूरी होती है।

खुलासा—ऐलोपैथीमें वृहत् मात्राओंमें औषधका प्रयोग होता है और होमियोपैथीमें—सूक्ष्म मात्रामें। क्षुद्र मात्रा द्वारा, प्राथमिक क्रिया और गौण-क्रिया दोनों ही होती हैं; परन्तु एक तो सम-लक्षणके अनुसार दवा दी जाती है, दूसरे सूक्ष्म मात्रामें। अतएव, लक्षण मिलते रहनेपर भी गौरकर देखनेवालेको मालुम होता है कि प्राथमिक क्रिया हो रही है; परन्तु विपरीत अर्थात् गौण-क्रिया उतनी ही होती है, जो रोगको हटा देने भरके लिये काफी होती है अर्थात् नकली बीमारी, जो पैदा की जाती है, उसे दूर कर देनेभरके लिये ही गौण-क्रिया होती है, अधिक नहीं होती और जीवनी-शक्तिपर भी किसी प्रकारका आघात नहीं पहुँचाता।

[६७]

ऊपर बताये सत्यसे क्या प्रकट होता है ?

यह अखण्ड सत्य, जो स्वभाव और अनुभव द्वारा प्रकट होता है। वह एक ओर जिस तरह सदृश-चिकित्सा-विधानकी उपयोगिता प्रकट करता है, उसी तरह दूसरी ओर विपरीत चिकित्सामें, विपरीत कार्य करनेवाले तुरन्त लाभ दिखानेवाले औषध द्वारा रोग दूर करनेके विषमय फलको भी प्रकट करता है।[1]

खुलासा—यह अखण्ड सत्य क्या है ? प्रकृति और अभिज्ञता द्वारा स्पष्टतया यह नियम प्रकट होता है कि सम-लक्षणकी दवाओं तथा सूक्ष्म मात्राके प्रयोगसे ही रोग आरोग्य होते हैं। इस सूत्रमें यह सत्य समझाया है कि रोग आरोग्यकी यही प्रणाली है और थोड़े समयके लिये लाभ दिखानेवाली विपरीत चिकित्सा-प्रणालीका नतीजा बादमें गौण-लक्षणके रूपमें बहुत ही भयंकर होता है।

---

१. केवल ऐसे अवसरोंपर जहाँ जीवनका नाश तथा तात्कालिक मृत्युकी सम्भावना रहती है और इस वजहसे वहाँ होमियोपैथिक दवाओंको अपनी क्रिया प्रकट करनेका अवसर नहीं मिलता—कभी-कभी तो—घण्टा यहाँतक कि चौथाई घण्टा या कुछ मिनटका भी समय नहीं मिलता। खासकर आकस्मिक घटना, श्वास-रोध, बिजली लग जाना, साँस रुकना, गलने लगना, पानीमें डूबना प्रभृति आकस्मिक घटनाओंमें क्या सामयिक उपयोगी दवाएँ, बिजली लगवाना, तेज काफी पिलाना, उत्तेजना लानेवाली चीजें सुँघना, गर्मीका क्रमशः प्रयोग उचित है ? इस तरहका बलकारक या उत्तेजक प्रयोग जब किया जाता है, तो जीवनी-शक्तिका व्यवहार फिर स्वस्थकी भाँति होने लगता है ; क्योंकि यहाँ कोई रोग नहीं है, जिसको हटाया जा सकता है ; बल्कि स्वस्थ जीवनी-शक्तिकी क्रियामें केवल रुकावटभर आ जाती है। इसी श्रेणीमें विष-प्रयोगकी घटनायें भी आ जाती हैं। जैसे खनिज अम्लोंके लिये ऐल्काली, धातु-विषयके लिये हीपर सल्फरिक, अफीमसे विषाक्त होनेपर काफी और कैम्फर आदि।

[६८]

इस सत्यके द्वारा होमियोपैथिक-प्रणालीकी उपयोगिता कैसे प्रमाणित होती है ?

होमियोपैथिक चिकित्सा द्वारा आरोग्य-प्राप्त व्यक्तियोंके अनुभवसे यह बात सिद्ध होती है कि सम-लक्षणके अनुसार प्रयोग होनेके कारण इसमें दवाकी साधारण सूक्ष्म मात्राकी जरूरत होती है और लक्षण साम्यताके कारण, वह असाधारण सूक्ष्म मात्रा पर्याप्त सिद्ध होती है। शरीरके भीतर उसी तरहकी जो स्वाभाविक बीमारी आयी थी, वह उसे निस्तेज और दूर कर देती है। इस तरह जब वह स्वाभाविक बीमारी मिट जाती है, तो शरीरके भीतर, औषधकी पैदा की हुई कृत्रिम बीमारी, किसी-न-किसी अंशमें, अवश्य रह जाती है ; परन्तु मात्रकी असाधारण सूक्ष्मताके कारण, वह बहुत नगण्य और क्षुद्र होती है और स्वेच्छासे ही बड़ी फुर्तीके साथ, मिट जाती है। उसे मिटाने और अपनी स्वाभाविक स्थितितक पहुँचनेके लिये, जीवनी-शक्तिको कोई प्रयास नहीं करना पड़ता।

अर्थात् जब औषध शरीरमें आये किसी विकारको अपनी सूक्ष्मतक मात्रा द्वारा दूर कर देती है और औषध प्रभावको दूर करनेके लिये, जीवनी-शक्तिको विशेष प्रयत्न करना नहीं पड़ता [देखिये सूत्र ६४ (२)]।

खुलासा—इस सूत्रमें ध्यान देनेकी प्रधान बात है—मात्राका प्रयोग। सम-लक्षणके अनुसार दवाका चुनाव होनेपर, यदि सूक्ष्म मात्रामें दवाका प्रयोग हुआ, तब तो काम बन गया ; पर यदि बारम्बार औषधका प्रयोग हुआ और इस तरह मात्रा बढ़ गयी या विशेष मात्रामें दवा पड़ी, तो अपकारकी ही विशेष सम्भावना रहती है। यह बात

खयालमें रखनी चाहिये कि औषध प्रयोगके बाद, जो कुछ थोड़ा-बहुत रोग रह जाता है, वह दवासे उत्पन्न कृत्रिम रोगका प्रभाव रहता है। इसके लिये दवाकी जरूरत ही नहीं रहती, जीवनी-शक्ति अपनी प्रतिक्रिया द्वारा, इसे स्वयं ही आरोग्य कर देती है। इस अवस्थामें दवाका प्रयोग हो जानेपर भी अपकारकी सम्भावना रहती है। बहुत जल्दी-जल्दी रोग आरोग्य करनेकी इच्छासे जो बार-बार औषध प्रयोग करते हैं, वे विषम भूल किया करते हैं।

[६९]

पर पेलोपैथिक अर्थात् विपरीत चिकित्सा-प्रणालीकी दवाओंसे क्या हानि होती है?

विपरीत (सामयिक लाभदायक) चिकित्सा-प्रणालीमें इसके एकदम विपरीत ही होता है। उसमें चिकित्सक रोग-लक्षणके विरुद्ध जिस औषध-लक्षणका प्रयोग करते हैं (जैसे—तेज दर्दमें अपनी प्राथमिक क्रिया द्वारा अफीमसे अज्ञानता और विमूढ़ता पैदा कर देना), उसे रोग-लक्षणसे एकदम सम्बन्धहीन नहीं कहा जा सकता। इस स्थानपर भी रोग-लक्षण और औषध-लक्षणमें परस्पर सम्बन्ध अवश्य है; पर जो सम्बन्ध होना उचित था, वह उसके विपरीत है। इसमें विपरीत लक्षणवाली दवाके द्वारा रोग-लक्षणोंको नाश करनेकी चेष्टा की जाती है; पर यह बिलकुल ही असम्भव है। इसमें सन्देह नहीं कि विपरीत प्रणालीके अनुसार चुनी हुई दवा भी सम-लक्षण प्रणाली द्वारा चुनी हुई दवाकी भाँति, शरीरके रोगवाले अंशपर क्रिया प्रकट करती है, पर विपरीत लक्षणवाली दवा रोग-लक्षण विपरीत रहनेके कारण रोग-लक्षणका बहुत कम स्पर्श करती हैं, और, बहुत थोड़ी देरके लिये जीवनी-शक्तिकी अनुभूतिसे उसे दूर हटाती है। इस तरह विपरीत दवाके क्षणस्थायी प्राथमिक क्रिया कालमें

जीवनी-शक्ति (रोग-लक्षण और औषधके रोग-लक्षण) दोमेंसे किसीको भी, अनुभव नहीं करती, मानो वे दोनों ही हट गये हैं या सूक्ष्मभावसे एक दूसरेमें लीन हो गये हैं (जैसा—कि तेज दर्दमें अफीमका प्रयोग करनेके कारण होता है। आरम्भमें कुछ देरतक तो जीवनी-शक्तिको बहुत आराम मालुम होता है। वह अफीमके नशे या रोगकी यंत्रणा, कुछ भी अनुभव नहीं कर पाती ; परन्तु होमियोपैथिक अर्थात् सम-लक्षण-सम्पन्न दवाकी भाँति, विपरीत चिकित्सावाली दवाएँ, जीवनी-शक्तिमें उत्पन्न रोगपर अपना प्रभाव नहीं जमा सकतीं, इसी कारण उसी लक्षणवाली और भी बलवती कृत्रिम बीमारी भी नहीं पैदा कर सकती, जो समस्त स्वाभाविक रोगपर प्रभाव समा सके और यही वजह है कि थोड़ी देरके लिये लाभ करनेवाला तथा लक्षणोंमें विपरीत, इन दवाओंको बिना आरोग्य किये ही, रोगको छोड़ देना पड़ता है, अथवा जैसे पहले कहा गया है, ऐसा मालुम होता है कि रोग सूक्ष्म-भावसे, इस तरह लीन हो गया है कि जीवनी-शक्ति अनुभव नहीं कर पाती ; परन्तु अन्यान्य औषधसे उत्पन्न रोगोंकी भाँति यह प्रभाव जल्द ही हट जाता है और केवल रोगको ज्यों-की-त्यों अवस्थामें ही नहीं छोड़ जाता, बल्कि (अन्य सामयिक दवाओंकी भाँति रोग हटानेके लिये, अधिक मात्राके प्रयोगके कारण) यह जीवनी-शक्तिको, इन दवाओंके विपरीत लक्षण पैदा करनेके लिये भी वाध्य करता है (सूत्र—६३, ६४)। ये विपरीत लक्षण, क्षणोपकारी औषधियाँ, औषधकी क्रियाके विपरीत वर्तमान अवस्था, तथा ज्यों-के-त्यों स्वाभाविक रोगके अनुसार होती हैं। इन क्षणस्थायी लाभदायक दवाओंसे रोग बढ़ जाता है और सुदृढ़ हो जाता है, और इस तरहकी जीवनी-शक्तिकी प्रतिक्रिया (सामयिक लाभदायक औषधके विपरीत) होती है। विपरीत दवाकी क्रिया समाप्त हो जानेपर, इसी वजहसे रोग-लक्षण (रोगका यह एक भाग है) और भी खराब हो जाते हैं, और, उतने ही खराब होते हैं, जितनी विपरीत दवाकी मात्राको

शक्ति रहती है। इस तरह (उसी उदाहरणके अनुसार) दर्द दबानेके लिये अफीमकी जितनी अधिक मात्रा दी जाती है, अफीमकी क्रिया नष्ट हो जानेपर, उसी परिमाणमें, वह दर्द पहली अवस्थासे भी बढ़कर, प्रकट होता है।

खुलासा—गौण और प्राथमिक लक्षणकी क्रिया और उदाहरण बताने बाद अब इस सूत्रमें होमियोपैथिक और ऐलोपैथिक चिकित्साका रोगपर प्रभाव बताया गया है। सम-लक्षण चिकित्सा द्वारा भी, रोगी जीवनी-शक्तिपर आक्रमण होता है, और विपरीत अर्थात् ऐलोपैथिक चिकित्साका भी प्रभाव उसपर पहुँचता है; परन्तु विपरीत चिकित्साका प्रभाव भरपूर नहीं पहुँचता और अधिक मात्रा तथा विपरीत लक्षणवाली दवाएँ रहनेके कारण अफीम आदि मादक पदार्थों द्वारा जैसी अवस्था होती है, वैसे ही रोगी जीवनी-शक्तिकी अवस्था हो जाती है अर्थात् वह कुछ देरके लिये बेहोश-सी हो जाती है; परन्तु उस दवाका प्रभाव हटते ही जीवनी-शक्ति उसकी क्रिया दूर करनेकी जो चेष्टा करती है, इससे रोग और भी बढ़ जाता है। जीवनी-शक्ति जबतक मूर्च्छित-सी रहती है, तबतक ऐसा मालूम होता है कि रोग आरोग्य हो गया है; पर इसके बाद ही औषधकी प्रतिक्रिया या गौण-क्रियामें रोग बढ़ा हुआ मालूम होता है और वास्तवमें बहुत कुछ बढ़ जाता है। इसके विपरीत, जब सम-लक्षणवाली दवाका प्रयोग होता है, तो वह शक्तिकृत और सम-लक्षण-सम्पन्न रहनेके कारण, समस्त जीवनी-शक्तिपर अपना प्रभाव जमा लेती है, रोगके समान ही, अर्थात् सम-लक्षण पैदा करनेवाली उसकी भी क्रिया रहती है। इसलिये सम्पूर्ण रोगपर प्रभाव जमाते उसे देर नहीं लगती। शक्तिकृत रहनेके कारण उसका प्रभाव रोगसे जबर्दस्त रहता है; इसीलिये रोगको हटाकर वह नकली बीमारीके रूपमें अपना दखल जमा लेती है। इसकी प्रतिक्रियामें भी रोग-वृद्धि नहीं होती; क्योंकि सूक्ष्म मात्रामें रहनेके कारण जीवनी-शक्तिको, इसे हटानेमें जोर नहीं

लगाना पड़ता । अतएव, प्रतिक्रिया या गौण-क्रियामें रोग आरोग्य होता है, उसमें वृद्धि नहीं होती। यही इन दोनों चिकित्साओंमें भेद है।

[७०]

ऊपर लिखी बातोंसे नीचे लिखा निष्कर्ष निकलता है—

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उससे निम्नलिखित निष्कर्ष निकलता है :—

रोगीको जो कुछ कष्ट होता है अथवा उसके स्वास्थ्यमें जो कुछ लक्ष्यमें आने योग्य परिवर्त्तन दिखाई देता है, उसीसे चिकित्सक समझ सकता है कि कौन-सा रोग हुआ है और उसे क्या आरोग्य करना है। सारांश यह कि यह लक्षण-समष्टि है, जिसके द्वारा रोग आराम पहुँचानेके लिये दवा मांगता है। इसके आलावा, इसमें कोई भीतरी कारण समझना, रहस्यमय प्रकृति मानना या कल्पित जड़ रोग-बीज अनुमान करना—ये सब खयाली पुलाव हैं।

शरीरकी वह बिगड़ी हुई अवस्था, जिसे हमलोग रोग कहते हैं, वह वैसी ही दवाके द्वारा, स्वास्थ्यपर दूसरा परिवर्त्तन लाकर ही, आराम की जा सकती है, जिसकी आरोग्यकारिणी-शक्ति, मनुष्यके स्वास्थ्यमें परिवर्त्तन ला सकती हो अर्थात् रोग-लक्षणोंको एक विशेष रूपसे उत्तेजना देकर ही यह आरोग्य करती है और उन दवाओंकी ये रोग-लक्षण पैदा करनेकी क्षमता स्वस्थ शरीरपर परीक्षा करके ही ठीक-ठीक मालुम की जा सकती हैं।

सब प्रकारकी आजमाईशोंसे यह मालुम होता है कि कोई ऐसी दवा, जिससे रोग-लक्षणके विपरीत और भिन्न रोग-लक्षण स्वस्थ शरीरपर

प्रकट होते हैं, कदापि स्वाभाविक रोगको आरोग्य नहीं कर सकती (इसीलिये ऐलोपैथिक प्रणालीसे कभी आरोग्य हो नहीं सकता) यहांतक कि प्राकृतिक रूपसे भी ऐसा कभी होते नहीं देखा गया कि कोई मूल रोग, किसी और भिन्न प्रकारके रोगके आ जानेसे दूर हो गया हो, मिट गया हो या अच्छा हो गया हो—फिर चाहे वह नवागन्तुक रोग, मूल रोगसे कितना ही बलवान क्यों न था।

सब तरहके परीक्षणों और आजमाईशों द्वारा यह भी सिद्ध होता है कि अधिक दिनोंका स्थायी रोग, किसी एक विशेष लक्षणके सहारे, उसके विपरीत लक्षण प्रकट करनेवाली दवाके द्वारा आरोग्य नहीं हो सकता। इससे थोड़ी देरके लिये आराम मालूम होगा, पर उसके बाद ही जोरसे रोग-वृद्धि होगी। सारांश यह कि इस विपरीत और तुरन्त लाभ दिखानेवाली चिकित्सा-प्रणाली द्वारा बहुत दिनोंका पुराना कोई सांघातिक रोग कभी भी आरोग्य नहीं हो सकता,—उसमें यह फायदा दिखा नहीं सकती।

तीसरी और एकमात्र सम्भव चिकित्सा-प्रणाली होमियोपैथिक है, जिसमें स्वाभाविक रोग-लक्षण-समूहोंके समान लक्षण जिस दवासे स्वस्थ मनुष्य शरीरपर पैदा किये हैं, वही दवा दी जाती है, और उचित मात्रामें उसी औषधका प्रयोग होता है। यही केवल एक ऐसी आरोग्यदायिनी चिकित्सा-प्रणाली है, जिससे रोग, जो जीवनी-शक्तिका शक्तिपूर्ण परिवर्त्तन है, वशमें लाये जाते हैं, और इस तरह वे सरलतापूर्वक, पूरी तरह, तथा जड़से, सदाके लिये, आरोग्य हो जाते हैं। जीवनी-शक्तिपर होमियोपैथी द्वारा और भी बलवान सम-लक्षणपूर्ण रोग पैदाकर यह आरोग्य होता है। अनन्त शक्ति-मति प्रकृतिसे, ऐसे आरोग्यका उदाहरण हमें मिला है; क्योंकि प्रकृति पहलीवाली स्वाभाविक बीमारीमें उसी प्रकारकी एक नयी

बीमारी जोड़ देती है, जिससे कि नयी बीमारी[1] तेजीसे और सदाके लिये आरोग्य हो जाती है।

खुलासा—आरम्भसे, अर्थात् प्रथम वचनेसे, उन्होंने जो बातें बतानी आरम्भ की हैं, उनको ही यहाँ फिर दोहराया है और नाना प्रकारके शब्दों और वाक्योंसे अपने इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है कि होमियोपैथी अर्थात् सम-लक्षण चिकित्सा-प्रणाली द्वारा ही आरोग्य हो सकते हैं।

अतएव समझ रखना चाहिये कि—

(क) रोग क्या है?—यह रोगीका कष्ट और शरीरके अन्य लक्षणोंको देखकर ही मालूम हो सकता है।

(ख) इस शारीरिक और मानसिक विकारको दूर करना ही रोग आरोग्य करना है।

(ग) रोग आरोग्य करनेका उपाय है, रोगीमें जो मानसिक और शारीरिक लक्षण मौजूद हैं, वैसे ही लक्षण प्रकट करनेवाली दवाका सूक्ष्मतम मात्रामें व्यवहार।

(घ) विपरीत लक्षणवाली दवासे, रोग आरोग्य नहीं होता, बल्कि प्रतिक्रियामें बढ़ता है।

[७१]

वास्तविक और स्वाभाविक आरोग्यके लिये किस ज्ञानकी आवश्यकता है।

अब इसमें तो कोई सन्देह नहीं रह गया कि मनुष्यका रोग कुछ लक्षणोंका समूह मात्रा है और दवाओंसे आरोग्य किया जा सकता है;

---

१. यहाँ पहलेवाली बीमारीका आरोग्य होना ही सिद्धान्तके अनुसार उचित मालूम होता है। "नयी बीमारी" नहीं।

परन्तु वह खासकर उसी दवासे आरोग्य होता है, जो कृत्रिम रूपसे वैसे ही रोग-लक्षण पैदा कर सकती हो। इसीलिये, नीचे लिखे तीन नियमोंसे आरोग्य-साधन हो सकता है :—

(१) रोग आरोग्यके लिये जो-जो जानना आवश्यक है, चिकित्सक वह कैसे जान सकता है ?

(२) प्राकृतिक रोग दूर करनेके लिये साधन-रूपी दवाओंकी रोग उत्पन्न करनेवाली शक्तिका ज्ञान उसे कैसे हो सकता है ?

(३) स्वाभाविक रोग आरोग्य करनेके लिये—इन नकली रोग-दूतों (दवाएँ) का प्रयोग करनेका उपयुक्त तरीका क्या है ?

खुलासा—इसी विषयको अब आगे समझाया जाता है। अतएव आगेके सूत्रपर ध्यान देनेसे ही यह विषय समझमें आ जायगा।

[७२]

रोग क्या और कितने प्रकारका है ?

पहलेके नियमके सम्बन्धमें, आगे लिखी बातें साधारण शिक्षाके रूपमें काम देंगी। मनुष्योंको जो बीमारियाँ होती हैं, उनमेंसे हम उन बीमारियोंको "नयी बीमारी" कहते हैं, जो बहुत तेजीके साथ आकर मानवकी जवनी-शक्तिको आक्रान्त करती हैं, जो अपना कोर्स (भोगकाल) तेजीसे, स मास कर लेती हैं। या ; उनका श्रीगणेश अज्ञातां रूपसे, बहुत ही मन्द गतिसे, होता है और फिर वे सहसा, विद्युत गतिसे, मानवके स्वस्थ शरीरमें विकार प्रकट कर देती है और उसका स्वास्थ्य इस हदतक खराब कर देती है कि स्वास्थ्यकी रक्षिका—जीवनी-शक्ति, ऐसी बीमारियोंके आरम्भ और विकासकालमें सामना करती है—चाहे वह प्रतिरोध अधूरा और अनुपयुक्त ही क्यों न हो—अपने तोरपर, उन्हें परास्त नहीं कर सकती। उसे विवश होकर कष्ट

भुगतना ही पड़ता है। यहाँतक कि मानव-शरीर जर्जरित और असाधारण रूपसे विकारग्रस्त हो जाता है और इसी तरह वह धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है। हम इन्हें पुरानी बीमारियाँ कहते हैं। ये पुरानी बीमारियाँ किसी विषकी विद्युत-गति-सम्पन्न संक्रामकतासे आती हैं।

खुलासा—ऊपर हैनिमैनने तीन नियमोंकी बातें ७१वें सूत्रमें बतायी थी। उनमें चिकित्सकके लिये प्रथम जिस नियमकी आवश्यकता है, वह है—रोग आरोग्यके लिये ज्ञानकी जरूरत। अर्थात् रोगका ज्ञान। अब कहते हैं—रोग दो प्रकारका होता है—एक **नया रोग,** दूसरा **पुराना।** नया रोग क्या है? नया रोग वह है—(क) नया रोग जीवनी-शक्तिपर तत्काल आक्रमण करके, स्वास्थ्यमें असाधारण परिवर्त्तन ला देता है। (ख) उसके लक्षण बहुत शीघ्र प्रकट होते हैं। (ग) उसकी क्रिया बहुत दिनोंतक नहीं चलती, इसका क्रिया-काल सीमित और अल्प रहता है। यदि उससे मृत्यु न हो जाये, तो, उस बँधे समयके भीतर उसे जाना ही पड़ेगा।

पुरानी बीमारी (Chronic disease) क्या है?—(क) इसकी उत्पत्ति पुरानी बीमारीके रोग-बीजसे होती है। (ख) यह बहुत धीमे भावसे चुपचाप जीवनी-शक्तिपर आक्रमण करती है। (ग) इससे बहुत तेजीसे रोग-लक्षण प्रकट नहीं होते। (घ) स्वास्थ्यमें तुरन्त परिवर्त्तन नहीं आ जाता। (ङ) यह धीरे-धीरे अपनी जड़ गहड़ाईतक जमाती है। (च) जीवनी-शक्ति इसे निकाल बाहर करनेकी आरम्भसे ही चेष्टा करती है; पर उसका सब प्रयत्न वृथा हो हो जाती है। (छ) अन्तमें जीवनी-शक्तिको हराकर, अपना प्रयत्न छोड़ बैठना पड़ता है और रोग अन्ततक अपने प्रभावका विस्तार करता जाता है। यही पुरानी बीमारी है।

निष्कर्ष यह निकला कि लक्षणोंको देखकर—रोगकी तेजी, वृद्धि—लक्षणोंका आविर्भाव आदिका क्रम देखकर चिकित्सको, पहले यह जान

लेना होगा कि यह नयी बीमारी (Acute disease) है या (२) पुरानी बीमारी (Chronic disease)।

[७३]

नयी बीमारीके कितने कारण हो सकते हैं ?

नयी बीमारियोंमें एक प्रकारकी ऐसी बीमारी होती है, जो व्यक्तिगत भावसे, मनुष्यपर आक्रमण करती है—इसका उत्तेजक कारण है, उस मनुष्यपर किसी कारणसे हानिकर प्रभाव पहुँच जाना। बहुत ज्यादा या बहुत कम खाना, बहुत अधिक शारीरिक परिश्रम, सर्दी लग जाना, बहुत गर्म हो जाना—लू लगना, भ्रष्टाचार, जीवनी-शक्तिपर आवश्यकतासे अधिक दबाव पड़ना प्रभृति या शारीरिक और मानसिक उत्तेजना प्रभृति, इस नयी बीमारीके उत्तेजक कारण हैं ; वास्तवमें ये सब पुराने सोरा दोष (Psora) के सामयिक उपद्रव हैं ; यदि नयी बीमारी बहुत भयंकर प्रकृतिकी न हुई, और जल्द ही दबा हो गयी, तो सोरा फिर अपनी स्वाभाविक सुप्त अवस्थामें जा पहुँचता है। इस नयी बीमारीका एक दूसरा प्रकार यह भी है कि वह कई मनुष्योंपर एक साथ ही आक्रमण करती है। यहाँ-वहाँ (किसीको उसी स्थानपर, किसीको वहाँसे कुछ दूर हटकर) उसका आक्रमण हुआ करता है। इसका उत्तेजक कारण आकाश, वायु, मिट्टी आदि पार्थिव पदार्थ या ग्रह-नक्षत्रोंकी गति परिवर्त्तन है ; बहुत थोड़े मनुष्योंमें ही इनका आक्रमण होने योग्य अनुकूलता पायी जाती है। इनके अनुरूप ही एक तीसरी श्रेणीकी नयी बीमारी होती है, इसमें प्रायः एक ही तरहका रोग, महामारीकी भाँति (Epide-mically) बहुतसे मनुष्योंको हुआ करता है। ये बीमारियाँ अकसर संक्रामक (Contagious) होती हैं, ये मनुष्योंकी घनी बस्तीमें फैलती हैं। इस श्रेणीकी बीमारीमें कितने

ही तरहके ज्वर[1] दिखाई देते हैं। इसी कारण एक ही जगह रहनेकी वजहसे जितने मनुष्य बीमार पड़ते हैं, सबमें एक ही प्रकारके लक्षण दिखाई देते हैं। यदि उनको योंही बिना औषधके छोड़ दिया जाय, तो थोड़े ही दिनोंमें इनके रोगीकी या तो मृत्यु हो जाती है या वे आरोग्य हो जाते हैं। महायुद्ध, बाढ़ और अकाल भी उनके उत्तेजक कारण या पैदा करनेवाले कारण हो सकते हैं। इनमें कुछ इस ढंगकी बीमारियाँ होती हैं, जो जीवनमें केवल एक बार मनुष्यपर आक्रमण करती हैं। जैसे—चेचक, खसरा, हूप खाँसी, आरक्त ज्वर, गण्ड-प्रदाह (गलसुजा) इत्यादि इसी श्रेणीमें हैं और कुछ ऐसी भी हैं, जिनकी बार-बार होनेकी सम्भावना रहती है। जैसे—प्लेग, समुद्र किनारेका पीला ज्वर, हैजा प्रभृति।

खुलासा—ऊपर बताया जा चुका है कि बीमारी नयी और पुरानी दो प्रकारकी है। इनमें नयी बीमारी तीन प्रकारकी होती है :—

(१) सर्दी-गर्मी, ज्यादा खा-पी लेना, अनाचार, भ्रष्टाचार, बहुत ज्यादा मेहनत वगैरह, कितने ही सामयिक कारणोंसे उत्पन्न होनेवाली बीमारियाँ।

ये बीमारियाँ, यद्यपि यह कहा जाता है कि सर्दी वगैरह ऊपर बताये भिन्न-भिन्न कारणोंसे पैदा होती है, पर वास्तवमें इनके भीतर भी एक रहस्य है। यह रहस्य है—सोरा नामका एक धातु-दोष—

---

१. साधारण चिकित्सा-प्रणालीवालोंका मत न माननेवाले होमियोपैथिक चिकित्सक (साधारण चिकित्सा-प्रणालीमें ऐसे ज्वरोंका नामकरण कर दिया गया है, जिसमें कि वे कहते हैं कि प्रकृति इनके सिवा कोई दूसरा ज्वर उत्पन्न ही नहीं कर सकती और जिनकी वे बँधे नियमसे चिकित्सा करते हैं) ज्वरोंका नाम, जैसे—जेल-ज्वर, पित्त-ज्वर, टाइफस ज्वर, सड़ा ज्वर, स्नायविक ज्वर या श्लेष्मा ज्वर नहीं स्वीकार करते ; बल्कि उनके विशेष लक्षणके अनुसार ही चिकित्सा करते हैं।

किसी प्रकारका व्यक्तिक्रम होनेपर इन रोगोंके रूपमें यह सोरा-दोष ही उभड़ पड़ता है और जब ये बीमारियाँ आरोग्य हो जाती हैं, तब वह फिर अपनी जगहपर छिपकर बैठ जाता है। यदि कोई कहे कि ऐसा नहीं है, तो उसका भी प्रमाण है—सर्दी-गर्मी या खान-पानका सबमें ही कुछ-न-कुछ व्यक्तिक्रम हुआ करता है; पर सभी तो—घरभर तो बीमार नहीं हो जाता। बीमार वही होता है, जिसमें कोई ऐसा धातु-दोष है, जिसने उसकी जीवनी-शक्तिको दुर्बल कर रखा है। दुर्बल करनेवाली शक्तियोंमें, सोरा-दोष प्रधान दोष है। यह जिसके शरीरमें रहता है, उसपर इन बीमारियोंका जल्द आक्रमण होता है। उन बीमारियोंका आक्रमण क्या होता है, वास्तवमें उन उत्तेजक कारणोंके संसर्गसे सोरा-दोष ही उभड़ आता है और इन रोगोंके दब जानेके बाद, फिर अपनी पूर्वावस्थामें चला जाता है।

(२) दूसरे प्रकारकी नयी बीमारियाँ हैं—हवा, मिट्टी, आग, आकाश तथा ग्रह-नक्षत्रोंकी क्रियाके कारण जो पैदा होती हैं। इन सब रोगोंमें यहाँ-वहाँ, दूर-दूरपर कुछ आदमी बीमार होते हैं। कुछ उनमें अच्छे हो जाते हैं, कुछ मर जाते हैं: इनका न तो कोई नामकरण ही हो सकता और न इनकी व्यापकताका कुछ ठिकाना ही है।

(३) तीसरा रोग है—संक्रामक रोग। यह कितने ही कारणोंसे उत्पन्न होती है। युद्धके बाद, व्यापक रूपमें, विशेषकर ऐसी बीमारियाँ पैदा होती और फैल जाती हैं। इसी तरह अकाल बाढ़ आ जाने आदिके बाद हुआ करता है। इनके आलावा, कुछ रोग-बीज हैं, जैसे—चेचक, खसरा, हूप खाँसी, आरक्त ज्वर आदि। ये ऐसे रोग उत्पन्न कर देते हैं।

पर इस तीसरी श्रेणीके दो भेद हो गये हैं:—

(क) एक वे संक्रामक बीमारियाँ, जो जीवनमें केवल एक बार होती हैं। जैसे—चेचक आदि। इनका दुबारा आक्रमण नहीं होता।

(ख) जो वार-वार होती हैं। जैसे—प्लेग, हैजा इत्यादि।

यह तीसरी श्रेणीकी बीमारी, खासकर उन स्थानोंमें होती है, जहाँ मनुष्योंकी घनी वस्ती है या जहाँ मेला वगैरह लगता है।

इनको यदि बिना इलाज किये छोड़ दिया जाये, तो या तो मनुष्य जल्द ही मर जायगा, अथवा अच्छा हो जायगा। इनका स्थित-काल अधिक दिनोंतकका नहीं होता।

[७४]

एलोपैथिक दवाओंके सेवनसे जो रोग पैदा होते हैं, उन्हें क्या कहा जाये ?

यह दुःखकी बात है कि ऐलोपैथिक चिकित्सा द्वारा अधिक मात्रामें लगातार तेज दवाएँ, जैसे—पारा; रसकपूर, पारेसे वने मलहम, सिलवर नाइट्रेट, आयोडिन, आयोडिनके वने मलहम, अफीम, वैलेरियन, सिनकोना वृक्षकी छाल, क्विनिन, डिजेटेलिस, प्रूसिक एसिड, सल्फर, सल्फ्युरिक एसिड, विरेचक दवाएँ, खून निकलना, जोंक लगवाना, नकली जखम या नासूर पैदा करना—इत्यादि पदार्थोंके आन्तरिक व्यवहार और बाहरी प्रयोगके कारण जो अनेक कृत्रिम बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं, वे ही आगे चलकर पुरानी बीमारी (Chronic disease के रूपमें परिणित हो जाती हैं। इन दवाओंसे कभी-कभी तो जीवनी-शक्ति वेहद कमजोर हो जाती है, कभी-कभी एकदम नष्ट नहीं होती, तो विकृत हो जाती है (प्रत्येक पदार्थसे एक विशेष ढंगसे) और वह इस तरह विकृति होती है कि इन विपरीत नाशकारी आक्रमणोंसे जान वचानेके लिये उसे भीतर एक प्रकारकी क्रान्ति मचा देनी पड़ती है, या तो शरीरके किसी अंशकी उत्तेजना और अनुभव-शक्ति हरण कर लेती है या वहुत अधिक मात्रामें इसे बढ़ा देती है, अथवा किसी अंशको फैला

या सिकोड़ देती है ; किसीको ढीला अथवा कड़ा बना देती है या किसी अंशको एकदम ध्वंस कर देती है। वे शरीरके विविध अंगोंमें—बाहर या भीतर—अनेक प्रकारके दोषपूर्ण परिवर्त्तन लाती हैं (शरीरको भीतर या बाहरसे अपंग बना देती हैं) ; हलांकि उनका उद्देश्य होता है—इस प्रकारकी नाशकारिणी शक्तियोंके बार-बार और शत्रुतापूर्ण आक्रमणोंसे जीवनी-शक्तिकी रक्षा करना।[1]

---

१. रोगको आराम करनेके लिये ब्रासोकसे बढ़कर अनुपयुक्त तथा अयौक्तिक प्रक्रिया किसी दूसरे ऐलोपैथने नहीं निकाली। यह रक्त निकालने या उपवास करनेवाली क्रिया घोर दुर्बल करनेवाली है। यह प्रक्रिया बहुत वर्षोंतक पृथ्वीके एक विस्तृत भागमें प्रचलित रही। कोई भी बुद्धिमान मनुष्य इससे किसी तरहका फायदा नहीं देख सकता, न औषध-सम्बन्धी सहायता ही इससे प्राप्त होती हैं। इसके विपरीत वास्तविक दवाका अन्ध भावसे भी यदि प्रयोग किया जाये, तो ऐसा हो सकता है कि सम-लक्षणवाली दवा पहुँच जाये और रोग आरोग्य हो जाये ; पर शिराओंसे खून निकालनेपर, तो एक साधारण बुद्धिवाले भी यह समझ सकते हैं कि जीवन घटा दिया जा रहा है। यह तो शोक-पूर्ण और निराधार सिद्धान्त है कि ज्यादाकर और प्रायः सभी रोग स्थानिक प्रदाहपर निर्भर करते हैं। यदि सच्चा स्थानिक प्रदाह भी हो, तो दवाओंसे अवश्य और बहुत जल्द आरोग्य हो सकता है और उनसे शिराओंका उपदाह बहुत जल्द दूर कर दिया जा सकता है, जो स्थानिक प्रदाहका आधार है। दवासे न तो ताकत ही घट सकती है और न रस-रक्त आदि ही निकल सकता है। रोगवाली जगहोंसे भी खून निकलनेसे, उन अंशोंमें और भी अधिक प्रदाह पैदा हो जाता है। इसलिये प्रदाहिक ज्वरमें कई पाउण्ड खून निकाल देना प्राणघातक क्रिया है। खासकर, जब कि कुछ ऐसी दवाएँ हैं, जो शिराओंकी औपघातिक अवस्था दूर कर सकती हैं और जिससे जरा भी रस-रक्त या ताकतका क्षय हुए बिना ही रोग तथा रक्त-संचय दोनों ही दूर हो सकते हैं। इतनी अधिक खूनकी कमी फिर जीवनपर पूरी नहीं की जा सकती ; क्योंकि सृष्टिकर्त्ता द्वारा रक्त-निर्माणके जो यंत्र बनाये गये हैं, वे इतने कमजोर पड़ जाते हैं कि वे रक्त बना भले ही दें, पर उतना अच्छा नहीं बना सकते और इस कल्पित प्लेथोराके लिये

खुलासा—पुराने रोगके लक्षण बतानेसे पहले, हैनिमैन कहते हैं कि ऐलोपैथ चिकित्सक अपनी चिकित्सा-प्रणाली द्वारा, किनिन, कैमोमेल, सिलवर नाइट्रेट प्रभृति ऐसे तेज पदार्थ खिलाते हैं, जिनसे पैदा हुई नकली बीमारी बहुत ही भयंकर हो जाती है अथवा ऐसे बाहरी पदार्थ लगवा देते हैं, जिनसे बीमारीका रूप ही परिवर्त्तित हो जाता है। दुःख है कि उन्हें भी हमें पुरानी बीमारियोंके अन्तर्गत ही रखना पड़ता है। ये सब दवाएँ, रोगीके शरीरको जर्जरित कर डालती हैं। पुरानी बीमारियोंके सम्बन्धमें ७२वें सूत्रमें, उन्होंने बताया है कि पुरानी बीमारियाँ, धीरे-धीरे शरीरपर प्रभाव जमाकर, उसे ध्वंस कर डालती हैं। बहुत दवाओंके सेवनके कारण, पैदा हुई बीमारीकी भी, यही अवस्था रहती है। वे भी धीरे-धीरे, जीवनी-शक्तिपर अधिकार जमाकर, उसे ध्वंसकी ओर ही ले जाती हैं। स्वाभाविक पुरानी बीमारी, तो ठीक-ठीक दवा पड़नेपर आरोग्य हो सकती है; पर इन दवाओंसे पैदा हुई बीमारीके कारण शरीरका क्या परिणाम होता है, यह आगे देखिये।

यह कितना असम्भव है कि उसने रोगीकी जो नाड़ी इतनी शान्त थी, उसमें थोड़ी ही देरमें इतनी तेजी पैदा कर दी, जिसे रक्त निकालकर दूर करना पड़ा। किसी भी मनुष्य या किसी भी रोगमें कभी बहुत अधिक रक्त या अत्यधिक बल हो ही नहीं सकता; बल्कि इसके विपरीत प्रत्येक रोगीकी ताकत कुछ-न-कुछ घट ही जाती है—यदि ऐसा न होता तो जीवनी-शक्ति रोग बढ़ना ही रोक देती। अतएव, स्वयं ही दुर्बल रहनेवाले रोगीको इस तरह खून निकालकर और भी दुर्बल कर देना, अवैज्ञानिक तथा निर्दयतापूर्ण कार्य है। इससे उतनी कमजोरी आ सकती है, जितनी ध्यानमें भी नहीं आती। यह एक प्राणघातक दुष्प्रथा है, जो अनुपयुक्त और निर्दय, भित्तिहीन न था भ्रमपूर्ण सिद्धान्तपर अवलम्बित है। जिसका प्रयोग शक्तिपूर्ण रोगको दूर करनेके उपाय शक्तिपूर्ण दवाएँ देनेके बदले किया जाता है।

[७५]

क्या ऐलोपैथिक दवाओंसे उत्पन्न व्याधियाँ असाध्य होती हैं ?

ऐलोपैथीकी आरोग्य न कर सकनेवाली प्रथासे, मानव-स्वास्थ्यपर लगातार आघात होनेके कारण, जो अनेक पुरानी बीमारियाँ पैदा होती हैं, वे पुरानी बीमारियोंमें, सबसे अधिक भयंकर या दुसाध्य होती हैं मुझे दुःखसे कहना पड़ता है कि जब इनकी क्रिया अधिक अग्रसर हो जाती है, तो उनके आरोग्यके लिये, कोई दवा खोज निकालना या प्रयोग करना प्रायः असम्भव हो जाता है।

खुलासा—हैनिमैनकी यह बात बहुत ध्यान देने योग्य है। होमियोपैथीमें सम-लक्षणके अनुसार चिकित्सा होती है। रोग हुआ, जीवनी-शक्तिपर रोगने आक्रमण किया, और, उसने तुरन्त शरीरके बाहर लक्षण फेंके—जिससे मालूम हो गया कि अमुक ढंगका रोग हुआ है और उसीके अनुसार दवा दी गयी ; परन्तु जब कोई थोड़ी ही देरके लिये, लाभ दिखानेवाली, और विपरीत लक्षणवाली दवा पड़ जाती है, तो, रोगके असली लक्षण, जिनके सहारे दवा चुनी जाती है, दब जाते हैं, उनका विकास बन्द हो जाता है। इसके अलावा, विपरीत लक्षणवाली दवा पड़ते-पड़ते जीवनी-शक्ति निस्तेज और शरीर दुर्बल हो पड़ता है। इससे भी लक्षण बाहर नहीं निकल पाते, रोग भीतर-ही भीतर अपना घर करता चला जाता है। यही कारण है कि जब बहुत दवा खिलायी जा चुकी होती है, तब वास्तविक रोग-लक्षण मिलना असम्भव हो जाता है ; क्योंकि अनाप-शनाप औषध व्यवहारसे शरीमें अनेक प्रकारकी क्रियाएँ होती हैं और उनका कुछ-न-कुछ प्रभाव रह जाता है—वह भी मूल रोगका अंग बन जाता है और इस तरह रोगका विस्तार होता चला जाता है। उधर जीवनी-शक्ति निस्तेज और निष्क्रिय हो जाती है। वह इस कृत्रिम और स्वाभाविक रोग समूहका सामना नहीं कर पाती।

अतएव, रोग आरोग्य होना भी मुश्किल हो जाता है। यही बात आगे और भी खुलासा बतायी है।

[७६]

पेलोपैथिक दवाओंसे पैदा हुई बीमारीका प्रतिकार कैसे हो सकता है ?

मंगलमय भगवानने केवल प्राकृतिक रोगको दूर करनेके लिये ही, होमियोपैथी-रूपी उपायकी सृष्टि की है ; परन्तु नुकसान करनेवाली दवाओंके बहुत दिनोंतक लगातार प्रयोग द्वारा, जो सब मिथ्या चिकित्सा हुआ करती है, उससे जो भीतरी और बाहरी बीमारियाँ, मानव-शरीरमें उत्पन्न हो जाती हैं, उनका प्रतिकार जीवनी-शक्तिको स्वयं ही करना पड़ता है (भीतरी यदि कोई पुरानी बीमारीका बीज छिपा रहे, तो उसको जड़से उखाड़ फेंकनेकी चेष्टा करनी पड़ती है)। यह तभी सम्भव है, यदि जीवनी-शक्ति बहुत दुर्बल न हो पड़े। इतनेपर भी, कई बरसोंतक उसे कठिन परिश्रम करना पड़ेगा, परन्तु ऐलोपैथिक चिकित्साके कारण, जो अनेक प्रकारकी विकृत अवस्थाएँ, मानव शरीरमें उत्पन्न हो जाती हैं, उन्हें दूरकर स्वाभाविक स्वास्थ अवस्थामें ले आनेका उपाय, मनुष्यके हाथोंमें न है और न हो सकता है।

खुलासा—ऐलोपैथिक दवाओंकी बड़ी-बड़ी मात्राएँ, बहुत दिनोंतक, सेवन करनेका यह परिणाम होता है कि जीवनी-शक्ति दुर्बल हो जाती हैं, और शरीर नाना प्रकारकी जटिल और दूस्साध्य व्याधियोंका मन्दिर बन जाता है। ऐसी अवस्थामें एक ही उपाय रह जाता है अर्थात् दवाओंका सेवन बन्दकर पथ्यसे रहना और जीवनी-शक्तिको अपनी क्रिया करनेका अबाध अवसर देना ; क्योंकि जीवनी-शक्ति, अपनी गौण-क्रिया द्वारा, उस औषधका प्रभाव दूर करनेकी अवश्य ही चेष्टा करती रहेगी। बीच-बीचमें, सम-लक्षण चिकित्सावाले चिकित्सकको यह देखना

चाहिये कि इसमें सोरा, सिफिलिस या साइकोसिस रोग-बीज तो सम्मिलित नहीं हैं—उनको निकलने और इस तरह जीवनी-शक्तिको सहारा देनेकी चेष्टा करते रहना चाहिये। यह सभी, उसी अवस्थामें सम्भव हो सकता है, यदि जीवनी-शक्ति बहुत ही दुर्बल न हो गया हो। यदि जीवनी-शक्ति एकदम दुर्बल एवं अकर्मण्य हो गई हो, तो अनुकूल प्रतिक्रियाका प्रकट होना सम्भव नहीं है और न स्थायी पुरानी बीमारियोंके रोग-बीज बाहर निकाले ही जा सकते हैं। इसीलिये, हैनिमैनका यह कथन सर्वथा उपयुक्त है कि ऐसी अवस्थाको दूरकर स्वास्थ्यको लौटा लाना, मानवी चिकित्साकालसे परे हैं, और न तो वर्त्तमानमें ऐसी कोई चिकित्सा-प्रणाली है और न हो सकती है, जो उसे आरोग्य कर सके।

ऐसी दशामें उचित कर्त्तव्य यही है कि रोग-समूहको धीरे-धीरे तोड़ा जाय और जीवनी-शक्तिको प्रोत्साहन दिया जाय। खान-पानमें संयम और परिवर्त्तन कराया जाय; मूल विषका प्रतिकार किया जाया।

एक बात और—इस प्रकरणमें हैनिमैनने ऐलोपैथों द्वारा त्यक्त रोगियोंकी कैसे चिकित्सा करनी चाहिये, इसका भी एक अभास दे दिया है; जिसपर सदैव लक्ष्य रखना चाहिये।

[७७]

क्या ऐसी भी कुछ बीमारियाँ हैं, जिनको पुरानी बीमारी कहना भूल है?

एक प्रकारकी और भी बीमारी है, जो बहुत दिनोंतक शरीर-पालन-सम्बन्धी नियमोंको न माननेके कारण पैदा होती है। इसे पुरानी बीमारी कहना अनुपयुक्त है। बहुत दिनोंतक स्वास्थ्य भंग करनेवाली शराब पीना, खाने-पीनेकी गड़बड़ी, स्वास्थ्य भंग करनेवाली नाना प्रकारकी आदतें, जीवनके लिये आवश्यक पदार्थोंका बहुत दिनोंतक प्राप्त

न होना, अस्वास्थ्यकर स्थानमें रहना, खासकर दलदल-भरी तर भूमिमें वास करना, तहखाना या बन्द जगहोंमें रहना, खुली हवामें न रहना, व्यायाम न करना, अधिक शारीरिक या मानसिक परिश्रम करना, हमेशा चिन्तामें पड़े रहना प्रभृति कारणोंसे यह बीमारी पैदा हो जाती है। इस तरह अपने हाथोंसे पैदा की हुई ये बीमारियाँ, रहन-सहनका तरीका बदल देने या उन्नत कर देनेपर, आप ही अच्छी हो जाती हैं, यदि भीतर किसी पुरानी बीमारीका बीज छिपा न रहे। इस हालतमें, इन्हें पुरानी बीमारी नहीं कहा जा सकता है।

खुलासा—यह रोग निदानका विषय है। चिकित्सकको रोगीके व्यवहार और रहन-सहनपर खयाल रखकर देखना पड़ता है कि रोगीकी उन्नतिका कारण क्या है? बुरे अभ्यास, अस्वास्थ्यकर स्थान तथा अनुपयुक्त भोजन तथा कसरत आदि न करनेके कारण, कुछ ऐसी बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं, जिन्हें देखकर पुरानी बीमारीका भ्रम होता है। सावधान चिकित्सक, इस अवस्थामें उसकी परिस्थिति और रहन-सहनके ढंगको जाँचकर देखता है कि रोगका कारण क्या है? कोई पुरानी बीमारीका बीज भीतर छिपा है या केवल रहन-सहनके कारण, यह रोग हुआ है। यदि रहन-सहनका दोष ही कारण मालुम हो, तो, उसका ढंग बदल देता है। इतनेसे ही वह बीमारी अच्छी हो जाती है। यदि रोग-बीज देखता है, तो औषधका प्रयोग करता है। हैनिमैनका कथन है कि इस ढंगके रोगको पुरानी बीमारी नहीं कहना चाहिये।

[७८]

वास्तविक पुरानी बीमारी क्या है?

यथार्थ और स्वाभाविक पुरानी बीमारियाँ वे हैं जो किसी दोषके बीजके कारण उत्पन्न होती हैं। यदि उपयुक्त औषधका प्रयोग न कर,

उन्हें योंही छोड़ दिया जाये, तो वे दिनोंदिन बढ़ती जाती हैं, और बदतर होती जाती हैं, चाहे रोगीको कितना भी, मानसिक और शारीरिक आरामकी अवस्थामें रखा जाये, पर वह जीवनके अन्तिम मुहूर्त्ततक बढ़ती और कष्टका कारण बनी रहती है। ये ही मानव-जातिकी (उनके आलावा, जो अनुचित औषध-प्रयोगसे होती हैं—सूत्र ७४) सबसे अधिक और प्रधान कष्टदायिनी हैं ; क्योंकि बलवान शरीर, नियमित रूपसे जीवन बिताना और जीवनी-शक्तिकी असाधारण ताकत ये सब किसी तरह भी उसको जड़से नहीं दूर कर सकते।[1] ।

खुलासा—७४वें सूत्रमें ऐलोपैथिक द्वारा उत्पन्न पुरानी बीमारियाँ बतायी गई हैं। इसके बाद एक तरहकी और भी बीमारी बतायी, जिसे लोग भ्रमवश पुरानी बीमारी कहते हैं। अब प्राकृतिक पुरानी बीमारी किसे कहते हैं? यह बताया है।

पुरानी बीमारी वह है, जो—(१) किसी प्राचीन रोगके बीजसे उत्पन्न होती है। ये प्राचीन रोगके बीज हैं—सोरा (Psora) साइकोसिस (Sycosis—प्रमेह) और सिफिलिस (उपदंश—Syphilis)। इन तीनों धातु-दोषोंका अंश जिस रोगीमें पहुँच गया

---

१. प्राचीन रोगका बीज शरीरमें प्रवेश करनेपर भी जबतक जवानी चढ़ती रहती है, स्त्रियोंको नियमित ऋतु होता है तथा मन, शरीर और हृदय बलवान रहता है, तो वर्षोंतक यह बीज या कारण छिपा-सा पड़ा रहता है, पहचानमें नहीं आता। रोगीके परिवार तथा जान-पहचानवालोंको वह पूर्ण स्वस्थ मालूम होता है कि वंश-परम्परागत अन्य रूपसे जो रोग हो गया था, वह आरोग्य हो गया। पर इसके बाद जब अवस्था ढलती है, जब शरीरपर विपरीत घटनाओंका प्रभाव होता है, तो यह निश्चित है कि वे नवीन रूप धारणकर उत्पन्न हो जाते हैं, बहुत तेजीसे बढ़ते हैं और जीवनी-शक्तिके दुर्बल हो जानेके कारण और चिन्ता तथा अन्य दुर्बल करनेवाले कारणोंसे और खासकर अनुपयुक्त चित्साके कारणसे जब जब जीवनी-शक्ति दुर्बल हो पड़ती है, तो रोग बहुत तेजीसे बढ़ता है तथा महान कष्टदायक हो पड़ता है।

है—वह स्वयं अर्जित हो या वंश-परम्परासे आया हो, वह रोगी प्राचीन रोग-ग्रस्त है। इससे उसका छुटकारा तबतक नहीं है, जबतक मूल दोष दूर करनेवाली दवा, उसे न मिले।

(२) इस बीमारीका "लक्षण" यह है कि मूल दोष चुपचाप शरीरमें प्रवेश कर जाता है और बढ़ा करता है, यदि सम-लक्षणवाली उपयुक्त दवा न दी गयी और उसकी गति न रोकी गयी, तो जीवनभर, वह नाना प्रकारसे कष्ट देता रहता है और अन्तमें प्राण लेकर ही छोड़ता है।

(३) शारीरिक बल, जीवनी-शक्तिका तेज आदि उसकी वृद्धिको नहीं रोक सकते।

[७९]

उपदंश-विष और प्रमेह-विष क्या है ?

अबतक उपदंश-विष ही एक ऐसा दोष (Miasm) माना गया था, जो यदि आरोग्य नहीं हो जाता, तो जीवनके साथ ही जाता है। साइकोसिस (वास्तविक सूजाक), जो इसी तरहका जीवनी-शक्ति द्वारा विना उपयुक्त चिकित्साके दूर न किया जानेवाला विष है, वह पुराने रोग-बीजसे उत्पन्न विशेष प्रकारकी बीमारी न मानी जाती थी। इस रोगसे उत्पन्न मस्सोंको दूरकर चिकित्सक समझ लेते थे कि रोग आरोग्य हो गया; परन्तु सदा बने रहनेवाले दोष, जिनसे बराबर एक-न-एक प्रकारकी बीमारी लगी रहती है, उसपर उन्होंने ध्यान ही न दिया था। अतएव, यह निश्चित है कि यह भी पुरानी बीमारीके अन्तर्गत हैं।

खुलासा—पुरानी बीमारियोंके बीज या प्रधान धातु-दोष तीन हैं—यह पहले बताया जा चुका है। उनमें एक सिफिलिस या उपदंश

दोष है। यह उपदंश विष जिसके शरीरमें प्रवेश कर जाता है, उसका प्राण ही लेकर छोड़ता है; पर यदि उपयुक्त चिकित्सा हो गयी, तो छोड़ भी जाता है। उपदंशकी यह भयंकरता अवतक सभी चिकित्सक स्वीकार करते आये हैं और सभी मानते आये हैं कि यह एक स्थायी रोगके समान है; परन्तु एक और वैसा ही भयंकर विष है, और वह है—सुजाकका विष। यह भी जिसके शरीरमें प्रवेश कर जाता है, उसे जीवनभर तड़पाता रहता है; पर होता यह है कि इसकी वजहसे पैदा हुए उद्भेद यदि दवाओंसे अच्छे हो गये, तो चिकित्सक समझ लेते हैं कि रोग आरोग्य हो गया; परन्तु वास्तवमें रोग आरोग्य नहीं होता। होता यह है कि तीव्र औषधियोंके प्रयोगसे, उसके प्रकट हुए लक्षण, भीतर छिपकर बैठ जाते हैं, और जीवनभर तकलीफ देते हुए, स्वास्थ्यको एकदम नष्ट कर देते हैं।

[८०]

सिफिलिस और साइकोसिसके सिवा समस्त पुरानी बीमारियोंको पैदा करनेवाला कौन है?

अवतक, जिन दो पुरानी बीमारियोंके बीजोंका वर्णन हो चुका है, उनसे कहीं अधिक जबर्दस्त और फैलनेवाला यह सोरा (Psora) अर्थात् खाज-खुजलीका दोष है। जिस तरह प्रथम दोनों दोषोंमें उपदंश मैथुनसे उत्पन्न जखम (Chancre) द्वारा और साइकोसिस जननेन्द्रियके छत्तेदार मस्सों द्वारा प्रकट होता दिखाई देता है, उसी तरह सोरा भी पहले शरीरमें फैलकर, चर्मपर कुछ दानों या उद्भेदों द्वारा प्रकट होता है। कभी-कभी, सिर्फ कुछ फुन्सियाँ प्रकट होती हैं, और उनमें बहुत जलन और खुजली होती है (एक विचित्र गन्ध भी आती है)। यही भयंकर भीतरी प्राचीन रोग-विष सोरा कितनी ही क्या,

बल्कि अनगिनत[1] बीमारियोंका पैदा करनेवाला है। ये बीमारियाँ स्नायविक दौर्बल्य, हिस्टीरिया, व्याधि-शंका, उन्माद, उदासीनता, बकवादीपन, पागलपन, मृगी, अकड़न—सब तरहके टंकार, अस्थियोंकी कोमलता, मेरुदण्डका टेढ़ापन, गठिया, अर्श, कामला, नील रोग, शोथ, रजोरोध, उदर, नाक, फेफड़ा, मूत्राशय, गर्भाशय आदिसे रक्तस्राव, दमा, फेफड़ेका जखम, ध्वजभंग और सन्तानहीनता, आधे सिरका दर्द, बहरापन, मोतियाबिन्द, अन्धापन, मूत्रयंत्रकी पथरी, पक्षाघात, इन्द्रिय-दोष, नाना प्रकारके दर्द वगैरह अलग-अलग रोगोंके नामसे विख्यात हो रहा है।

---

१. मैंने इन अनगिनती पुरानी बीमारियोंकी खोजमें बारह बरस बिताये हैं और इतने समयमें मैं इसके सम्बन्धमें उस सत्यका पता लगाता रहा हूँ, जो अबतक सभी अन्वेषकोंकी दृष्टिमें नहीं आया था। साथ ही इसकी प्रधान दवाओंका भी खोज करता, रहा हूँ (ऐण्टिसोरिक), जो भिन्न-भिन्न रूपोंवाले, हजारों तरहवाले रोगोंको सामूहिक रूपसे आरोग्य करनेवाली हैं। अपने ग्रन्थ प्राचीन रोगमें (खण्ड ४, ड्रस्डेन, अर्नाल्ड, द्वितीय संस्करण) मैंने इस सम्बन्धके अनुभव और अभिज्ञतायें लिखी हैं। जबतक मुझे इसका भरपूर ज्ञान न हुआ था, तबतक मैं भी सभी पुरानी बीमारियोंकी अलग-अलग उन दवाओंसे चिकित्सा करना सिखाता था, जिसका उस समयतक स्वस्थ पुरुषोंपर होनेवाला प्रभाव जाँच लिया था। इस तरह मेरा मत माननेवाले सभी शिष्य लक्षण-समूहके अनुसार ही इनकी चिकित्सा करते थे और इससे यहाँतक रोग आरोग्य होते थे, कि जिनकी बीमारी आरोग्य हो जाती थी, वे आरोग्यदायिनी इस नवीन कलापर अत्यन्त हर्ष प्रकट करते थे। इससे भी कितनी अधिक प्रसन्नताकी बात यह है कि इच्छित पदार्थ करीब-करीब प्राप्त हो गया है कि अब बहुत-सी ऐण्टिसोरिक होमियोपैथिक दवाओंका, जो खासकर सोरा-दोषसे उत्पन्न बीमारियोंके लिये उपयोगिनी है, आविष्कार हो गया है और उनके प्रयोग तथा प्रस्तुत करनेकी विशेष प्रणाली भी प्रकाशित कर दी गई है और उसमेंसे चिकित्सक जिस रोगको वे आरोग्य करना चाहते हों, उसकी सम-लक्षणके अनुसार दवा चुनकर प्रयोग कर सकते हैं। इन सोरा-विष-नाशिनी दवाओंके प्रयोगसे परिपूर्ण और सम्पूर्ण आरोग्यके द्वारा और भी सेवा हो सकती है।

खुलासा—ऊपर सिफिलिस और साइकोसिस नामके दो प्रधान दोषों (Miasm) का वर्णन हो चुका है। इनमें सिफिलिस अर्थात् उपदंशका यह प्रभाव होता है कि लिंगेन्द्रियपर जखम हो जाता है। साइकोसिस सूजाकका उपद्रव है, तथा यह भी रतिज रोगके अन्तर्गत ही है। इसमें जननेन्द्रियके ऊपर छत्तेदार मस्से हो जाते हैं; परन्तु इन दोनोंकी क्रिया यद्यपि आगे चलकर सम्पूर्ण यन्त्रों और अंग-प्रत्यंगोंपर प्रकट होती है, पर एक ही किस्मकी होती है, लेकिन सोरा इन दोनोंसे अधिक भयंकर और भिन्न दोष है। यद्यपि शरीरपर दो-चार फोड़े-फुन्सियोंके रूपमें, इसका प्रदर्शन होता है, उनमें जलन होती है, परन्तु वास्तवमें यह अनगिनत रोगोंका जन्मदाता है। इन रोगोंमेंसे कुछके नाम ऊपर बताये गये हैं। इनपर ध्यान देनेसे ही, मालूम होता है कि यह कितना भयंकर विष है। यह आदि रोग-बीज है। हैनिमैनने, अपने 'क्रानिक डिसीजेज' नामक पुस्तकमें लिखा है कि चौंतीस सौ वर्ष पूर्व, मोसेजने इसका जिक्र किया था। यह छूतकी बीमारी है। स्पर्शदोषसे ही एक रोगीका विष दूसरेमें प्रवेश कर जाता है। इसीलिये हैनिमैन कहते हैं कि यह बहुत ही फैलनेवाला है, किस तरह और कितनी शीघ्रतासे यह एकसे दूसरेमें चला जाता है, इसका कुछ भी पता नहीं लगता।

दूसरी बात, इसका बाहरी विकास है। सोराका बाहरी विकास, फोड़े-फुन्सियोंके रूपमें होता है। लोग इसे साधारण रोग समझते हैं और मलहम आदि लगाकर आरोग्य करना चाहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वह अपनी बहिर्मुखी क्रिया बन्दकर भीतर प्रवेश कर जाता है या छिपाकर बैठा रहता है और फिर भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्रकट होता है। ऊपर जो बीमारियाँ बतायी गयी हैं, वे भीतर प्रवेश किये हुए सोराके ही भिन्न-भिन्न प्रदर्शन हैं।

[८१]
सोरासे क्या हानियाँ होती हैं?

यह बहुत पुराने संक्रामक रोगका बीज, सैकड़ों युगोंसे लगातार मनुष्य शरीरमें फैलता जा रहा है, यह लाखों नर-नारियोंमें प्रवेशकर चरम सीमापर पहुँच गया है। इसीपर ध्यान देनेसे, हमलोगोंको मालुम हो सकता है कि मानव-जातिमें, किस तरह भिन्न-भिन्न प्रकारके रोग फैल रहे हैं, खासकर मनुष्यके जन्मगत शारीरिक गठनकी भिन्नताके अलावा कितने ही प्रकारकी घटनायें[1] इन पुरानी बीमारियोंके (सोराका गौण-लक्षण) पैदा होनेमें किस तरह सहायता दे रही हैं। इस बातपर भी जब हमलोग विचार करते हैं, तो उस समय आश्चर्यमें रह जाना पड़ता है कि सोरासे किस तरह भीतरी और बाहरी, अनगिनत प्रकारके दोष, चोट, विकार और रोग पैदा हो सकते हैं। जिनका ऐलपैथिक-वाले अपने निदान-शास्त्रके[2] अनुसार अलग-अलग नाम रखते आये हैं।

---

१. सोराके पुरानी बीमारीमें परिवर्त्तन हो जानेके कारणोंसे कभी-कभी रहनेकी स्थानकी विशेष प्रकारकी हवा, बच्चोंकी शारीरिक और मानसिक शिक्षा-दीक्षा—ये दोनों भी हैं। इन दोनोंपर भी यदि आरम्भमें ध्यान नहीं दिया जाता या देरसे ध्यान दिया जाता है या बहुत अधिक ज्यादती की जाती है या जीवनमें या व्यवसायमें दुरुपयोग किया जाता है अथवा खान-पान, रहन-सहन, काम-वासना, अभ्यास तथा नाना प्रकारके रीति-रिवाजपर ख्याल नहीं किया जाता, तो वे भी सोराको प्राचीन रोगमें परिवर्त्तन कर देनेके कारण बन जाते हैं।

२. किस तरह इन निदान-शास्त्रके ग्रन्थोंमें इन रोगोंके बड़े-बड़े नाम लिखे गये हैं, इनके बहुतसे विभिन्न रोग-लक्षण लिखे गये हैं, पर वे सब आपसमें एक लक्षणके कारण मिल जाते हैं। जैसे—सविराम ज्वर, कामला, शोथ, क्षय, श्वेत-प्रदर, अर्श, वात, संन्तास, अकड़न या टंकार, हिस्टीरिया (मूर्च्छा-वायु), व्याधि-शंका, उन्माद, पागलपन इत्यादि। ये सभी एक ही प्रकारकी बीमारियाँ हैं; पर केवल नाम रख दिये जानेके कारण एक निश्चित तरीकेके अनुसार इनका अलग-अलग इलाज होता है। इस नामोंके अनुसार इनकी चिकित्सा कैसे उचित कहा जा सकती है? इसके

खुलासा—यद्यपि यह वचन जरा घुमा-फिराकर लिखा गया है; परन्तु इसका तात्पर्य यह है कि सोरा नामक रोग-वीज वहुत पुराना है, कितने दिन इसे प्रकट हुए वीते—यह कोई भी वता नहीं सकता, पर है यह अवश्य और नाना प्रकारके रूप धारणकर यह लोगोंको सता रहा है। लाखों नर-नारियोंपर इसने आक्रमण किया है। एक तो यह संक्रामक होनेके कारण अत्यन्त सरलता-पूर्वक एकसे दूसरे शरीरमें चला जाता है;

अलावा, यदि इलाज एक ही तरहका नहीं हो सकता है, तो फिर नाम रखनेकी ही क्या जरूरत है, जिससे खास तरहके इलाजकी स्वीकृति प्राप्त होती है। डा० फ्रिजका कहना है कि उसी नामसे दूसरी-दूसरी वीमारी भी जानी जा सकती है। इनके अलावा, वे वीमारियाँ भी जो वहुव्यापक रूपसे उत्पन्न होती और फैलती हैं और प्रत्येक वारको महामारी या वहुव्यापकतामें अलग रूप धारणकर आती हैं और एक ऐसे विचित्र स्पर्शाक्रमक सिद्धान्तके अनुसार उत्पन्न होती हैं, जिनका अवतक हमलोगोंको पता नहीं हैं, उनका भी प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीमें खास-खास नाम रख दिया गया है, मानो वे सव जानी हुई और निश्चित वीमारियाँ हों, जो वरावर एक ही रूपमें उत्पन्न होती हों। जैसे—अस्पतालका ज्वर, जेलका वुखार, खीमेका वुखार, सड़ा वुखार, पित्त-ज्वर स्नायविक ज्वर, श्लैष्मिक ज्वर आदि। यद्यपि ऐसे ज्वर प्रत्येक वहुव्यापकताके समय एक नया ही रूप धरकर सामने आते हैं, पहलेकी भाँति कभी नहीं पैदा होते, प्रत्येक वार, उनमें वहुत अन्तर रहता है, उनके भोग-कालमें अन्तर रहता है तथा उनके लक्षण और सम्पूर्ण रूपमें भी प्रभेद रहता है। पहले जो रोग वहुव्यापक रूपमें पैदा हुआ था, उससे दूसरी वहुव्यापकताके रोगमें अन्तर रहता है और इसी तरह हरेक व्यापकतामें वरावर ही उनके लक्षणोंमें इतना अन्तर रहता है कि उनका जो कुछ नाम रखा गया हो और उनके कारणकी जो कुछ धारणा हमलोगोंने वना रखी हो, उसमें फर्क आ जाता है। अतएव, एक वारके निदान शास्त्रके अनुसार रखे हुए नामको ही लक्ष्य वनाकर उनकी चिकित्सा करना, कभी तर्क सिद्ध नहीं हो सकता। केवल डा० सिडेनहैमने इस वातपर ध्यान दिया था। इसीलिये उन्होंने लिखा था (Obs. med. Chap II De morb. epid.) कि किसी वहुव्यापक रूपमें पैदा हुई वीमारीको पहलेके अनुरूप न समझ लेना चाहिये और उसके अनुसार ही दूसरेको चिकित्सा न करनी चाहिये।

दूसरे आवहवा, रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा आदिके दोषसे भी, शरीरमें प्रस्फुटित हो पड़ता है ; क्योंकि इन अवस्थाओंमें, इससे मनुष्य अपनी रक्षा नहीं कर सकता। इसी तरह यह सोरा-दोष बढ़ता जाता है। दूसरी बात यह कि आरम्भमें, इस सोराका दिखावा यह होता है कि फोड़े-फुन्सियाँ शरीरपर निकलती हैं। उनको वाहरी प्रयोगकी दवाएँ देकर जब दवा दिया जाता है, तो जिस प्रकार अनेक रंग-रूप लेकर मनुष्य जन्म ग्रहण करता है, उसी प्रकार अनेकानेक रूप धारणकर यह भी प्रकट होता है। बीज वही रहता है, शाखा-प्रशाखाएँ कितने ही आकार-प्रकारकी होती हैं। इस अवस्थामें नाना प्रकारके लम्बे-चौड़े नाम रखकर रोगोंका अलगाव कर देनेसे कोई लाभ नहीं है। इन नामोंके कारण भ्रम हो जाता है और कोई फायदा नहीं निकलता। सम्पूर्ण लक्षणको लेकर चिकित्सा करनी पड़ती है, नामसे कोई लाभ होनेकी सम्भावना नहीं है।

इससे यह स्पष्ट मालूम होता है कि किसी सच्चे चिकित्सकके लिये ये नाम किसी उपयोगके नहीं हैं, जो यह समझता है कि उसे रोगको जाँचना और आरोग्य करना है, उनके कुछ खास लक्षणोंकी समानताके अनुसार दिये हुए नामसे काम न चलेगा, बल्कि प्रत्येक रोगीके सार्वाङ्गिक लक्षण-समूहोंपर नजर रखनी पड़ेगी और आरोग्य करना पड़ेगा ; उसपर सरसरी नजर डालकर दवा देनेसे कर्त्तव्य पालन न होगा।

अब यदि यह कहा जाय कि किसी रोगीके विषयमें वात करने या किसी साधारण मनुष्यको समझानेके लिये नामकी जरूरत पड़ती है, तो उस समय उसका सामूहिक नाम देकर वात करनी चाहिये। जैसे—एक तरहका सेण्टविटसका नाच, एक प्रकारका शोथ, एक ढंगका टाइफस, एक किस्मका सविराम ज्वर आदि (बल्कि इन नामोंके दुष्प्रभावसे बचनेके लिये)। यह कभी न कहना चाहिये कि उसे सेण्ट विटस नर्त्तन रोग या शोथ रोग या जड़ा बुखार हो गया है, क्योंकि ये वास्तवमें ये बीमारियाँ नहीं हैं और इसलिये अविच्छिन्न प्रणालीका निश्चित नामकरण न करना चाहिये।

८२

सोरा रोगनाशक जिन बहुत-सी दवाओंका आविष्कार हो गया है, उनसे क्या लाभ हुआ है।

यद्यपि पुरानी बीमारियोंके बड़े कारणका आविष्कार हो गया तथा सोरा-दोष-नाशक बहुत-सी दवाओंका भी पता लग गया; और इस तरह चिकित्सकको, इस बातकी अधिक जानकारी प्राप्त हो गई है कि अधिकांश रोगोंमें उसे क्या दूर करना है, तो भी, प्रत्येक होमियोपैथिक चिकित्सकका यह परम कर्त्तव्य है—और उसके लिये अनिवार्य भी है कि वह प्रत्येक पुराने रोग (सोरा) में उन सभी बातोंकी जानकारी प्राप्त करे, जो उस रोगीके सम्बन्धमें आवश्यक हों और जिनका जानना—इस आविष्कारसे पहले भी जरूरी था। जबतक प्रत्येक रोगीका वैयक्तिक ढंगसे निरूपण न किया जाय, तबतक वास्तविक आरोग्य प्राप्त नहीं होता है। इस जाँच या खोजमें उस समय अन्तर करना पड़ता है, जब बीमारी नयी हो और जल्दी-जल्दी बढ़नेवाली हो। होता यह है कि पुरानी बीमारीके अपेक्षा नयी बीमारीके प्रधान लक्षण सब शीघ्र ही बुद्धिमें आ जाते हैं और इसी वजहसे रोगकी प्रतिमूर्त्ति अंकित करनेमें बहुत कम समय लगता है और रोगीसे बहुत थोड़े प्रश्न करने पड़ते हैं तथा सभी बातें करीब-करीब आप ही प्रत्यक्ष हो जाती हैं; परन्तु पुरानी बीमारीमें, जो कई बरसोंसे धीरे-धीरे बढ़ रही हैं, उसके लक्षणोंका निरूपण करना सहज नहीं होता।

खुलासा—यह तो ठीक है कि पुरानी बीमारियोंके सम्बन्धमें यह पता लग गया कि इसके मूलमें सोरा-दोष है तथा सोरा-दोषको दूर करनेवाली बहुत-सी दवाओंका भी आविष्कार हो गया है, पर इतनेसे ही काम नहीं चल सकता, इतनेसे ही रोग आरोग्य नहीं हो सकते। इसलिये नहीं हो सकते कि प्रत्येक रोग, अलग-अलग रूपमें आविर्भाव

होता है ; दवाएँ भी बहुत तरहकी हैं। अतएव, इस समय भी रोग-लक्षणोंकी उसी तरह जाँच करनी होगी, जिस तरह इस आविष्कारके पहले की जाती थी। हरेक रोगीके रोग-लक्षणोंको अच्छी तरह देखना होगा। दो रोगीमें, एक समान लक्षण होना सम्भव नहीं है। इसलिये हरेक रोगीके लक्षण अलग-अलग ग्रहण करनेके साथ, सोरा-नाशिनी दवाओंके लक्षणोंसे उनका मिलान करना होगा। इसके बाद, जिस दवाका लक्षण मिलेगा, वही दवा देनी होगी। अतएव, रोगके नामका महत्व कुछ भी नहीं है। सारांश यह है कि इस आविष्कारसे स्वाभाविक चिकित्साका ज्ञान अवश्य प्राप्त हो गया, परन्तु चिकित्सकका काम अब भी सहज नहीं हुआ।

उसे रोग और उसके उपचारके सम्बन्धमें अनेक बातोंपर गम्भीरता-पूर्वक विचार करना पड़ता है। इस विचार-कार्यमें उसे जहाँ अपने अध्ययन, अनुभव और पर्यवेक्षणसे सहायता मिलती है, वहाँ रोगी और उसके सुश्रूषाकारियोंसे भी मदद मिलती है।

यहाँ थोड़ा आभास लक्षण ग्रहण करनेका भी आ गया है। नयी बीमारीके लक्षण बहुत जल्द शरीरपर आ जाते हैं। नयी बीमारी जल्दी जल्दी बढ़ती है और लक्षणोंको बाहर प्रकट कर देती है। इस तरह बहुत जल्द और सहजमें ही चिकित्सक लक्षणोंको ग्रहण कर सकता है।

इस अवस्थामें रोगीसे या उनेके अनुचरोंसे बहुत अधिक सवाल भी रोग-लक्षणोंको जाननेके लिये नहीं करने पड़ते ; पर यदि बीमारी पुरानी हुई तो बहुत दिनोंके, पूर्व-पुरुषोंतकके रोगका इतिहास, परिस्थिति, रहन-सहन, कार्य आदिका हाल जानना पड़ता है। रोगीकी हरेक गति-विधिपर लक्ष्य रखना पड़ता है। अतएव, पुरानी बीमारीके लक्षण ग्रहण करना सहज-साध्य नहीं है। यही बात आगे और भी खुलासा लिखते हैं।

[८३]

रोगकी प्रतिमूर्त्ति ग्रहण करनेके लिये क्या आवश्यक है ?

रोगके वैयक्तिक लक्षणोंका निर्णय करनेके लिये, मैं यहाँ कुछ साधारण आदेश देना चाहता हूँ, जिनसे चिकित्सकको मालूम हो जायगा, कि वैयक्तिक भावसे प्रत्येक रोगीकी परीक्षाके समय, निरपेक्षिता और स्वस्थ ज्ञानेन्द्रियों तथा ध्यानपूर्वक रोगका देखना और विशुद्ध रूपसे रोगकी प्रकृतिका अंकन करनेके सिवा और किसी बातकी ज़रूरत नहीं है।

खुलासा—इसमें हैनिमैनने एक महान उपदेश दिया है। चिकित्साका प्रधान कर्त्तव्य यह होता है कि रोगीकी परीक्षा करते समय वह निरपेक्ष रहे। इस निरपेक्ष रहनेका मतलब यह है, कि उसपर किसीका प्रभाव न पड़ जाये। जैसे—रोगीकी बेचैनी या रोग-कातरता देखकर घबड़ा उठना, संक्रामक बीमारियोंके भयसे स्वयं भयभीत हो जाना, रोगीके घरवालोंकी बातोंमें आकर अपनी निर्णयात्मक बुद्धि खो देना। अन्य चिकित्सा-प्रणालीवालोंका हवाला देते हुए रोगीके रिश्तेदारोंकी बात सुनकर अपने सिद्धान्तसे विचलित हो पड़ना अथवा इसी ढंगके और भी रोगी जो उसने देखे हों, इसको भी ठीक वैसा ही समझकर रोगीकी वैयक्तिक परीक्षा किये विना ही औषध प्रयोग कर देना प्रभृति वहुत-सी ऐसी बातें हैं, जिनके लिये चिकित्सकको अपना हृदय बहुत कड़ा बनाकर निरपेक्ष रहना पड़ता है, उसे अपनी ज्ञानेन्द्रियोंको सुदृढ़ और निश्चिन्त रखना पड़ता है। अर्थ-लोभ प्रभृतिपर ध्यान न देकर अविचलित चित्त और बहुत शान्त-भावसे धीरे-धीरे अपनी अनुभव शक्ति द्वारा रोगीके समस्त शारीरिक और मानसिक लक्षण ग्रहण करने पड़ते हैं। जो लक्षण उसकी पर्यवेक्षणमें आते हैं, उन्हें तो वह अंकित कर ही लेता है। इसके बाद सुश्रूषाकारी, इष्ट-मित्र, सम्बन्धी आदिसे पूछ-ताछकर

जानकारी प्राप्त करनी पड़ती है। इस समय वे कितने ही ढंगकी बातें करते हैं। अतएव, बिना विचलित हुए चित्तको अत्यन्त स्थिर रखकर सब सुनना और कामकी बातें ग्रहण करना पड़ता है। इस तरह अविचलित चित्त, निरपेक्ष बुद्धि, तीव्र अन्वेषक दृष्टि और विशुद्ध भावसे खोज करनेपर तब कहीं रोगकी असली तस्वीर चिकित्सक अंकित कर सकता है।

[८४]

लक्षण ग्रहण करते समय उसका क्या कर्त्तव्य होता है ?

रोगी अपने रोगका इतिहास विस्तृत रूपसे बताया है ; उसके पास रहनेवाले बताते हैं कि उसे क्या शिकायत करते उन्होंने सुना है तथा रोगी कैसा व्यवहार करता था और उन्होंने उसमें क्या परिवर्त्तन देखे थे। रोगीमें क्या अस्वाभाविक परिवर्त्तन हो गया है, चिकित्सक उसे आँखोंसे देखता, कानोंसे सुनता और अपनी अन्य इन्द्रियोंसे उसपर विचार करता है। रोगी तथा उसके बन्धुओंने जो कुछ बताया या कहा है, उसे वह ठीक-ठीक लिख लेता है। वह आप चुप रहता है तथा उन लोगोंको जो कुछ कहना होता है, कहने देता है ; बीचमें तबतक नहीं बोलता, जबतक वे दूसरी ओर भटक नहीं जाते। चिकित्सक पहले ही उनसे कह देता है कि इस तरह धीरे-धीरे बोलो, जिसमें सभी आवश्यक बातें मैं लिख सकूँ।

खुलासा—चिकित्सकको उपदेश देनेके बाद, इस वचनमें हैनिमैन रोगीकी परीक्षाकी विधि बताते हैं। अर्थात् निरपेक्ष भावसे, शान्त-चित्त होकर चिकित्सकको, रोगीके पास बैठाकर, उससे अपने कष्टोंका वर्णन करनेको कहना चाहिये। रोगी अपनी तकलीफें जहाँतक सम्भव हो, बताये। इसके बाद, उसके पास रहनेवाले बतायें कि उन्होंने

रोगीको किन बातोंकी शिकायत करते सुना है; क्योंकि कष्टके वेगमें अथवा दुर्बलता या मानसिक अशान्तिके कारण, रोगी बहुत-सी बातें कहना छोड़ जाता है या उन्हें बढ़ाकर कहता है; पर सेवा करनेवाले या रिश्तेदार, जिन्होंने उसे स्वाभाविक स्वस्थ अवस्थामें देखा है, वे जानते हैं कि इसमें क्या परिवर्त्तन आ गया है और वे सहज ही इसकी खराब चिकित्सकको दे सकते हैं। चिकित्सकका यह कर्त्तव्य है कि वह इस विषयको अच्छी तरह सुनता और लिखता जाये और तबतक बीचमें न बोले, जबतक रोगीकी अवस्थाका वर्णन करनेवाला दूसरी बात कहना शुरू न कर दें, क्योंकि बीचमें बोलनेसे, बोलनेवालेकी विचार-धारा भंग हो जाती है। इस तरह उनसे धीरे-धीरे सभी बातें कहलाकर, चिकित्सकको चाहिये, कि उनमेंसे कार्योपयोगी आवश्यक बातें लिख लें।

[८५]

रोग-लक्षण लिखनेकी प्रणाली क्या है?

चिकित्सकको चाहिये, कि रोगी या उसके दोस्तोंकी कही हुई प्रत्येक नयी घटनाको, नया पेरा बनाकर लिखें, जिसमें कि सभी लक्षण, एकके बाद एक, क्रमबद्ध रूपसे लिखे जायें। इस तरह यदि कोई लक्षण पहले असम्पूर्ण रूपसे, पर आगे चलकर यदि ठीक-ठीक खुलासा बताया जाये, तो उसको भी पूरा करके लिख सके।

खुलासा—यह लक्षण लिखनेका तरीका बताया गया है। रोगी तथा परिवारवाले बहुत-सी बातें बताते हैं; वे सब बातें लिखते समय नयी लाइनसे लिखना चाहिये।

जैसे—पेटमें दर्द—

माथेमें दर्द—

कलेजेमें धड़कन—

अब इन सबमें जगह छूटी है। यदि किसीने पीछे बताया कि माथेके ऐसा दर्द होता है, माना माथा फट जायगा, तो तुरन्त उस खाली जगहमें लिखा जा सकेगा—"मानो माथा फट जायगा।" इस तरह लक्षणोंको सिलसिलेवार बैठानेमें बहुत अधिक सहूलियत होती है।

[८६]

रोगी तथा रिश्तेदारोंकी बातें सुननेके बाद क्या करना चाहिये ?

जब ये लक्षण बतानेवाले, अपनी बात समाप्त कर लें, तब चिकित्सकको फिर प्रत्येक लक्षणको देखना और निम्नलिखित भावसे सवालकर जानकारी संग्रह करनी चाहिये। एक-एककर पहले बताये लक्षण उसे पढ़ने चाहियें और प्रत्येकके विषयमें और भी खुलासा जाननेकी चेष्टा करनी चाहिये ; अर्थात् यह लक्षण किस समय पैदा होता है ? रोगी अबतक जो दवा खा रहा था, उससे पहले यह लक्षण था या नहीं ? क्या दवा खाते-खाते यह लक्षण उत्पन्न हो गया ? या कुछ दिनोंतक खा लेने बाद, दवा छोड़नेपर यह लक्षण पैदा हुआ था ? इस स्थानपर किस तरहका दर्द होता है या कैसा मालूम होता है ? क्या ठीक इसी स्थानपर दर्द हुआ था ? क्या बीच-बीचमें आप-ही-आप दर्द होता है ? दर्द भिन्न-भिन्न समय होता है या तकलीफ हमेशा ही बनी रहती थी—क्या दर्द कभी दबता न था ? कितनी देरतक दर्द हुआ था ? दिन-रातमें किस समय और किस ढङ्गकी ; शारीरिक स्थितिमें यह सबसे अधिक तकलीफ देता था या बन्द हो गया था ? अर्थात् प्रत्येक घटना या अवस्थाकी ठीक-ठीक प्रकृति, सीधी-साधी बातोंमें जाननी चाहिये कि कैसा हुआ था ?

खुलासा—रोग-लक्षण ग्रहण करनेके सम्बन्धमें, यह प्रवचन बड़े ही महत्वका है। मान लीजिये, कि रोगी अथवा उसके रिश्तेदार या सुश्रूषाकारीने आपको समस्त लक्षण बता दिये; परन्तु इससे चिकित्सक और खासकर होमियोपैथिक चिकित्सकका कार्य पूरा नहीं होता। उसे तो समस्त लक्षण—ह्रास-वृद्धि—रोग घटने-बढ़नेके समयका लक्षण, रोग पैदा होने या बढ़ने-घटनेका समय—यह सभी जाननेकी आवश्यकता पड़ती है। बिना यह सब जाने ठीक-ठीक दवाका चुनाव नहीं हो सकता। यदि ज्वर सवेरे आता है, तो एक दवा है, दोपहरमें आता है, तो दूसरी। सरमें दर्द होता है—इतनेसे दवाका चुनाव नहीं हो सकता; फाड़नेकी तरह, टपककी तरह; सुई गड़नेकी तरह; स्थान—ब्रह्मरंध्रमें, माथेके पिछले भागमें, कनपटीमें या ललाटमें। समय—सवेरे दर्द होता है या दोपहरमें अथवा शामको। स्थिति—बराबर बना रहता है, ठहर-ठहरकर होता है अथवा अधिक समयका अन्तर देकर होता है। इन सब बातोंको चिकित्सकके लिये, जानना इसलिये अत्यन्त आवश्यक है, कि भिन्न-भिन्न लक्षणोंके अनुसार औषध भी प्रायः बदल जाती है। इसीलिये कहते हैं कि रोगी अथवा उसके सम्बन्धियों द्वारा बताये लक्षण ही पर्याप्त नहीं हैं। अपने कामकी बातें—दवा चुननेके लिये सहायक तथा पर्याप्त उपयोगी बारीके लक्षण खूब सोच-सोचकर, चिकित्सको, पूछकर समय, रोगकी स्थिति, रोगकी गति आदि सभी जान लेना और लिख लेना चाहिये। इस लक्षणके ग्रहणपर ही होमियोपैथिक चिकित्साकी सफलता निर्भर करती है।

[८७]

रोग-लक्षण जाननेके लिये किस ढंगसे प्रश्न करने चाहियें?

इस तरह चिकित्सकको प्रत्येक विषयका पूरा-पूरा वृत्तान्त मिल जाता है; परन्तु ये सब जाननेके लिये इस ढंगसे कदापि सवाल न

करना चाहिये कि—रोगी "हाँ या ना" में उत्तर दे सके। नहीं तो आलस्यवश या प्रश्नकर्त्ताको सन्तुष्ट करनेकी इच्छासे वह ऐसा उत्तर दे सकता है, जो असत्य हो अर्द्धसत्य हो या ठीक-ठीक सत्य न हो। ऐसे उत्तर चिकित्सकको मिल जायँगे, जिससे भ्रम पैदा हो जाय और इसका परिणाम यह होगा कि चिकित्सक अपने मनमें, रोगकी एक अपूर्ण प्रतिमूर्त्ति अंकित कर लेगा और इस तरह चिकित्सा भी अनुपयुक्त सिद्ध होगी।

खुलासा—क्या पूछना होगा, यह ८६वें प्रवचनमें बताया जा चुका है, पर यह सवाल किस ढंगसे करना चाहिये, जिससे सम्पूर्ण विषय सामने आ जाये, यह समझना भी आवश्यक विषय है। यदि इस ढङ्गसे सवाल किया था—कि रोगीने "हाँ या ना" में उत्तर दे दिया, तो पूरी-पूरी बात मालुम न होगी। जैसे—यह पूछना कि—"सवेरे क्या पतला दस्त आता है?" ठीक नहीं है। इस ढंगका सवाल रखना चाहिये कि—"दस्त कैसा आता है? इसका उत्तर रोगी "हाँ या ना" में नहीं दे सकता। उसको स्वयं कहना पड़ेगा कि पतला आता है या बँधा। फिर दस्तके रंक आदिका सवाल भी इसी तरह पैदा हो सकता है; क्योंकि "हाँ या ना" के उत्तरसे रोग-लक्षण ठीक-ठीक मालुम नहीं हो सकते।

[८८]

लक्षण जाननेकी और क्या तरकीबें हैं?

यदि इन सब अपनी इच्छासे कहे वृत्तान्तोंमें, शरीरके कितने ही अंग या उनकी क्रिया अथवा मानसिक अवस्थाके सम्बन्धमें कोई बात न कही जाये, तो चिकित्सकको उन शरीरके अंशोंकी क्रिया तथा प्रकृति और मानसिक अवस्थाके सम्बन्धमें और जो कुछ कहा जा सकता है, उसे पूछ लेना चाहिये; परन्तु प्रश्न इस ढङ्गसे करना चाहिये, कि रोगीको बाध्य होकर उनके सम्बन्धमें विशेष विवरण देना पड़े।

खुलासा—रोगी या उसकी सेवा करनेवाले और रिश्तेदारोंके कहनेमें बहुत-सी बातें छूट सकती हैं। खासकर चिकित्सा-शास्त्रसे अनभिज्ञ रहनेके कारण, वे बहुत-सी बातें नहीं कह सकते। इसीलिये, उनकी सब बातें सुन लेनेपर, यदि शारीरिक यंत्रोंकी क्रिया, मानसिक स्थिति, प्रकृति, स्वभाव आदिके सम्बन्धमें, और भी कुछ जानने योग्य बातें चिकित्सकको छूटी हुई मालुम दें, तो, उनको भी पूछकर जान लेना चाहिये। सारांश यह कि, कोई भी शारीरिक अथवा मानसिक लक्षण छूट न जाये। सब लक्षणोंको जाननेके लिये, इसी ढङ्गके सवाल करने चाहियें कि रोगी ठीक-ठीक उत्तर दे सके और हाँ-नामें ही टाल न दे। जैसे—पाखाना या मलका रंग कैसा है? पेशाब कैसा होता है? दिन और रातमें नींद किस ढङ्गकी आती है? उसकी प्रकृति, मनकी प्रसन्नता या स्मरण-शक्ति कैसी है? प्यास कैसी है? मुँहका स्वाद कैसा रहता है? उसको कैसा खाना-पीना पसन्द है? कौन चीज या क्या काम उसे पसन्द नहीं है? चीजोंका स्वाभाविक स्वाद मिलता है या नहीं अथवा स्वादमें कोई गड़बड़ी है? खाने-पीनेके बाद, रोगीको कैसा मालूम होता है? माथा, प्रत्यंग अथवा तलपेटके विषयमें और भी कुछ कहना है?

इस ढङ्गका सवाल करनेपर, रोगीको बाध्य होकर सारी बातें बतानी पड़ती हैं और रोगके समस्त लक्षण सम्मुख आ जाते हैं।

[८९]

क्या इतनेसे ही सब लक्षण प्राप्त हो जाते हैं?

इस तरह, रोगी (क्योंकि बेहोश कर देनेवाली बीमारीके अलावा और सब तरहकी बीमारियोंमें, हमलोगोंको रोगीपर ही उसके भाव या अनुभूतिके लिये निर्भर करना पड़ता है) अपने सब लक्षण बता देता है

और सवालोंका जवाब देकर, रोगकी प्रतिमूर्त्ति अंकित करनेके साधन जुटा देता है। अब भी यदि चिकित्सक समझे कि आवश्यकताके अनुसार समस्त वृत्तान्त अभी प्राप्त नहीं हुए हैं, तो उसका कर्त्तव्य है कि उससे और भी सवालकर, पूरा हाल जाननेकी चेष्टा करे।

खुलासा—रोगी ही अपनी अनुभूति या प्रकृति अथवा रुचि-अरुचिकी बात, ठीक-ठीक बता सकता है। अतएव रोगके लक्षण जाननेके लिये उसपर ही बहुत-कुछ निर्भर करना पड़ता है। इस तरह रोगीपर निर्भर रहकर जहाँतक वह अपनी बात बता सके, उतना जानना ; उसके साथ रहनेवालोंसे जानना ; इसके बाद प्रश्नपर छिपे हुए लक्षणोंका ज्ञान प्राप्त करना। इस तरह करनेपर रोगीके अधिक-से-अधिक लक्षण चिकित्सकको मालूम हो सकते हैं, जिनके सहारे और भी उत्कर्षतासे औषधका चुनाव हो सकता है। सारांश यह कि रोगीको चिकित्सककी भाँति यह ज्ञान नहीं रहता कि क्या बताना चाहिये, क्या नहीं ; अथवा वह कुछ भूल भी बता सकता है या किसी ऐसी बातको अनावश्यक समझकर छोड़ भी सकता है, जो चिकित्साकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्वकी हों। अतएव, प्रत्येक विषयको तथा उसके अन्तर्गत भावोंको चिकित्सक प्रश्न द्वारा ही जान सकता है।[1]

---

१. उदाहरणार्थ—कितनी बार दस्त आते हैं? पाखानेका रङ्ग क्या है? क्या उसमें आँव मिली रहती है? यदि हाँ, तो सफेद या पीली? उसे पाखानेके समय दर्द होता है या नहीं? होता है, तो किस ढंगका, और किस स्थानपर? रोगीको कैसी कै होती है? मुँहका स्वाद बदजायका, तीता, खट्टा या कैसा रहता है? खानेके पहले, बाद या पेट खाली रहनेपर कै होती है? दिनके किस भागमें रोग बढ़ता है? वमनके पदार्थका स्वाद कैसा रहता है? पेशाब रखनेपर लाल हो जाता है या वैसा ही रहता है? पेशाब होनेपर उसका रङ्ग कैसा रहता है? उसमें किस रङ्गकी तली जमती है? नींदमें रोगी क्या करता है? वह गों-गों करता, बोलता या नींदमें रोता है? क्या सीधा-सीधा उठ बैठता है? क्या श्वास लेने और

[९०]

प्रश्नकर लक्षण जान लेनेके बाद क्या करना चाहिये ?

इन विषयोंको लिख लेनेके बाद, चिकित्सकको वह सब भी लिख लेना चाहिये, जो उसने रोगीमें देखा है और प्रश्नकर यह जान लेना चाहिये कि ये स्वाभाविक अवस्थाएं रोगके पहले भी थीं या नहीं।[१]

छोड़नेके समय आवाज होती है? वह पीठके बल ही सोता है या और किसी ढंगसे? यह किस करवट सोता है? वह अच्छी तरह ओढ़ लेता है या ओढ़ना बर्दाश्त ही नहीं होता? वह सहजमें जाग उठता है या खूब गहरी नींदमें पड़ा रहता है? नींदसे उठनेपर उसे कैसा मालूम होता है? भिन्न-भिन्न लक्षण किस समय पैदा होते हैं? ये उपसर्ग पैदा होनेके कोई कारण भी हैं? बैठने, लेटने, खड़े होने या चलने—किस समय यह उपसर्ग होता है? भूखे पेट रहनेपर, सवेरे, सन्ध्याके समय, केवल भोजनके बाद, या, किस समय, यह लक्षण पैदा होता है? जाड़ा किस समय लगता है, यह केवल सिहरावन-सा रहता है या उस समय भरपूर सर्दी मालूम होती है? यदि जाड़ा लगता है, तो शरीरके किस अंशमें? अच्छा, जाड़ा मालूम होनेके समय भी क्या शरीर गर्म रहता है? इसमें कम्प रहता है या केवल सर्दी ही रहती है? तापके समय चेहरा लाल हो जाता है या केवल शरीर ही गर्म रहता है? कौन-सा अंग बहुत गर्म मालूम होता है या छूनेपर ताप न मालूम होनेपर भी रोगी गर्मीकी शिकायत करता है। जाड़ा कितनी देरतक रहता है? ताप कितनी देरतक रहता है? प्यास कब आरम्भ होती है—जाड़ेके समय, तापके समय या उसके पहले? प्यास क्या बहुत अधिक थी—कौन-सा पेय वह पीना चाहता है? पसीना कब होता है—आरम्भमें या तापके अंतमें या तापके कितनी देर बाद; सोयेमें या जागते रहनेपर? पसीना क्या बहुत अधिक होता है; पसीना गर्म होता या ठण्डा; शरीरके किस अंशमें होता है; उसकी गन्ध कैसी रहती है? जाड़ा लगनेके पहले वह क्या किसी विषयकी शिकायत करता है अथवा तापके पहले क्या शिकायत करता है? पसीना होनेके समय या बादमें क्या होता है?

स्त्रियोंसे ऋतुस्राव तथा अन्य स्रावोंके सम्बन्धमें प्रश्न करना चाहिये।

१. उदाहरणार्थ—चिकित्सकके देखनेके समय रोगीका व्यवहार कैसा था—वह उदास था, उत्तेजित था, जल्दबाज था, चिन्तायुक्त था, आँखोंसे आँसू बह रहे थे,

खुलासा—रोगी तथा उसकी सुश्रूषा करनेवालों द्वारा तथा प्रश्नों द्वारा जो लक्षण मालूम हों, उन्हें लिख लेनेके बाद, चिकित्सकको वे लक्षण भी लिख लेने चाहियें, जो उसने अपनी आँखोंसे रोगीमें देखे या परीक्षा-यंत्रों द्वारा अथवा नाड़ी परीक्षा द्वारा अनुभव किये हैं, परन्तु इन आँखों देखे लक्षणोंके सम्बन्धमें, कुछ गड़बड़ी हो सकती है। जैसे—रोगीका चेहरा उसने लाल देखा—पर यदि वह नहीं पूछता कि रोगके पहले स्वस्थावस्थामें यह कैसा था, तो उसे ठीक-ठीक पता नहीं लग सकता। सम्भव कि रोगीका काम ऐसा हो कि उसे दिनभर धूपमें रहना पड़ता हो, इससे स्वाभाविक ही उसका चेहरा कुछ कालापन लिये लाल हो जायगा। यदि रोगके पहलेसे ही वैसा है, तो यह लाल चेहरा रोग-लक्षणोंमें परिगणित न होगा; पर यदि रोगके पूवमें वैसा न था, तो उसे भी रोग-लक्षण ही मानना पड़ेगा। इसीलिये चिकित्सक द्वारा दृश्य लक्षणोंकी भी प्रश्नों द्वारा जाँच कर लेनेकी बात कही है।

निराश, सुस्त था अथवा आशापूर्ण और शान्त था? उसकी अवस्था अर्द्धचेतनकी तरह थी या किसी तरह मन्दबुद्धिकी भाँति हो रहा था? वह रुखाईसे बोलता था अथवा धीमी आवाजमें या जोरसे अथवा वह किस तरह बातें करता था? उसके चेहरे और आँखोंका रङ्ग क्या था? उसकी त्वचा किस रङ्गकी थी, उसमें जीवनी-शक्ति कितनी थी और उसकी आँखोंसे क्या भाव टपकता था? उसकी जीभ, साँस, मुँहकी गन्ध तथा श्रवण-शक्ति कैसी है? उसकी आँखकी पुतली सिकुड़ी या फैली थी; रोशनी तथा अन्धकारमें उनका कितनी तीव्रतासे परिवर्त्तन होता था? उसकी नाड़ीकी गति कैसी थी? पेटकी अवस्था कैसी थी? शरीरके अन्यान्य अंगोंकी गर्मी, तरी या छूनेपर तर या सूखी त्वचा थी? क्या वह सर पीछे लटकाकर पड़ा था? मुँह आधा या पूरा खुला था? बाहें सरपर रखी थीं या पीठपर अथवा किस अवस्थामें थीं? अपनेको उठानेकी उसने क्या-क्या चेष्टाएँ कीं अथवा चिकित्सकके ध्यान देने योग्य और भी कोई बात थी?

[९१]

यदि रोगी कोई दूसरी दवा खा रहा हो, तो क्या करना चाहिये ?

इसके पहले कोई दवा सेवन करते समय, जो सब लक्षण दिखाई देते हैं, वे कभी रोगकी असली प्रतिमूर्त्ति प्रकट नहीं करते ; परन्तु इसके विपरीत, जो सब लक्षण और तकलीफें, इन सब दवाओंको सेवन करनेसे पहले, रोगी भोग रहा था या कुछ दिनतक दवा बन्द कर देनेके बाद, जो लक्षण दिखाई दें, वे ही रोगकी आरम्भिक अवस्थाका परिचय प्रदान करते हैं। इन्हें विशेष रूपसे चिकित्सकको लिख लेना चाहिये। यदि बीमारी पुरानी हो, तथा वर्त्तमान चिकित्सकके देखनेके समयतक, रोगी कोई दूसरी दवा खाता रहा हो, तो, चिकित्सकको, उसे कुछ दिनोंतक बिना दवाके ही रख छोड़ना चाहिये, या कोई ऐसी चीज देनी चाहिये, जिसकी औषधके रूपकी क्रिया न हो। इससे यह होगा कि कुछ दिन बाद, इस पुरानी बीमारीके पूरे-पूरे अमिश्र लक्षण प्रकट हो जायँगे और उसी समय रोगकी असली प्रतिमूर्त्ति दिखाई देगी।

खुलासा—इस सूत्रका तात्पर्य यह है कि रोगी यदि ऐलोपैथिक दवा सेवन करता रहता है, तो उसके कितने ही लक्षण दब जाते हैं तथा कितने ही नये पैदा हो जाते हैं। यदि इस समय कोई होमियोपैथिक चिकित्सक, उसकी परीक्षाकर, लक्षण ग्रहण करना चाहे, तो उसे कभी वास्तविक लक्षण प्राप्त नहीं हो सकते। इस समय जो लक्षण मिलेंगे, उनमें कितने ही रोगसे उत्पन्न लक्षण, कितने ही अतिरिक्त मात्रामें दी गई दवाओंसे पैदा हुए औषध लक्षण, और कितने ही मिश्र लक्षण रहेंगे। अतएव, ऐसी अवस्थामें लक्षण ग्रहणकर, उन लक्षणोंको आधार मानकर, रोगकी जड़में नहीं पहुँचा जा सकता। दूसरे वे लक्षण रोगके ही लक्षण

न रहनेके कारण, जिस किसी औषधका चुनाव होगा, वह भ्रमपूर्ण तथा ठीक उपयोगी नहीं होगी। ऐसी अवस्थामें क्या करना चाहिये? चिकित्सकको ऐसे अवसरपर कुछ दिनोंतक कोई दवा न देनी चाहिये अथवा यदि रोगीकी सन्तुष्टि होती न दिखाई दे, तो दूधकी चीनी आदि दे देनी चाहिये, जिसका कोई गुणागुण न हो। दवा बन्द रहनेके कारण, रोगके पूर्व लक्षण—रोगारम्भावस्थाके लक्षण, सम्मुख आ जायेंगे और रोगकी वास्तविक प्रतिमूर्त्ति सामने आ जानेके कारण, समुचित औषधका चुनाव निर्भ्रान्त रूपसे हो सकेगा।

[९२]

पर यदि रोग तीव्र हो, तो क्या करना चाहिये?

पर यदि रोगकी गति तीव्र हो, और यदि इसकी सांघातिकताको देखकर, ऐसा मालूम हो, कि औषध-प्रयोगमें देर करना ठीक नहीं है, तथा चिकित्सकको यह भी ठीक-ठीक न मालूम हो सके, कि दवाके प्रयोगके पहले कौन-कौन लक्षण वर्त्तमान थे, और, वह उनको खोजकर यह स्थिर न कर सके, तो (अन्य) औषधियोंसे लक्षण बिगड़े रहनेपर भी, इस बिगड़ी हुई अवस्थामें ही, उसे इस तरह लक्ष्य करना होगा, जिससे उसे जहाँतक सम्भव हो, रोगकी वर्त्तमान अस्वस्थ तथा दवाके कारण उत्पन्न और रोगकी पहली अवस्थाके लक्षणोंके मिल जानेके कारण पैदा हुई समस्त शारीरिक और मानसिक विकृतियोंका एक स्वरूप उपलब्ध हो जाये; क्योंकि अनुचित औषधके प्रयोगसे उत्पन्न होनेके कारण, यह अवस्था प्राथमिक रोगकी अपेक्षा और भी भयंकर होती है। अतएव, तुरन्त औषध देकर उसका प्रतिकार करना चाहिये। इस तरह जहाँतक सम्भव हो, रोगका सम्पूर्ण चित्र अंकित करनेपर, चिकित्सक

सम-लक्षण-सम्पन्न दवासे, उसकी चिकित्सा और प्रतिरोध करे। परिणाम यह होगा, कि रोगीने जो हानिकर दवाएँ खायी हैं, उनके कारण उसका बलिदान न हो जायगा।

खुलासा—ऊपर कह चुके हैं, कि यदि रोगी दूसरी प्रणालीकी दवा खाता हो, तो उस दवाको कुछ दिनोंके लिये वन्द कर देना चाहिये अथवा रोगीके सन्तोषके लिये ऐसे पदार्थ दवाके रूपमें देने चाहियें, जिनमें भेषज गुणावगुण न हों; परन्तु यह उसी अवस्थामें सम्भव हो सकता है, यदि रोग मारात्मक न हो; यदि बीमारी तेजीसे बढ़ती न जाती हो और रोगीका जीवन संकटमें न हो; पर यदि ऐसी अवस्था दिखाई दे, कि रोगी संकटमें पड़ा है, अथवा रोग तेजीसे बढ़ता जाता है, तो क्या करना चाहिये?

उस समय चिकित्सकको बहुत सावधानीसे, रोगीका लक्षण ग्रहण करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। यह स्थिर है, कि प्राचीन प्रणालीकी औषधियाँ अधिक मात्रामें सेवन करनेके कारण, उसके कितने ही लक्षण दब गये होंगे, कितने ही नये उभर आये होंगे तथा इन सम्मिलित लक्षणोंके कारण, रोगीमें बहुत विश्रृङ्खलता पैदा हो गयी होगी; परन्तु चिकित्सकका यह कर्त्तव्य हो जाता है, कि वर्त्तमान लक्षणको ही ध्यानमें रखकर इनके ही सहारे आरम्भिक लक्षणोंका पता लगाये, परिवारवालोंसे पूछकर पता लगाये और औषधकी व्यवस्था करे। उस समय उसका सहारा वर्त्तमान लक्षण ही रहते हैं। अतएव, इसपर ही लक्ष्य रखकर, दवाका चुनाव करना चाहिये; क्योंकि प्रकृत रोगकी अपेक्षा, औषधके कारण बिगड़ा हुआ रोग, और भी भयंकर होता है। इससे लाभ यह होगा कि रोगीको अनुपयुक्त चिकित्साके हाथोंसे छुटकारा मिलेगा और अत्यधिक विपरीत औषध खानेके कारण, उसके स्वास्थ्यको हानि पहुँचानेकी जो सम्भावना थी, उससे उसको छुटकारा प्राप्त होगा अर्थात् समुचित होमियोपैथिक औषधके प्रयोगसे आरोग्य हो जायगा।

[९३]

छिपे लक्षण कैसे जानने चाहियें ?

यदि बीमारी थोड़े दिनोंकी हो अथवा बहुत दिनोंकी पुरानी बीमारी हो तथा वह किसी निश्चित कारणसे उत्पन्न हुई हो, तो रोगी या उसके मित्रोंसे जब एकान्तमें पूछा जायगा, तो वे या तो तुरन्त उसी स्थानपर बता देंगे या फिर कौशलपूर्वक प्रश्न करनेपर उनका पता लगेगा।

खुलासा—ऐसे बहुतसे रोग हैं, जिन्हें रोगी सबके सामने नहीं बताना चाहते, उन्हें संकोच या अपमानित होनेका भय होता है। यदि चिकित्सकको यह मालूम हो, कि किसी नयी अथवा बहुत दिनोंकी पुरानी बीमारीका कारण ऐसा हो सकता है, जिसको सबके सामने प्रकट करनेमें रोगीको संकोच हो सकता है, तो रोगीवाले कमरेसे अन्य मनुष्योंको हटाकर उससे पूछना चाहिये; यदि इतनेपर भी वह न बताये, तो उसके इष्ट-मित्रोंसे पूछना चाहिये और यदि वे भी बतानेमें संकोच करते दिखाई दें, तो इस ढंगके सवाल रखने चाहियें, कि जिनके उत्तरमें वे छिपी बातें आप-से-आप बाहर निकल पड़ें। वे छिपे हुए कारण बहुतसे हो सकते हैं। जैसे—जहर खिलाया जाना या आत्म-हत्याके लिये विष खा लेना, हस्तमैथुन या गर्भ न रह जाये, इसलिये वीर्यपातके समय ही लिंगेन्द्रियको अलग कर लेना, असम्पूर्ण मैथुन, बहुत स्त्री-संग या अस्वाभाविक व्यभिचार, अत्यधिक शराब पीना, बहुत पौष्टिक द्रव्यके रूपमें औषध पीना या अन्य प्रकारकी पेय-सामग्रीका पान करना या बहुत काफी पीना—खाने-पीनेमें लापरवाही या हानिकर पदार्थोंका बहुत खाना-पीना, रतिज रोग हो जाना या खुजली पकड़ लेना, निराश प्रेम, ईर्षा, पारिवारिक कलह, दुःख, शोक, दुर्व्यवहार, बदला लेनेकी प्रवृत्ति, अहंकारमें आघात, प्रकृति-विरुद्ध कार्य, निरर्थक

भय, मुख या गुह्यांगोंके रोग, भगन्दर, जरायु आदिका अपनी जगहसे हट जाना प्रभृति।

ये सब ऐसे रोग हैं, जिनको रोगी सरलतापूर्वक नहीं बताते ; परन्तु चिकित्सामें सफलता प्राप्त करने और रोगीको आरोग्य करनेके लिये इनका जानना अत्यन्त आवश्यक है। कारण यह है कि जबतक उपद्रव और अवस्थता आनेके मूल कारणका निश्चित पता न चले—उसका निराकरण सम्भव नहीं ; मूल कारणका निराकरण ही स्वस्थको पुनः स्थापित करेगा। इसीलिये हैनिमैनने इस बातपर इतना जोर दिया है। इन्हींको जाननेका आदेश और ढंग बताया गया है।

[९४]

पुरानी बीमारीकी चिकित्सामें किन-किन बातोंपर ध्यान देना आवश्यक है ?

पर जब पुरानी बीमारीकी चिकित्सा करनेके लिये चिकित्सक जाये, तो उसे रोगीकी विशेष अवस्थाओंपर सर्वप्रथम ध्यान देना चाहिये। अर्थात्—उसका व्यवसाय क्या है, उसके खान-पान और रहन-सहनका तरीका कैसा है ? उसकी गृहस्थीकी स्थिति कैसी है ? इसी तरह सब बातोंपर अच्छी तरह विचार करना और पूछना चाहिये ; यह इसलिये आवश्यक है कि जिसमें मालूम हो जाये कि रोग पैदा होनेका क्या कारण है, ताकि वह कारण ही हटा दिया जाय या वह रोग शीघ्र आरोग्य हो जाये।

खुलासा—रोगका मूल कारण खोज निकालनेके सम्बन्धमें यह बात बतायी गई है। रोगका कारण जिस तरह अमिताचार हो सकता है, उसी तरह रहन-सहन, खान-पान तथा गृहस्थीकी स्थिति, व्यवहार आदि भी हो सकता है। रहन-सहन, खान-पान प्रभृतिपर तो अन्य

चिकित्सा-प्रणालियाँ भी ध्यान देती हैं ; परन्तु होमियोपैथी मानसिक स्थितिकी विशृङ्खलताको भी रोगका कारण मानती है। इसलिये, वह गृहस्थी तथा अन्य पारिवारिक विषयोंपर मौलिकरूपेण विचार करना बहुत आवश्यक समझती है।

इसके अलावा, स्त्रियोंकी पुरानी बीमारीमें—गर्भ-धारण, वन्ध्यत्व, कामेच्छा, गर्भ-स्राव प्रभृति तथा मासिक-स्राव आदि बातोंकी जानकारी तो बहुत ही आवश्यक है। मासिक ऋतु-स्रावके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें जानना बहुत जरूरी है अर्थात् बहुत जल्दी-जल्दी तो नहीं होता ? नियमित समयकी अपेक्षा, देरसे तो नहीं होता ? कितने दिनोंतक स्राव होता रहता है ? स्राव लगातार होता रहता है या रुक-रुक होता है ? वह कितना होता है, रंग कैसा होता है ? रक्त गाढ़ा या पतला कैसा होता है, इसके पहले या बाद श्वेत-प्रदर तो नहीं रहता। इससे भी बढ़कर और खासकर जाननेकी ये बातें रहती हैं कि शारीरिक या मानसिक कौन-से उपसर्ग इस अवस्थामें वर्त्तमान रहते हैं, मनका भाव कैसा रहता है, कहीं दर्द आदि होता है या नहीं ; होता है, तो ऋतु-स्रावसे पहले या बादमें। यदि प्रदर-स्राव रहता है, तो उसकी प्रकृति कैसी है, स्रावके साथ और क्या तकलीफ रहती है और किस अवस्थामें यह स्राव होता है।

स्त्रियोंके सम्बन्धमें ये बातें तथा गृहस्थीमें उनकी स्थितिकी जाँच, जिससे उनके मानसिक कष्टोंका पता लग सके तथा पुरुषोंके सम्बन्धमें उनका खान-पान, घर-द्वार, रहन-सहन प्रभृति विषयोंका अवलोकनकर, यदि कोई ऐसी बात दिखाई दे, कि उनमें अदल-बदल कर देनेसे शीघ्र रोग आरोग्य होनेकी सम्भावना हो, तो उसपर तुरन्त ध्यान देना और उससे फायदा उठाना चाहिये।

इसके अतिरिक्त इस उपदेशके भीतर एक बात और भी मिलती है अर्थात् कौन काम करता है ? इसके उत्तरसे मालुम हो सकता है—उसका

अभ्यास। जैसे—उत्तर मिलता है—किताब लिखनेका काम। तो तुरन्त ही समझमें आ सकता है, कि इसकी प्रकृति बैठे रहनेकी, शारीरिक परिश्रम न करनेकी है।

धोबीका काम—मालूम होता है, जल और आगसे बहुत सम्बन्ध रहता है।

कम्पोजका काम—सीसा विष इसके शरीरमें प्रवेश कर सकता है। अतः काम-काज व्यवसाय-सम्बन्धी प्रश्नसे रोगीकी प्रकृति, रोगीका अभ्यास, रोगीमें किस प्रकारका रोग-कारण हो सकता है, आदि अनेक विषय मालुम होकर औषध निर्वाचनमें जिस तरह सहायता पहुँचाते हैं; उसी तरह उनमें थोड़ा-सा अन्तर ला देनेपर आरोग्यमें भी सहारा मिलता है। अतएव हैनिमेनका यह उपदेश अत्यन्त ही उपयोगी है।

[९५]

पुरानी बीमारीकी जाँचमें और किन-किन बातोंकी ओर ध्यान देना चाहिये?

पुरानी बीमारीमें ऊपर लिखी सभी खोजें तो करनी ही चाहियें, साथ ही समस्त अवस्थाओंपर जहाँतक सम्भव हो ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिये, छोटी-छोटी विशेषताओंपर भी ध्यान देना चाहिये; क्योंकि इन पुरानी बीमारियोंमें वे रोगका बहुत अधिक परिचय देती हैं तथा इनसे और नयी बीमारीसे जरा भी सम्बन्ध नहीं रहता। इसके अलावा, यदि पुरानी बीमारीको आरोग्य करना है, तो यह लिखकर कभी छोड़ नहीं दिया जा सकता, कि बहुत लिखा जा चुका, अब लक्षण-संग्रहकी जरूरत नहीं है। इसका कारण यह है, कि ऐसे रोगी बहुत दिनोंसे तकलीफ भोगते-भोगते, उन तकलीफोंके इतने अभ्यस्त हो जाते हैं, कि छोटे-मोटे आनुसंगिक लक्षणोंपर या तो बहुत कम ध्यान

देते हैं या बिलकुल ही ध्यान नहीं देते ; परन्तु ये अकसर बहुत ही सारगर्भ परिचायक लक्षण होते हैं और प्रायः इनसे दवाके चुनावमें बहुत अधिक सहायता मिलती है ; पर रोगी समझ लेते हैं कि ये लक्षण उनकी स्वाभाविक शारीरिक अवस्थाके अंग हैं, और, उन्हें स्वास्थ्यके समान ही समझ लेते हैं ; पर सच तो यह है कि वास्तविक स्वास्थ्यके अनुभूतिको वे पन्द्रह-बीस वर्षोंसे रोग भोग करते-करते भूल जाते हैं। इसलिये उनके ध्यानमें भी यह बात नहीं आती कि वे इस बातपर विश्वास करें, कि ये आनुसंगिक लक्षण, स्वास्थ्य-सम्पन्न अवस्थासे ये छोटे-छोटे प्रभेद, मूल रोगसे कोई सम्बन्ध रख सकते हैं।

खुलासा—गत ८३ से ९३ सूत्रतक बराबर रोग-लक्षण ग्रहण करनेका तरीका बताते हुए, अब इस सूत्रमें हैनिमैन कहते हैं, कि ऊपर जो बातें बतायी जा चुकी हैं, उन्हें तो करना ही होगा, पर उस समय और खासकर पुरानी बीमारीका लक्षण लेते समय कोई भी लक्षण—चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न मालूम हो, लिखे विना न छोड़ना होगा ; क्योंकि बहुत दिनोंसे रोग, भोगते-भोगते रोग-लक्षण भी रोगीको स्वाभाविक स्वास्थ्यके ही लक्षण मालूम होने लगते हैं। अतः वह आनुसंगिक क्षुद्र विषयोंपर ध्यान ही नहीं देता। रोगी ध्यान नहीं देता—इसलिये, चिकित्सक भी यदि ध्यान न देगा, तो पुरानी बीमारीकी चिकित्सा ही नहीं हो सकेगी ; क्योंकि कितनी ही बार, ऐसा होता है, कि रोगी जिस लक्षणको अनावश्यक समझकर छोड़ देता है, चिकित्सकके लिये, वही लक्षण इतना आवश्यक हो जाता है, कि वह उसीके सहारे दवाका चुनाव कर लेता है। मान लीजिये कि कोई ऐसी रोगिणी है, जो बहुत दिनोंसे रोग भोग रही है, बहुत तरहका इलाज उसने किया, पर लाभ न हुआ। अब जब चिकित्सक होमियोपैथिक उसके लक्षण लेता है, तो सब बातें तो वह बताती है, पर यह नहीं कहती कि टांग-पर-टांग चढ़ाकर बैठनेसे आराम मिलता है और उसकी तकलीफ घटती है। वह समझती है, कि

इससे और रोगसे क्या सम्बन्ध है ? अथवा बहुत दिनोंतक इस तरह बैठते-बैठते उसे अभ्यास हो गया है और अब यह उसके ध्यानमें भी नहीं आती कि यह बताना चाहिये। वह इसे स्वास्थ्य सम्बन्धी बात ही समझती है; परन्तु "सीपिया" के चुनावके लिये, यह एक बहुत ही आवश्यक लक्षण है, और, यह कहनेसे उसके जरायु-दोषके सम्बन्धमें बहुत कुछ पता लग जाता है। वार्तों, प्रश्नों, इष्ट-मित्रों तथा अन्य सुश्रूषाकारियों द्वारा, यह जाँच लेना चिकित्सकका प्रधान कर्त्तव्य है। अथवा रोग-लक्षण लेते-लेते ऊबकर, यह कह देना कि बहुत लिखा गया, अब जरूरत नहीं; इस तरह जल्दीमें एकाएक दवा चुननेसे रोग आरोग्य करना असम्भव हो जाता है। इसीलिये, चिकित्सक भलीभाँति जाँच और धैर्यसे काम लें।

[९६]

रोगी कैसे-कैसे मिलते हैं ?

इसके अलावा, ऐसी भिन्न-भिन्न प्रकृतिके रोगी मिलते हैं, कि उनमेंसे कितने ही जो अत्यन्त व्याधि संकाग्रस्त रहते हैं तथा ऐसे कितने ही जो रोगके सम्बन्धमें अत्यन्त भाव-प्रवण और असंतोषी होते हैं, वे अपने रोगोंको अत्यन्त अतिरंजित करके बताते हैं और अपने रोग-लक्षणोंको बहुत बढ़ाकर इसलिये कहते हैं कि जिसमें चिकित्सक उन्हें अति शीघ्र आराम पहुँचाये।

खुलासा—रोगी बहुत तरहकी प्रकृतिके होते हैं, कितने ही ऐसे होते हैं, जिनको बोलना ही बुरा मालूम होता है; कितने ही ऐसे होते हैं, जो कुछ लक्षण बताते हैं और कुछ नहीं बताते और तीसरी श्रेणीके एक रोगी ऐसे होते हैं, कि जिनमें सहनशीलता बिलकुल नहीं होती, थोड़ी-सी बीमारीमें भी, वे बहुत आतुर और व्याकुल होकर शोर मचाने

लगते हैं। ऐसे रोगी चिकित्सकको देखते ही, अपनी बीमारीका हाल बहुत बढ़ा-चढ़ाकर और अतिरंजित करके कहा करते हैं ; वे समझते हैं, कि इससे चिकित्सक ऐसी औषधि देगा, जिससे तुरन्त आराम मिलेगा।

[९७]

अन्य प्रकारके रोगी क्या करते हैं ?

कुछ रोगी बिलकुल ही इससे विपरीत प्रकृतिके होते हैं, वे चिकित्सकके आनेपर, या तो आंशिक आलस्यके कारण अथवा वृथाकी लज्जाकी वजहसे, अथवा कुछ अपनी नम्र प्रकृतिके कारण, या मनकी दुर्बलताके कारण, अपने रोग-लक्षण पूरे-पूरे नहीं बताना चाहते ; कहते हैं, तो बुरे ढंगसे या समझते हैं, कि इनमेंसे बहुतोंका बताना तो एकदम अनावश्यक है।

खुलासा—प्रायः ऐसे भी रोगी मिलते हैं, जो आलस्यके कारण, अपने रोग-लक्षणोंको पूरी तरह नहीं बताना चाहते या बहुत-सी बातोंमें उन्हें वृथाकी लज्जा आती है, खासकर स्त्रियाँ तो लज्जाके कारण बहुत-से रोग भोगा करती हैं और प्रदर, मासिक-स्राव आदिके लक्षण नहीं बताना चाहतीं। बहुत-से ऐसे भी होते हैं, कि जिनकी प्रकृति इतनी नम्र रहती है, कि वे समझते हैं, कि बहुत कहकर वृथा ही चिकित्सकको कष्ट देना है। कितनोंका मन ही कमजोर होता है ; वे अपने मनकी कमजोरीके कारण रोग-लक्षण पूरे-पूरे नहीं बता पाते ; कितने ही समझते हैं, कि खाना-पीना, सोना, पाखाना, पेशाब इनसे रोगका क्या सम्बन्ध है ? बुखार है—बुखारकी बात पूछिये। बुखारसे और पेटसे क्या सम्बन्ध है, इस तरहके बहुतसे रोगी मिलते हैं, जिनसे चिकित्सकको बड़ी होशियारीसे रोग-लक्षण निकालने पड़ते हैं और फिर चुनकर दवा देनी पड़ती है।

[९८]

रोग-लक्षणोंमें किसके वताये रोग-लक्षण विशेष मूल्यवान है ?

हमलोगोंको यह उचित है, कि निश्चयपुर्वक रोगीकी ही बातें विशेषकर ध्यानसे सुनें, जव कि वह अपने कष्ट और भावोंको बताता है और उसके वर्णनपर ही विशेष विचार करें, जिसमें वह अपने उपसर्ग हमलोगोंको समझानेकी चेष्टा करता है ; क्योंकि उसके मित्र और सुश्रूषा-कारियोंका वर्णन बहुत-कुछ गलत और भ्रमपूर्ण रहता है । यह बात सभी वीमारियोंमें लागू होती है, परन्तु खासकर पुरानी वीमारीमें रोगीकी सम्पूर्ण और सच्ची प्रतिकृति और उसकी विशेताओंको संग्रह करनेमें विशेष परिदर्शन शक्ति, वुद्धि, मानव-प्रकृतिका ज्ञान तथा प्रश्न करनेमें कुशलता और हद दर्जेके सन्तोषकी जरूरत होती है ।

खुलासा—६५, ६६ और ६७ न० के सूत्रोंमें हैनिमैन रोग-लक्षण किस तरह संग्रह करना चाहिये, यह वताते हुए कह चुके हैं, कि सब रोगोंका, विशेषकर पुरानी वीमारियोंका, सम्पूर्ण रोग-लक्षण जाननेके लिये, चारों ओर नजर रखनी चाहिये तथा स्वयं रोगीसे उसकी सेवा करनेवालोंसे, उसके इष्ट-मित्रोंसे, कौशलपूर्वक तथा अत्यन्त निपुणताके साथ, रोग-लक्षणोंको खोजकर लिपिवद्ध कर लेना चाहिये ; परन्तु निर्भर करना चाहिये केवल रोगीकी ही बातोंपर ; क्योंकि—(१) नाना प्रकारको यंत्राणाएँ और कष्ट स्वयं रोगी ही अनुभव करता है, (२) वही अपनी अवस्थाएँ ठीक-ठीक वता सकता है, (३) उसके संगी-साथी अथवा सेवा करनेवाले विकृत या असत्य लक्षण भी वता सकते हैं । यह तो हुआ ; पर ऊपर यह भी कह चुके हैं, कि रोगी भिन्न-भिन्न प्रकृति-वाले होते हैं । अतएव, चिकित्सकको मानव प्रकृतिका भरपूर ज्ञान रहना चाहिये, ताकि वह बातें सुनकर निर्णय कर सके कि इसमें कितना

सत्य और कितनी अतिशयोक्ति है। इस गवेषणाके लिये उसे बहुत सन्तोषसे, तथा खूब धीरजसे काम लेना चाहिये। ऊकता जाने या जल्दबाजीसे रोग-लक्षण-समूहका संग्रह न हो सकेगा।

[९९]

नयी और पुरानी बीमारीके लक्षण ग्रहण करनेमें क्या अन्तर है?

सारांश यह कि नयी बीमारियाँ या थोड़े दिनोंकी बीमारियोंका लक्षण ग्रहण करना और परीक्षा करना, चिकित्सकके लिये सहज है, क्योंकि स्वाभाविक स्वस्थ अवस्थाकी अपेक्षा जो कुछ परिवर्त्तन हो जाता है, वह रोगी तथा उसके मित्रोंको स्मरण रहता है और नवीन तथा आश्चर्यजनक मालूम होता है। इसलिये, चिकित्सकको कुछ विशेष अनुसन्धान नहीं करना पड़ता, अधिकांश भाग उसको तुरन्त ही मालूम हो जाता है।

खुलासा—इस सूत्रका तात्पर्य यह है कि नये रोगोंकी चिकित्सा करनेके लिये जाना तो सभी होगा, रोग-लक्षण भी सभी ग्रहण करने होंगे, परन्तु रोगीको अपनी स्वाथावस्थाके लक्षण सब याद रहते हैं। इसीलिये, वह तुरन्त ही बता देता है या उसके बन्धु-बान्धव कह देते हैं, कि क्या परिवर्त्तन हो गया है; परन्तु बीमारी बहुत दिनोंकी पुरानी हो जानेपर, रोगी तथा उसके बन्धु आदि भी भूलते जाते हैं और जैसा पहले कहा जा चुका है, रुग्ण अवस्थाके कितने ही लक्षणोंको स्वाभाविक स्वास्थ्यके लक्षण समझ बैठते हैं। इसी कारणसे, उस दशामें विशेष अनुसन्धानकी जरूरत पड़ जाती है।

[१००]

व्यापक रोगोंकी चिकित्सा कैसे करनी चाहिये ?

वहुव्यापक तथा अल्पव्यापक रोगोंके रोग-लक्षणोंकी जाँच करते समय, इस विषयकी जाँच करना विलकुल ही वृथा है, कि उसी नाम या ढंगकी कोई बीमारी, संसारमें इसके पहले हुई थी या नहीं। उसी प्रकारके रोगकी नवीनता या विशेषता, उसकी परीक्षा अथवा चिकित्साके सम्बन्धमें, कोई भी प्रभेद नहीं पैदा कर देता। इसीलिये, चिकित्सको वर्त्तमान रोगका सम्पूर्ण चित्र ग्रहण करना चाहिये और यही समझकर ग्रहण करना चाहिये कि यह विलकुल ही नया तथा अपरिचित रोग है। यदि वह दवाका ठीक-ठीक विज्ञान-सम्मत प्रयोग करना चाहता है, तो उसकी भरपूर परीक्षा करनी चाहिये; वास्तविक मालूम होनेवाली बातोंको छोड़कर, कभी अनुमानपर भरोसा न करना चाहिये। कभी ऐसा न समझ लेना चाहिये कि उसका यह रोगी सम्पूर्ण या आंशिक रूपसे वैसा ही है, जैसा वह पहले देख चुका है; बल्कि हर तरहसे उसकी भरपूर परीक्षा करनी चाहिये। ऐसे रोगियोंके लिये, यही तरीका सर्वश्रेष्ठ है; क्योंकि सावधानतासे परीक्षा करनेपर उसे मालूम होगा, कि प्रत्येक व्यापक रोग विभिन्न प्रकारका होता है और पूर्वकी महामारी या वहुव्यापक रोगसे विलकुल ही अलग रहता है, जिनका झूठ ही एक नामकरण कर दिया गया था; पर इसमें एक अन्तर यह है, कि संक्रामक रोगके सिवा, अन्य बहुव्यापक रोगोंमें ही यह विभिन्नता रहती है, पर चेचक, खसरा प्रभृति स्पर्शाक्रमक रोग सदैव एक ही प्रकारके होते हैं।

खुलासा—एक ही समय, जो वहुतसे मनुष्योंको हो जाये, उसे वहुव्यापक और थोड़े मनुष्योंमें ही फैलकर, जो बन्द हो जाये, उसे अल्पव्यापक कहते हैं। ऐलोपैथिक चिकित्सावाले यह खोज करते हैं, कि

ऐसा रोग पहले कभी हुआ था या नहीं और ऐसी ही नजीरोंको सामने रखकर वे उसी ढंगकी चिकित्सा करते हैं। इसी बातको लक्ष्यमें रखकर महात्मा हैनिमैन कहते हैं, कि इस बातकी जाँच करनेकी कोई भी जरूरत नहीं है; कि वर्त्तमान बहुव्यापक रोगकी भाँति कोई रोग पहले हुआ था या नहीं ; क्योंकि संक्रामक रोगोंके सिवा और सभी बहुव्यापक रोगोंकी यह प्रकृति रहती है, कि वे एक समान रूपमें कभी दुबारा नहीं पैदा होते, उनमें कुछ-न-कुछ अन्तर हमेशा ही मौजूद रहता है। यह अन्तर केवल चेचक, खसरा आदि स्पर्शाक्रमक रोगमें नहीं होता ; वे ज्यों-के-त्यों एक ही रूपमें पैदा होते हैं ; परन्तु अन्य महामारियाँ, एक लक्षण संयुक्त मालूम होनेपर भी कुछ-न-कुछ प्रभेद लेकर ही आती हैं। अतएव, रोगीकी भरपूर परीक्षा करनी चाहिये और उस परीक्षा-कालमें, जो परीक्षाके नियम बताये गये हैं, उनपर भरपूर लक्ष्य रखकर परीक्षा करनेसे ही ठीक-ठीक औषधिका प्रयोग हो सकता है, अन्यथा नहीं।

[१०१]

संक्रामक व्याधिका निदान किस तरह होता है ?

यह सम्भव है, कि बहुव्यापक महामारी रोगका पहला रोगी देखते ही चिकित्सक, उसके सम्पूर्ण लक्षण एक ही बारमें न जान सके ; परन्तु ऐसे कई रोगियोंको ध्यानपूर्वक देखनेपर इसके चिह्न और लक्षण-समूहको पूर्ण रूपसे हृदयंगम कर सकता है। परन्तु एक या दो रोगीकी परीक्षा करनेपर अतिरिक्त सावधान तीव्र दृष्टि-सम्पन्न चिकित्सक, वास्तविक अवस्थाके ज्ञानके इतना निकट पहुँच जाता है, कि उसके मनपर उसकी विशेषताओंका एक चित्र अंकित हो जाता है और उसके लिये वह एक उपयोगी सम-लक्षण-सम्पन्न औषधिका चुनाव कर सकता है।

खुलासा—महामारीकी चिकित्सा करते समय, यह सम्भव है कि उस रोगकी प्रकृतिका ठीक-ठीक पता न लगे। इसलिये, चिकित्सकको चाहिये कि वह उसके कितने ही विभिन्न रोगियोंकी परीक्षा करे। इस तरह कई रोगियोंकी परीक्षा करनेपर उसको अवश्य ही उस रोगकी वास्तविक अवस्थाका ज्ञान हो जायगा ; परन्तु यदि चिकित्सक बहुत ज्यादा सावधान हो, उसको रोगीको देखने और जाँचनेकी शक्ति बढ़ी हुई हो, तो एक-दो रोगी देखकर ही वह वास्तविक अवस्थाका पता पा जायगा और उपयुक्त दवाका भी चुनाव कर सकेगा। इस तरह महामारीके रोगीके लक्षण ग्रहण करने और निदान-सम्बन्धी कठिनाइयाँ दूर हो जायँगी।

[१०२]

व्यापक रोगोंके लक्षण-समूह स्पष्ट रूपसे कैसे जाने जा सकते हैं?

इस ढंगके कई रोगियोंके रोग-लक्षण लिखनेके समय रोगका चित्र, और भी परिपूर्ण रूपसे प्रस्फुटित होता जाता है। यह केवल बहुत विस्तृत या वाक्यमय ही नहीं होता, बल्कि इससे सामूहिक रोगकी बहुत-सी विशेषताएँ मालूम हो जाती हैं। इससे एक ओर तो साधारण लक्षण (जैसे—भूख न लगना, नींद न आना प्रभृति) अपनी विशेषताओंके साथ प्रस्फुटित हो पड़ते हैं और दूसरी ओर अपेक्षाकृत स्पष्ट, वे विशेष लक्षण, जो कुछ थोड़े-से रोगियोंमें ही होते हैं और हमेशा दिखाई नहीं देते, खासकर इस तरह एक साथ तो दिखाई नहीं देते, वे भी अच्छी तरह स्पष्ट प्रकट हो जाते हैं। एक ही समय जिस किसीको वह बीमारी उसी कालमें हुई है, इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने एक ही स्थानसे उसको प्राप्त किया है। इसीलिये, वे एक ही बीमारीको भोग रहे हैं, पर इस

बहुव्यापक रोगका समस्त अंश या उसके लक्षण-समूह (जिनका ज्ञान इन लक्षणोंको देखकर ही होता है और दवाके चुनावमें वह सबसे अधिक सहायक होता है—वह रोगकी प्रतिमूर्त्तिको देखनेसे ही मालूम होता है) एक रोगीको खनेपर नहीं मिलते। वे तो विभिन्न प्रकृतिके बहुतसे रोगियोंके रोगको देखकर ही भरपूर संग्रह और निरूपित किये जा सकते हैं।

खुलासा—महामारीके रोगीकी विशेषता किस तरह मालूम होता है, यही इस अनुच्छेदमें बताया गया है, अर्थात् महामारीके दो-एक रोगी, खूब ध्यानसे देखनेपर, रोगका चित्र तो अच्छे चिकित्सकोंको मिल जाता है, परन्तु इस तरहके बहुत-से रोगियोंका लक्षण जब वे लिखने लगते हैं, तो उन लक्षणोंका मिलान होते-होते, उस रोगकी प्रकृति कैसी है, कैसी गति है तथा किन-किन लक्षणोंका, भिन्न-भिन्न धातुके रोगियोंमें किस तरह आविर्भाव होता है, इन समस्त विषयोंका खूब स्पष्ट दृश्य सामने आ जाता है। इनमें भूख न लगना या नींद न आना प्रभृति अन्यान्य रोगोंमें मिलनेवाले साधारण लक्षण भी आ जाते हैं, जिनसे यह पता लग जाता है कि अन्यान्य रोगके साधारण लक्षणोंमें तथा इसके साधारण लक्षणोंमें किस तरहका भेद रहता है और विशेष लक्षण, जो खास-खास बीमारियोंमें विशेष-विशेष प्रकारके होते हैं, उनका भी स्पष्ट दृश्य सामने आ जाता है। इनके अलावा, कुछ ऐसे लक्षण भी प्राप्त होते हैं, जो बहुत कम या शायद ही कभी दिखाई देते हैं। इस तरह महामारीके बहुतसे रोगियोंकी परीक्षा करनेपर ऐसे लक्षण-समूह प्राप्त होते हैं, जिनसे ठीक-ठीक दवाके चुनावमें सहारा मिलता है और ठीक-ठीक उपयोगी दवा मिल जाती है। इसीलिये हैनिमैन कहते हैं, कि एक-दो रोगी देखनेपर यह बात नहीं पैदा होती।

[१०३]

क्या सोरा-बीजसे उत्पन्न पुरानी बीमारियोंका अनुसन्धान भी इसी तरह होता है ?

उन संक्रामक रोगोंके सम्बन्धमें, जो अधिकतर अस्थायी होते हैं, जैसा अभी बताया गया है, ठीक उसी तरह, पुरानी बीमारियोंके सम्बन्धमें भी, अनुसन्धान होना चाहिये, जो अपनी अभ्यन्तरिक प्रकृतिके हिसाबसे एक ही रहती हैं। जैसा—सोरा (Psora)। इसके लक्षणोंका भी इस तरह भरपूर अनुसन्धान होना चाहिये, जैसा कि पहले कभी हुआ ही न हो ; क्योंकि इसके रोगियोंमें भी, एकमें रोग-लक्षणोंका केवल एक अंश प्रकट होता है तथा दूसरे, तीसरे और विभिन्न रोगियोंमें, भिन्न-भिन्न लक्षण प्रकट होते हैं, पर ये सभी इस रोग-बीजके लक्षण-समूहके अंशभर हैं। अतएव, इसके पूरे-पूरे लक्षण प्राप्त करनेके लिये, विभिन्न प्रकृतिके बहुतसे ऐसे पुराने रोगियोंकी परीक्षा करनी चाहिये। बिना इस तरह सामूहिक चित्र प्राप्त किये, सोरापर विजय पानेवाली सम-लक्षण-सम्पन्न आरोग्यकर औषधका चुनाव हो ही नहीं सकता और ये ही दवाएँ, ऐसी पुरानी बीमारियोंके रोगियोंकी सच्ची दवा हो सकती हैं।

खुलासा—महामारी पुरानी बीमारियोंके अन्तर्गत नहीं है ; परन्तु तत्सम्बन्धी लक्षणोंकी खोजकी अत्यन्त आवश्यकता इसलिये है, कि उनका रूप बराबर परिवर्त्तित हुआ करता है। इसी तरह पुरानी बीमारीके लक्षणोंकी खोजकी भी बहुत आवश्यकता है। इसके जितने ही रोगी देखे जायँगे, जितना ही गहराईमें जाकर खोज की जायगी, उनकी गहराईका उतनी ही पता लगता जायगा। अन्तमें यहाँतक पता लग जायगा कि इनके मूलमें एक ही रोग है, जिसका विस्तार और दिखावा इस तरह हो रहा है। इस तरह सोरा, साइकोसिस या सिफिलिस,—इन सबकी विशेषता तथा इन तीनों ही मूल विषोंसे किस तरह रोगोंका

प्रसार हुआ है और किस प्रकारसे नाना प्रकारके—उपसर्ग, प्रकृतिकी विभिन्नताके कारण, भिन्न-भिन्न रोगियोंमें उत्पन्न होते हैं ; इसका भी पता जितना ही अधिक रोगी देखे जायँगे, उतना ही लगता जायगा। इस तरह प्राचीन रोगियोंको रोग-तालिकाकी तुलनाकर पुरानी बीमारियोंके रोगीके लिये दवाके चुनावमें बहुत बड़ी सहायता मिलेगी।

पुराने रोगियोंके लक्षण लेकर सोचना चाहिये कि उनके मूलमें कौन-सा दोष काम कर रहा है। किस दोषने जटिलता पैदा कर रखी है। रोगीके कष्टोंके लिये स्वतन्त्र रूपसे कोई एक दोष दायी है या एकसे अधिक दोषोंकी सन्धि?

[१०४]

रोग-विवरण लिख लेनेसे लाभ क्या है?

जब ये लक्षण-समूह, जो रोगकी विशेषता या प्रभेद बतलाते हैं अर्थात् विशेष लक्षण और निर्णायक लक्षण या यों भी कह सकते हैं, कि वे लक्षण जो रोगका चित्र बता देते हैं, चाहे वे किसी भी रोगके हों ; जब एक बार ठीक-ठीक लिख लिये जाते हैं, तो एक बहुत ही कठिन कार्य-पूरा हो जाता है। उस समय चिकित्सकके पास रोगका और खासकर पुराने रोगका एक पूर्णाङ्ग चित्र तैयार हो जाता है, जो चिकित्साके समय उसका पथ-प्रदर्शक-सा बना रहता है। वह उसमें खोजकर विशेष लक्षणोंको छाँट लेता है और उन सब लक्षणों या समूची बीमारीके लिये, एक सम-लक्षणवाली, कृत्रिम रोग पैदा करनेवाली शक्ति, या दवा, उन सब सम-लक्षण-सम्पन्न दवाओंमेंसे चुनकर दे सकता है, जिसका विशुद्ध प्रभाव वह पहलेसे ही जाँचकर निश्चित कर चुका है। इस तरह चिकित्सा करते समय, वह यह जाँचना चाहता है कि दवाका क्या प्रभाव हुआ है तथा रोगीको अवस्थामें क्या परिवर्त्तन हुआ है।

इस अवस्थामें दूसरी बार रोगी देखकर उसका यही काम रह जाता है, कि पहलेके लिखे हुए लक्षणसे जो दूर हो गये हैं, उनको काट दे तथा उनपर निशान लगा दे, जो अबतक रह गये हैं और उन्हें फिर लिख ले, जो नये पैदा हो गये हैं।

खुलासा—हैनिमैनने आरम्भसे ही, लक्षणोंके लिख लेनेपर जोर दिया है; अर्थात् किसी रोगीको देखनेपर जो लक्षण चिकित्सकको मालुम हों और जो इष्ट-मित्र या सेवा-सुश्रूषा करनेवालोंसे जाने जायें, उनमेंसे एकको भी बिना लिखे न छोड़ देना चाहिये। होमियोपैथिक चिकित्सामें यही सबसे बड़ा काम है; क्योंकि रोग आरोग्यका समस्त दारमदार इसीपर निर्भर रहता है। इसलिये; यदि यह कार्य हो जाता है, तो एक बहुत बड़ा कार्य समाप्त हो जाता है। अब चिकित्सकको, उन लक्षणोंमेंसे खास-खास लक्षणोंको अलग छांट लेना चाहिये। ये खास लक्षण वे हैं, जो भिन्न-भिन्न रोगियोंमें भिन्न-भिन्न रहते हैं। अब मेटीरिया-मेडिका द्वारा वे ही विशेष और साधारण लक्षणवाली ओषध चिकित्सक बहुत सरलतापूर्वक छांटकर प्रयोग कर सकता है। इस औषधकी क्रिया यह होगी कि वैसे ही लक्षणवाली एक नकली बीमारी पैदाकर, असली रोगको हटा देगी। इसके बाद जब दूसरी बार, चिकित्सक उस रोगीको देखे, तो जो लक्षण दूर हो गये हैं, उनको अपनी सूचीमेंसे काट दे। इससे उसे तुरन्त पता लग जायगा, कि दवाने कितना फायदा किया और यदि कोई नवीन लक्षण पैदा हो जायें, तो उनको अलग लिख ले। इस तरह यह लक्षण-लेखन-प्रणाली दवाके चुनावमें जिस तरह सहायता पहुँचाती है, उसी तरह रोगीकी अवस्थाकी जाँचमें भी इससे मदद मिलती है।

[१०५]

चिकित्सकके लिये जानने योग्य अन्य क्या बातें हैं ?

सच्चे चिकित्सकके लिये, जानने योग्य दूसरी बात यह है कि वह स्वाभाविक रोगोंको दूर करनेके लिये आवश्यक और अभिष्ट साधनों (दवाओंके गुणों) की जानकारी प्राप्त करे। वह औषधियोंकी रोगोत्पादक शक्तियोंकी खोज करे, ताकि जब किसी रोगीकी चिकित्सा करनेके लिये बुलाया जाये, तो, वह उनमेंसे किसी ऐसी उपयुक्त औषधका निर्वाचन कर सके, जो रोगीके शरीरमें जाकर, वैसी ही कृत्रिम बीमारी पैदा कर सके, जिससे रोगी आक्रान्त है और जिसे दूर करनेके लिये उसे बुलाया गया है। रोगीके लक्षणों और औषध द्वारा लाये लक्षणोंमें, यथासम्भव अधिक-से-अधिक साम्यता होनी चाहिये।

खुलासा—होमियोपैथी द्वारा रोग आरोग्य किस तरह होता है, यह बात बताते हुए महात्मा हैनिमैन बता चुके हैं कि सम-लक्षणवाली दवाकी यह क्रिया होती है कि वह वैसे ही लक्षणोंवाली, पर पहलेके—मूल रोगकी अपेक्षा कुछ कड़ी, वैसी ही नकली बीमारी पैदा कर दे। यह नकली जबर्दस्त बीमारी पहले रोगको हटाकर आप उस स्थानको अधिकारमें कर लेती है और नकली रहनेके कारण यह बहुत जल्द आप भी हट जाती है। इस तरह रोग आरोग्य होता है ; परन्तु उसी ढंगकी औषधिका प्रयोग कब हो सकता है। इसके लिये मेटिरिया-मेडिकाके प्रभूत-ज्ञानकी आवश्यकता है अर्थात् चिकित्सकको हरेक दवाके रोगोत्-पादक लक्षण जानना चाहिये। यही आरोग्यका साधन है। दवाओंके रोगोत्पादक लक्षणोंका ज्ञान रहनेपर ही, वह वैसी दवा चुन सकता है, जो उसी प्रकारकी कृत्रिम बीमारी पैदा कर सकती है।

[१०६]

सदृश-विधानके अनुसार, किस ज्ञानकी आवश्यकता है, जिससे औषधका ठीक-ठीक प्रयोग हो सकता है ?

सुचिकित्सकके लिये कुछ दवाओंके समस्त रोगोत्पादक लक्षण जानना अनिवार्य है। सारांश यह कि चिकित्सकको यह समझना चाहिये कि अमुक-अमुक औषध, स्वस्थ मानव शरीरमें, क्या-क्या विकार और परिवर्त्तन लाती है। औषध व्यवहारसे पहले, यथासम्भव स्वस्थ शरीरमें उन्हें देखना चाहिये। इसके बाद, सादृश्य औषधके रूपमें, स्वाभाविक रोगको दूर करनेके लिये उनका व्यवहार करना चाहिये।

खुलासा—प्रत्येक दवामें यह शक्ति है कि स्वस्थ शरीरमें जाकर कुछ-न-कुछ परिवर्त्तन ला देती है। स्वस्थ अवस्थासे परिवर्त्तित अवस्थाको ही रोग कहते हैं। अतएव, सभी भेषजोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके परिवर्त्तन लाने अर्थात् रोग पैदा करनेकी शक्ति है। हैनिमैन कहते हैं कि यदि स्वाभाविक रोगको हम आराम करना चाहते हैं, तो बहुत-सी दवाओंके सम्पूर्ण रोगोत्पादक लक्षण, हमें जानने होंगे, तभी हम उन मूल रोग-लक्षणोंकी समतावाली दूसरी कृत्रिम बीमारी पैदा कर सकेंगे, नहीं तो नहीं।

[१०७]

दवाकी रोग उत्पन्न करनेवाली शक्ति जाननेके लिये रोगी मनुष्यको यदि दवा खिलायी जाये, तो क्या होगा ?

इसको जाँचनेके लिये, यदि अकेली, एक ही दवा किसी रोगीको खिलाकर परीक्षा की जाये, तो उसका सत्य प्रभाव बहुत थोड़ा या कुछ भी नहीं प्रकट होगा ; क्योंकि ऐसी अवस्थामें मूल रोगके लक्षण और

दवाके लक्षण इस तरह मिल जायेंगे कि इसका कुछ भी पता नहीं लगेगा कि कौन लक्षण किसके हैं।

खुलासा—यह दवाकी परीक्षाका विषय है। हरेक दवाकी अलग-अलग रोग पैदा करनेकी शक्ति है। अब किस दवामें किस ढंगका रोग पैदा करनेकी शक्ति है, इसकी परीक्षा स्वस्थ व्यक्तिको ही वह दवा खिलाकर हो सकती है। यदि अस्वस्थ व्यक्तिको ही वह दवा, अकेली, एक ही खिलायी जायगी, तो यह होगा कि रोगके लक्षण और दवाके लक्षण आपसमें मिल जायँगे और किसी तरह भी पता न लगेगा, कि कौन लक्षण दवासे पैदा हुए हैं और कौन बीमारीके हैं।

[१०८]

औषधियोंका प्रभाव जाननेका क्या तरीका है ?

अतएव, औषधियोंका मानव-स्वास्थ्यपर अद्भुत प्रभाव जाननेके लिये इसके सिवा कोई दूसरा सम्भव, सच्चा और स्वाभाविक तरीका नहीं है कि परीक्षाके लिये, अल्पतम मात्रामें, कतिपय स्वस्थ व्यक्तियोंको, एक ही दवा खिलायी जाये और जाँचा जाये कि क्या परिवर्त्तन और कौन-से उपसर्ग तथा उनके प्रभावके चिह्न हरेक स्वस्थ मनुष्यके शरीर और मनपर प्रकट होते हैं ; अर्थात् वे क्या उपद्रव पैदा कर सकती हैं। क्योंकि यह पहले ही बताया जा चुका है (सूत्र २४—२७) कि रोगकी सभी आरोग्यकर शक्तियाँ, औषधकी मानव-स्वास्थ्यमें परिवर्त्तन लानेकी शक्तिपर ही निर्भर करती हैं। इसपर ध्यान देनेसे ही इसका प्रत्यक्ष पता लग जाता है।

खुलासा—औषधकी परीक्षाका यही नियम है कि कई दवाएँ, कई स्वस्थ मनुष्योंको देखकर देखा जाये कि वे स्वास्थ्यमें क्या परिवर्त्तन लाती हैं। शारीरिक और मानसिक क्रियामें क्या परिवर्त्तन करती हैं, कौन-

कोनेसे लक्षण पैदा कर देती है। वान हालरके सिवा २५०० वर्षोंमें और किसीने भी इस वातपर ध्यान दिया कि औषध परीक्षाका यही नियम है और इसी नियमसे रोग आरोग्यकर औषध प्राप्त हो सकती है। एकमात्र हैनिमैनने ही उनकी इस वातका समर्थन किया और परीक्षाओं द्वारा इस अकाट्य सत्यको प्रत्यक्ष किया है। औषधकी इस रोगोत्पादिका शक्तिमें ही उसकी आरोग्यकर शक्ति भी छिपी रहती है अर्थात् जिन लक्षणोंको वह उत्पन्न करती है, उन्हीं लक्षणवाले मूल रोगको वह आरोग्य भी कर सकती है।

[१०९]

औषधियोंकी परीक्षाका यह सच्चा तरीका किसने सर्वप्रथम आविष्कार किया ?

मैं ही पहला चिकित्सक हूँ, जिसने इस मार्गको प्रशस्त किया। मैं इस मार्गपर वहुत ही धीरजके साथ चला और वह धीरज उस महान सत्यके प्रति पूर्ण आस्थाके कारण आया। यह पीड़ित मानवके लिये दैवी वरदान है। वह मार्ग है—जो औषध जैसे लक्षण और उपद्रव पैदा कर सकती है, वह वैसे ही लक्षणों और उपद्रवोंको दूर भी कर सकती है और इस तरह मानवके कुछ रोगोंको निश्चित रूपसे दूर किया जाना सम्भव है।

खुलासा—हैनिमैन कहते हैं—दवाकी स्वस्थ शरीरपर जाँच और इस तरह उसके द्वारा, सदृश-विधानके अनुसार रोग आरोग्य करनेका यह तरीका, मैंने ही सबसे पहले ईजाद किया है। रोग सम्पूर्ण रूपसे इसी तरीकेसे आरोग्य हो सकता है, दूसरेसे नहीं।

ऊपर हम कह आये हैं कि वान हालरने, एक वार इसका आभास दिया था, पर वे भी कार्य-रूपमें, इसे परिणत न कर सके थे। अतएव,

यह ईजाद खास हैनिमैनकी चीज है। वह असम्भव है कि कोई दूसरा तरीका इनसे भी अच्छा हो, जिससे शक्ति-सम्पन्न रोग आरोग्य हो सकें। यह उतना ही असम्भव है, जितना दो विन्दुओंके बीचमें एक सरल-रेखासे अधिक रेखाका खींचा जाना। ऐसे मनुष्य, जो यह सोचते हैं कि इसके सिवा भी कोई तरीका होगा, उन्होंने सदृश चिकित्साको अच्छी तरह नहीं समझा है और न सावधानीसे इसे कार्यमें परिणत किया है, तथा उन्होंने होमियोपैथी द्वारा, चिकित्सक रोगियोंका विवरण भी अच्छी तरह नहीं पढ़ा है। उन्हें ऐलोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली तथा इस प्रणालीका प्रभेद अच्छी तरह समझना, जाँचना और अध्ययन करना चाहिये।

[११०]

विष तथा औषधकी शक्तिका पता पाकर हैनिमैनने क्या प्राप्त किया था ?

मैं यह भी देखा है कि मुझसे पहलेके लेखकोंने कुछ विशेष औषधियोंके वही गुण लिखे हैं, जो मेरे और अन्य चिकित्सकोंके देखनेमें आये। इन औषधियोंने स्वस्थ मानव शरीरमें जाकर वही लक्षण और उपद्रव पैदा किये, जो उन्होंने और मैंने तथा अन्य चिकित्सकोंने देखे ; फिर चाहे ये दवाएँ भूलसे अधिक मात्रामें खाई गयीं या हत्या अथवा आत्महत्याके विचारसे खाई गयीं। इन लेखकोंने उन औषधियोंको विष बताकर, इतिहासके रूपमें, उनके गुण लिखे हैं और यह प्रमाण दिया है कि ये पदार्थ कितने शक्तिशाली हैं। विशेषतः उन्होंने दूसरे लोगोंको चेतावनी दी है कि वे इनका व्यवहार न करें। शायद इसका एक कारण यह होगा कि वे अपनी मानसिक और विशेष बुद्धिका परिचय देना चाहते थे। जब उन्होंने इनके उपद्रवोंका निराकरण करनेके लिये

औषधोपचार किया, तो स्वास्थ्य बहाल हो गया। और कुछ इसलिये भी कि जब उनकी चिकित्समें आये कुछ व्यक्ति इस तरह दवा खाकर मर गये, तो उन्होंने अपना मुखोज्वल करनेके लिये, उन्हें खतरनाक बताया और इन्हें विषकरार दिया। परन्तु इन पर्यवेक्षकोंको यह बात स्वप्नमें भी न सूझी कि इन औषधोंका यह दुष्ट, हानिकर और घातक प्रभाव, उसी तरहके लक्षणोंको, जो स्वाभाविक रूपसे आये किसी रोगके दौरानमें पैदा हुए हों, दूर करनेका निश्चित आविष्कार है। उन्हें यह बात न सूझी कि इन दवाओंने जो लक्षण पैदा किये हैं, वह इस बातकी सूचना है कि ये दवाएँ वैसे ही रोग-लक्षणोंको दूर भी कर सकती हैं। उन्हें यह भी न सूझा कि औषध रूपमें इनके गुणोंकी आजमाईश करनेका एकमात्र उपाय है—यह देखना कि स्वस्थ मानव-शरीरमें इनके व्यवहारसे क्या-क्या मौलिक परिवर्त्तन आते हैं। क्योंकि पूर्व कल्पनाके सहारे ही कि किसी औषधके द्रव्यगुणका पता नहीं चल सकता; और नहीं सूँघने, चखने, औषधको देखने या उसके रासायनिक पर्यवेक्षण या किसी रोगमें उन्हें अन्य कई दवाओंके साथ मिलाकर देनेसे ही पता चलता है। यह कभी सन्देह ही न हुआ था कि औषधों द्वारा पैदा की हुई बीमारियोंका यह विशद इतिहास किसी दिन सच्चे और शुद्ध निघण्टुकी नींव सिद्ध होगी; क्योंकि आरम्भिक दिनसे ही निघण्टु—मेटीरिया-मेडिका—कल्पनाओंसे ओतप्रोत चला आ रहा है—और या फिर यों कहना चाहिये कि हमें आजतक औषधोंके वास्तविक द्रव्यगुणका ज्ञान ही नहीं था।

खुलासा—हैनिमैन कहते हैं कि इसके पहले अपनी इच्छासे हो या भूलसे अथवा किसी घटनावश ही, लोगोंके शरीरमें विष जानेका क्या परिणाम हुआ था अर्थात् शरीरमें कौन-कौनसे परिवर्त्तन पैदा हो गये थे, यह पूर्वके ग्रन्थकारगण लिख गये हैं। इसके तीन उद्देश्य थे—एक तो सर्वसाधारणको इनके व्यवहारसे सावधान कर देना; दूसरे—यदि इनके

द्वारा चिकित्साकर वे रोग-लक्षण दूर कर सके, तो अपनी चतुरता दिखाना; तीसरे—यदि इनके प्रयोगसे मृत्यु हो जाये, तो इनकी सांघातिक प्रकृतिको समझाकर, अपने चिकित्सा-ज्ञानकी महता दिखाना। इसीलिये इनका नाम भी उन्होंने विष रख दिया। वे नहीं जानते थे कि इन दवाओंसे जिस तरह रोग पैदा होता है, उसी तरह इनमें रोग आरोग्य करनेकी भी शक्ति छिपी हुई है। जिस विषसे मनुष्यकी मृत्यु होती है, वही मनुष्यको मृत्युके ग्राससे बचा सकता है—यदि वे एक बार भी यह बात सोचते, तो इनका नाम वे विष कदापि न रखते। उन लोगोंने इस बातपर कभी ध्यान ही न दिया कि यदि किसी दवा द्वारा रोग आरोग्य करना हो, तो यह भी जानना परम आवश्यक है कि स्वस्थ शरीरमें वही दवा कौन रोग पैदा कर सकती है। यह बात उस दवाके रंग, रूप, स्वाद, गन्ध और विश्लेषण अथवा अन्य दवाओंमें सम्मिश्रण करके किसी रोगीको खिलानेसे नहीं मालुम हो सकती। वे इस बातकी कल्पना भी न कर सके कि आज जिस चीजको वह घातक विष कह रहे हैं, किसी दिन वही मेटीरिया-मेडिकाका प्रधान उपादान बनेगी और पीड़ित मानवके लिये अमृत तुल्य उपयोगी सिद्ध होगी।

[१११]

हैनिमैनको कैसे विश्वास हुआ कि दवाओंसे निर्भर योग्य आरोग्यके लक्षण प्रकट होते हैं?

पुराने चिकित्सकों तथा लेखकों द्वारा, दवाओंके विशुद्ध प्रभावके सम्बन्धमें किये हुए विचारोंसे, हमारे विचार मिलते हैं। यद्यपि वे मेटीरिया-मेडिकामें किसी आरोग्यकर उद्देश्यको लक्ष्य करके नहीं लिखे गये हैं, तथापि उनके विवरण और भिन्न-भिन्न ग्रन्थकारोंके, इस सम्बन्धमें दिये हुए विवरणकी समतापर विचार करनेसे हमें यह मालुम हुआ, कि

भेषज-द्रव्य, स्वस्थ मानव-शरीरमें जो परिवर्त्तन पैदा करते हैं, प्रकृतिके स्थिर और अटल नियमके अनुसार ही होते हैं और अपने-अपने गुणके अनुसार ही उनमेंसे प्रत्येक अपनी विशेषताके अनुसार कुछ सुनिश्चित और विश्वस्त रोग-लक्षण उत्पन्न करते हैं।

खुलासा—इसका सारांश यह है, कि जिस समय मेटीरिया-मेडिकाकी रचना हुई थी, उस समय ग्रन्थकारोंने ऐसी आशा नहीं की थी, कि उससे रोगोंकी चिकित्सा करनेमें किसी तरहकी सहायता मिलेगी ; परन्तु ग्रन्थोंमें लिखे औषधोंके कारण, अन्य चिकित्सकोंके अनुभवमें आये लक्षण तथा हैनिमैनकी परीक्षामें प्रकट हुए दवाओंके लक्षणोंका सादृश्य देखकर, हैनिमैनको दृढ़ विश्वास हो गया, कि ये दवाएँ मनुष्य देहमें एक ही प्राकृतिक नियमके अनुसार और अपरिवर्त्तन-शील लक्षण प्रकट कर सकती हैं।

[११२]

प्राथमिक या गौण क्रियाएँ क्या है ?

इन पुराने नुस्खोंसे, जिनमें खतरनाक असर लानेवाले दवाओंकी अत्यधिक मात्रामें व्यवस्था की जाती है, हम कुछ ऐसी हालतें आते देखते हैं, जो आरम्भिक अवस्थाके सर्वथा विपरीत होती हैं। ये हालतें, आरम्भमें नहीं, वरन चिकित्साके अन्तमें आती हैं। यह विपरीत अवस्था या ऐलोपैथिक चिकित्साके बाद आये लक्षण, प्रारम्भिक क्रिया (सूत्र ६२) के सर्वथा विपरीत होते हैं या यों कहिये कि जीवनी-शक्तिपर दवाका जो उचित प्रभाव हुआ है—यह उसकी प्रतिक्रिया (सूत्र ६२—६७) है। यह अनुभव सिद्ध बात है कि यदि स्वस्थ मानवको ये ही दवाएँ साधारण मात्रामें दी जातीं, तो इन उपद्रवोंका कहीं पता ही न चलता। और यदि उनका व्यवहार अल्प मात्रामें

होता, तो, इनका कहीं नामनिशान भी देखनेमें न आता। जब रोगके समान ही लक्षण पैदा करनेवाली दवाका सूक्ष्म मात्रामें व्यवहार कराया जाता है, तो जीवनी-शक्ति उतनी ही प्रतिक्रिया लाती है, जो उसे स्वाभाविक स्वस्थ दशामें पहुँचानेके लिये पर्याप्त हो।

खुलासा—पुरानी पद्धतियोंके अनुसार जिन रोगियोंमें अत्यधिक मात्रामें दवाका प्रयोग हुआ, उसका नतीजा बहुत ही बुरा निकला; परन्तु यह दुष्परिणाम आरम्भमें ही दिखाई नहीं दे जाता। प्रारम्भमें जो अवस्था दिखाई देती है, अन्तिम अवस्था ठीक उसके विपरीत रहती है। पहले जो अवस्था दिखाई देती है, वह दवाकी प्राथमिक क्रिया (Primary action) है। इसका परिणाम यह होता है कि दवाका प्रयोग होनेपर जीवनी-शक्तिमें कुछ विकार पैदा हो जाता है, जिससे कितने ही लक्षण दब जाते हैं; परन्तु इस अवस्थामें जीवनी-शक्ति चुप नहीं रहती, वह औषधकी क्रियाके विपरीत चलती है अर्थात् प्रतिक्रिया आती है। यही उसकी गौण-क्रिया (Secondary action) है। ये गौण-क्रियाके लक्षण प्राथमिक क्रियाके बिलकुल विपरीत होते हैं। हैनिमैन कहते हैं, कि जब होमियोपैथिक नियमके अनुसार औषधका प्रयोग होता है, तो यदि साधारण मात्रामें दवा पड़ी, तो बहुत थोड़ी गौण-क्रिया होती है और सूक्ष्म मात्रामें तो यह गौण-क्रिया बिलकुल ही दिखाई नहीं देती। होमियोपैथिक दवा पड़नेपर जो प्रतिक्रिया जीवनी-शक्तिमें होती है, उससे कोई विकार नहीं आता, बल्कि स्वास्थ्य-सम्पन्न अवस्था आ पहुँचती है।

[११३]

क्या मादक द्रव्योंसे भी ऐसा ही होता है?

परन्तु मादक गुणवाली दवाएँ इस नियमसे मुक्त हैं ; क्योंकि वे अपनी प्राथमिक क्रिया द्वारा कभी-कभी अनुभव-शक्ति और अनुभूति और कभी-कभी उपदाह दूर कर देती हैं। पर अकसर ऐसा होता है, कि अपनी गौण-क्रिया द्वारा, यहाँतक कि स्वस्थ शरीरपर साधारण परीक्षाके लिये दी हुई इनकी मात्रासे भी, बढ़ी हुई अनुभव शक्ति और अतिरिक्त उपदाह दिखाई देता है।

खुलासा—ऊपरवाले अनुच्छेदमें हैनिमैनने बताया है, कि साधारण या अल्प मात्रामें होमियोपैथिक औषध देनेपर गौण-क्रिया दिखाई नहीं देती। अब वे कहते हैं, कि अफीम प्रभृति मादक द्रव्यों द्वारा इसका विपरीत फल दिखाई देता है अर्थात् इनकी मात्रा पड़नेपर उसकी मुख्य क्रियासे कभी-कभी अनुभव-शक्ति तो चली जाती है, पर गौण-क्रिया यह होती है कि अनुभव-क्षमता बढ़ जाती है, यहाँतक कि उत्तेजना भी अधिक प्रकट होने लगती है। इस तरह मादक द्रव्य भी दोनों तरहकी अर्थात् प्राथमिक और गौण क्रियाएँ प्रकट करती हैं। शराब उत्तेजना लाती है और गौण क्रियाके रूपमें सुस्ती, थकान और कमजोरी लाती है। भांग मानसिक क्रियाशीलता बढ़ाती और गौण क्रियाके रूपमें सुस्ती लाती है। इसी तरह अन्य मादक पदार्थोंके बारेमें भी देखा जाता है। ये अपने गुणधर्मानुसार कितने ही तरहके विकार लाते हैं और अपना असर कुछ-न-कुछ मानव-शरीरपर छोड़ जाते हैं।

[११४]

इनके सिवा अन्य दवाओंकी मुख्य क्रियासे क्या होती है ?

इन मादक द्रव्योंके सिवा, और किसी भी दवाकी स्वस्थ शरीरपर परीक्षा करनेसे, यह मालूम होता है कि उससे केवल मुख्य क्रिया ही उत्पन्न होती है ; अर्थात् वे ही लक्षण जिनसे दवा मनुष्यके स्वास्थ्यको विश्रृङ्खलित कर देती है और उसमें, अधिक या थोड़ी देरके लिये रहनेवाले रोग-लक्षण पैदा होते हैं।

खुलासा—अफीम आदि दवाओंका थोड़ी मात्रामें प्रयोग करनेपर भी यह परिणाम दिखाई देता है, कि वह अनुभव-शक्ति लोप कर लेती है। यह अनुभव-शक्ति लोप करना, उसकी मुख्य क्रिया है ; परन्तु अन्य दवाओंका प्रयोगकर, यह परिणाम होता है, कि स्वस्थ अवस्थासे वे अस्वस्थ अवस्था पैदा कर देती है, जीवनी-शक्तिकी क्रियामें विश्रृङ्खलता लाकर रोगके लक्षण उत्पन्न कर देती हैं, अर्थात् थोड़ी या अधिक देरके लिये, रोगी बना देती हैं। इसका सारांश यह है कि इसके द्वारा केवल प्राथमिक क्रिया ही प्राप्त होती है, गौण-क्रिया नहीं।

[११५]

दवाकी पर्यायवाचक क्रिया क्या है ?

इन लक्षणोंमें, कितनी ही दवाओंके सम्बन्धमें, ऐसा दिखाई देता है, कि उनमें आंशिक भावसे या किसी विशेष अवस्थाके अधीन, पहले पैदा हुए लक्षणोंके बिलकुल विपरीत लक्षण पैदा होते हैं ; लेकिन इसी कारणसे, उनको वास्तविक गौण-लक्षण या जीवनी-शक्तिकी सिर्फ प्रक्रिया ही न समझ लेना चाहिये, बल्कि इनसे यही मालूम होता है, कि वे

मुख्य क्रियाकी पर्यायक्रमसे पैदा हुई, नाना प्रकारकी अवस्थाएँ दिखाती हैं। इसीलिये वे पर्याक्रममागत लक्षण कहलाते हैं।

खुलासा—दवाएँ देनेपर उनकी जो मुख्य या प्राथमिक क्रिया होती हैं, उस समय कितनी ही दवाओं द्वारा कुछ ऐसे लक्षण प्रकट होते हैं, जिनको देखनेसे मालूम होता है, कि यह तो दवाकी गौण क्रिया है; क्योंकि ये लक्षण विपरीत होते हैं; परन्तु इनको गौण क्रिया नहीं मान लेना चाहिये। इन प्राथमिक क्रियाओंके वे लक्षण हैं, जो पर्यायक्रमसे उत्पन्न हुआ करते हैं, उनसे मालूम होता है, कि रोगीकी अवस्थामें कैसा-कैसा परिवर्त्तन होता है। यही कारण है, कि उसे पर्यायक्रमसे पैदा होनेवाली पर्यायक्रमागत क्रिया कहते हैं।

[११६]

ये लक्षण किस तरह पैदा होते हैं ?

इनमेंसे कुछ लक्षण तो दवासे अकसर पैदा होते हैं, अर्थात् इनमेंसे कितने ही तो बहुत-से मनुष्योंमें पैदा होते हैं, कितने ही कुछ ही मनुष्यमें बहुत कम पैदा होते हैं और कुछ केवल बहुत थोड़ेसे स्वस्थ शरीरमें उत्पन्न होते हैं।

[११७]

व्यक्तिगत धातु-वैशिष्ट्य किसे कहते हैं ?

इस अन्तिम श्रेणीके मनुष्य, व्यक्तिगत धातु-वैशिष्ट्यवाले (Idiosyncrasy) हैं अर्थात् इनकी विशेष प्रकारकी शारीरिक प्रकृत मालूम होती है। जो यों तो स्वस्थ मालूम होते हैं, पर कुछ विशेष चीजोंसे, जो दूसरेपर कोई भी प्रभाव या परिवर्त्तन नहीं लातीं, उनके शरीरमें रोगात्मक परिवर्त्तन लाया जा सकता है। पर यह हरेकपर अपना प्रभाव

न दिखा सकनेका कारण स्पष्ट है ; क्योंकि मनुष्यके स्वास्थ्यमें रोगात्मक परिवर्त्तन लानेके लिये दो बातोंकी जरूरत रहती है। एक तो परिवर्त्तन लानेवाले द्रव्यकी स्वाभाविक क्षमता और दूसरी जीवनी-शक्तिमें वह क्षमता, जो प्रभावित होनेपर उन अंगोंका पोषण करती है। इस तरहकी विशेष शारीरिक रचनावालोंके स्वास्थ्यमें जो गड़बड़ी पैदा होती है, उसका एकमात्र कारण यही विशिष्ट शारीरिक रचना नहीं है—इसका श्रेय उन चीजोंको भी मिलना चाहिये, जो यह गड़बड़ी पैदा करती हैं। उन चीजोंमें यह विशेषता होनी चाहिये, कि वे यही गुण अर्थात् इसी प्रकारकी गड़बड़ी प्रत्येक मानवमें पैदा कर सकें ; यह अलग बात है कि कुछ स्वस्थ व्यक्तियोंमें अधिक स्पष्ट रूपसे प्रकट हों। ये चीजें प्रत्येक स्वस्थ व्यक्तिमें, वस्तुतः. वही असर पैदा करती हैं—यह बात इससे सिद्ध हो जाती है। इसका निष्कर्ष यह है कि ये दवाइयाँ ऐसी विशेष प्रकृतिवालों (Idiosyncatics) के स्वस्थ शरीरमें जो विकार लाती हैं—वैसे ही विकारग्रस्त व्यक्तियोंको वे राहत पहुँचायेंगी और उनका कष्ट दूर कर देंगी।

खुलासा—सबसे पहले तो यह समझनेकी बात है, कि व्यक्तिगत धातु-वैशिष्ट्य किसको कहते हैं ? प्रत्येक मनुष्यकी प्रकृति अलग-अलग रहती है अर्थात् धातु या प्रकृतिकी विशेषतावाले जीव। एक उदाहरण लीजिये—गुलाबकी फूलकी गन्ध बहुत कम आदमियोंको मूर्च्छित करती है ; पर ऐसी भी प्रकृति या धातुवाले मनुष्य हैं, जिनको गुलावका फूल सूँघनेपर मूर्च्छा आ जाती है, जुहीकी गन्ध जुकाम पैदा कर देती है, यह उनकी प्रकृतिकी विशेषता है। ऐसी ही प्रकृतिवाले मनुष्य विशेष प्रकृतिवाले कहलाते हैं। हैनिमैन कहते हैं, कि परीक्षा करनेके समय, दवाओंके कितने ही लक्षण, बराबर बहुतसे मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं तथा कितने ही लक्षण ऐसे हैं, कि जो थोड़े मनुष्यमें होते हैं (सूत्र ११६)। अब ११७वें सूत्रमें यह कहते हैं कि कितने ही लक्षण बहुत थोड़े मनुष्योंमें

पैदा होनेका यह कारण है कि उनकी प्रकृतिमें एक ऐसी विशेषता रहती है ; अर्थात् कितने ही ऐसे मनुष्य होते हैं, जिनपर किसी चीजका प्रभाव बहुत जल्द पहुँच जाता है अर्थात् वे उस भेषजसे बहुत जल्द बीमार हो जाते हैं ; पर वे ही पदार्थ जब दूसरोंपर प्रयुक्त होते हैं, तब वैसा परिणाम नहीं होता। इससे यह न समझ लेना चाहिये, कि उन पदार्थोंमें प्रभाव पहुँचानेका गुण ही नहीं है। गुण सबमें है, पर प्रत्येक जीवकी प्रकृतिके अनुसार उनका प्रभाव होता है। आधारके अनुसार आधेय होता है। एक बात और भी है—प्रभाव दो तरहसे पहुँचता है। प्रभाव पहुँचानेका अर्थ है—परिवर्त्तन ला देना। परिवर्त्तन लानेवाले पदार्थकी शक्ति और जिसपर प्रयोग होता है, उसकी वह शक्ति, जिससे वह पदार्थको परिवर्त्तन करनेवाली शक्तिको ग्रहण करता है। अब द्रव्यमें तो गुण है, पर जिसपर उसका प्रयोग किया गया है, उसमें ग्रहण करनेवाली शक्ति नहीं है, तो काम नहीं होगा। इससे यह नहीं समझ लेना होगा कि यदि किसीपर क्रिया न हो तो द्रव्यमें ही वह गुण नहीं है, जो वह दूसरेपर मजेमें कर सकता है। दूसरोंको वह परिवर्त्तित या रोगी बना सकता है ; पर इसके लिये यह भी समझ रखना चाहिये कि समय और मात्राके अनुसार उनका कार्य होता है। हैनिमैन कहते हैं, कि प्रत्येक दवाका यह नियम है कि सदृश-लक्षणके अनुसार जब उनका प्रयोग होता है, तो समान लक्षणोंको वे करती हैं। यह कहनेका मतलब यह है कि ऐसा भी होता है कि किसी मनुष्यपर स्वस्थ अवस्थामें दवाका प्रयोग करनेपर कोई प्रभाव या विशेष प्रभाव नहीं हुआ, पर यदि उस दवाके लक्षणवाली अर्थात् सम-लक्षण-सम्पन्न बीमारी उसे हो जाती है, तो उसी दवासे उसका रोग आरोग्य होता है। अतः यह सिद्ध हुआ कि भेषजमें क्षमता सदैव मौजूद रहती है, भिन्न-भिन्न शरीर, प्रकृति और अवस्थाके अनुसार, उनका प्रभाव होता है। यदि नहीं हो, तो उस व्यक्तिकी विशेषता प्रकट होती है, दवाका दोष नहीं है।

[११८]

दो प्रकारकी दवाओंकी एक क्रिया क्यों नहीं हो सकती है ?

प्रत्येक औषध मानव-शरीरपर अपनी एक विचित्र क्रिया प्रकट करती है, कोई दूसरी दवा ठीक वैसे लक्षण पैदा नहीं कर सकेगी।

खुलासा—कोई भी दो दवाएँ एक तरहके लक्षण पैदा नहीं कर सकतीं। प्रत्येक दवाकी अपनी एक-एक अलग क्रिया रहती है, ठीक उसी प्रकारकी क्रिया किसी भी दूसरी दवामें नहीं पायी जा सकती। अतएव, यह स्थिर जान रखना चाहिये कि एक दवा जो लक्षण पैदा करेगी, दूसरीमें यद्यपि उसके भी बहुतसे लक्षण रह सकते हैं, पर कुछ-न-कुछ फर्क अवश्य ही रहेगा।

[११९]

क्या एकके बदले दूसरी दवा दी जा सकती है ?

जिस तरह यह निश्चित है, कि प्रत्येक उद्भिदके वाह्य-रूपमें, वृद्धि तथा अभिव्यक्तिमें, स्वाद और गन्धमें, दूसरे उद्भिदसे अन्तर रहता है तथा जिस तरह प्रत्येक खनिज पदार्थ और नमकमें प्रभेद रहता है और वे वाह्य रंग, रूप तथा रासायनिक तत्वोंमें विभिन्न रहते हैं, जिसमें कि एकके बदलेमें दूसरेका प्रयोग हो जानेकी गड़बड़ी न रहे, ठीक उसी तरहसे सब रोगोत्पादक—और परिणामस्वरूप—रोगनाशक साधनोंके गुण भी विभिन्न हैं। इनमेंसे प्रत्येक मानव-स्वास्थ्यमें कुछ ऐसे विशेष, विभिन्न तथा सुनिश्चित परिवर्त्तन पैदा करते हैं, कि एकके बदलेमें दूसरेके प्रयोगकी कभी गुञ्जायश ही पैदा नहीं होती।[1]

---

१. यदि यही सत्य है और जैसा यह निश्चित है, तब तो कोई भी चिकित्सक युक्ति-विरुद्ध कार्य कर ही नहीं सकता ; वह अपनी आत्माकी पुकारके विरुद्ध भी कभी

खुलासा—पौधे, गाछ, उद्भिद आदि बहुत तरहके होते हैं ; परन्तु एक समान एक जोड़का कोई भी नहीं होता। इसी तरह बहुतसे खनिज पदार्थ तथा कितने ही प्रकारके नमक होते हैं ; पर सबका रंग, रूप, स्वाद, गुण और गन्ध विभिन्न ही होती हैं, ठीक इसी तरह इनकी रोग पैदा करनेवाली और रोगको नष्ट करनेवाली शक्ति भी अलग रहती है, मनुष्य-शरीरमें ये अलग-अलग प्रकारके ही परिवर्त्तन पैदा करती हैं।

काम न करेगा और न कभी वैसे पदार्थका चिकित्सामें प्रयोग ही करेगा, जिसके वास्तविक गुण वह पूरी तरह न जानता हो अर्थात् वह उसी दवाका प्रयोग करेगा, जिसकी स्वस्थ व्यक्तिपर होनेवाली क्रिया उसने अच्छी तरह ठीक-ठीक जाँच ली होगी और जिसके विषयमें वह निश्चित रूपसे जानता होगा कि यह ठीक सम-लक्षणवाली रोगावस्था पैदा कर सकेगा और उसी दवाका उन रोगीमें वह प्रयोग करेगा, जिसमें अन्य दवाओंकी अपेक्षा अधिक सम लक्षण उत्पन्न करनेका उसे अनुभव होगा, क्योंकि जैसा ऊपर बताया जा चुका है। कोई मनुष्य और शक्तिशाली प्रकृति ही स्पष्ट किसी रोगको पूरी तरह तेजीसे और जड़से होमियोपैथिक दवाकी भाँति आरोग्य नहीं कर सकती। इसीलिये, कोई भी सच्चा चिकित्सक ऐसी परीक्षा करनेसे बाज न आयेगा, जिससे उसे दवाओंका ज्ञान अवश्य न प्राप्त हो जाये, यह आरोग्यकी कुञ्जी है और यह ज्ञान अबतक सभी कालके चिकित्सकोंने आयत्त करनेकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। पूर्वके सभी कालोंमें—वंशज शायद ही इसपर विश्वास करें। अबतकके चिकित्सक रोगोंके लिये अन्य भावसे उन दवाओंका व्यवहार करते आये हैं, जिनके गुणोंको वह जानते भी न थे और मानव-स्वास्थ्यपर जिनका अत्यावश्यक, बहुत विभिन्न, विशुद्ध शक्तिवाला प्रभाव रहनेपर भी जिनकी अबतक कभी परीक्षा न हुई थी। इसके अलावा आपसमें विभिन्न गुण-सम्पन्न इन कई औषधियोंको वे मिलाकर भी देते थे और रोगीका भविष्य भगवानके भरोसे ही छोड़ देते थे। यह तो ठीक उसी तरह है, जिस तरह एक पगला किसी चित्रकारकी दूकानमें घुस जाये और उसके वे यंत्र उठाने लगे, जिनका व्यवहार वह बिलकुल ही नहीं जानता, मानो वह कलाकी उन चीजोंके अनुसार ही कार्य करना चाहता है, जो वहाँ रखी हैं। मुझे यह कहनेकी जरूरत नहीं है कि कला बिगड़ जायगी, बल्कि यह कहूँगा कि वह इस अज्ञानपूर्ण कार्य द्वारा बिलकुल ही ध्वंस हो जायगी।

अतएव, इनमें इतना अन्तर है कि थोड़ा भी ध्यान देनेवाला, एकके बदले दूसरेका प्रयोग भूलकर भी नहीं कर सकता। सारांश यह है कि एक दवा दूसरी दवाके बदले नहीं हो सकती और उसकी जगह व्यवहारमें नहीं आ सकती।

[१२०]

क्या जरूरत है, कि प्रत्येक दवाकी परीक्षामें बहुत सावधान रहा जाये?

इसलिये दवाएँ, जिनपर मनुष्यका जीवन, मरण, रोग और आरोग्य निर्भर करता है, पूरी तरह और बहुत सावधानतासे एक दूसरीसे अलग छांट ली जानी चाहिये। उनकी शक्ति तथा सच्चा प्रभाव जाननेके लिये उनकी भरपूर जाँच होनी चाहिये, जिसमें कि उनका ठीक-ठीक व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हो जाये तथा रोगमें प्रयोग करते समय कोई भूल न हो; क्योंकि उनके ठीक-ठीक चुनाव द्वारा ही मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य-रूपी सर्वश्रेष्ठ सांसारिक निधि तेजीसे और सदाके लिये प्राप्त हो सकती है।

खुलासा—हैनिमैनने दवाओंके सम्बन्धमें, यह पहले ही बता दिया है, कि इनमें रोग पैदा करनेवाली और रोग नाश करनेवाली, दोनों ही प्रकारकी शक्तियाँ रहती हैं। अब यदि चिकित्सक इन दोनों शक्तियोंका किस तरह विकास होता है अर्थात् स्वस्थ शरीरपर यदि उनकी परीक्षा नहीं करता है, तो उसे यह मालुम नहीं हो सकता कि इससे कौन-कौनसे और किस प्रकारके उपसर्ग पैदा होते हैं; और वह दवाकी छँटाई भी नहीं कर सकता और न उस लक्षणवाले रोगको देखते ही, उनका प्रयोगकर रोगीको आरोग्य कर सकता है। इसीलिये, प्रत्येक

दवाकी बहुत ही सावधानतापूर्वक स्वस्थ मानव-शरीरपर, सुचारू रूपसे, परीक्षा करनेकी अधिक आवश्यकता है।

[१२१]

दवाकी परीक्षा करते समय क्या बात ध्यानमें रखनी चाहिये?

स्वस्थ शरीरपर दवाओंका प्रभाव जाननेके लिये, परीक्षा करते समय, यह ध्यानमें रखना चाहिये कि तीव्र तथा बलवान पदार्थ, मजबूत-से-मजबूत मनुष्यमें भी थोड़ी ही मात्रामें स्वास्थ्यमें परिवर्त्तन पैदा कर सकते हैं; पर जो कम शक्तिशालिनी हैं, उनकी मात्रा परीक्षाके समय अधिक परिमाणमें प्रयोग करनी चाहिये; परन्तु बहुत मृदु दवाओंकी परीक्षा भी एकदम स्वस्थ, नीरोग व्यक्तिपर होनी चाहिये। बहुत कोमल प्रकृतिवाले, उत्तेजनाशील या जो असहिष्णु हैं, उनपर न होनी चाहिये।

खुलासा—औषधकी परीक्षाके सम्बन्धमें बतानेके बाद, अब यह बताते हैं, कि परीक्षामें दवाकी मात्राका कैसा प्रयोग होना चाहिये और किस ढंगके मनुष्यपर उसकी परीक्षा होनी चाहिये। तीन प्रकारकी दवाएँ हैं—एक तो उग्र वीर्यवाली, जिनका बहुत ही तीव्र प्रभाव होता है; ये खूब सुदृढ़ मनुष्यमें भी, बहुत तीव्र लक्षण उत्पन्न करती हैं। स्वस्थ शरीरपर इनकी परीक्षा करते समय, बहुत थोड़ी मात्राका प्रयोग करना चाहिये। दूसरी साधारण मृदु-प्रकृतिकी, इनका प्रयोग भरपूर मात्रामें करना चाहिये: पर तीसरी, जो बहुत ही कोमल प्रकृतिकी होती हैं, उनका प्रयोग भी उसी तरहकी बड़ी मात्रामें होना चाहिये। परन्तु इन सबकी ही परीक्षा उसी मनुष्यपर होनी चाहिये, जिसमें किसी तरहका रोग न हो, जो बहुत ही कोमल प्रकृतिवाला, दुर्बल न हो, या, जो जरासेमें ही उत्तेजित होकर घबड़ा न उठता हो।

[१२२]

परीक्षाके लिये कैसी औषध काममें लानी चाहिये ?

इन परीक्षाओंमें—जिनपर सम्पूर्ण चिकित्सा-कला निर्भर करती है, तथा जिनपर भावी सन्तानका कुशल-मंगल निर्भर करता है, उनमें खूब जानी-बूझी और ऐसी दवाके सिवा कोई दूसरी दवाका प्रयोग न करना चाहिये, जिनकी प्रकृति खूब जानी हुई है और जिनकी शुद्धता, प्रकृष्टता तथा शक्तिसे हमलोग पूर्ण परिचित न हों।

खुलासा—इसमें सन्देह नहीं कि होमियोपैथिक चिकित्सा इस परीक्षापर ही निर्भर करती है। यदि इस परीक्षामें कुछ भी व्यतिक्रम हुआ, तो रोगोपर ऐसी दवाका प्रयोग हो सकता है, जिसका परिणाम पुश्त-दर-पुश्त तकके लोगोंको भोगना पड़े। इसके लिये, चिकित्सकको बहुत सावधानीसे यह देखना चाहिये कि दवा अपने शुद्ध रूपमें है, भ्रमसे दूसरा उद्भिद तो नहीं आ गया है, उसमें कोई खराबी तो नहीं है, तथा उसके खराब हो जानेके कारण, उसकी शक्ति नष्ट तो नहीं हो गयी है। इसी तरह जाँच करके और समझ-बूझकर दवाका प्रयोग करना चाहिये।

[१२३]

औषधका किस रूपमें प्रयोग होना चाहिये ?

इनमेंसे प्रत्येक औषध ऐसी लेनी चाहिये, जो एक ही हो और उसमें कोई सम्मिश्रण न हुआ हो। इसके लिये उद्भिदोंका ताजा रस लें, उसमें थोड़ा-सा सुरासार मिला देना चाहिये, ताकि वह खराब न हो जाये तथा ताजी जड़ी बूटियोंका सार चूर्ण-रूपमें या सुरासार द्वारा प्रस्तुत मूल अर्क उनकी ताजी अवस्थामें, बादमें थोड़ा-सा पानी मिलाकर प्रयोग करना चाहिये। नमक तथा गोंद, प्रयोगके पहले पानीमें गला

लेना चाहिये। यदि कोई उद्भिद केवल सूखी अवस्थामें ही प्राप्त हो सके और यदि उसकी शक्ति स्वाभाविक रूपसे दुर्बल हो, तो परीक्षाके लिये ऐसी चीजोंको टुकड़े-टुकड़े कर डालना चाहिये, फिर उनपर उबलता हुआ पानी डालकर अर्क निकाल लेना चाहिये। इसके तैयार होते ही गर्म-गर्म ही पी जाना चाहिये ; क्योंकि सब तरहके उद्भिद रस तथा उद्भिदके अर्क स्पिरिट मिलाये बिना बहुत जल्द सड़ जाते हैं तथा खराब हो जाते हैं, और इस तरह उनकी समस्त भेषज-शक्ति नष्ट हो जाती है।

खुलासा—परीक्षाके लिये—(१) दवा बेमेल होनी चाहिये और एक ही दवा होनी चाहिये। (२) यदि उद्भिदोंका रस देना हो, तो रस निकालकर उसमें थोड़ा सुरासार मिला रखना चाहिये, जिसमें वह सड़ने न पाये। (३) ताजी जड़ी-बूटियोंका चूर्ण या सुरासारमें बना अर्क थोड़ा पानी मिलाकर प्रयोग करना चाहिये। (४) नमक और गोंद प्रयोग करनेसे पहले पानीमें घोल देना चाहिये। (५) यदि कोई दवा सूखी ही मिले, तो उसके टुकड़े-टुकड़े करके उबलते पानीमें डालकर, अर्क निकाल लें और गर्म ही प्रयोग करना चाहिये। उनको रख न छोड़ना चाहिये ; क्योंकि ऐसे अर्कमें तुरन्त खटास आ जाती है और वे सड़ने लगते हैं।

[१२४]

इन दवाओंकी परीक्षामें प्रयोगके लिये किन नियमोंको माननेकी जरूरत है ?

इन परीक्षाओंके लिये, प्रयोग करते समय, प्रत्येक भेषज पदार्थ अकेला होना चाहिये, एकदम विशुद्ध होना चाहिये और उसमें कोई भी बाहरी पदार्थ सम्मिलित न रहना चाहिये। साथ ही, उस दिन कोई

भी दूसरी तरहका भेषज-पदार्थ न खाना चाहिये। केवल उसी दिन नहीं, बल्कि उसके दूसरे दिन या जितने दिनोंतक उसके प्रभावको देखना हो, तबतक न खाना चाहिये।

खुलासा—परीक्षाके समय इस बातका ख्याल रखना चाहिये कि दवा एक ही प्रयोग की जाये—एक साथ दो या अधिक दवाओंका, किसी मनुष्यपर परीक्षाके लिये, प्रयोग न हो ; क्योंकि इससे किसी भी दवाका प्रभाव स्पष्ट न मालुम होगा। दवा परम शुद्ध हो—कोई भी चीज उसमें न मिल जाये ; अब जिसपर उस दवाका प्रयोग किया जाये, उसे उस दिन ऐसी कोई चीज खानेको देनी न चाहिये, जिसमें औषधका गुण हो। इतना ही नहीं तबतक कोई औषध-रूपी पदार्थ न खाना चाहिये, जबतक यह देखना हो कि इस दवाने क्या-क्या उपसर्ग उत्पन्न किये हैं अथवा क्या-क्या परिवर्त्तन उत्पन्न कर दिये हैं।

[१२५]

परीक्षा-कालमें भोजन कैसा होना चाहिये ?

सम्पूर्ण परीक्षा-कालमें, भोजन खूब नियमित होना चाहिये तथा भोजन विशुद्ध, पौष्टिक और आडम्बर-हीन होना चाहिये। सब तरहके मसाले, साग-सब्जियाँ, मूल तथा अन्य चीजोंके रस, जिनमें बहुत सावधानतासे तैयार करनेपर भी कुछ-न-कुछ गड़बड़ी पैदा करनेवाला भेषज-गुण रहता ही है, वह सब खाना छोड़ देना चाहिये। जितने पेय-पदार्थोंका व्यवहार होता है, वे भी वैसे ही सदा होने चाहिये। यथासम्भव खान-पानमें कोई उत्तेजक चीज न हो।

खुलासा—मसालोंमें औषध-गुण होता है, तथा साग-सब्जियाँ भी कुछ-न-कुछ भेषज-गुण रखती हैं। अतः उन्हें त्याग देना चाहिये ; पर हरे मटर, फ्रेंच बीन, उबाला आलु वगैरह खाये जा सकते हैं ; क्योंकि

इनमें बहुत कम भेषज-गुण हैं। इसके अलावा, परीक्षाका प्रयोग जिसपर होता हो, उसे शराब, ब्रांडी, काफी या चाय प्रभृति भी न पीनी चाहिये। पीनेकी आदत हो, तो, परीक्षाके लिये इनका प्रयोग होनेके बहुत दिन पहलेसे ही उसे त्याग देना चाहिये।

[१२६]

जिसपर औषधकी परीक्षा की जाय, उसको कैसा होता चाहिये ?

जिस व्यक्तिपर, औषधकी परीक्षा की जाती है, उसे विशेष रूपसे, विश्वासी और विवेकशील होना चाहिये। जबतक परीक्षा जारी रहे, अर्थात् परीक्षा-कालमें मानसिक या शारीरिक परिश्रम अधिक न करना चाहिये, सब तरह विरक्त करनेवाली और चंचल बना देनेवाली उत्तेजनाओंसे अलग रहना चाहिये ; ध्यान विचलित करनेवाले आवश्यक कार्य उसे त्याग देने चाहिये ; उसे केवल सावधानता-पूर्वक अपनेको देखनेमें लगे रहना चाहिये और इस तरहकी अवस्थामें किसीको उसे विचलित न करना चाहिये। साथ ही उसको ठीक उस अवस्थामें रहना चाहिये, जो उसके लिये एक उत्तम स्वास्थ्य-सम्पन्न अवस्था है। इसके अलावा, उसमें ऐसी काफी बुद्धि या ज्ञान रहना भी आवश्यक है, जिसके द्वारा वह उपयुक्त भाषामें अपनी अनुभुतियोंको बता सके।

खुलासा—जिसपर औषधकी परीक्षा होती है, वही असल चीज है। उसीकी विवेक, बुद्धि और सत्यतापर ही दवाका फलाफल निर्भर करता है। यदि दवा खानेपर उसने जो कुछ परिवर्त्तन अपनेमें देखे, उनको ठीक-ठीक अनुभवकर, सत्य-सत्य बता सका, तभी दवाकी सच्ची क्रिया प्रकट होगी और तभी यह दवा कौनसे मानसिक और शारीरिक लक्षण पैदा कर सकती है, यह प्रकाशित हो सकेगा। उसकी थोड़ी-सी सत्यता

या जरा-सी भूल भारी भ्रम उत्पन्न कर सकती है। अतएव, उसे खूब सावधान रहना चाहिये। उसकी शक्ति दूसरी ओर न बिखर जाये, इसलिये उसे शारीरिक या मानसिक परिश्रम कम करना चाहिये। साथ ही अधिक मानसिक या शारीरिक परिश्रमसे जीवनी-शक्तिका क्षय होता है, रोग हो सकते हैं। रोग होनेपर भी दवाका यथार्थ प्रभाव प्रकट नहीं हो सकता ; अतएव, उसे अधिक परिश्रम तथा ऐसे कामोंसे अपनेको अलग रखना चाहिये, जिससे चित्तमें किसी तरहकी विकलता या उत्तेजना प्रभृति पैदा न हो। सारांश यह कि एकदम शारीरिक और मानसिक स्वस्थ अवस्थामें रहकर अपने मन और शरीरपर लक्ष्य रखना और दवासे आये परिवर्त्तनोंको समझकर बताना होगा।

[१२७]

क्या दवाकी परीक्षा स्त्री-पुरुष दोनोंपर ही होनी चाहिये ?

स्त्री-पुरुष दोनोंपर ही दवाकी परीक्षा होनी चाहिये, जिसमें कि लिंग-भेदके कारण उत्पन्न हुए, दोनों प्रकारके परिवर्त्तन मालूम हो जायें।

खुलासा—स्त्री अंग तथा पुरुष अंगमें प्रभेद रहता है। अतएव दवाकी क्रिया, नर-नारी दोनोंपर ही क्या परिवर्त्तन पैदा कर सकती है ? यह जानना परम आवश्यक है, नहीं तो स्त्री-रोगोंमें, उन औषधियोंका प्रयोग ही नहीं हो सकता, जिनकी क्रिया केवल पुरुषोंपर ही जाँची गयी है। अतएव, दोनोंपर ही दवाकी परीक्षा होनी चाहिये।

[१२८]

दवाकी किस रूपमें परीक्षा करनी चाहिये ?

आधुनिक परिदर्शनोंसे मालूम हुआ है कि भेषज द्रव्य जब जड़ावस्थामें परीक्षा द्वारा विशेष प्रभाव जाननेके लिये प्रयुक्त होते हैं, तो

अपनेमें छिपी शक्तिको पूरी तरह नहीं प्रकट करते। ये अपना पूरा प्रभाव तब प्रकट करते हैं, जब इसी उद्देश्यसे विचूर्ण बनाकर या हिला-हिलाकर उच्च शक्तिमें पहुँचा दिये जाते हैं, मानो मूलावस्थामें उनकी जो शक्तियाँ छिपी हुई थीं, या सोयी हुई थीं, वे ही इन प्रक्रियाओंसे विकसित होकर आश्चर्य-रूपसे कार्य करने लगीं। इस ढंगसे, जिन दवाओंको हमलोग कमजोर समझते हैं, उनकी भी भेषज-शक्तिका भरपूर पता लग जाता है। इसकी प्रणाली यह है कि परीक्षा करनेवालेको, ऐसी दवाकी ३०वीं शक्ति ४ से ६ छोटी गोलियोंके रूपमें, नित्य खाली पेट रहनेपर, खिला देनी चाहिये। दवा देते समय, उन गोलियोंको थोड़े पानीसे तर कर देना चाहिये या पानीमें घोलकर अच्छी तरह मिलाकर दे देना चाहिये, और, कई दिनोंतक यही क्रम बराबर जारी रखना चाहिये।

खुलासा—हैनिमैन दवाओंकी परीक्षा-विधिपर बराबर ही विचार करते रहे कि किस तरह भेषजकी ठीक-ठीक क्रिया और प्रभाव प्रत्यक्ष हो सकते हैं। परीक्षा करते-करते, अन्तमें वे इसी सिद्धान्तपर पहुँचे कि दवा जबतक मूल अवस्थामें रहती है अर्थात् जड़ी-बूटी, उद्भिद, जो कुछ हो, वह जबतक ज्यों-की-त्यों अवस्थामें रहता है, तबतक उसका पूरा-पूरा प्रभाव या सम्पूर्ण क्रिया विकसित नहीं होती। सोना एक बहुमूल्य पदार्थ है, वही सोना यदि मूल रूपमें खा लिया जाये, तो उसका कोई भी प्रभाव नहीं होता—यदि होता भी है तो बहुत साधारण पर उसी सोनेको जब प्रक्रयाओं द्वारा शक्तिकृत किया जाता है, जब उसकी खूब घोंटाई होती है, तब उसमें मरणासन्न मनुष्यको जीवनदान देनेकी शक्ति आ जाती है। यही अवस्था समस्त भेषज द्रव्योंकी भी है। मूल अवस्था—उनकी जड़ अवस्थाकी तरह रहती है। इस अवस्थामें उनका प्रयोग होनेपर जो-जो शक्तियाँ उनमें छिपी रहती हैं, वे प्रकट नहीं हो पातीं; पर वही दवा जब स्पिरिटके सहारे हिला-हिलाकर शक्तिकृत की जाती है या

खरलमें घोंटाई होकर, उनका विचूर्ण तैयार होता है, तो उनके भीतर छिपी हुई शक्तियाँ जाग उठती हैं और तुरन्त अपनी क्रिया प्रकट करने लगती है। होमियोपैथीका यह शक्तिकरण (Dynamization) एक आश्चर्यजनक शक्ति-प्रदायिनी प्रणाली है। कुछ लोगोंका ऐसा कथन है, कि मूलावस्थामें किसी औषधका प्रयोग करनेपर वह केवल शारीरिक लक्षण प्रकट करती है, परन्तु वही दवा जब शक्तिकृत रूपमें प्रयोग की जाती है, तो उससे मानसिक लक्षण भी प्रकट होने लगते हैं।

दवाओंके तीन भेद ऊपर बताये जा चुके हैं। कहा जा चुका है कि कुछ दवाएँ ऐसी भी हैं, जिनकी क्रया बहुत दुर्बल होती है; परन्तु शक्तिकरणकी प्रणालीमें जब वह दुर्बल दवा भी शक्तिकृत हो जाती है, तब वह भी अपनी क्रिया और प्रभाव परिपूर्ण मात्रामें प्रकट करने लगती है।

तीसरी बात आती है—इन शक्तिकृत दवाओंके प्रयोग करनेका तरीका। हरेक दवाकी ३०वीं शक्तिका प्रयोग करना चाहिये। दवाकी ४ से ६ छोटी गोलियाँ रोगीको तबतक नित्य खाली पेट खिलानी चाहिये, जबतक दवाकी परीक्षा होती रहे और जबतक उसके पूरे-पूरे गुण प्रकट न हो जायें। ये गोलियाँ या तो पानीमें तर कर देनी चाहियें, या खूब साफ पानीमें घोलकर देनी चाहियें।

[१२९]

पर यदि इतनेपर भी दवाका पूरा प्रभाव न हो ?

यदि इस तरह प्रयोग की हुई दवाकी मात्राका प्रभाव कम हो, तो अबतक नित्य कुछ गोलियाँ और भी खा लेनी चाहियें, जबतक प्रभाव अधिक स्पष्ट और सुदृढ़ न हो और स्वास्थ्यपर पैदा हुए परिवर्त्तन खूब स्पष्ट न मालुम होने लगें; क्योंकि सभी मनुष्योंपर दवाका समान भावसे

भरपूर प्रभाव नहीं होता। इसके विपरीत इस सम्बन्धमें बहुतसे प्रभेद हैं। कभी-कभी तो ऐसा होता है, कि किसी कमजोर मनुष्यपर शक्तिशाली कहलानेवाली दवाका साधारण मात्रामें बहुत कम प्रभाव होता है और कभी मृदु प्रकृतिकी दवाका बलवान मनुष्यमें बहुत अधिक प्रभाव दिखाई देता है। ऐसा भी होता है कि सुगठित शरीरवाले मनुष्यमें मृदु दवासे बहुत अधिक लक्षण प्रकट हो जाते हैं और शक्तिशाली दवाओंसे बहुत कम ; चूँकि यह वास्तविकता पहलेसे ही मालूम नहीं हो सकती, इसलिये अल्प मात्रासे ही दवाकी परीक्षा आरम्भ करनी चाहिये और जब उचित और आवश्यक मालुम हो, तो नित्य-प्रति दवाकी मात्रा बढ़ाते जाना चाहिये।

खुलासा—ऊपरी सूत्रमें कहे अनुसार, यदि दवासे परिवर्त्तन पूर्ण मात्रामें न दिखाई दें, तो, नित्य थोड़ी गोलियाँ इसलिये और खा लेनी चाहियें कि जिसमें प्रभाव अधिक पैदा हो। सब मनुष्योंपर दवाका गुण एम समान नहीं प्रकट होता है। कभी-कभी तो ऐसा हाता है, कि मृदु प्रकृतिकी दवाका बलवान शरीरवाले मनुष्यपर अधिक प्रभाव होता है, कभी शक्तिशाली दवाका दुर्बल व्यक्तिपर कम प्रभाव होता है ; इसी तरह कोई निश्चित नियम मालुम नहीं होता। इसलिये परीक्षा करते समय, दवाका कम मात्रामें, पहले प्रयोग करना चाहिये। इसके बाद, उसे बढ़ाते जाना चाहिये, जबतक कि पूरा-पूरा दवाका प्रभाव प्रकट न हो जाये।

[१३०]

दवाके प्रभावका स्थिति-काल कैसे मालूम होता है ?

यदि आरम्भमें ही पहली मात्रा काफी तेज हो, तो उसका लाभ यह होता है कि औषधके गुण जाँचनेवाला व्यक्ति, लक्षणोंके आनेका क्रम समझ जाता है। कौन-सा लक्षण किस समय आया—वह इस बातको सही-

सही समझ लेता है। इससे औषधकी गुणावली समझनेमें भारी सहायता पहुँचती है। सारांश यह कि इस तरह औषधकी प्रारम्भिक क्रिया और शारीरिक क्रियामें आये हुए परिवर्त्तनोंको अधिक-से-अधिक स्पष्ट रूपमें समझना सम्भव हो जाता है। आमतौरपर, औषधके गुण मालूम करनेके लिये उसकी अल्प मात्रा काफी होती है, बशर्ते कि परीक्षणकर्त्ता काफी अधिक कोमल प्रकृतिवाला और कुशाग्रबुद्धि हो, ताकि शरीरमें आये परिवर्त्तनों और अनुभूतियोंको पूरी तरह समझ सके। कोई दवा कितनी देरतक काम करती रहती है—यह निर्णय कई व्यक्तियोंके परीक्षणकी तुलनासे मालूम की जा सकती है।

खुलासा—यदि दवाकी पहली मात्रा देनेसे ही काम चल जाये; अर्थात् एक ही मात्रा स्वस्थ मानव-शरीरमें स्पष्ट परिवर्त्तन ले आये, तो यह सुविधा हो जाती है, कि लक्षण जैसे-जैसे पैदा होते गये, उनको लिख लिया गया। इससे लक्षणोंके प्रकट होनेका क्रम मालुम हो जाता है और कितने समयका अन्तर देकर लक्षण पैदा होते हैं, यह भी मालुम हो जाता है। इससे दवाकी भीतरी प्रकृति मालुम हो जाती है और यह मालूम हो जाता है कि दवाकी प्राथमिक क्रिया कैसी होती है और पर्यायक्रमसे पैदा होनेवाली क्रिया कैसी है, पर उसके लिये जिसपर दवाकी परीक्षा हो, उसे पूरी तरह सावधान रहना चाहिये। अपनी अनुभूतियोंपर खूब लक्ष्य रखना चाहिये। लक्षणों, अनुभूतियों और औषधजनित असाधारण प्रभावोंको समझ सकना उसके लिये परमावश्यक है। यदि ऐसा न हो, तो परीक्षाका उद्देश्य सिद्ध न होगा और रोगी असाधारण और साधारण अनुभूतियोंमें अन्तर न कर सकेगा। कितनी ही बार ऐसा भी होता है कि परीक्षामें तुलना करनेपर यह भी मालूम हो जाता है, कि इस दवाकी क्रिया कितनी देरतक ठहर सकती है।

[१३१]

पर यदि एक ही मनुष्यको मात्रा बढ़ा-बढ़ाकर दवा खिलानी पड़े ?

यदि किसी विशेष बातका निर्णय करनेकी जरूरत हो, तो, वही दवा, उसी व्यक्तिको, वर्द्धमान मात्रामें, कई दिनतक, निरन्तर, खिलानी चाहिये। इस तरीकेसे हमें यह तो निश्चित रूपसे मालुम हो जायगा कि वह दवा स्वस्थ मानव-शरीरमें क्या-क्या विकार पैदा कर सकती है, परन्तु इसमें एक दोष रह जाता है ; अर्थात् उन विकारोंके पैदा होनेका क्रम निश्चित रूपसे मालुम नहीं हो सकता। आमतौरपर अगले दिन दी गई मात्रा, पहली मात्राकी पैदा की हुई एक या अधिक निशानियोंको, औषध-रूपमें, मिटा देती है—और उसकी जगह सर्वथा भिन्न लक्षण पैदा कर देती है। ऐसे लक्षणोंको संदिग्ध या अस्पष्ट लक्षण समझकर, ब्रैकेटके भीतर लिखना चाहिये। ताकि बादके परीक्षणोंमें, उनकी सार्थकता या निरर्थकताकी जाँच की जा सके—और यह मालुम हो सके कि यह शरीरकी प्रतिक्रिया मात्र तो न थी, या दवाकी गौण क्रिया थी।

खुलासा—यदि पहली ही मात्रामें दवाकी क्रिया आरम्भ न हो, तो प्रत्येक लक्षणका आविर्भाव क्रम और समय जाना नहीं जाता ; क्योंकि जब कई मात्राओंका प्रयोग हो जाता है, तब यदि कोई लक्षण दिखाई देता है, तो वह उस मात्राकी गौण-क्रिया हो सकती है, अथवा पर्यायलक्षण हो सकता है। दवाकी पहली मात्राका सेवन करनेके परिणामस्वरूप जो रोग-लक्षण प्रकट होते हैं, वे सब उस दवाकी प्राथमिक क्रिया होती है, पर उसके बाद जब कई खुराकें और भी पड़ती हैं, तो कितने ही विपरीत लक्षण पैदा हो जाते हैं। इसीसे यह धारणा पैदा होने लगती है कि यह या तो गौण-क्रियाका लक्षण है अथवा दवाका पर्यायक्रमागत लक्षण है। इसलिये यहाँ कोई बात स्थिर करना असम्भव

हो जाता है, पर साधारण भावसे दवाके कितने ही लक्षण मालूम हो जाते हैं। हैनिमैन कहते हैं, कि इन लक्षणोंको सन्देह-भरे लक्षणोंमें रखना चाहिये और फिर परीक्षण द्वारा अथवा एक-एक मात्रा दवा देकर जो लक्षण प्रकट होते हैं, उनका प्रकृत-तत्व स्थिर कर लेना चाहिये।

[१३२]

पर यदि केवल दवाके लक्षण जानना हों ?

परन्तु जब ओषध द्वारा उत्पन्न होनेवाले लक्षणोंका आविर्भाव क्रम तथा औषध-क्रियाके स्थितिकालकी ओर ध्यान न देकर केवल दवासे उत्पन्न लक्षण और विशेषकर मृदु प्रकृतिके भेषज-पदार्थ द्वारा उत्पन्न लक्षण ही जानना उद्देश्य हो, तब लगातार कई दिनोंतक नित्य मात्रा बढ़ाते हुए दवाका प्रयोग करना चाहिये। इस तरह उस अज्ञात औषधकी क्रिया, वह भले ही मृदु-प्रकृतिकी हो, उस अवस्थामें अच्छी तरह मालूम हो जायगी, यदि असहिष्णु मनुष्यपर उसकी परीक्षा की जायगी।

खुलासा—औषधकी परीक्षा करनेपर जिस तरह उसके लक्षण स्वस्थ शरीरपर प्रकट हो जाते हैं, उसी तरह यह भी मालूम हो जाता है, इन लक्षणोंके उत्पन्न होनेका क्रम क्या है अर्थात् किस ढंगके लक्षण प्रथम प्रकट होते हैं और किस ढंगके पीछे। दूसरी बात यह मालूम होती है, कि किसी दवाकी क्रिया कितने दिनोंतक स्थायी रहती है ; यह सब जाननेके लिये क्या करना पड़ता है, यह पहले बताया जा चुका है। अब हैनिमैन कहते हैं, कि यदि यह सब न जानना हो और केवल इतना ही जाँचना हो कि इस दवासे कौन-कौनसे लक्षण प्रकट होते हैं, तो लगातार कई दिनोंतक रोज मात्रा बढ़ाते हुए किसी दवाका प्रयोग करते जाना चाहिये। इससे लक्षण मालूम हो जायँगे, केवल क्रम नष्ट हो

जायगा। यदि ऐसे मनुष्यपर इन दवाओंकी परीक्षा हुई, जो सहजमें ही घबड़ा उठता है, तो अपरिचित तथा मृदु-प्रकृतिकी औषधके सभी लक्षण प्रकट हो जायँगे।

[१३३]

परीक्षा-कालमें औषधकी परीक्षा कैसे की जाये ?

यदि दवासे किसी विशेष प्रकारकी अनुभूति हो, तो उसकी विशेषता समझनेके लिये, वह लक्षण उपस्थित रहते ही, रोगीको भिन्न-भिन्न शारीरिक अवस्थाओंसे रखकर, उन लक्षणोंको जाँचना आवश्यक है अर्थात् तकलीफवाले अंग-विशेषोंको हिलाकर, चलकर, खड़े होकर, बैठकर या सोकर यह जाँचना चाहिये कि इस तरह स्थितिका परिवर्त्तन करनेपर ये लक्षण घटते हैं या बढ़ते हैं या ज्यों-के-त्यों रहते हैं या जिस अवस्थामें ये पहले उपलब्ध हुए थे, फिर उस अवस्थामें आ जानेपर, वे यदि बन्द हो गये हैं, तो लौट आते हैं या नहीं; यह भी देखना चाहिये। खाने-पीने या किसी दूसरी अवस्थामें अथवा बोलने-चालने, खाँसने, छींकने अथवा किसी दूसरे ही कामसे, इनमें हेर फेर होता है या नहीं—यह भी लक्ष्य करना उचित है। इसके अलावा, यह भी जाँचना जरूरी है, कि ये दिनमें या रातमें, किस समय अधिक स्पष्ट मालुम होते हैं। इन कार्योंसे हरेक लक्षणकी विशेषता अच्छी तरह मालुम हो जायगी।

खुलासा—यहाँ भी औषध-परीक्षाका ही विषय है। यदि दवा सेवन करनेके बाद, शरीरके किसी स्थानपर किसी तरहकी कोई तकलीफ, कोई यंत्रणा या अनुभूति पैदा हो जाये, तो जितनी देरतक वह अनुभव होता रहे, उसी बीचमें जिसपर दवाकी परीक्षाके लिये प्रयोग हुआ है, उसे नाना प्रकारकी स्थितिमें रखकर, करवट रखकर, बैठाकर, लेटाकर,

चलाकर और खड़ा करके अथवा खिला-पिला या बोलाकर जाँचना चाहिये, कि इससे रोग-लक्षण घटते हैं, बढ़ते हैं या ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं। दूसरी बात यह है कि यदि इन अवस्थाओंसे घटते-बढ़ते हैं, तो एकदम घटे-बढ़े ही रहते हैं या पुरानी स्थितिमें आनेपर—पूर्व अवस्थामें आनेपर ज्यों-के-त्यों हो जाते हैं या घटते-बढ़ते ही रहते हैं, इतना ही यहाँ, यह भी जाँचनेकी जरूरत है, कि उस दवासे उत्पन्न हुए लक्षण रातमें बढ़ते हैं या दिनमें। सच तो यह है, कि इन लक्षणोंके इस तरहके प्रभेद मालुम रहनेपर दवाके चुनावमें बहुत कुछ सहायता मिलेगी। जैसे—किसी दवाकी परीक्षाके समय यह मालुम हुआ कि इसके लक्षण रातके समय बढ़ते हैं, तो रातके समय वैसे ही लक्षणवाला जो रोग बढ़ता होगा, उसमें वह दवा राम-बाणकी तरह कार्य करेगी। परीक्षा-कालमें इन सब बातोंकी जाँच औषधके लक्षणोंको विशेष रूपसे, प्रकटकर चिकित्सामें सहायता पहुँचाती है।

[१३४]

क्या सब लक्षण एक साथ और एक ही समय प्रकट होते हैं ?

समस्त वाह्य प्रभावों और विशेषकर औषधियोंमें जीवित शरीरपर अपनी-अपनी विशेषताके अनुसार परिवर्त्तन पैदा करनेकी क्षमता दिखाई देती है। इतनेपर भी किसी एक दवाके समस्त विशेषतापूर्ण लक्षण, एक मनुष्यमें, एक ही समय और एक बारकी ही परीक्षामें नहीं प्रकट हो जाते, बल्कि ऐसा होता है कि किसी मनुष्यमें कुछ लक्षण प्रथम परीक्षामें ही प्रकट हो गये, दूसरेको ये ही लक्षण दूसरी या तीसरी परीक्षामें प्रकट हुए। किसी दूसरेमें उसी दवासे परीक्षा करते समय कुछ दूसरे ही लक्षण प्रकट हुए; कितने ही आदमियोंपर परीक्षा करते समय ऐसा भी

दिखाई देता है, कि जो लक्षण चौथे, आठवें या दसवें व्यक्तिमें दिखाई दिये थे, वे ही दूसरे, छठे और नवेंमें दिखाई दिये थे। इसके अतिरिक्त ऐसा भी होता है, कि ठीक समयपर सब-के-सब लक्षण नहीं दिखाई देते।

खुलासा—कितनी ही ऐसी शक्तियाँ हैं, जिनका मनुष्य-शरीरपर प्रभाव पहुँचता है। इनमें ही एक औषध-शक्ति भी है, विशेषकर औषधमें यह बहुत बड़ी शक्ति है, कि वह मानव-शरीरपर परिवर्त्तन पैदा कर देती हैं। जिसमें यह शक्ति नहीं है, वह औषध हो ही नहीं सकता, परन्तु इतना ही नहीं, जिस तरह आगकी एक विशेष शक्ति है—जला देना, बरफका—ठण्डा कर देना, सूर्यका—तापसे आशोषण कर लेना, उसी तरह हरेक भेषजमें एक-एक विशेष प्रकारकी शक्ति छिपी रहती है। इन विशेष शक्तियोंके द्वारा प्रत्येक भेषज प्रत्येक जीवपर अपने खास लक्षण प्रकट करता है। औषधमें जिस ढंगका परिवर्त्तन लानेकी ताकत है, दूसरेमें ठीक वैसा ही लानेकी सामर्थ्य नहीं है। मन लीजिये, कि ऐकोनाइटके बहुतसे लक्षण आर्सेनिकसे मिलते हैं—ऐकोनाइट और आर्सेनिक—दोनोंमें ही मृत्यु-भय, दोनोंमें ही बेचैनी, प्यास आदि हैं; परन्तु आर्सेनिक और ऐकोनाइटकी पिपासामें फर्क है, दोनोंकी बेचैनीमें भी फर्क है, दोनोंकी रोग-वृद्धि और ह्रास-कालमें अन्तर है, इसी तरह हरेक दवा अपना एक खास गुण ही रखती है और अपने उस खास गुणके अनुसार ही वह मानव-शरीरपर परिवर्त्तन लाती है; पर जब कोई दवा किसी स्वस्थ मनुष्यपर प्रयोग की जाती है, तब ये सब लक्षण, एक ही समय, एक ही साथ अथवा एक ही व्यक्तिमें, एक बारकी ही परीक्षामें नहीं प्रकट हो जाते। किसीको कुछ एक बारकी परीक्षामें प्रकट होते हैं, कुछ दूसरी और तीसरी बारकी परीक्षामें। ऐसा भी होता है, कि कितने ही रोगीमें भिन्न-भिन्न परीक्षाओंमें भिन्न-भिन्न लक्षण प्रकट होते हैं। आगे-पीछे प्रत्येक लक्षण प्रत्येक परीक्षाकारीके

शरीर और मनमें प्रकट अवश्य होंगे ; पर यह निश्चित नहीं है, कि एक ही समय वे सब लक्षण प्रकट हो जायेंगे।

[१३५]

किसी औषधके समस्त लक्षण जाननेके लिये और क्या करना चाहिये? कैसे जाना जा सकता है, कि औषधकी पूर्ण परीक्षा हो गयी?

किसी दवाके उन सम्पूर्ण रोग-लक्षणोंको जाननेके लिये, जो उस दवासे स्वस्थ मानव-देहमें उत्पन्न हो सकते हैं, उस दवाकी स्त्री-पुरुष दोनों ही जातिके तथा विभिन्न प्रकृतिवाले अनेक व्यक्तियोंपर परीक्षा करनी चाहिये। हमलोग तभी उस दवाको सम्पूर्ण रूपसे परीक्षित कहनेमें समर्थ हो सकते हैं ; अर्थात् स्वस्थ शरीरमें उसके द्वारा जितने प्रकारके शुद्ध परिवर्त्तन पैदा हो सकते हैं, उनको तब बता सकते हैं, जब बादवाला परीक्षाकारी कोई नये ढंगकी क्रिया, लक्षण या परिवर्त्तन न प्राप्त कर सके और करीब-करीब वे ही लक्षण उसके भी अनुभवमें आयें, जो दूसरोंके द्वारा अनुभवमें आ चुके हैं।

खुलासा—इस सूत्रपर ध्यान देनेसे ही मालूम होता है, कि औषधकी परीक्षा साधारण कार्य नहीं है ; क्योंकि विभिन्न प्रकृतिके मनुष्य होते हैं, एक बारकी परीक्षामें ही सब लक्षण प्रकट नहीं हो जाते, भिन्न-भिन्न कालमें, भिन्न-भिन्न नर-नारियोंमें विभिन्न लक्षण आते हैं। अतएव, कोई औषध उसी अवस्थामें सम्पूर्ण परीक्षित कही जा सकती है, जब नाना प्रकारकी प्रकृतिवाले नर-नारी, स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सबपर उसकी परीक्षा हो और इतनी बार परीक्षा हो, कि जितनी तरहके लक्षण उसके प्रकट हों, सब बार-बार प्रकट हो जायें।

अब यह प्रश्न होता है, कि कैसे समझा जाय कि इसकी भरपूर परीक्षा हो चुकी, अब और जरूरत नहीं है। हैनिमैनने इसका भी खुलासा कर दिया है अर्थात् उसकी परीक्षा करते-करते जब यह अवस्था आ जाये कि किसी नवीन मनुष्यपर परीक्षा करनेपर कोई भी ऐसा नया लक्षण या नवीन परिवर्त्तन पैदा न हो, जो अवतक लक्ष्यमें न आया हो, तभी समझना होगा कि अब सम्पूर्ण परीक्षा हो गयी है। ऐसा करनेके लिये परीक्षक और अन्वेषकका समीपतम सहयोग आवश्यक है। जब कितने ही व्यक्तियोंपर बार-बार उसी एक औषधकी परीक्षा होगी, तो निश्चय ही कहीं-न-कहीं अक्षरशः पुनरावृत्ति होगी और नये परिवर्त्तन बन्द हो जायेंगे।

[१३८]

क्या एक-दो मनुष्यपर कोई लक्षण पैदा करनेवाली दवा भी वैसे ही लक्षणवाले रोगको आरोग्य कर सकती है?

यद्यपि जैसा बताया जा चुका है, कि किसी भेषजका किसी स्वस्थ व्यक्तिपर परीक्षाके लिये जब प्रयोग किया जाता है, तो वह एक ही मनुष्यमें स्वास्थ्यमें वे सब परिवर्त्तन—लक्षण नहीं पैदा कर सकता, जिन्हें पैदा करनेमें वह समर्थ है। बल्कि सब लक्षण तभी प्राप्त होते हैं, जब भिन्न-भिन्न शारीरिक और मानसिक प्रकृतिवाले व्यक्तियोंपर उसका प्रयोग होता है। तथापि प्रकृतिके एक स्थायी और अपरिवर्त्तनीय नियमके अनुसार उसमें प्रत्येक व्यक्तिमें उन सब लक्षणोंको पैदा करनेकी क्षमता रहती है, जिसके गुणसे उस औषधिका समस्त प्रभाव, यहाँतक कि, जो स्वस्थ मनुष्योंमें बहुत कम उत्पन्न होते हैं, ऐसे लक्षण भी, जब किसी अस्वस्थ पुरुषको वैसे ही लक्षणवाला रोग हो जाता है, प्रकट होते हैं, तब, सदृश-विधानके अनुसार, अल्प मात्रामें दिये जानेपर भी तुरन्त

अपना प्रभाव दिखा देता है। उस समय यदि कम-से-कम मात्रामें *भी उनका प्रयोग होता है, तो सादृश्य-विधानके अनुसार* चुने जानेके कारण, वह रोगीके शरीरमें, चुपचाप, एक ऐसी कृत्रिम स्थिति पैदा कर देती है, जो मूल रोगके अनुरूप होती है। इस तरह वह सदृश औषध रोगीके मूल रोगको बहुत तेजीके साथ और सदाके लिये दूर कर देती है।

खुलासा—ऊपर बताया जा चुका है, कि किसी दवाका पूरा-पूरा लक्षण जाननेके लिये, बहुतसे, नर-नारियोंपर उसका परीक्षण करना चाहिये। क्योंकि एक ही मनुष्यमें सब लक्षण प्रकट नहीं होते। पर इससे यह समझ लेना चाहिये कि उस दवामें हरेक व्यक्तिपर वह लक्षण पैदा करनेकी ताकत ही नहीं है। उसमें ताकत अवश्य छिपी हुई है, पर भिन्न प्रकृति रहनेके कारण, अथवा, भिन्न प्रकारका अधार रहने कारण, वह लक्षण परिस्फुटित नहीं हो पाता। परन्तु जब कोई व्यक्ति बीमार हो जाता है, तो उसकी प्रकृति परिवर्त्तित हो जाती है, उस समय उसमें उस शक्तिको ग्रहण करनेकी सामर्थ्य हो जाती है। अतएव, यदि ऐसे लक्षण प्रकट हों, जो उस दवा द्वारा किसी और व्यक्तिपर प्रकट हो चुके हैं, तो उस दवाके प्रयोगसे, सम-लक्षणवाला रोग रहनेके कारण, अवश्य ही तेजीसे, और सदाके लिये, आरोग्य हो जायगा। सारांश यह कि, यदि ऐसा हो कि किसी दवाकी परीक्षा करते समय कुछ लक्षण एक-दो आदमीमें ही उत्पन्न हों और अधिकांशमें न उत्पन्न हों, तो इतनेपर भी समझना होगा, कि ऐसे लक्षण पैदा करनेकी शक्ति उस दवामें है और वैसे ही लक्षणके रोगीपर उसका यदि प्रयोग किया जायगा, तो, वह आरोग्य हो जायगा।

[१३७]

भेषजोंके प्राथमिक क्रिया-फल स्पष्ट कैसे मालूम होते हैं ?

ऐसे परीक्षणोंके लिये, औषध-मात्रा, एक सीमाके भीतर—जितनी कम होगी, उसका प्रारम्भिक प्रभाव भी उतना ही स्पष्ट होगा और ये ही लक्षण ज्ञान-प्राप्तिकी दृष्टिसे विशेष महत्त्वके हैं, क्योंकि इनमें जीवनी-शक्तिकी प्रतिक्रिया नहीं आती। इस प्रकारके शुद्ध परीक्षणके लिये एक शर्त है—और वह यह कि जिस व्यक्तिपर ऐसा परीक्षण किया जाय, वह सत्यवादी, सत्यप्रेमी, हर दृष्टिसे संयमी, अत्यन्त मर्मस्पर्शी, कोमल प्रकृतिवाला, और, शरीरकी विविध अनुभूतियोंको खूब बारीकीसे समझनेवाला हो। उस दशामें, जब अति मात्राका व्यवहार कराया जाता है, तो अनेक गौण लक्षण भी आते हैं—और साथ ही अनेक प्राथमिक लक्षण भी प्रकट होते। ये अन्तिम लक्षण ऐसी जल्दी और ऐसी गड़बड़ीके साथ आते हैं, कि उनकी स्पष्ट और विश्वसनीय रूप-रेखा समझमें नहीं आती, ऐसी, दशामें, वह शक्ति, जिसे अपने साथियोंसे प्यार हो और जो क्षुद्रतम मानवको भी, अपना भाई समझता हो, ऐसे खतरेकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

खुलासा—परीक्षाके समयके अन्य कार्योंको बताकर अब परीक्षित दवाकी मात्राके सम्बन्धमें बताते हैं अर्थात् परीक्षाके समय यदि मात्रा सूक्ष्म दी जाती है, तो उस दवाकी प्राथमिक क्रियाके सब लक्षण स्पष्ट रूपसे सामने आ जाते हैं। प्राथमिक क्रियाके सम्बन्धमें, पहले ही बताया जा चुका है (देखिये—सूत्र ११२), उसमें औषधकी गौण क्रिया (सूत्र ११३) सम्मिलित नहीं होती और न दवाके प्रयोगके कारण जीवनी-शक्तिकी जो प्रतिक्रिया (सूत्र १६) होती है, वही उसमें सम्मिलित रहती है। पर यदि उसी दवाका अधिक मात्रामें प्रयोग किया जाता है, तो प्राथमिक क्रियाके लक्षण, असाधारण तेजीके साथ और इतने भयंकर रूपमें पैदा

होते हैं, कि उनपर लक्ष्य नहीं रखा जा सकता, उनमें जीवनी-शक्तिकी गौण क्रिया भी सम्मिलित हो जाती है। इस तरह औषधके स्पष्ट लक्षण प्राप्त नहीं किये जा सकते। इतना ही नहीं, उससे इतनी हानि भी हो जाती है, कि मनुष्योंका भला चाहनेवाला उन हानियोंपर ध्यान दिये बिना नहीं रह सकता।

[१३८]

औषधका विशेष लक्षण किसको मानना चाहिये ?

औषधके गुणोंकी परीक्षा करनेवाले व्यक्तिके शरीरमें, औषध-परीक्षाके समय, जो कष्ट, विकार या परिवर्त्तन आयें (बशर्ते कि स्थितियाँ धारा १२४—१२७ के अनुसार शुद्ध परीक्षणका परिणाम हों), उन्हें केवल दवाका प्रभाव समझना चाहिये और उन्हें उसी दवाके विशेष गुणके रूपमें ग्रहण करना चाहिये—फिर चाहे परीक्षकने कभी बहुत समय पहले वैसी ही विशेष हालतें अपने शरीरमें क्यों न देखी हों। इन लक्षणोंका, औषटके परीक्षा-कालमें पुनः आविर्भाव यह जाहिर करता है कि उस व्यक्तिके शरीरकी विशेष रचना, इन लक्षणोंको उत्तेजित करनेके लिये विशेष रूपसे अनुकूल है। ये लक्षण यों ही अपने-आप नहीं आ गये। ये उस औषका परिणाम है, जो खायी जा रही है। उस औषधने परीक्षकके शरीरपर आपादमस्तक प्रभाव किया है और इन्हें उसीने पैदा किया है।

खुलासा—परीक्षा करनेवालेपर दवाके व्यवहार-कालमें उसके शरीरपर, जो कुछ लक्षण प्रकट हों, या, उसमें जो कुछ परिवर्त्तन दिखाई दें, उन्हें उस दवाकी क्रियासे उत्पन्न मानना चाहिये। क्योंकि जबतक वह दवा उसके शरीर और स्वास्थ्यपर अपनी क्रिया करती रहती है, तबतक आप-से-आप ऐसे लक्षण पैदा नहीं हो सकते। ऐसा भी हो

सकता है कि परीक्षकमें बहुत दिन पहले, वे लक्षण दिखाई दिये हों, और, फिर गायब हो गये हों। इसके बहुत दिन बाद, परीक्षाके लिये, उसपर दवका प्रयोग किया गया हो। इस अवस्थामें भी दवा सेवन करनेके बाद यदि वे ही प्राचीन लक्षण उनमें पैदा हो जायें, तो भी उन्हें उस दवाका ही लक्षण मानना चाहिये, अन्य नहीं। ये उस औषधके विशेष लक्षण माने जायँगे।

[१३९]

यदि किसी दूसरेपर परीक्षा की जाये, तो किस तरह लक्षण लेना चाहिये ?

जब किसी दवाकी परीक्षा चिकित्सक स्वयं अपने ऊपर न कर, किसी दूसरेपर करे, उसको (अर्थात् जो परीक्षाके लिये दवा खाये) अपनी अनुभूति, तकलीफ, आकस्मिक घटनाएँ और स्वास्थ्यमें दिखाई देनेवाला परिवर्त्तन प्रभृति, जो दवा सेवन करते समय मालूम हों, तुरन्त लिख लेने चाहियें। दवा सेवनके कितनी देर बाद, हरेक लक्षण उत्पन्न हुआ था ; यदि वह लक्षण बहुत देरतक बना रहा, तो कितनी देरतक बना रहा, यह सब उहमें लिख लेना चाहिये। परीक्षा समाप्त होनेके बाद, परीक्षा करनेवालेके सामने ही चिकित्सकको ऊपर लिखा विवरण देख लेना चाहिये या यदि परीक्षाका कार्य बहुत दिनोंतक जारी रहे, तो उसे नित्य-प्रति, परीक्षा करनेवालेके सामने ही ; उसको याद रहते-रहतेमें, प्रत्येक घटनाकी ठीक-ठीक प्रकृतिके सम्बन्धमें पूछ लेना चाहिये और इस तरह जो विवरण और निकल आये, वह भी लिख लेना चाहिये तथा उसमें वे परिवर्त्तन कर देने चाहियें, जो परीक्षा करनेवाले बताये।

खुलासा—परीक्षाका कार्य और लक्षण ग्रहण करनेका कार्य अत्यन्त सावधानीका है। अतएव, यदि चिकित्सक स्वयं अपने ऊपर दवाकी

परीक्षा न कर, किसी दूसरेपर परीक्षा करे, तो, उसको जब० अथवा परीक्षा चलती रहे, तबतक नित्य जो कुछ परिवर्त्तन मालुम हों, पर० उसे बैठाकर लिख लेना और उसको सुनाकर उसमें सुधार कर लेना चाहिये, जिसमें काम निर्भ्रान्त रूपसे होता रहे।

[१४०]

परीक्षकमें यदि लिखनेकी शक्ति न हो ?

यदि परीक्षक लिख न सकता हो, तो चिकित्सकको जो हुआ है और जिस भावसे हुआ है, वह नित्य-प्रति जान लेना चाहिये। लिखनेके समय रोगीसे जो मालुम हो, बहुत ठीक-ठीक लिखना चाहिये, किसी तरहसे भी कल्पनाकी सहायता न लेनी चाहिये अथवा बाध्यता-मूलक प्रश्नके उत्तर न लिखना चाहिये तथा ऊपर ८४ से ६६ सूत्रतक घटनाओंकी खोज तथा रोगका चित्र प्राप्त करनेके सम्बन्धसे जो कुछ सावधानता अवलम्बन करनेका उपदेश दिया गया है, उसीके अनुसार सब निर्णय कर लेना होगा।

खुलासा—यदि परीक्षा करनेवाला लिखना-पढ़ना न जानता हो, तो उसको चाहिये, कि, जो कुछ परिवर्त्तन अपने स्वास्थ्यपर उसे मालुम हुए हैं, और जिस भावसे वे परिवर्त्तन हुए हैं अर्थात् उन परिवर्त्तनोंके सभी आनुसंगिक विषय, नित्य-प्रति चिकित्सकको लिखा दे। परीक्षा करनेवाला जो सब लक्षण बताये, उन्हीं लक्षणोंको चिकित्सकको सत्य और निर्भर योग्य लक्षण मानना चाहिये, और लिख लेना चाहिये। अनुमान लगाकर कि ऐसा भी हुआ होगा, कदापि कुछ न लिखना चाहिये। इसके अलावा, प्रश्न करनेपर जो उत्तर मिले, उन उत्तरोंसे चुनावकर थोड़ेसे चुन लेना चाहिये। ८४ से ६६ सूत्रतक रोगके सम्बन्धमें अनुसन्धान और रोगकी आकृति जाननेके लिये, जिस साव-

. अवलम्बन करनेकी बात कही गई है, उसपर पूरी तरह ध्यान सकन । चाहिये ।

[१४१]

क्या चिकित्सक द्वारा अपने ऊपर की हुई औषध-परीक्षा सर्वश्रेष्ठ होती है ?

पर समस्त औषधियाँ स्वस्थमें जो परिवर्त्तन पैदा कर सकती हैं अर्थात् उनमें स्वस्थ व्यक्तिमें नकली रोग पैदा करनेकी जो शक्ति रहती है, उसे ठीक-ठीक विशुद्ध भावसे जाननेके लिये, उनकी परीक्षा कुसंस्कार-रहित, स्वस्थ ओर अनुभुति-सम्पन्न चिकित्सकको अपने ऊपर ही करनी चाहिये ओर वह उसी सावधानी ओर यत्नसे करनी चाहिये, जैसा यहाँ बताया गया है। ऐसा करनेपर अपने शरीरमें अनुभव होनेके कारण उसे उनके सम्बन्धमें निश्चित ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

खुलासा—चिकित्सक द्वारा अपने ऊपर की हुई परीक्षा अमूल्य लाभदायक हुआ करती है। एक तो दवाओंका भेषज-गुण, जिसपर उसकी आरोग्यदायिनी शक्ति निर्भर करती है, उसका प्रभाव स्वतः परीक्षा करनेपर अपने शरीपर ही उसे मालुम हो जाता है और उससे जो रोग-लक्षण उसके शरीरमें उत्पन्न होते हैं, उसके रगोरेशोंसे वह वाकिफ हो जाता है। इसके अतिरिक्त इस तरह अपने ऊपर ही अनुभव होनेपर, वह अपनी अनुभूति, अपनी सोचनेकी शक्ति, अपनी प्रकृति (चिकित्सा-ज्ञानकी भित्ति) उसे मालुम हो जाती है और उसे उस विषयकी पूरी-पूरी शिक्षा प्राप्त हो जाती है, जिसकी जानकारी प्रत्येक चिकित्सकके लिये बहुत ही आवश्यक है। अपना अनुभव तथा दूसरेका किया अनुभव कभी एक समान नहीं हो सकता। दूसरोंका अनुभव लिखते समय हमेशा यह भय बना रहता है, कि यह सम्भव है, कि जो कुछ उसने

अनुभव किया है, वह उपर्युक्त शब्दोंमें व्यक्त न कर सका हो। अथवा उसने जो कुछ अनुभव किया है, उसे ठीक न बताता हो। उसे हमेशा यह सन्देह रह सकता है, कि उसे धोखा तो नहीं दिया गया। सम्पूर्ण नहीं तो थोड़ा भी धोखा तो न हो गया। दवाओंके रोग-लक्षण प्राप्त करनेके सम्बन्धमें यह सत्य ज्ञान दूसरोंकी परीक्षा द्वारा उतना सच्चा नहीं प्राप्त होता, जितना अपने ऊपर परीक्षा द्वारा प्राप्त होता है। जो स्वयं अपने ऊपर दवाओंकी परीक्षा करता है, वह निश्चित रूपसे जानता है, कि उसने क्या अनुभव किया और इस तरह प्रत्येक परीक्षा उस औषधके सम्बन्धमें एक नवीन खोजकी ओर उसका ध्यान आकर्षित करती है। इस तरह अनुभव करनेकी कलाका ज्ञान उसका बढ़ता जाता है और यह वह परीक्षा हो जाती है, जिसमें धोखा हो ही नहीं सकता। साथ ही परीक्षा करनेवालेको यह न समझ लेना चाहिये, कि इस तरह बारम्बार परीक्षा करने और अपने ऊपर विभिन्न रोग-लक्षण उत्पन्न करनेसे, स्वास्थ्य खराब हो जायगा। इससे स्वास्थ्य खराब नहीं होता, बल्कि विभिन्न लक्षण उत्पन्न होते-होते, परीक्षकका स्वास्थ्य इतना जबर्दस्त हो जाता है, कि वह बाहरी प्रभावोंको भीतर प्रवेश ही नहीं करने देता। उसका स्वास्थ्य एकदम अपरिवर्त्तनीय बन जाता है और वह खूब सुदृढ़ हो जाता है। अतएव, औषधकी सर्वश्रेष्ठ परीक्षा अपने शरीरपर ही होती है।

[१४२]

क्या रोगमें दवाओंका विशुद्ध प्रभाव खोज निकलना कठिन है ?

अब प्रश्न यह है कि जब किसी रोगको दूर करनेके लिये, किसी रोगीको कोई साधारण औषध दी गई हो, तो उस औषध और मूल रोगके

लक्षणोंमें[1] कैसे अन्तर किया जाये ? विशेषकर जब रोग पुराना हो और उसके लक्षणोंमें कोई परिवर्त्तन न आया हो—यह निर्णय करनेके लिये बहुत सूक्ष्म पर्यवेक्षण क्षमता चाहिये और यह निर्णय असाधारण रूपसे कुशल और अनुभवी पर्यवेक्षकोंके लिये छोड़ देना चाहिये।

खुलासा—स्वस्थ मनुष्यको कोई दवा खिलाकर यह जान लेना सहज है, कि उसमें क्या-क्या परिवर्त्तन होते हैं, पर जब अस्वस्थ रोगीको कोई दवा खिलायी जाये और खासकर वह ऐसा रोगी हो, जिसे कोई अपरिवर्त्तनीय लक्षणवाला पुराना रोग हो, उस समय दवा देनेपर, यदि कुछ अधिक लक्षण ऐसे पैदा हो जायँ, जो पहले रोगमें न दिखाई देते थे, तो उसी दवासे उत्पन्न लक्षण समझा जायगा या रोग-लक्षण समझा जायगा। ऐसा भी तो होता है, कि किसी पुराने रोगीको दवा खिलानेपर वर्षभर पहलेके लक्षण पैदा हो गये। हैनिमैन कहते हैं, कि इसको खोज लेना सहज काम नहीं है। बहुत ही अनुभवशील और खोज करने तथा निरीक्षणमें पटु चिकित्सक ही यह कार्य कर सकता है; क्योंकि ऐसी अवस्थामें रोग-लक्षण और औषध-लक्षण मिलकर ऐसी गड़बड़ी कर देते हैं, कि उनका छाँट लेना साधारण कार्य नहीं है। निरीक्षक-चिकित्सकका उत्तरादायित्व ऐसी अवस्थामें बहुत ही गहन और गुरुतर होता है। नया लक्षण औषध-लक्षण है या रोग-लक्षण—यह निर्णय करना सहज कार्य नहीं हैं। यदि औषध-लक्षणको रोग-लक्षण समझ लिया जाय, तो उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा।

---

१. जो लक्षण रोगके सारे स्थितिकालमें दिखाई दिये हों—सम्भव है वे रोगके आक्रमणसे कुछ दिन पहले भी दिखाई दिये हों—या पहले कभी दिखाई न दिये हों; परन्तु जो नये लक्षण आयें, उन्हें औषधजनित ही समझना चाहिये।

[१४३]

प्रकृत भेषज-विधान किस तरह तैयार हो सकता है ?

जब हमलोग इस तरह कितनी ही अमिश्रित दवाओंकी स्वस्थ व्यक्तिपर परीक्षाकर इन औषधियोंसे जो नकली बीमारीके रूपमें परिवर्त्तन हो सकते हैं, उनको सावधानतापूर्वक और बहुत यत्नसे लिख लेते हैं, उसी समय हमलोगोंकी सच्ची मेटीरिया-मेडिका तैयार होती है, जिसमें अधिक दवाओंकी शुद्ध, सत्य और निर्भर करने योग्य क्रिया-पद्धति लिखी जाती है, यह एक प्रकृत पुस्तक होती है। इसमें स्वस्थ शरीरपर परीक्षाके समय, जितनी दवाओंका प्रयोग होता है, उनका विशेषतापूर्ण लक्षण अथवा जो परिवर्त्तन पैदा हुए हैं, और, परीक्षा करनेवाले, जिन सब, विशेषतापूर्ण लक्षणोंको, औषधके विशेष लक्षणके रूपमें, निश्चयपूर्वक जान सके हैं, और जिनकी सहायतासे चिकित्सक किसी भी रोगीको आरोग्य करनेके लिये उक्त रोगके लक्षणके साथ, सदृश लक्षणवाली दवा खोज सकते हैं, वे ही सब लक्षण लिखे जाते हैं। सारांश यह कि यही वह पुस्तक है, जिसमें लिखे कृत्रिम रोग-सूचक अवस्थाओंमें, उनके सदृश-रोगकी अवस्थाका निश्चित रूपसे और स्थायी भावसे आरोग्यकर, सदृश-विधानके अनुसार यथार्थ आरोग्यकारी शस्त्रके रूपमें व्यवहार किया जा सकता है।

खुलासा—मेटीरिया-मेडिकाके सम्बन्धमें निश्चित मत बताते हुए हैनिमैन कहते हैं, कि भेषज-विज्ञान अथवा भेषज-लक्षण-संग्रह वही ग्रन्थ हो सकता है, जिसमें ऊपर बताये नियमोंके अनुसार जिन दवाओंकी परीक्षा हुई है और परीक्षाके समय, जो शारीरिक या मानसिक विकार पैदा हुए हैं, वे सब लिख लिये गये हों ; यही विशुद्ध मेटीरिया-मेडिका है। ऐसी ही मेटीरिया-मेडिका द्वारा रोगकी असली दवा मिल सकती

है, जिसके द्वारा सदृश लक्षणवाली दवासे उसी लक्षणवाले रोग आरोग्य हो सकते हैं।

[१४४]

ऐसी मेटीरिया-मेडिकामें क्या रहना चाहिये ?

ऐसी मेटीरिया-मेडिकासे उन समस्त अंशोंको, जो केवल अनुमान या कल्पनाके सहारे स्थिर किये हैं, एकदम निकाल देना चाहिये। इसमें केवल प्रकृतिकी विशुद्धतम भाषा ही रहनी चाहिये, जिसे बहुत सावधानी और ईमानदारीके साथ मालूम किया गया हो।

खुलासा—ऐलोपैथोंके सम्बन्धमें हैनिमैन यह बात पहले ही कह चुके हैं, कि उनकी मेटीरिया-मेडिका कल्पनाके आधारपर बनी है। इसीलिये यहाँ कहते हैं, कि कल्पनाके आधारपर या सुनी-सुनायी बातोंको अथवा केवल अनुमानको ही आधार मानकर इस औषध-लक्षण-संग्रहमें कुछ भी न रहना चाहिये। इसमें जो कुछ रहे, वह जाँची-परखी सच्ची बातें और दवाओंके वे ही गुण अर्थात् स्वास्थ्यपर होनेवाले परिवर्त्तन लिखे रहें, जो परीक्षकोंने अनुभव किये हों ; इस तरह यह प्रकृतिके कार्योंसे पूर्ण सच्ची मेटीरिया-मेडिका होगी।

[१४५]

हमलोग रोग आरोग्यकर औषध किस ग्रन्थसे प्राप्त कर सकते हैं ?

यह सही है कि जब हमारे पास स्वयं सिद्ध तथा विशुद्ध-रूपसे परीक्षित[1] अनेक औषधियाँ हों, और, हमने विशुद्ध परीक्षणों द्वारा उनके

१. प्रायः ४० वर्ष पहले, मैं पहला व्यक्ति था, जिसने अनेक महत्वपूर्ण औषधोंको स्वयं खाकर उनके गुण देखे। बादमें कुछ नवजवानोंने भी, इस औषध परीक्षण

गुण मालूम कर लिये हों, तो हम ऐसे प्रत्येक रोगके लिये, जो संसारमें पाया जाता है—सदृश औषध तलाश कर सकते हैं, जो अपनी कृत्रिम रोगोत्पादक शक्ति द्वारा, प्रकृतिके पैदा किये हुए विकारोंको दूर कर सकती है। इस बीचमें,—आज भी—लक्षणोंकी वास्तविकताके कारण और रागोत्पादक साधनों (औषधों) की बहुलताके कारण, जिनमें प्रत्येक औषध, स्वस्थ मानव शरीरमें अपनी-अपनी रोगोत्पादक शक्तियोंका प्रदर्शन कर चुकी है—ऐसे रोगोंकी संख्या बहुत कम है, जिनके लिये, इन परीक्षित औषधियोंकी भंडारमेंसे, ऐसी उपयुक्त सादृश-औषध तलाश न की जा सके, जो अपनी शुद्ध क्रिया द्वारा, विशेष गड़बड़ी लाये बिना, कोमल ढंगसे, निश्चित रूपमें और सदाके लिये, स्वाभाविक रोगको दूर न कर दें। सच बात यह है कि ये सादृश औषधियाँ, ऐलोपैथिक औषधियोंकी अपेक्षा अधिक निश्चित रूपमें और किसी प्रकारकी हानि पहुँचाये बिना रोगको दूर करती है, जब कि ऐलोपैथिक नुस्खोंका प्रभाव अज्ञात रहता है। ये कई दवाओंवाले नुस्खे, रोगमें परिवर्त्तन ही नहीं लाते—उसे बढ़ा भी देते हैं, परन्तु किसी पुरानी बीमारीको दूर नहीं कर सकते। हाँ, तरुण रोगको दूर करने और स्वास्थ्यमें सुधार लानेकी जगह, उसकी उन्नतिमें बाधा डालते हैं और आम तौरपर जीवनके लिये खतरा पैदा कर देते हैं।

खुलासा—हमलोग स्वस्थ मनुष्योंके शरीरपर परीक्षाकर ही औषधकी विशुद्ध क्रिया जान सकते हैं। इस तरह संसारमें होनेवाले

कार्यमें, मुझे सहयोग दिया। उनके पर्यवेक्षणोंकी मैंने स्वयं कड़ी जाँच की। बादमें कुछ और चिकित्सकोंने भी यह काम किया। विश्वस्त और सच्चा मेटीरिया-मेडिका तभी तैयार होगा, जब हम चिकित्सक स्वयं औषधियाँ खा-खाकर उनकी क्रिया मालूम करें। उस हालतमें चिकित्सा गणितकी तरह, निश्चयात्मक विज्ञान बन जायगी।

अनगिनती रोगोंके लिये सदृश-लक्षणकी दवाएँ जाननेके वास्ते अनेकानेक औषधियोंकी परीक्षा करनी पड़ती है। इस तरह जब औषध-भण्डार भरता है, तब रोगोंकी चिकित्सा हो सकती है। हैनिमैन कहते हैं, कि अबतक जितनी दवाओंकी परीक्षा हो चुकी हैं, उनके द्वारा बहुत थोड़ी ही ऐसी बीमारियाँ हैं, जो आरोग्य न हो सकें। अबतक जितनी दवाओंके गुण मालुम हो चुके हैं, उनके द्वारा ही सदृश-विधानके अनुसार हमलोग ऐसी दवा चुन सकते हैं, जिसके द्वारा ऐलोपैथीकी अपेक्षा कहीं उत्तमतासे और निश्चित रूपसे रोग आरोग्य हो सकते हैं। ऐलोपैथी द्वारा पुरानी बीमारियाँ अच्छी नहीं हो जातीं, बल्कि वे परिवर्त्तित हो जाती है और नयी बीमारी भी आरोग्य नहीं होती, बल्कि उसका रूप बदलकर वह और भी सांघातिक रूपमें सामने आती है।

[१४६]

प्रकृत होमियोपैथिक चिकित्सकका तीसरा कार्य क्या है ?

सच्चे होमियोपैथिक चिकित्सकका तीसरा मुख्य कार्य यह है, कि जिन औषधोंकी स्वस्थ शरीरपर परीक्षा हो चुकी है, उनका स्वाभाविक रोगोंमें सदृश-विधानके अनुसार रोग दूर करनेके लिये विचारपूर्ण व्यवहार करे।

खुलासा—चिकित्सकके दो कार्योंके सम्बन्धमें हैनिमैन ऊपर बता चुके हैं। पहला कार्य है—रोग-निर्णय करना, दूसरा काम है—औषधकी परीक्षा करना तथा किस औषधकी क्या क्रिया होती है, उसका ज्ञान प्राप्त करना। अब तीसरा काम यह सामने आता है, कि जिन दवाओंकी क्रिया उसको मालुम हो चुकी है—उसको वैसे ही लक्षणवाले रोगमें, चुनकर प्रयोग करना, और, इस तरह रोगको आरोग्य करना।

[१४७]

सबसे उपयुक्त औषध कौन होती है ?

जिस औषधके गुणोंके बारेमें हमने अच्छी तरह जाँच करके यह देख लिया हो कि वह मानव स्वास्थ्यमें क्या-क्या परिवर्त्तन ला सकती है और जब, उस औषधके अधिकांश लक्षणों और प्राकृतिक रोगके अधिकांश लक्षणोंमें, सादृश्यता पायी जाय, तो वही दवा, उस रोगके लिये, सर्वाधिक उपयुक्त दवा है और निश्चय ही सादृश औषध भी वही है। उस रोगके लिये विशेष, रामबाण तथा अनुभूत औषध भी वही है।

खुलासा—यह मालुम हो चुका है, कि इस दवासे ऐसे-ऐसे लक्षण पैदा होते हैं। यह भी स्पष्ट देखने, जाँचने और आस-पास रहनेवालोंसे मालुम हो जाता है, कि रोगीमें ये-ये लक्षण हैं। अब जिस दवाका अधिकांश लक्षण रोगीके रोग-लक्षणसे मिल जाये, वही उस रोगके उपयुक्त, हितकर और गुणकारी औषध होगी, दूसरी नहीं हो सकती ; क्योंकि होमियोपैथिक दर्शनके अनुसार वही औषध रोगहर सिद्ध हो सकती है ; जिसके गुणों और रोगके लक्षणोंमें साम्यता और सादृश्यता हो। अन्य औषध यदि दी जायगी, तो लाभदायक सिद्ध नहीं होगी। इसीलिये औषध सम-गुण-सम्पन्न होनी चाहिये।

[१४८]

अब हम यह बताते हैं कि होमियोपैथिक चिकित्सा कैसे गुण करती है ?

प्राकृतिक रोगको कभी भी मनुष्यके भीतर या बाहरका, एक हानिकारक स्थूल पदार्थ न समझ लेना चाहिये (सूत्र ११—१३), बल्कि इसे एक शत्रुभावापन्न शक्ति-सम्पन्न पदार्थ (जिसकी धारणा की जा

सकती है) मानना चाहिये। यह संक्रामण कर जीवनी-शक्तिकी ठीक ठीक गतिको विशृङ्खलित कर देता है और न दिखाई देनेवाले प्रेतकी तरह लगकर, कितनी ही शारीरिक और मानसिक अस्वस्थता तथा नियमित जीवनकी धारामें गड़बड़ी या अनियमितता उत्पन्न कर देता है। ये ही रोग-लक्षण कहे जाते हैं। अब यदि इस शत्रुभावपन्न पदार्थका प्रभाव, जो केवल यह विशृङ्खलता ही उत्पन्न नहीं करता, बल्कि उसे स्थायी रखनेकी भी चेष्टा करता है, हटा दिया जाये, जैसा कि चिकित्सक सबसे अधिक सदृश लक्षण-सम्पन्न परिवर्त्तन करनेवाली ऐसी दवाका प्रयोग कर क्रिया करते हैं, जिसकी छोटी-से-छोटी मात्रा भी सदृश प्राकृतिक व्याधिकी अपेक्षा भी शक्तिशाली नकली शक्ति पैदा करती है, जिससे वह पहलेवाली अनिष्टकारिनी शक्ति अपनेसे बलवान सदृश नकली व्याधिकी क्रियाके द्वारा नष्ट हो जाती है। उसी समयसे जीवनी-शक्तिके ऊपरसे उस आपदाका प्रभाव नष्ट हो जाता है—जैसा कि कहा जा चुका है, यदि चुनी हुई सदृश-लक्षण पैदा कर सकनेवाली दवा, उपयुक्त रूपसे, प्रयोग की जाती है, तो स्वाभाविक बीमारी, जो नयी पैदा होती है, अज्ञात अवस्थामें ही कुछ घण्टोंमें दूर हो जाती है।

इनके अतिरिक्त और भी कुछ दिनोंकी पुरानी बीमारी अपने समस्त कष्टप्रद लक्षणोंके साथ, उसी दवाकी उच्च शक्तिकी कई मात्राओंसे या सावधानतापूर्वक चुनी हुई, एक या दूसरी, वैसी ही दवासे आरोग्य हो जाती है। स्वास्थ्य और आरोग्य अज्ञात भावसे और प्रायः तीव्र गतिसे लौट आते हैं। जीवनी-शक्ति फिर स्वाधीन हो जाती है और शरीरमें पूर्वकी स्वस्थ क्रिया आरम्भ कर देती है और ताकत लौट आती है।

खुलासा—हैनिमैन सूत्र ११ से १३ तक बता चुके हैं, कि रोग कोई स्थूल पदार्थ नहीं है, यह एक सूक्ष्म शक्ति है, जो उस समय जीवनी-शक्तिपर आक्रमण कर बैठता है, जब जीवनी-शक्ति रोग-प्रवण हो जाती है। यह शत्रु-शक्ति प्रेतात्माकी भाँति जीवनी-शक्तिमें अनियमितता

और उसकी क्रियामें विसङ्खलता पैदा करके रोगीको कष्ट दिया करती है अर्थात् रोगीके शरीरमें अस्वाभाविक परिवर्त्तन पैदा हो जाते हैं। जिस तरह भूत-प्रेत कोई स्थूल पदार्थ नहीं हैं, पर इस रोग-रूपी भूत और खासकर पुराने रोग-रूपी भूतको भगानेका यह उपाय है, कि रोगीको सम-लक्षण-सम्पन्न दवा दी जाये, जिसकी एक या कई मात्राओंसे थोड़े ही समयमें रोग हट जाता है अथवा ऐसा भी हो सकता है, कि रोगकी ताकतके तारतम्यसे, एक या अधिक दवा, कुछ अधिक दिनोंतक खिलानी पड़े। इसके बाद, जब यह रोग-रूपी भूत सादृश्य औषधके प्रभाववश रोगीके शरीरको छोड़ देता है, तब ताकत आप-से-आप आ जाती है।

[१४९]

क्या होमियोपैथिक दवासे, थोड़े दिनोंका रोग जल्दी आरोग्य हो जाता है और अधिक समयका कुछ अधिक काल लेता है?

बहुत दिनोंकी बीमारी और खासकर ऐसी बीमारी, जो कुछ जटिल हो, आरोग्य होनेमें अपेक्षाकृत, कुछ अधिक समय लेती है। खासकर ऐलोपैथिक दवाओंके अपव्यवहारके कारण पैदा हुए दुष्परिणाम, जो मूल स्वाभाविक रोगमें मिल जाते हैं और जो उससे आरोग्य न होकर बिगड़ जाते हैं, उन्हें आरोग्य करनेमें बहुत अधिक समय लगता है। अकसर तो वे दुस्साध्यसे हो जाते हैं, क्योंकि इसी ढंगके रोगमें अमुक दवाने फायदा किया था—इस खोखले तथा मिथ्या आधारपर, ऐलोपैथ बड़ी-बड़ी मात्राओंमें, तीव्र क्रिया करनेवाली दवाएँ देकर रोगीकी ताकत और रस-रक्त आदिका निर्लजताके साथ, शोषन कर लिया करते हैं तथा उन्हें खनिज स्नान इत्यादिकी व्यवस्था अपनी चिकित्सा-प्रणालीके अनुसार देते हैं, इनसे उनका रोग और भी दुस्साध्य हो जाता है।

खुलासा—इसमें सन्देह नहीं कि सदृश लक्षणवाली दवाओंसे रोग बहुत जल्दी दूर होते हैं, पर यह भी नियमानुसार ही होता है। यदि बीमारी थोड़े दिनोंकी पुरानी हुई तो वह जल्द ही आरोग्य हो जाती है और यदि अधिक दिनोंकी हुई और जटिल हुई, तो उसमें और भी अधिक देर लगती है। खासकर उस रोगको आरोग्य करनेमें तो बहुत ही देर लगती है, जिसमें ऐलोपैथीके अनुसार बड़ी-बड़ी मात्राओंका प्रयोग हुआ हो तथा मूल रोगमें औषधसे उत्पन्न व्याधि सम्मिलित हो गई हो। ऐलोपैथिक चिकित्सा द्वारा आरोग्य नहीं होता है और मूल रोगमें अनेक प्रकारकी जटिलता पैदा हो जाती है। अकसर तो ये बीमारियाँ दुरारोग्य-सी हो जाती है; क्योंकि ऐलोपैथिक चिकित्सक तीव्र दवाओंका बड़ी-बड़ी मात्राओंमें प्रयोगकर, खनिज स्नान आदि करा, उनके शरीरकी ताकत और रस-रक्त नष्ट कर देते हैं, उनकी जीवनी-शक्तिको क्षीण कर देते हैं, जिससे दवाका प्रभाव उनपर बहुत कम पहुँचता है।

[१५०]

हल्की बीमारियोंमें क्या करना चाहिये ?

यदि रोगीको कुछ साधारण अस्वस्थता मालूम हो और कोई छोटे-मोटे एक या दो लक्षण प्रकट हुए हों, जो कुछ ही समय पहले दिखाई दिये हों, तो चिकित्सकको, इसे कोई बड़ा गंभीर रोग न मान लेना चाहिये, जिसके लिये विशेष भावसे ओषधकी जरूरत है। ऐसी अस्वस्थताको दूर करनेके लिये आहार-विहारका साधारण परिवर्त्तन ही काफी होता है।

खुलासा—थोड़े दिनोंकी साधारण बीमारीमें दवाकी कोई जरूरत ही नहीं रहती। यदि एक-दो लक्षण भी प्रकट हो जायें, तो भी विशेष

कुछ ख्याल करनेकी जरूरत नहीं है। ऐसी अवस्थामें आहार-विहारमें थोड़ा परिवर्त्तन कर देनेसे ही आरोग्य हो जायगा। सारांश यह कि जरा-जरा-सी बातमें दवाका प्रयोग नहीं करना चाहिये, इससे हानि होती है।

[१५१]

क्या तेज बीमारियोंमें कई लक्षण सम्मिलित रहते हैं ?

पर यदि रोगी कुछ तीव्र कष्टोंका उल्लेख करे, तो खोज करनेपर चिकित्सकको उसमें और भी कई अपेक्षाकृत मृदु प्रकृतिके लक्षण दिखाई देंगे, जिनपर ध्यान देनेसे रोगका सम्पूर्ण चित्र सामने आ जायगा।

खुलासा—यदि रोगी सिर्फ दो-एक ही भयंकर कष्टोंकी बात बताये, तो चिकित्सकको उनपर भी ध्यान दिये और खोज किये बिना ही, औषधकी व्यवस्था न करनी चाहिये। उसे खोज करनेपर उन तीव्र लक्षणोंके साथ और भी कई मृदु-प्रकृतिके हल्के लक्षण मिलेंगे। रोगीका सम्पूर्ण विवरण प्राप्त करनेके पश्चात् औषधकी व्यवस्था करना ही लाभ-दायक होगा।

[१५२]

क्या बहुतसे लक्षणोंवाली नयी बीमारीकी दवा निश्चत रूपसे प्राप्त हो जाती है ?

रोग जितना उग्र और तरुण होगा, साधारणतया उसके लक्षण भी उतने ही अधिक और स्पष्ट होंगे। ऐसे रोगके लिये, औषध-निर्वाचन भी उतना ही निश्चित और सरल होता है, बशर्ते कि पर्याप्त औषधियोंके विश्वस्त और सुपरीक्षित लक्षण मालूम हों और चिकित्सक उपयुक्त औषधका

निर्वाचन करना जानता हो। अनेक औषधोंकी लक्षण-सूचीमेंसे ऐसे लक्षणोंवाली औषधका निर्वाचन कर लेना कोई दुष्कर कार्य नहीं है, जिसके लक्षण रोगीके लक्षणोंसे मेल खा जायँ। ऐसी औषधका निर्वाचन ही अभीष्ट है।

खुलासा—नयी बीमारी जितनी गुरुतर होती है, उतने ही अधिक लक्षण वह प्रकट कर देती है। यदि चिकित्सकको बहुत-सी दवाएँ और उसकी क्रिया मालूम हों, तो वह सहजमें ही उन दवाओंमेंसे एक ऐसी दवा चुन लेगा, जिसके लक्षण रोग-लक्षणोंसे मिलते होंगे। ऐसी दवाका प्रयोग करनेपर रोग शीघ्र ही आरोग्य हो जायगा।

[१५३]

औषधके चुनावके समय किस प्रकारके प्रधान लक्षणपर ध्यान देना चाहिये?

सदृश-विधानके अनुसार इस तरह दवाकी खोज करनेमें अर्थात् प्राकृतिक रोगके लक्षण-समूहोंके साथ जानी हुई दवाके लक्षणोंकी तुलना कर, आराम करनेवाले रोगके सदृश, एक कृत्रिम रोग उत्पन्न करनेवाली शक्तिको खोज निकालनेके लिये, रोगके आश्चर्यजनक, अद्भुत, असाधारण, परिचायक चिह्न तथा लक्षणोंपर खासकर पूरी तरह ध्यान देना होगा; क्योंकि चुनी हुई दवाके लक्षण-समूहोंकी सूचीसे, यदि रोगके लक्षणोंका विशेष सादृश्य रहेगा, तभी वह दवा आरोग्य करनेमें सबसे बढ़कर उपयोगिनी होगी। इसके अलावा, साधारण और स्पष्ट लक्षण, जैसे—भूख न लगना, सर-दर्द, कमजोरी, अशान्त नींद, बेचैनी इत्यादि लक्षण जब साधारण और स्पष्ट रहते हैं या जबतक रोगी उन्हें विशेष भावसे नहीं कहता, तबतक चिकित्सकको औषध निर्वाचनके लिये उनपर ध्यान देना

अनावश्यक होता है ; क्योंकि ये लक्षण तो प्रायः समस्त रोगोंमें और सभी ओषधियोंमें वर्त्तमान रहते हैं।

खुलासा—यहाँ फिर दवाके चुनावकी प्रणाली वताते हैं अर्थात् रोगीके समस्त लिखे हुए लक्षणोंके अनुसार ही दवाओंकी सूचीमेंसे ऐसी दवा चुननी होगी, जो उसके रोग लक्षणोंके अनुसार ही कृत्रिम रोग उत्पन्न कर सके, परन्तु उसके लिये किन लक्षणोंपर ध्यान देना होगा ? चिकित्सकको उन्हीं लक्षणोंपर ध्यान देना होगा, जो लक्षण आश्चर्यजनक और अद्भुत हों। जिनसे उस रोगकी विशेषता मालूम होती हो, खासकर इन्हीं लक्षणोंपर ध्यान रखकर उसको दवाका चुनाव करना पड़ेगा अर्थात् ऐसी दवा चुननी पड़ेगी, जिसमें ये लक्षण प्रधान हों। बाकी भूख न लगना, नींद न आना, बेचैनी प्रभृति लक्षण जो प्रायः सभी रोगों और दवाओंमें रहते हैं, उनपर ही ध्यान रखना जरूरी नहीं है ; परन्तु इनमें भी यदि विशेषता है, किसी खास समय ही नींद न आती हो या बेचैनी बढ़ती हो, तो, वह अद्भुतता है। उसपर ध्यान रखना होगा।

[१५४]

क्या जितनी ही सम-लक्षण-सम्पन्न दवा होगी, उतना ही विना गड़बड़ीके रोग आरोग्य होगा ?

अत्यन्त उपयुक्त औषधके लक्षण-समूहोंकी सूचीसे जो एक चित्र बनता है, यदि उसमें जिसे आरोग्य करना है, उस रोगके असाधारण, अद्भुत और निर्णायक लक्षण अधिक संख्यामें और बहुत अधिक सदृश रूपसे वर्त्तमान रहें, तो वही दवा उस रोगी अवस्थाकी सबसे श्रेष्ठ और उपयुक्त, सम-लक्षण-सम्पन्न दवा होगी। यदि रोग बहुत दिनोंका न हो, तो, उस दवाकी पहली मात्रासे ही विना विशेष गड़बड़ीके रोग दूर हो जायगा।

खुलासा—किसी रोगीकी अचूक दवा होनेके लिये यह होना जरूरी है, कि उसमें वे ही असाधारण अद्भुत लक्षण रहें, जो रोगमें हों। वैसी दवा यदि खोजकर दी जायगी, तो वह रामबाणके रूपमें कार्य करेगी।

[१५५]

ऐसे अवस्थामें गड़बड़ी न होनेका कारण क्या है ?

मैं कहता हूँ—"बिना विशेष गड़बड़ीके।" क्योंकि सबसे बढ़कर उपयुक्त, सम-लक्षण-सम्पन्न दवाका प्रयोग करनेपर, केवल औषधके वे ही लक्षण प्रकट होते हैं, जो रोगके लक्षणोंके सदृश होते हैं। दवाके लक्षण, रोगके (दुर्बल) लक्षणोंपर अधिकार जमा लेते हैं; अर्थात् जीवनी-शक्तिकी समस्त अनुभूतियोंपर वे दखल जमा लेते हैं और अपनी अधिक ताकत खर्चकर उनको ध्वंस कर देते है, पर उस समय सम-लक्षण-सम्पन्न औषधके अन्यान्य, बहुतसे लक्षण, जिनका रोगके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता, कोई भी क्रिया नहीं करते। रोगी, घंटा प्रति घंटा अच्छा होता जाता है और उनको बिलकुल ही अनुभव नहीं करता, क्योंकि सदृश-विधानके अनुसार प्रयोग की हुई दवाकी मात्रा इतनी सूक्ष्म और मृदु रहती है, कि सदृश लक्षणके सिवा, उन लक्षणोंको शरीरके अन्य अंशोंमें उत्पन्न ही नहीं कर सकती, जिनका सादृश्य रोगसे नहीं है। परिणाम यह होता है कि सदृश लक्षण सब शरीरके उस अंशपर क्रिया प्रकट करते हैं, जो पहलेसे ही सदृश रोग लक्षण द्वारा आक्रान्त बने रहते हैं और ऐसी अवस्थामें रोगी जीवनी-शक्तिको केवल सदृश और बलवान औषधसे उत्पन्न रोगके विरुद्ध प्रतिक्रिया करनी पड़ती है, अतएव, मूल रोग नष्ट हो जाता है।

खुलासा—इस सूत्रमें यही बताया गया है, कि विशेष गड़बड़ी क्यों नहीं होती। गड़बड़ी तब होती है, जब ऐसी दवा पड़ती है, जो

असदृश होती है अर्थात् असदृश दवाओंसे शरीरके रोगी अंशके अलावा अन्य अंशपर भी रोग पैदा होता। दूसरे गड़बड़ी तब होती है, जब दवाकी मात्रा अधिक होती है। अधिक मात्रामें दवाके प्रयोगसे इतने तीव्र लक्षण उत्पन्न होते हैं, कि एक दूसरी ही व्याधि पैदा हो जाती है। तीसरे जल्दी-जल्दी और बार-बार दवाके प्रयोग द्वारा भी औषधकी विषक्रिया इतनी अधिक हो जाती है, कि जो स्थान रोगी नहीं है, वहाँ भी विषक्रिया दिखाई देने लगती है (सूत्र ११२)। इसके विपरीत, यदि सम-लक्षणवाली दवाका प्रयोग होता है, तो दवाके ही लक्षण अपनी क्रिया करते हैं, जिनसे रोग लक्षणोंका सादृश्य रहता है। अतएव, शरीरके अन्य स्थानोंके रोगाक्रान्त होनेकी सम्भावना नहीं रहती। मात्रा सूक्ष्म रहनेका यह परिणाम होता है, कि जीनवी-शक्तिपर मूल रोगसे बलवान प्रभाव तो पहुँच जाता है, परन्तु मूल रोगके दूर होते ही, जीवनी-शक्ति अपनी प्रतिक्रिया द्वारा, उस शक्तिके प्रभावको दूर कर देती है। इस तरह कोई भी गड़बड़ी पैदा नहीं होती।

[१५६]

क्या सूक्ष्म मात्रा न होनेपर कुछ गड़बड़ी हो सकती है?

सम्भवतः सदृश लक्षण पैदा करनेवाली ऐसी दवाई एक भी नहीं है, उसका निर्वाचन चाहे कितने ही उपयुक्त ढंगसे हुआ हो, विशेषतः जब वह अपर्याप्त रूपसे सूक्ष्म मात्रामें दी जाये और असहिष्णु तथा नाजुक मिजाजवालोंमें, कोई नगण्यतम लक्षण या असाधारण गड़बड़ी भी पैदा न करे, जब कि वह अपना काम कर रही हो; क्योंकि यह असम्भव है कि रोग और उसी जैसे लक्षण पैदा करनेमें समर्थ औषध, परस्पर न टकरायें और समकोण तथा समभुजाकार दो त्रिकोणोंकी तरह एक दूसरेको ढँक लें। साधारणावस्थामें, जीवनी-शक्तिकी गतिविधि इस

नगण्यसे अन्तरको दूर कर देती है। और ऐसा रोगी उन अन्तरोंको स्पष्ट रूपसे समझ नहीं सकता, जो काफी नाजुक मिजाज न हो। स्वास्थ्यके बहाल होनेका काम यथापूर्व जारी रहता है, बशर्ते कि किसी विपरीत लक्षण पैदा करनेवाली दवाईका प्रभाव, खान-पानकी गड़बड़ी या कामक्रोधादिकी उत्तेजना उसमें कोई बाधा उपस्थित न कर दे।

खुलासा—दवाका चुनाव यदि बहुत सावधानतासे भी किया जाये, पर ऐसी कोई दवा मिलना बहुत ही कठिन है, जो रोगके समस्त लक्षणोंसे एकदम मिलती हो। इसका परिणाम यह होता है, कि कुछ-न-कुछ रोग-वृद्धि होती है, पर यह तबतक अनुभवमें नहीं आती, जबतक रोगी बहुत ही असहिष्णु नहीं होता ; परन्तु इस रोग-वृद्धिसे कोई हानि नहीं होती। जीवनी-शक्ति इसे स्वयं ही दूर कर देती है ; यदि इस बीचमें खान-पानकी गड़बड़ी अथवा मानसिक उत्तेजना आदिके कारण कोई बाधा उपस्थित न हुई हो, तो रोग शीघ्र ही दूर हो जाता है।

[१५७]

यह रोग वृद्धि क्या है ?

परन्तु यद्यपि यह निश्चित है, सम-लक्षण-सम्पन्न चुनी हुई दवा, अपनी उपयोगिता तथा मात्राकी सूक्ष्मताकी वजहसे सरलतापूर्वक सभी बीमारियोंको बिना कष्टके दूर कर देती है तथा अपने अन्यान्य लक्षणोंको प्रकट नहीं करती अर्थात् नयी कष्टप्रद गड़बड़ियोंको पैदा किये बिना ही रोग दूर करती है, तथापि यदि मात्रा सूक्ष्म न हो, तो कभी-कभी पेटमें जाते ही, पहले घण्टेमें ही या कई घण्टोंमें कुछ-न-कुछ सामान्य रोग-वृद्धि पैदा कर ही देती है और यदि मात्रा बड़ी रहती है, तो कई घंटोंतक रोग-वृद्धिकी अवस्था रहती है। यह वृद्धि मूल रोगसे इतनी सदृश रहती

है, कि रोगी स्वयं उसे रोग-वृद्धि ही समझ लेता है ; पर होता है यह वास्तवमें मूल रोगकी अपेक्षा बलवान सदृश दवासे उत्पन्न रोग, जो शक्तिमें मूल रोगसे कुछ-न-कुछ अधिक बलवान होता है।

खुलासा—यह निश्चित है, कि सदृश-लक्षणके अनुसार दवाका चुनाव हुआ और ठीक-ठीक रूपसे दवा चुनी गयी और उसकी मात्रा भी कम हुई, तो उससे सरलतापूर्वक रोग आरोग्य हो जाता है। किसी दूसरी तरहका लक्षण नहीं पैदा होता, इस तरह रोगीको कोई कष्ट नहीं होता ; पर यह नहीं कहा जा सकता कि उसके शरीरमें कोई भी गड़बड़ी पैदा नहीं होती। एक गड़बड़ी तो यह अवश्य ही होती देखी जाती है, कि औषध सेवनके बाद तुरन्त ही अथवा घण्टे दो घण्टेके लिये रोगके लक्षण सब बढ़ जाते हैं। यह तब होता है, जब मात्रा सूक्ष्म रहती है, पर यदि शक्ति अधिक हुई, तो यह लक्षण रोग-वृद्धिका भाव और भी देरतक बना रह सकता है। इससे रोगी यह समझता है, कि उसकी बीमारी बढ़ गयी है ; परन्तु बीमारी वास्तवमें नहीं बढ़ती। सम-लक्षणकी जो मूल रोगसे बलवती दवा पड़ती है, यह उसकी क्रिया है। अपना सम-लक्षणका बल दिखाकर यह मूल रोगको दूर भगाती है। इसकी रोग-वृद्धि या रोग-लक्षण-वृद्धि कहते हैं। इसमें वास्तवमें कुछ नवीन या कोई भयंकर परिवर्त्तन नहीं आता।

[१५८]

नयी बीमारीमें इस रोग-वृद्धिसे क्या सूचना मिलती है?

होमियोपैथिक रोग-वृद्धि अर्थात् समान लक्षण पैदा कर सकनेवाली औषध खानेके कुछ ही देर बाद, रोगीकी मूलावस्थामें जो साधारण-सी वृद्धि नजर आती है—उसे आना ही चाहिये, क्योंकि औषधजनित रोग, स्वाभाविक रूपमें, रोगीके मूल रोगसे, जिसे दूर करना है, कुछ-न-कुछ

बलवान होगा। यह रोग तभी जायगा, जब औषधजनित रोग उसपर अपना प्रभाव जमा ले। औषध खानेके कुछ ही घण्टों बाद इस प्रकारका परिवर्त्तन आनेका स्पष्ट अर्थ यह है कि वह तरुण रोग सम्भवतः एक ही मात्रामें चला जाय। स्वाभाविक रोग तभी मिट सकता है, जब औषध-जनित रोग उस ही जैसा हो और उससे बलवती भी हो।

खुलासा—४३ से ४८वें सूत्रतक हैनिमैन बता चुके हैं, कि एक समान लक्षणवाली औषधजनित बलवती बीमारी, उसी तरहके लक्षणवाली कमजोर स्वाभाविक बीमारीको किस तरह दूर कर सकती है। कमजोर जबर्दस्तको युद्धक्षेत्रसे नहीं हटा सकता। अतएव, औषधकी रोगोत्पादक शक्ति बलवान होनी ही चाहिये ; जब यह औषध-शक्ति बलवती होगी, तो औषधके पेटमें जानेपर कुछ-न-कुछ अपना बल दिखायेगी ही, नहीं तो मूल रोग नहीं हटेगा। इस बल-प्रदर्शनके समय ही रोग कुछ बढ़ता दिखाई देता है। अब यदि किसी नयी बीमारीमें पहली मात्रा पड़नेके साथ-ही-साथ रोग-वृद्धि मालुम हो, तो समझना चाहिये, कि दवाने अपना काम करना आरम्भ कर दिया है और इस पहली ही खुराकमें रोग दूर हो जाना चाहिये।

[१५९]

नयी बीमारीमें लघु मात्राका प्रभाव होता है ?

नयी बीमारीकी चिकित्सामें, सम-लक्षणके अनुसार चुनी हुई दवाकी मात्रा जितनी ही अल्प होती है, पहले ही घण्टेमें रोग-वृद्धि भी उतनी ही कम और थोड़े ही समयके लिये होती है।

खुलासा—रोग-वृद्धि कम और थोड़ी देरतकके लिये बनानेका सर्वश्रेष्ठ उपाय है—कम-से-कम मात्रामें औषधका प्रयोग करना ; परन्तु यह न समझ लेना चाहिये कि असदृश दवासे काम चल जायगा।

दवा भी अवश्य ही सम-लक्षण-सम्पन्न तथा मात्रा भी अत्यल्प होनी चाहिये।

[१६०]

औषध-प्रयोगके बाद नयी बीमारीकी वृद्धि क्या है?

पर सदृश-विधानके अनुसार दवाकी मात्रा इतनी नहीं घटाई जा सकती कि जिससे यह जटिलता-रहित अल्प दिन स्थायी रोगमें आराम न पहुँचा सके, उसे पराजित न कर सके या उसे एकदम आरोग्य कर नाश न कर सके। इस तरह हम यह समझ सकते हैं, कि उपयुक्त सदृश औषधकी उचित मात्रा—वह सम्भवतः न्यूनतम भले ही न हो—खिलाये जानेके बाद, कुछ ही घण्टोंके भीतर-भीतर, इसी तरहकी सादृश्य वृद्धि लाती है, जो स्पष्ट रूपसे प्रतीत हो जाती है।

खुलासा—होमियोपैथीके अनुसार औषध-प्रयोगका सिद्धान्त है कि औषधकी शक्ति रोग-शक्तिसे बलवती हो। इसीलिये जब किसी नयी बीमारीमें सम-लक्षणके अनुसार दवाका प्रयोग किया जाता है, तब रोगीकी जीवनी-शक्तिपर वह अपनी जबर्दस्त सदृश-क्रिया प्रकट करती है। इस तरह जबर्दस्त क्रिया कर उस बीमारीको हटा देती है। हैनिमैन कहते हैं, कि दवाकी मात्रा चाहे कितनी भी सूक्ष्म क्यों न हो, उसकी क्रियासे रोग हटेगा ही; क्योंकि उसकी शक्ति रोग-शक्तिसे बलवान है। अतएव साधारण क्षुद्र मात्रामें दवा सेवन करनेपर रोग तो बढ़ेगा ही और यह सेवनके प्रथम कई घण्टोंके भीतर ही बढ़ेगा; क्योंकि उसी समय उस दवाकी तीव्र क्रिया होगी। अतएव, यह स्वाभाविक है, कि बलवान औषधकी क्रियाके कारण पहले रोग कुछ बढ़ा हुआ मालूम हो।

[१६१]

पुरानी बीमारीमें यह वृद्धि कब होती है ?

जब मैं यहाँ सदृश औषध द्वारा लाई रोग-वृद्धि या सदृश औषधकी उस प्रारम्भिक क्रियाकी चर्चा करता हूँ, जो पहले २-४ घण्टोंमें, मूल रोगके लक्षणोंमें आती हैं, तो निश्चय ही मेरा अभिप्राय थोड़े दिनोंके तरुण रोगसे होता है। परन्तु जब देरतक काम करनेवाली दवाको, किसी बहुत पुरानी बीमारीका मुकाबला करना हो और जहाँ चिकित्सा कालमें, मूल रोगमें इस प्रकारकी वृद्धि नहीं आनी चाहिये। वहाँ जब उपयुक्त औषध, उचित रूपसे न्यून और क्रमशः वर्द्धमान मात्रामें दी जाती है, तो ऐसी वृद्धि नहीं आती। ऐसी प्रत्येक मात्रा अधिक शक्तिकृत होनी चाहिये (सूत्र २४७), ऐसे पुराने रोगकी हालतमें, उसके मूल लक्षणोंमें वृद्धि उस समय आती है, जब चिकित्सा समाप्तिपर आती है और रोग लगभग या बिलकुल ही मिट चुका होता है।

खुलासा—दवाके प्रयोगके कई घण्टोंके भीतर ही जो वृद्धि हो जाती है, वह नयी और थोड़े दिनोंकी बीमारियोंमें ही होती है; परन्तु पुरानी बीमारी अनेक लक्षणोंसे संयुक्त तथा बहुत दिनोंकी होती है। उसमें जब किसी दवाका प्रयोग होता है और खासकर सूक्ष्म मात्रामें ऐसी दवाका प्रयोग होता है, जिसकी कार्यकारी शक्ति गम्भीर रहती है, तो पेटमें जानेके साथ ही उससे रोग-वृद्धि नहीं दिखाई देती, बल्कि उस समय दिखाई देती है, जिस समय रोग आरोग्य होनेको आता है अर्थात् पुरानी बीमारीके जटिल लक्षण सब दूर होते-होते अन्तमें जो मूल रोग था और जो अबतक दबा हुआ पड़ा था, वह प्रकट होता है और इस तरह उसके आरोग्य होनेके साथ-ही-साथ सभी बीमारियाँ जड़से आराम हो जाती है।

[१६२]

अगर उपयुक्त औषध न मिले, तो क्या करना चाहिये ?

अबतक अपेक्षाकृत थोड़ी ही दवाओंकी ठीक-ठीक क्रिया मालूम हो सकी है। इसलिये कभी-कभी ऐसा भी होता है, कि जिस रोगकी चिकित्सा करनी है, उसके थोड़े ही लक्षण सबसे उपयुक्त दवाकी लक्षण सूचीमें प्राप्त हों। उस समय एकदम सम्पूर्ण उपयुक्त दवाकी कमीके कारण, उस अपूर्ण भावसे उपयुक्त कृत्रिम रोग पैदा करनेवाली शक्तिका ही प्रयोग करना पड़ता है।

खुलासा—उपयुक्त दवा कौन-सी होती है, इस सम्बन्धमें सूत्र—१४५ में हैनिमैन बता चुके हैं कि रोगकी सबसे उपयुक्त दवा वही है, जिसके लक्षण रोगके समस्त लक्षणोंसे मिल जाते हों; परन्तु अबतक बहुत थोड़ी दवाओंकी समस्त क्रियाएँ जानी जा सकी हैं। इसलिये, हैनिमैन कहते हैं, कि यदि ऐसी उपयुक्त दवा न मिले, जिसके लक्षण रोगके लक्षणसे सम्पूर्ण रूपसे मिलते हों, तो दवाकी कमी रहनेके कारण उसी दवाको उपयुक्त मानकर प्रयोग करना चाहिये, जिसके लक्षण सबसे अधिक मिलते हों।

[१६३]

क्या आंशिक सम-लक्षण औषधके सम्पूर्ण आरोग्य होता है ?

ऐसी अवस्थामें हमलोग इस बातकी आशा नहीं कर सकते, कि इससे वास्तवमें बिना किसी उपद्रवके, सम्पूर्ण रूपसे रोग आरोग्य हो जायगा; क्योंकि एसी दवाके द्वारा कितने ही ऐसे लक्षण पैदा हो जाते हैं, जो उस रोगमें पहले कभी न दिखाई दिये थे। ये सब लक्षण असम्पूर्ण उपयुक्त दवाके कारण ही उत्पन्न होते हैं, परन्तु इससे किसी

तरह भी रोगके अधिक अंशको (रोगके वे लक्षण जो दवाके लक्षणकी तरह हैं), दवाके द्वारा दूर होनेमें वाधा नहीं पहुँचती। उनसे आरोग्यका उत्तम सूत्रपात ही होता है, पर अतिरिक्त लक्षण उत्पन्न हुए बिना यह नहीं होता; परन्तु जब दवाकी मात्रा खूब थोड़ी—सूक्ष्म होती है, तब वे भी थोड़े ही परिमाणमें पैदा होते हैं।

खुलासा—हैनिमैन कहते हैं, कि रोग बिना किसी झंझटके तभी आरोग्य होता है, जब समान लक्षणवाली दवा पड़ती है, पर जब ठीक-ठीक समान लक्षणवाली दवा नहीं मिलती और ऐसी दवाका प्रयोग करना पड़ता है, जिसका आंशिक लक्षण मिलता है, तो उससे कुछ-न-कुछ उपद्रव पैदा हो ही जाते हैं, पर उन उपद्रवोंसे रोगीके आरोग्य होनेकी ओरकी गतिमें कोई वाधा नहीं पड़ती, थोड़ेसे अतिरिक्त लक्षण पैदा हो जाते हैं, पर यदि दवाका प्रयोग खूब सूक्ष्म मात्रामें होता है, तो ये उपद्रव भी बहुत ही थोड़े होते हैं और रोगीको किसी तरहकी तकलीफ नहीं होती।

[१६४]

रोग और दवाके कैसे अल्पसंख्यक लक्षण मिलने चाहियें, जिससे आरोग्यमें विघ्न न हो?

सबसे उत्तम चुनी हुई दवामें भी यदि रोगके सदृश थोड़े लक्षण वर्त्तमान रहें, तो वे आरोग्यमें विघ्न नहीं पहुँचाते। यदि ये थोड़े लक्षण प्रधान भावसे असाधारण और विशेष भावसे रोग-लक्षणसे मिलते हों। ऐसी अवस्थामें बिना किसी उपद्रवके भी रोग आरोग्य हो जाया करता है।

खुलासा—कोई दवा अच्छी तरह चुनी हुई रहनेपर भी सदा रोग और औषधके अधिकांश लक्षण नहीं मिलते। इस अवस्थामें कोई-न-कोई

उपद्रव तो अवश्य ही पैदा हो जाता है ; परन्तु यदि रोगके असाधारण और प्रधान-प्रधान लक्षण दवाके लक्षणसे मिल जाते हैं, तो न आरोग्यमें ही विघ्न होता है और न उपद्रव ही कष्टकर होते हैं।

[१६५]

पर यदि चुनी हुई दवामें रोगके लक्षण न हों ?

इतनेपर भी यदि चुनी हुई दवाके लक्षणोंमें रोगके परिचायक, विशेष और असाधारण लक्षणोंका कोई सादृश्य दिखाई न दे तथा यदि दवामें केवल साधारण, अस्पष्ट अवस्थाएँ (मिचली, कमजोरी, सर-दर्द प्रभृति) मिलती हों तथा जानी-बूझी दवाओंमें सदृश-विधानके अनुसार कोई भी उपयुक्त और सदृश दवा न हो, तो उस दशामें चिकित्सक सदृश-विधानके अनुसार इस अनुपयुक्त औषधका प्रयोग करके जल्द ही किसी अच्छे लाभकी आशा नहीं कर सकता।

खुलासा—पहले हैनिमैन बता चुके हैं, कि रोगके विशेष, असाधारण और अद्भुत लक्षणोंके साथ दवाका लक्षण मिलना चाहिये ; परन्तु ये यदि न मिलें और केवल साधारण लक्षणोंका ही सादृश्य हो, तो उस दवासे आरोग्य होनेकी आशा बहुत कम रहती है। लक्षणोंपर विचार करते समय, प्रधान लक्षणोंपर ही ध्यान देना होगा। यदि इस तरह, विशेष लक्षण न मिलनेवाली दवाका प्रयोग कर दिया जायगा, तो, उससे रोग शीघ्र आरोग्य न होगा।

[१६६]

असम लक्षणवाली दवाका प्रभाव कैसे दूर होता है ?

पर ऐसा बहुत कम होता है ; क्योंकि अब हमें बहुसंख्यक दवाओंकी क्रियाओंका अच्छी तरह ज्ञान हो गया है (और अनुपयुक्त दवाका प्रयोग

हो जानेपर) यदि उससे कोई दुष्परिणाम उत्पन्न हो जाता है, तो अपेक्षाकृत सदृश औषधका चुनाव करके जब प्रयोग कराया जाता है, तो उसका (असम लक्षणवाली दवाका) प्रभाव घट जाता है।

खुलासा—१६५वें सूत्रमें जैसा कहा गया है, कि ठीक-ठीक सम-लक्षणवाली दवाका यदि प्रयोग न हो सके, तो रोग आरोग्य नहीं हो सकता। हैनिमैन कहते हैं, कि ऐसा होना बहुत कम सम्भव है ; क्योंकि अब बहुत-सी दवाओंकी क्रिया मालूम हो गई है और इस बातका पता लग गया है, कि वे किस ढंगके लक्षण या परिवर्त्तन उत्पन्न करती हैं। ऐसी अवस्थामें ऐसा धोखा हो जाना अब बहुत ही कम सम्भव है और यदि ऐसा हो भी जाये, तो सम-लक्षणवाली दवाका चुनावकर प्रयोग करनेपर असम लक्षणवाली दवाओंका जो दुष्परिणाम होता है, वह घट भी जाता है।

[१६७]

पर अनुपयुक्त दवाके प्रयोगसे यदि कोई भयंकर लक्षण पैदा हो जाये ?

यदि इस तरह पहले-पहल अनुपयुक्त असदृश औषधका प्रयोग हो जाये और उसके परिणामस्वरूप कोई भयंकर अवस्था पैदा हो जाये, तो नयी बीमारी होनेपर हमलोग उस दवाकी क्रिया समाप्त नहीं होने देते, न रोगीको ही उस दवाकी पूर्ण क्रिया भोगने देते हैं, बल्कि हमलोग इस परिवर्त्तित अवस्थाका अध्ययन करते हैं और रोगका पूर्ण चित्र संग्रह करनेके लिये उसके पहले लक्षणोंमें लिख लेते हैं। इस तरह मूल लक्षणोंमें नये लक्षण जोड़नेसे रोगीके कष्टका लक्षण चित्रपूर्ण हो जाता है।

खुलासा—यदि उपयुक्त लक्षणोंवाली दवा नहीं मिलती और उस समय अनुपयुक्त दवाका प्रयोग कर दिया जाता है और ऐसा करनेपर

यदि गुरुतर और भयंकर लक्षण पैदा हो जाते हैं, तो उस समय क्या करना चाहिये, यही इस सूत्रमें बताया है अर्थात् यदि वैसी अनुपयुक्त औषधका प्रयोग होनेके कारण गुरुतर लक्षण सामने आ जायें, तो इस बातकी राह कभी न देखनी चाहिये, कि दवाकी क्रिया जब समाप्त हो जाये, तब किसी दूसरी दवाका प्रयोग किया जाये और उतनी देरतक, जबतक वह दवा अपनी क्रिया करती रहे, रोगी तकलीफ भोगा करे, बल्कि करना यह चाहिये, कि पुरानी बीमारीके जो लक्षण बचे हों और नये जो पैदा हो गये हों, उन दोनोंको सम्मिलितकर रोगीका सम्पूर्ण चित्र संग्रह कर लेना चाहिये और उस चित्रके अनुकूल सम-लक्षण-सम्पन्न औषधका प्रयोग करना चाहिये।

[१६८]

ऐसी अवस्थामें हमलोग और क्या करते हैं ?

उस समय हमलोग अधिक आसानीसे, जानी हुई दवाओंमेंसे, रोगके सदृश-लक्षणवाली, ऐसी एक दवा चुन सकेंगे, जिसकी एक ही खुराक यदि सम्पूर्णतया रोगको नष्ट न करेगी, तो भी उसे आरोग्यकी ओर बहुत-कुछ आगे बढ़ा देगी और यदि इस दवासे भी पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त नहीं होता, तो हमलोग बारम्बार जो कुछ रोग बचा रहता है, उसकी परीक्षा करते हैं। इस तरह जबतक हमार उद्देश्य सिद्ध नहीं होता और रोगीको सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त नहीं हो जाता, हमलोग तबतक लगातार उपयुक्त औषधका चुनाव करते हैं।

खुलासा—१६७ सूत्रमें कहे अनुसार, जब गुरुतर अवस्था आ जाती है, तो उस समय जो लक्षण सामने आते हैं, उनके अनुसार हमलोग दवा चुनकर देते हैं। यदि उससे रोग आरोग्य नहीं हो जाता, तो आरोग्यकी ओर कुछ अग्रसर अवश्य होता है, इतनेपर भी जो लक्षण बच जाते हैं

और उस दवासे आरोग्य नहीं होते हैं, उनकी फिर परीक्षा करते हैं और उस समयके अवशिष्ट लक्षणोंके अनुसार दवा चुनते हैं, इस तरह तवतक बराबर चेष्टा करते जाते हैं, जबतक रोग आरोग्य नहीं हो जाता। सारांश यह कि यदि एक दवाकी मात्रासे लाभ थोड़ा हो और रोग आरोग्यकी ओर न बढ़े, तो परीक्षाकर उस समयके वर्त्तमान लक्षणोंके अनुसार, दूसरी दवा चुननी चाहिये और इस तरह तबतक बराबर करते रहना चाहिये, जबतक रोग आरोग्य न हो जाये।

[१६९]

क्या दो दवाएँ एक साथ या एकके बाद दूसरी दी जा सकती है ?

जब हम पहली बार रोगकी जाँच करें और जब पहली बार दवाका निर्वाचन करें—और हमें यह मालूम हो जाय कि रोगके अधिक-से-अधिक लक्षणोंके अनुरूप कोई एक औषध नहीं मिलती, क्योंकि सुपरीक्षित औषधियोंकी संख्या अपर्याप्त है—और उपयुक्तताकी दृष्टिसे दो दवाओंपर निगाह पड़ती है, उनमेंसे कुछ लक्षणोंके लिये एक उपयुक्त और कुछ अन्य लक्षणोंके लिये दूसरी दवा उपयुक्त नजर आये, तो ऐसी दशामें, उनमेंसे किसी ऐसी दवाका जो अधिक उपयुक्त नजर आये, व्यवहार पहले करना—और सोचे-समझे बिना, बादमें दूसरीका व्यवहार कराना युक्तियुक्त नहीं है। इसी तरह, उन दोनोंका एक साथ व्यवहार भी (सूत्र २७३ का नोट देखिये) युक्तियुक्त नहीं है। कारण यह है कि पहली दवाके व्यवहारसे जो परिवर्त्तन आये होंगे, उन्हें ध्यानमें रखते हुए दूसरी उपयुक्त औषधका व्यवहार विषयबाह्य है ; फिर भले ही वह पहली दवाका व्यवहार होनेसे पहले, शेष लक्षणोंके लिये उपयुक्त और सदृश हीं थी। ऐसी दशामें बेहतर यही है कि पहली दवाके व्यवहारसे जो

परिवर्त्तन आ चुके हों और अब परिवर्त्तन न आता हो, तो उन्हें छोड़कर, रोगीके शेष लक्षणोंपर पुनर्विचान करें और उनके अनुसार किसी और उपयुक्त तथा सदृश औषधका निर्वाचन करें।

खुलासा—रोगकी दवा चुनते समय बहुत अधिक दवाओंका ज्ञान न रहनेके कारण, केवल एक ही दवा यदि ऐसी न मिल सके, जिसके लक्षणोंसे रोगीके सब लक्षण मिल जायें, बल्कि ऐसा मालुम हो कि दो दवाएँ मिलकर सम्पूर्ण रोग लक्षण आता है, तो इस अवस्थामें दोनों दवाओंका प्रयोग न करना चाहिये। इससे बहुत हानि होती है। उनमेंसे वही दवा पहले देनी चाहिये, जिसके लक्षणोंके अधिक भागसे रोगका सादृश्य रहे अथवा जिसके अधिकांश लक्षण रोग-लक्षणोंसे मिलते हों। इसके बाद भी, उस दूसरी दवाका प्रयोग न करना चाहिये, जिसके कुछ लक्षण मिलते थे; क्योंकि सम्भव है, कि प्रथम औषधकी क्रियासे कुछ परिवर्त्तन पैदा हो गया हो। दूसरी दवाका प्रयोग तो तभी हो सकता है, जब फिर परीक्षा कर देखा जाये, कि उस दूसरी दवाके योग्य लक्षण हैं या नहीं। होना यह चाहिये कि एक दवाकी क्रियासे जितना रोग हटना हो, हट जाये, तब शेष लक्षण मिलाकर, दूसरी दवाका प्रयोग किया जाये। इस तरहसे सम-लक्षणवाली दवाका व्यवहार होनेसे बीमारी अधिकारमें आ सकती है।

[१७०]

औषधका पुर्निर्वाचन रोगीके तत्कालीन लक्षणोंके अनुसार होना चाहिये?

इसलिये ऐसे तथा प्रत्येक रोगमें, रोगकी अवस्थाका परिवर्त्तन होनेपर, रोगके जो बाकी—अवशिष्ट लक्षण रह जायें, उनका पता लगना चाहिये और (पहली बार जो दूसरी दवा उपयुक्त मालूम हुई

थी, उसपर विना ध्यान दिये (वर्त्तमानमें जो अवस्था या लक्षण दिखाई दें, उनके उपयुक्त सम-लक्षण-सम्पन्न दवा अवश्य चुन लेनी चाहिये। ऐसा अकसर होता नहीं है, इतनेपर भी यदि ऐसा हो जाये कि पहली वार जो दूसरी योग्य दवा मालूम हुई थी, उस समयके बचे हुए रोगके अंशके लिये वही उपयुक्त मालुम हो, तो, वही हमलोगोंके लिये ध्यान देने योग्य और अन्य दवाओंकी अपेक्षा उसका ही प्रयोग विशेष उपयुक्त होगा।

खुलासा—मतलब यह है, कि रोगके लक्षणके अनुसार ही दवा देनी होगी ; पहली, दूसरी या अन्यसे कोई तात्पर्य नहीं। पहली वार रोग देखनेपर यह मालुम हुआ कि दो दवाएँ मिलकर रोगका सम्पूर्ण लक्षण पूरा करती हैं ; परन्तु दो दवाएँ नहीं दी जा सकतीं। अतएव उन दोनोंमेंसे जिसके लक्षण अधिक मिलें, उसका ही प्रयोग करना चाहिये। अब विचारणीय बात यह है, कि दूसरी दवा कौन-सी दी जायगी। पहली दवा पड़नेपर कुछ-न-कुछ परिवर्त्तन अवश्य ही उत्पन्न होगा, रोगके लक्षण कुछ घटे-बढ़ेंगे। सम्भव है, कुछ नये भी आ जायें। ऐसी अवस्थामें दूसरी दवापर जो पहले ध्यानमें आयी थी, ख्याल करना तो वृथा ही होगा। दूसरी दवा देनेके लिये, रोगीकी फिरसे परीक्षा करनी होगी। मुख्य लक्षण ग्रहण करने पड़ेंगे और वर्त्तमान रोग-लक्षणोंसे जिस दवाके लक्षणोंका सादृश्य होगा, उसका ही प्रयोग करना होगा ; पर यदि ऐसा हो जाये, कि पहली दवा जो दी जा चुकी है, उसके अनुसार रोग-लक्षण दूर हो जायें और दूसरी दवाके ही लक्षण रह जायें ? यद्यपि ऐसा होता बहुत ही कम है, तथापि ऐसी अवस्थामें करना यह होगा कि वह दूसरी ही दवा देनी होगी, तब अन्य दवाओंपर ख्याल करनेकी कोई जरूरत नहीं। सारांश यह कि दवा देनेके समय ठीक जैसा लक्षण रहे, बिलकुल उसी लक्षणके अनुसार औषध चुननी

होगी। पहलेसे ही, एकके बाद दूसरी, कोई दवाका प्रयोग करनेके लिये चुन रखना भयंकर भूल है।

इस सूत्रपर ध्यान देनेसे यह भी प्रकट होता है, कि—(१) दो दवाएँ साथ नहीं दी जा सकतीं। (२) दो दवाओंका पर्यायक्रमसे प्रयोग नहीं हो सकता। (३) पहले दवा चुन रखना निरर्थक और वृथा परिश्रम है। (४) प्रत्येक रोगमें और प्रत्येक दवाका लक्षणके अनुसार ही प्रयोग करना होगा। इस नियमके विपरीत जानेसे चिकित्सा न हो सकेगी ; क्योंकि चिकित्साका यही नियम है।

[१७१]

रतिज रोगोंके सिवा, अन्य पुरानी बीमारियोंमें क्या करना चहिये ?

जो पुरानी बीमारियाँ दूषित रतिज रोगके कारण उत्पन्न न हुई हों, और, जो साधारणतः सोरा-दोष कारण ही उत्पन्न हुई हों, उनको आरोग्य करनेके लिये लक्षणोंके अनुसार कई सोरा-दोष-नाशक (Anti-psoric) दवाओंका, क्रमशः प्रयोग करना पड़ता है। हर बार जब दवा बदली जाये, तो वह उन लक्षणोंके अनुरूप होनी चाहिये, जो पहली दवाका कार्य शेष हो जानेके बाद बाकी बच रहे हों।

खुलासा—बहुत-सी ऐसी बीमारियाँ हैं, जो दूषित संगमके कारण उत्पन्न होती हैं, इन रतिज-रोगोंके सिवा और जितनी पुरानी बीमारियाँ हैं, उनमेंसे अधिकांश सोरा अर्थात् खाज-खुजलीके दोषसे आती हैं अर्थात् ये सोरा-दोषके कारण ही उत्पन्न होती हैं। इनके लिये सोरा-दोष-नाशक (Antipsoric) दवाओंका प्रयोग करना पड़ता है। ऐसी दवाको एक खुराकसे ही काम नहीं निकलता और इसी तरह एक दवासे ही पूर्ण आरोग्य नहीं होता। एकके बाद दूसरी—इस तरहकी कई

सोरा-दोष-नाशक दवाएँ देनी पड़ती है ; पर रोग-लक्षणका सादृश्य देखकर इन सबका ही चुनाव करना पड़ता है। वहाँ भी यही नियम काममें आता है, कि जैसे लक्षण होंगे, वैसी ही दवाका प्रयोग किया जायगा अर्थात् पहली खुराक देनेपर जो लक्षण पैदा हो जायें या जो अवशिष्ट रह जायें, उनके अनुसार ही दवा दी जायगी।

[१७२]

आरोग्यमें कठिनता कब आती है ?

इसी तरहकी कठिनाई किसी रोगको दूर करनेमें उस समय पड़ती है, जब रोगके लक्षणोंकी संख्या बहुत ही कम हो। यह ऐसी स्थिति है, जिसपर बहुत सावधानीसे विचार करना चाहिये ; क्योंकि इस एक कठिनाईके दूर हो जानेसे, संसारकी यथासम्भव सर्वाधिक पूर्ण चिकित्सा-पद्धतिकी सभी कठिनइयाँ तथा बाधाएँ (इस एक बाधाको छोड़कर कि इसमें विशुद्ध रूपेण सुपरीक्षित औषधियोंकी संख्या कम है) दूर हो जाती है।

खुलासा—चिकित्सामें बाधा दो प्रकारकी मिलती है। एक तो यह कि बहुसंख्यक दवाओंकी पूरी-पूरी क्रियाका ज्ञान न होना। दूसरी यह कि रोगमें बहुत ही थोड़े लक्षणोंका प्रकट होना। यदि रोगमें लक्षण ही न प्रकट होंगे, तो दवाका चुनाव किस तरह होगा ; क्योंकि यही तो दवाके चुनावका आधार है। जब आधार ही न होगा, तो आधेय रखा किसके सहारे जायगा। इसीलिये हैनिमैन कहते हैं, कि सब तरहकी चिकित्सा-पद्धतियोंमें सबकी अपेक्षा पूर्ण, जो सदृश-विधानकी चिकित्सा है, उसमें भी ये दो अड़चनें पड़ती है। एक तो दवाके सम्बन्धमें कम ज्ञान रहना और ऐसे रोग मिलना, जिनमें लक्षण कम प्रकट हुए हों। इन्हीं दोनों वजहोंसे इसमें बाधा पहुँच सकती है। यदि इनको दूर कर दिया जाये, तो फिर कोई बाधा नहीं रहती।

[१७३]

एकांग रोग किसे कहते हैं ?

ऐसी बीमारियाँ, जिनमें बहुत थोड़े लक्षण प्रकट होते हैं और इसी वजहसे जिनका आरोग्य कठिन होता है, वे बीमारियाँ हैं, जिन्हें एकांगी (One sided) कहा जा सकता है ; क्योंकि वे केवल एक या दो प्रधान लक्षण प्रकट करती हैं और बाकी लक्षण छिपे रहते हैं। ऐसी हालत खासकर पुरानी बीमारियोंमें पाई जाती है।

खुलासा—ऐसे कितने ही रोग हैं, जिनमें एक या दो ही लक्षण प्रकट होते हैं, पर ये लक्षण ऐसे तीव्र रहते हैं, कि बाकी सब लक्षण इनके द्वारा छिप जाते हैं। पूछनेपर रोगीसे किसी भी प्रकारकी तकलीफ या कष्टोंका पता नहीं मिलता। अतएव, इन दो लक्षणोंके सहारे दवा चुनना असम्भव हो जाता है। यही कारण है, कि ऐसे रोग दुःसाध्य या असाध्य रहते हैं। हैनिमैनने इनका नाम एकांगी अथवा एकदेशिक रोग रखा है ; क्योंकि इनके लक्षण विशेषकर एक पार्श्वगत ही होते हैं। ऐसे रोग पुरानी बीमारीके अन्तर्गत दिखाई दिया करते हैं।

[१७४]

स्थानिक रोग क्या है ?

उनके प्रधान लक्षण या तो भीतरी कष्ट होते हैं (जैसे—वर्षोंका पुराना सर-दर्द, बहुत दिनोंका अतिसार अथवा प्राचीन हृद्शूल प्रभृति) अथवा बाहरी ढंगका कोई रोग—ये बाहरी रोग स्थानिक रोग कहलाते हैं।

खुलासा—इन एकांगी रोगोंके लक्षण दो तरहके होते हैं। एक तो यह कि बहुत दिनोंका सर-दर्द, पुराना अतिसार या बहुत दिनोंका

हृद्शूल आदिकी भाँतिके भीतरी रोग होते हैं। दूसरे ढंगका एकांगी रोग वह होता है, जिसमें शरीरके बाहरी भागके किसी स्थानपर रोग पैदा होता है; दाद, चकत्ते अथवा स्थानिक प्रदाह आदि इनके अन्तर्गत आ जाते हैं। ऐसे बाहरी रोगोंको "स्थानिक रोग" कहते हैं।

[१७५]

प्रथम प्रकारके एकांगी रोग क्यों आरोग्य नहीं होते?

प्रथम प्रकारके एकांगी रोग, प्रायः चिकित्सककी अन्वेषक दृष्टिकी कमीके कारण आरोग्य नहीं होते। वे वास्तविक वर्त्तमान लक्षणोंकी पूरी-पूरी खोज नहीं करते, जिससे उन्हें रोगका पूरा-पूरा तथा वास्तविक चित्र प्राप्त हो सके।

खुलासा—पहले प्रकारके एकांगी रोग, जैसे—सर-दर्द, अतिसार प्रभृति इसलिये आरोग्य नहीं होते कि चिकित्सक उनका कारण खोज निकालनेकी भरपूर चेष्टा नहीं करते और इस तरह रोगका पूरा-पूरा चित्र उन्हें प्राप्त नहीं होता। इस बातका तात्पर्य यह है, कि बहुतसे रोगी ऐसे होते हैं, कि वे केवल यही कहते हैं, कि सर-दर्द होता है और कोई दूसरा लक्षण बता नहीं सकते। इस समय चिकित्सकको बहुत सावधानता और मिठाससे या रोगीके कार्योंको देखकर उनके दूसरे लक्षण खोज निकालने पड़ते हैं, जैसे—दर्द, माथेके किस भागमें होता है, किस समय होता है, उस समय कैसा मालूम होता है, अन्धेरेमें रहनेकी इच्छा होती है या उजालेमें; कैसे घटता है प्रभृति बहुत-सी बातें चिकित्सककी चेष्टासे प्रकट हो सकती हैं। इस तरह दवाका बहुत आसानीसे चुनाव हो सकता है। इसीलिये, हैनिमैन कहते हैं, कि वे चिकित्सककी अन्वेषक बुद्धिकी कमीके कारण आरोग्य नहीं होते।

[१७६]

क्या ऐसी भी बीमारियाँ हैं, जिनमें बहुत चेष्टा करनेपर भी एक-दो ही लक्षण मिलते हैं ?

जो हो, ऐसी भी कुछ बीमारियाँ हैं, जिनमें बहुत-कुछ चेष्टाके साथ (८४ से ६८ सूत्र) परीक्षा करनेपर भी, एक या दो प्रधान तथा मार्ग-दर्शक लक्षण मालूम होते हैं, बाकी सब लक्षण अस्पष्ट रहते हैं।

खुलासा—परन्तु ऐसे भी बहुतसे एकांगी रोग हैं, जिनमें चिकित्सक बहुत कुछ चेष्टा करता है, तो भी एक-दोसे अधिक तीव्र लक्षण नहीं मालूम होते, बाकी जो लक्षण रहते हैं, वे इतने क्षीण रहते हैं, कि स्पष्ट अनुभवमें नहीं आते।

[१७७]

ऐसी एकांगी बीमारीमें कौन-सी दवा देनी चहिये ?

यद्यपि ऐसी बीमारियाँ बहुत ही कम होती हैं, तथापि ऐसे रोगको, सफलतापूर्वक आरोग्य करनेके लिये, बहुत थोड़े लक्षणोंको ही आधार मानकर, जो दवा सबसे अधिक सम-लक्षण-सम्पन्न मालुम हो, उसका ही चुनावकर प्रयोग करना चाहिये।

खुलासा—केवल एक या दो लक्षण प्रकट करनेवाली बीमारी बहुत कम देखनेमें आती है ; अधिकांशमें या तो अनेक स्पष्ट लक्षण रहते हैं अथवा चिकित्सक खोजकर रोग-चित्र तैयार कर सकता है, पर यदि वैसी बीमारी दिखाई दे जाये और चेष्टा करनेपर भी लक्षण अधिक न मिले, तो भी हताश न होकर, सम-लक्षणवाली दवाओंमेंसे चुनकर दवा देनी चाहिये।

[१८७]

ऐसी अवस्थामें औषध-प्रयोगका लाभ ?

इसमें सन्देह नहीं कि कभी-कभी ऐसा होता है, कि सम-लक्षणके नियमका दृढ़तापूर्वक अवलम्बनकर चुनी हुई दवाका प्रयोग करनेपर, वही वर्त्तमान रोगको नष्ट करने योग्य उपयोगी सदृश नकली व्याधि उत्पन्न कर दिया करती हैं और यह बहुत सम्भव है, कि कुछ नये रोग-लक्षण बड़े ही स्पष्ट, निश्चित, अद्भुत और स्वतंत्र रूपसे (परिचायक) पैदा हो जायें।

खुलासा—सारांश यह कि ऐसे रोगोंमें जिनमें एक-दो लक्षण ही प्रकट होते हैं, जब सम-लक्षण-सम्पन्न दवाका प्रयोग होता है, तब कभी-कभी वे ऐसी नकली व्याधि उत्पन्न कर देते हैं, जिनमें कई लक्षण स्पष्ट प्रकट हो जाते हैं और उनके सहारे सदृश दवाका चुनाव सम्भव हो जाता है और रोग आरोग्य हो जाता है ; अथवा वह दवा ही रोगको नष्ट कर देती है, ऐसा भी हो सकता है। ऐसा भी होता है, कि कभी-कभी ये लक्षण ऐसे असाधारण और स्पष्ट रूपसे, मार्गदर्शककी भाँति सुस्पष्ट रहते हैं, कि दवाका चुनाव बड़े मजेमें होता है।

[१७९]

प्रथम निर्वाचित औषधकी सफलता—

इतनेपर भी अकसर अधिकांश स्थानोंमें, पहली चुनी हुई दवा ऐसे रोगोंमें आंशिक रूपसे लाभदायक होती है अर्थात् पूरी तरह लाभदायक नहीं होती ; क्योंकि इस स्थानमें बिना किसी भूलके दवाका चुनाव करनेके लिये योग्य लक्षण अधिक संख्यामें नहीं रहते।

खुलासा—कोई भी ऐसी दवा चुननेके लिये जो ठीक-ठीक हो, रोगीमें कुछ सुस्पष्ट लक्षणोंकी जरूरत होती है ; क्योंकि प्रत्येक औषधके बहुतसे लक्षण होते हैं। ये लक्षण ही वे चीज हैं, जिनसे रोगका परिचय प्राप्त होता है, परन्तु एकांगी बीमारीमें भरपूर लक्षण मिलते नहीं, इसीलिये एकदम निर्मल रूपसे दवा भी नहीं चुनी जा सकती, उनका रोगसे थोड़े अंशोंमें सादृश्य होता है।

[१८०]

अपूर्ण लक्षण-सम्पन्न औषध-प्रयोगका क्या परिणाम होता है ?

ऐसी दशामें जो औषध, ऊपर बताये अभाववश, यथासम्भव रूपसे, उपयुक्त समझकर, चुनी जाती है, अपूर्ण रूपसे सदृश होती है, अर्थात् वह रोगीके लक्षणोंके सर्वथा और सर्वाङ्गतः अनुरूप नहीं होती, जैसा कि ऊपर (सूत्र १६२ में) बताया जा चुका है—वहाँ काफी लक्षण न होनेके कारण उपयुक्त और सदृश औषधका निर्वाचन असम्भव हो जाता है और कुछ अन्य लक्षण, रोगीके शरीरमें घुल-मिल जाते हैं—हलां कि वे भी स्वतन्त्र रूपसे रोगका ही अंग और लक्षण होते हैं—फिर चाहे उन्हें अभीतक, कभी भी—या बहुत ही कम बार,—इस रूपमें न समझा गया था—कुछ ऐसे लक्षण भी आते हैं, जिन्हें रोगीने पहले कभी अनुभव न किया था—या कुछ ऐसे लक्षण भी होते हैं, जिन्हें उसने पहले नगण्य समझा था—और अब वे महत्त्वपूर्ण बन गये हैं।

खुलासा—आंशिक सम-लक्षण-सम्पन्न औषधका क्या परिणाम होता है, यह सूत्र १६१ से १६३ में बताया जा चुका है। एकांगी रोगमें भी वही नियम लागू होता है अर्थात् एक-दो लक्षणवाले एकांगी रोगमें चाहे कितनी ही सावधानीसे चुनी हुई दवा क्यों न दी जाये, उससे रोग-

लक्षणोंका एकदम सादृश्य नहीं होता। यह अवस्था ठीक वैसी ही रहती है, जैसी थोड़ी दवाओंकी जानकारी रहनेपर होती है अर्थात् उस समय भी रोगके समस्त लक्षणोंके अनुकूल दवाका प्रयोग नहीं हो पाता और इस समय भी रोग-लक्षण भरपूर न मिलनेके कारण खूब उपयुक्त और एकदम सम-लक्षण-सम्पन्न दवाका प्रयोग नहीं हो पाता। अतएव, जब ऐसी दवाका प्रयोग होता है, जिससे आंशिक लक्षण मिलते हैं, तो अतिरिक्त लक्षण पैदा होते हैं अर्थात् वे लक्षण उदय हो जाते हैं, जिनको रोगीने पहले बिलकुल ही अनुभव न किया था अथवा वे लक्षण और भी स्पष्टतर हो जाते हैं, जो अस्पष्ट भावसे रोगीमें वर्त्तमान थे। यह सब तो हुआ, पर इस अवस्थामें किया क्या जाये? करना यह चाहिये, कि इन अतिरिक्त और पूर्व सब लक्षणोंको रोग-लक्षण ही समझ लेना चाहिये और इसीके अनुसार दवा चुननी चाहिये।

[१८१]

चिकित्साके लिये औषधसे उत्पन्न नये तथा पुराने लक्षणोंका क्या उपयोग हो सकता है?

अब यह आपत्ति न उठनी चाहिये, कि ये अतिरिक्त लक्षण तथा जो अब पैदा हो गये हैं, वे नये लक्षण, अभी प्रयोग की हुई दवासे उत्पन्न लक्षण हैं। यह सत्य है, कि वे पैदा इसीसे होते हैं, पर वे उसी प्रकृतिके लक्षण हैं, जो इस शरीरमें स्वतः ही रोग उत्पन्न कर सकती थी और जो सम-लक्षण उत्पन्न करनेवाली दवाकी शक्तिके कारण, उन दवाके प्रयोगसे अब स्पष्ट सामने आ गये हैं। सारांश यह कि हमलोगोंको उन समस्त लक्षणोंको, जो अब दिखाई देते हैं, उसी रोगको लक्षण मान लेना होगा और वास्तविक वर्त्तमान अवस्था समझ लेनी होगी और इसी अनुसार आगे चिकित्सा करनी पड़ेगी।

खुलासा—यह स्थिर है, कि जब दवाके अधिकांश लक्षण रोगके लक्षणोंसे मिलेंगे, तो दवाके व्यवहारसे, कुछ अतिरिक्त लक्षण भी, अवश्य उत्पन्न होंगे ; परन्तु इन अतिरिक्त लक्षणोंके उत्पन्न होनेका कारण क्या है ? कारण यह है कि वह रोग उस रोगी शरीरमें स्वतः ही ये लक्षण उत्पन्न करता है। किसी कारणवश अथवा जीवनी-शक्तिकी दुर्बलताके कारण न भी कर सके। अब इन्हीं एद-दो सम-लक्षणोंके अनुसार चुनकर जो दवा दी गयी, उसने ऐसी क्रिया आरम्भ कर दी, कि वे लक्षण प्रकट हुए। यद्यपि वे उस दवाकी शक्तिके कारण ही प्रकट हुए ; परन्तु यदि यही मान लिया जाये, तो चिकित्साका कार्य अग्रसर नहीं होता। उन लक्षणोंके कष्टको दूर करना बहुत ही आवश्यक है। अतएव, दूसरी बार औषधका चुनाव करते समय, इस समय जो कुछ भी लक्षण सम्मुख दिखाई देते हैं, उनको उस रोगका लक्षण-समूह मान लिया जाना चाहिये। अब इन समस्त लक्षणोंके सदृश औषधका चुनाव करनेसे ही रोग आरोग्य हो सकता है।

[१८२]

क्या इस तरह एकांगी रोगके लक्षण सामने आ जाते हैं ?

इस क्षेत्रमें औषधका अपूर्ण चुनाव, जिसका होना अनिवार्य था, क्योंकि बहुत अल्प-संख्यक लक्षण प्रकट थे, रोगके पूर्ण लक्षणोंके प्रकट कर देनेमें बहुत सहायता पहुँचाता है और इस तरह और भी निर्दोष-रूपसे दूसरी उपयुक्त तथा सदृश औषधके खोज निकालनेमें सहायता पहुँचाता है।

खुलासा—एकांगी रोगमें दो-एक लक्षण प्राप्तकर जो अपूर्ण उपयुक्त दवा दी जाती है, इससे एक बहुत बड़ा काम यह निकल जाता है, कि पूर्ण लक्षणोंको प्रकट कर देती है, जिससे लक्षण मिलाकर कोई दूसरी

उपयुक्त औषधका प्रयोग करनेकी बहुत अधिक सुविधा प्राप्त हो जाती है। अतएव, एकांगी रोगके अन्य लक्षण प्रकट करनेके लिये यह आवश्यक है, कि जितने लक्षण मिलें, उसीको आधार मानकर सम-लक्षण-सम्पन्न औषधका प्रयोग करे।

[१८३]

एकांगी रोगमें द्वितीय औषधका निर्वाचन कैसे करना चाहिये ?

इसीलिये जब इस प्रथम मात्रासे फायदा होना रुक जाये (यदि नये उत्पन्न हुए लक्षण, अपनी गुरुताके कारण, तुरन्त ही सहायता न चाहते हों, जो होमियोपैथिक दवाकी सूक्ष्मताके कारण तथा पुरानी बीमारीमें बहुत ही कम होता है), तो दूसरी बार अवश्य ही नये सिरेसे परीक्षा करनी चाहिये। रोगकी वर्त्तमान अवस्था लिख लेनी चाहिये और उसीके अनुसार कोई दूसरी सदृश दवा चुन लेनी चाहिये, जो अब वर्त्तमान अवस्थाके ठीक-ठीक अनुकूल हो और इस तरह अब अधिक-से-अधिक उपयुक्त तथा अनुरूप दवा तलाश की जा सकती है, क्योंकि अब लक्षण अधिक संख्यामें और अधिक पूर्ण रूपमें प्राप्त हैं।

खुलासा—एकांगी रोगमें जब पहली बार दी हुई दवासे फायदा दिखाई देना बन्द हो जाये, तब दूसरी बार उस रोगीकी फिर परीक्षाकर समस्त लक्षण लिख लेने चाहियें और इन शेष लक्षणोंके अनुसार ही उपयुक्त औषध चुनकर प्रयोग करनी चाहिये। इस समय एक सुविधा और भी होती है और वह यह कि पहले जो एक-दो लक्षण थे, वे दवाका प्रयोग होनेके कारण अधिक संख्यामें प्रकाशित हो जाते हैं, अब इन लक्षणोंको देखकर और तुलनाकर और भी उपयुक्त दवा आसानीसे चुनी जा सकती है।

परन्तु यदि दवाकी क्रिया समाप्त होते-न-होते अथवा दवासे फायदा होना बन्द होनेसे पहले ही, भयंकर लक्षण पैदा हो जायें ? हैनिमैन कहते हैं, कि मात्रा बहुत कम रहने तथा रोग पुराना रहनेके कारण ऐसा बहुत कम होता है, पर यदि हो जाये और रोगीके लिये संकट-काल उपस्थित हो जाये, तो दवाकी क्रिया समाप्त होनेकी राह देखनेकी कोई जरूरत नहीं है। उस समय जो लक्षण विद्यमान हों, उनके अनुसार ही दवाका प्रयोग कर देना चाहिये।

ऐसे रोगमें—जिसमें रोगीको बहुत तकलीफ मालुम हो (ऐसा पुरानी बीमारीमें कम और नयीमें अधिक होता है), तथा उसके लक्षण भी अस्पष्ट हों, जिससे मालुम हो कि उसके स्नायु सुन्न पड़ गये हैं। इसी वजहसे रोगीके दर्द और अन्य कष्ट प्रकट नहीं हो पाते, तो आन्तरिक अनुभूतिकी यह स्तब्धता ओपियमसे दूर हो जाती है और उसकी गौण-क्रिया यह होती है कि रोगके लक्षण अधिकतर स्पष्ट हो जाते हैं।

अब नई स्थितिके अनुसार आप सम-लक्षण-सम्पन्न औषधका निर्वाचन करें और उसकी उपयुक्त मात्रा देकर प्रतिक्रियाकी इन्तजार करें। जबतक इस मात्राका प्रभाव मालुम न हो जाय और यदि वह अनुकूल सिद्ध हो, तो जबतक उसकी क्रिया जारी रहे, तबतक दूसरी मात्रा कदापि न दें। यदि यह दवा भी विफल सिद्ध हो, तो आप रोगीकी स्थितिपर पुनर्विचार करें।

[१८४

जब पहली बार चुनी औषध सफल हो, तो—

इसी तरहसे, प्रत्येक नयी औषधकी क्रिया जब समाप्त हो जाये और जब वह उपयुक्त तथा लाभदायक सिद्ध न हो, तो रोगकी वह अवस्था जो अब बची हुई है, पुनः लिख लेनी चाहिये, और दूसरी होमियोपैथिक

दवा वर्त्तमान समयके उपयुक्त चुननी चाहिये और तबतक ऐसा ही करते रहना चाहिये, जबतक रोग सम्पूर्ण रूपसे आरोग्य न हो जाये।

खुलासा—पहली दवासे थोड़ा फायदा होकर रुक जाये, तो चिकित्सकको फिर लक्षण लेकर दूसरी दवा देनी चाहिये। इस दूसरी दवासे जब कोई लाभ न हो तो फिर परीक्षाकर उस समयके लक्षणोंके अनुसार तीसरी दवा देनी चाहिये और इसी तरह तबतक बराबर करते रहना चाहिये, जबतक रोग पूरी तरह आरोग्य न हो जाये।

[१८५]

स्थानिक रोगोंका क्या अर्थ है ?

इन एकांगी रोगोंमें इन तथाकथित स्थानिक रोगोंका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन स्थानिक रोगोंका अर्थ है, वे परिवर्त्तन और रोग-लक्षण, जो वाह्य-शरीरपर प्रकट होते हैं। अबतक चिकित्सकोंका यही ख्याल था, कि केवल इन्हीं स्थानोंपर रोग उत्पन्न हुआ है और समस्त शरीरका उस रोगसे कोई भी सम्पर्क नहीं है ; पर यह एक काल्पनिक, मूर्खतापूर्ण सिद्धान्त है, जिससे बहुत ही ध्वंसकर चिकित्सा होती रही है।

खुलासा—पहले ही कहा जा चुका है, कि एकांगी रोगके दो विभाग हैं,—एक वह जिनसे भीतरी रोग प्रकट होता है और दूसरा वह जिसमें शरीरकी वाह्य त्वचाके स्थानपर रोगका आक्रमण होता है। हैनिमैन कहते हैं, कि बाहरी त्वचापर रोगका आक्रमण होता है, इसलिये इनका नाम स्थानिक रोग पड़ा है। इन स्थानिक रोगोंके सम्बन्धमें चिकित्सकोंकी अबतक यही धारणा बनी हुई थी, कि ये सब उसी स्थानके रोग हैं। जैसे—दाद या फोड़ा हुआ तो जिस स्थानपर दाद हुई या जिस स्थनपर फोड़ा हुआ, उसी स्थानभरका वह रोग माना जाता है ; पर यह धारणा केवल कल्पनापूर्ण थी—यह मान लेनेमें कोई बाधा नहीं

है ; क्योंकि जीवनी-शक्तिपर रोगका आक्रमण हुए बिना उसका बाहरी प्रदर्शन कभी हो ही नहीं सकता। मूल कारण तो भीतरी ही रहता है। उस मूल कारणको बाहर हुई बीमारी प्रकट-मात्र कर देती है। ऐसी धारणा तो कभी की ही नहीं जा सकती, कि त्वचा या चर्मसे भीतरी जगतका कोई सम्बन्ध नहीं होता। यदि सम्बन्ध न होता, तो चर्मपर होनेवाले कष्ट भीतरी यंत्र या अन्तर्निहित शक्ति कभी अनुभव नहीं कर पाती। ऐसी धारणाका कभी-कभी बहुत ही भयंकर परिणाम होता दिखाई देता है ; चर्म-रोग बाहरी प्रलेपों द्वारा दबा दिये जानेके कारण भीतरी आवश्यक अंगोंपर अपना प्रभाव प्रकट करते हैं और इसी तरह कितने ही चर्म-रोग आरोग्य होकर दमा, न्युमोनिया, यक्ष्मा प्रभृतितक हो जाते हैं।

[१८६]

क्या स्थानिक रोग बाह्य रोग कहला सकता है ?

इतनेपर भी ये स्थानिक रोग, जो कुछ दिन पहले केवल किसी चोट प्रभृतिके कारण उत्पन्न हो गये हों, स्थानिक रोग कहलानेके योग्य ही मालुम होते हैं ; परन्तु तब इस चोटका बहुत हल्का होना आवश्यक है और उस अवस्थामें यह कभी गुरुतर हो भी नहीं सकती ; क्योंकि बाहरसे लगा हुआ शरीरपर आघात यदि तेज हो, तो समस्त जीवनी-शक्ति उससे सहानुभूति प्रकट करने लगते हैं और ज्वर प्रभृति होने लगता है। ऐसे रोगोंकी चिकित्साका सम्बन्ध अस्त्र-चिकित्सासे नहीं है ; परन्तु यह उसी अवस्थामें आवश्यक है यदि रोगवाले स्थानपर बाहरी सहायताकी आवश्यक हो, ताकि बाहरी बाधाएँ आरोग्य की जा सकें ; क्योंकि जो आरोग्य केवल जीवनी-शक्तिके सहयोगसे ही होनेकी आशा की जा सकती है, उसकी बाहरी बाधाएँ स्थूल यंत्रों द्वारा

दूर कर दी जाती हैं। जैसे—जिन स्थानोंकी हड्डी खिसक गई हों, उन्हें ठीकसे बैठा देना, सुई तथा बन्धनों द्वारा जखमका मुँह मिला देना, यंत्रके दबावसे फटी हुई धमनियोंसे रक्त बन्द करना। शरीरमें घुसे कांटे, कील आदि यंत्रसे निकाल लेना, किसी गह्वरमें कोई उपदाह पैदा करनेवाले विजातीय पदार्थको छेद बनाकर निकाल लेना या कोई एकत्रित रस अथवा स्रावका निकाल देना, टूटी हुई हड्डीके दोनों अंशोंको आपसमें मिला देना और उन्हें ठीक-ठिकाने बैठा देनेके लिये बांधनेका प्रयोग, परन्तु इन सब क्षेत्रोंमें भी समस्त जैव शरीर आरोग्यका कार्य पूर्ण करनेके लिये और हमेशाकी भाँति आरोग्यके लिये क्रियाशील सूक्ष्म शक्तिकी सहायता चाहता है। जैसे—अत्यधिक कट जाने, पेशियाँ, कण्डरायें, रक्तवहा-नालियाँ प्रभृति छिद जानेके कारण भयंकर ज्वर उत्पन्न हो जाता है, तो भीतरी दवाकी सहायता आरोग्यके लिये खोजते हैं या जब झुलस जाने या जल जानेके कारण बाहरी दर्दको सम-लक्षण-सम्पन्न रूपसे आराम करनेकी जरूरत पड़ती है, तो सद्यफलदाता चिकित्सक और सम-लक्षणवाली दवाकी ही जरूरत होती है।

खुलासा—इन बाहरी बीमारियोंमें दाद, खाज, फोड़ा-फुन्सी अथवा जले घाव भी आ सकते हैं। ये सभी देखनेमें स्थानिक रोग मालुम होते हैं; परन्तु असल बात यह है कि यदि बहुत थोड़ी हो, जिसका परिणाम भयंकर ज्वर आदि न हो, तो वे आप-ही-आप आरोग्य हो जाता है और जीवनी-शक्तिको कुछ विशेष प्रयत्न करना नहीं पड़ता; परन्तु ये ही चोटें वगैरह जब गहरी हो जाती है, तो शरीरके भीतरी यन्त्र आहत स्थानसे सहानुभूति प्रकट करने लगते हैं। परिणाम यह होता है, कि जोरसे ज्वर होता है; इन सब चोट वगैरहमें बाहरी सहायता लाभदायक हो सकती है। जैसे—हड्डी खिसक गयी, तो वह बैठा दी जाये, कहीं शरीरमें कील-कांटे आदि गड़ गये हों, कोई नस कहीं कट गयी हो, तो बाहरी यंत्रोंकी सहायताकी जरूरत पड़ती है और उनसे

आरोग्यमें सहायता मिलती है ; परन्तु ऐसी चोटोंका जब इतना गहरा प्रभाव हो जाता है, कि भीतरी जीव-शक्तिको भी सहायताकी आवश्यकता आ पड़े, तो उस समय सम-लक्षण-सम्पन्न दवाके बिना काम नहीं चलता। उस समय लक्षणके अनुसार भीतरी दवाका प्रयोग करना ही पड़ता है, जिससे रोग तेजीसे आरोग्य हो जाता है।

[१८७]

दूसरे प्रकारके स्थानिक रोग क्या है ?

परन्तु वे रोग, परिवर्त्तन या उपसर्ग, जो वाह्य शरीरपर उत्पन्न होते हैं, जो किसी बाहरी आघातके कारण पैदा नहीं होते या सामान्य आघात, जिनका उत्तेजक कारण होता है, वे किसी दूसरे ही प्रकारसे पैदा होते हैं ; उनकी जड़ किसी भीतरी रोगमें रहती है। उनको केवल स्थानिक रोग समझ लेना और उन्हें केवल बाहरी प्रलेप प्रभृति या इसी ढंगकी दूसरी दवा लगाकर चिकित्सा करना, जैसा कि प्राचीन प्रणाली-वाले अति प्राचीन कालसे करते आये हैं, जैसा ही अयौक्तिक है, वैसा ही उसका परिणाम भी हानिकर होता है।

खुलासा—आघातका परिणाम वाह्य शरीरपर होता है, इस कारणसे वह भी स्थानिक रोग कहा जा सकता है, और अस्त्र-चिकित्सा द्वारा उसकी चिकित्सा उस अवस्थामें हो सकती है, यदि भीतरी यंत्रोंमें प्रभाव न पहुँचे, परन्तु फोड़े, फुन्सी, चकत्ते, अपरस आदि ऐसी बीमारियाँ हैं, जो दिखाई तो वाह्य शरीरपर देती है, पर इनका मूल कारण कोई भीतरी रोग होता है। उस मूल भीतरी कारणका दिखावा बाहरी होता है। उनको सिर्फ बाहरी रोग मान लेना और स्थानिक रोग समझकर मलहम, प्रलेप आदिके द्वारा उनकी चिकित्सा करना बहुत हानिकर होता है। प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीवाले अबतक इसी ढंगसे बहुप्राचीन

कालसे चिकित्सा करते आ रहे हैं। उनकी यह चिकत्सा-प्रणाली न केवल दोषावह ही है, वल्कि उससे वहुत-सी भयंकर हानियाँ भी होती है।

[१८८]

स्थानिक रोगका अन्य स्वस्थ अंगोंसे क्या सम्वन्ध है ?

इन रोगोंको केवल उसी जगहकी वीमारी समझकर स्थानिक रोग कहा जाता है। मानो यह वैसी वीमारियाँ हैं, जिनकी वही सीमा है, जिससे भीतरी यंत्रोंका या तो कोई सम्वन्ध ही नहीं है, या है भी, तो, वहुत थोड़ा; अथवा इन दिखाई देनेवाले यंत्रोंकी वीमारीके साथ, शरीरके उन अंशोंका, कोई सम्वन्ध नहीं है, जिनमें रोग नहीं है।

खुलासा—प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीवाले यही समझते थे कि ये वीमारियाँ जिस स्थानपर हुई हैं, वहीं उनका स्थान है। जिस अंशोंमें रोग नहीं है, उनसे उनका कोई भी सम्वन्ध नहीं है। इनके विषयमें शरीरके भीतरी या वाहरी यंत्र कुछ जानते ही नहीं। ठीक उसी ढंगसे अवतक इन वाहरी वीमारियोंकी सर्वत्र चिकित्सा होती आ रही है और उस वातपर कोई भी ध्यान नहीं देता, कि आखिर इस तरह वाह्य शरीरपर रोग हो जानेका कारण क्या है? यही वात हैनिमैन आगे दिखाते हैं:—

[१८९]

क्या भीतरसे आया रोग भीतरी चिकित्सासे ही जायेगा ?

पर थोड़े ही सोचनेसे अच्छी तरह मालूम हो जायगा कि यदि उसका कोई भीतरी कारण न रहे, यदि समस्त शरीर-यंत्र सहयोग करें और वे यदि अस्वस्थ न हों, तो वाहरी रोग न तो पैदा ही सकता है, न

रह सकता है और न बढ़कर बदतर ही हो सकता है (यदि बाहरकी कोई चोट वगैरह न हो, तो)। सम्पूर्ण स्वास्थ्यकी सम्मति हुए विना तो यह अपनी शक्ल नहीं दिखा सकता और समस्त जोवित अंशके सहयोगके बिना यह बाहर निकल नहीं सकता (शरीरकी अन्य अनुभूति-सम्पन्न और उत्तेजना-प्रवण अंशोंमें रहनेवाली जीवनी-शक्तिकी अनुकूलताके बिना)। वास्तवमें, सम्पूर्ण अस्वस्थ जीवनके मध्यस्थ हुए विना तो उसका पैदा होना ही असम्भव है ; क्योंकि शरीरके सभी भाग इस तरह आपसमें एक दूसरेसे सम्मिलित हो रहे हैं, कि अनुभूति और यांत्रिक क्रियाओंमें वे बिलकुल ही आपसमें एक होकर कार्य करते हैं। जबतक भीतरी स्वास्थ्यमें पहलेसे ही और एक ही साथ अस्वस्थता न आयगी, तबतक न तो ओठोंपर उद्भेद ही उत्पन्न हो सकते हैं और न अंगुलवेड़ा ही पैदा हो सकता है।

खुलासा—हैनिमैन कहते हैं, कि यदि कोई बाहरी कारण न हो और शरीरपर स्थानिक रोग हो जाये, तो थोड़ा ही सोचनेपर यह अच्छी तरह मालुम हो जा सकता है, कि वह उद्भेद अथवा रोगी किसी बाहरी कारणसे पैदा नहीं हुआ है ; भीतर अवश्य ही कोई-न-कोई गड़बड़ी हुई है, जिससे शरीरके बाहर यह लक्षण प्रकट हुआ है ; क्योंकि शरीरका कोई भी अंश अलग नहीं है। पैरमें जरा-सा काँटा गड़ जाता है, तो सारा शरीर उस कष्टको अनुभव करने लगता है। अतएव, जबतक समस्त शरीरको सहयोग नहीं होगा, तबतक तो कोई चीज बाहर आ ही नहीं सकती। अतएव, यह समझ लेना कि यह बाहरकी या उसी जगहकी चीज है ; बिलकुल गलत है। शरीरका कोई अंश अलग भावसे किसी तकलीफको अनुभव नहीं करता, जरासे कष्टको भी सभी अनुभव करते हैं और सभी सहारा देनेको तैयार हो जाते हैं। एतएव, ऐसा नहीं कहा जा सकता कि बाहरी रोगसे भीतरका कोई सम्बन्ध नहीं है। अतएव, दाद, खाज, खुजली प्रभृति जो कोई भी बाहरी रोग हो,

उसका भीतरसे अवश्य सम्बन्ध है, ओंठके ऊपर यदि कोई दाना हो जाये अथवा अंगुलबेड़ा हो पड़े, तो शरीरकी जीवनी-शक्तिसे उसका सम्पर्क नहीं है, यह कहना गलत बात है। उनकी चिकित्सा भीतरी होनी आवश्यक है और जब भीतरी रोग आरोग्य होगा, तब वह भी निश्चय ही आरोग्य हो जायगा।

[१९०]

फिर स्थानिक या बाहरी रोगकी चिकित्सा कैसे होनी चाहिये ?

अतएव शरीरके बाहरी भागके समस्त वैसे रोग, जो कम या अधिक बाहरी आघातके कारण उत्पन्न न हुए हों; उनकी यदि न्यायसंगत, निश्चित, उपयोगी और पूर्ण आरोग्य-प्रदायिनी चिकित्सा करनी हो, तो समस्त गड़बड़ियोंको दूर करनेके लिये, उनकी भीतरी चिकित्सा अवश्य करनी चाहिये।

खुलासा—यदि शरीरके बाहरी भागकी बीमारी चोट आदिके कारण न हुई हो, तो यह निश्चित रूपसे जान लेना चाहिये कि बीमारीकी जड़ भीतर है। अतएव, इसे भीतरी बीमारी समझकर पूरे-पूरे सार्वाङ्गिक लक्षण ग्रहणकर चिकित्सा करनी चाहिये। इसके लिये भीतरी दवाका प्रयोग ही अत्यावश्यक और उपयोगी है। उसके बिना यह रोग कभी जा नहीं सकता।

[१९१]

स्थानिक रोगोंमें भीतरी औषधके प्रयोगका क्या परिणाम होता है ?

अनुभव द्वारा यह बात बिलकुल ही स्पष्ट हो चुकी है और हर बार ही देखा जाता है कि प्रत्येक शक्तिशाली दवा गलेसे नीचे उतरते ही,

रोगीके साधारण स्वास्थ्यमें, कुछ-न-कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन लाती है; विशेषतः आक्रान्त बाहरी अंगोंमें (जिन्हें ऐलोपैथिक चिकित्सक अलग ही समझते हैं); फिर चाहे यह अंग कितनी ही दूर है। इस तरह जो परिवर्त्तन आता है, वह बहुत ही अद्भुत और निराला होता है अर्थात् समूचे शरीरका स्वास्थ्य बहाल हो जाता है। वह स्थानीय रोग (कोई बाहरी उपचार किये बिना ही) मिट जाता है। बशर्ते कि जो दवा खिलाई गई है, उसका चुनाव सार्वाङ्गिक लक्षणोंको दृष्टिमें रखकर किया गया हो और वह सर्वांशतः अनुरूप तथा सदृश (होमियपैथिक) दवा हो।

खुलासा—भरपूर अनुभवसे यह बात निश्चित रूपसे मालूम हो गई है, कि जितनी शक्तिशाली दवाएँ हैं, उनमें स्वास्थ्यमें परिवर्त्तन पैदा कर देनेकी शक्ति है अर्थात् पेटमें जाते ही वे अपनी क्रियाएँ करने लगती हैं। अतएव, स्थानिक रोगके रोगीपर भी जब समस्त विशेष और सार्वाङ्गिक लक्षणोंको ग्रहणकर इनका प्रयोग किया जाता है, तो ये भीतरसे ही समस्त स्वास्थ्यको सुधारना आरम्भ करती हैं। भीतर जो कुछ गड़बड़ी है, उसे दूर करती हुई, ये बिना किसी बाहरी दवाकी सहायताके उस स्थानिक अर्थात् बाहरी रोगको आरोग्य कर देती है। इतना ही नहीं, आभ्यन्तरिक औषधके प्रयोगसे समूची काया कंचन हो जाती है और वह बाहरी रोग भी चला जाता है।

[१९२]

यह स्थानिक रोग किस तरह समूल आरोग्य होता है ?

यह बात तब पैदा होती है कि जब किसी रोगकी जाँच-पड़ताल करते समय, किसी स्थानीय विकारकी वास्तविक रूप-रेखा, अन्य सभी परिवर्त्तनों, कष्टों और रोगीके शरीरमें दिखाई देनेवाले लक्षणों तथा उन

लक्षणोंकी जाँच की जाती है, जो दवा खानेसे पहले दिखाई दिये थे। औषध निर्वाचनार्थ विचार करनेसे पहले, इन पहले और वर्त्तमान सभी लक्षणों, उपद्रवों, कष्टों और विकारोंको मिलाकर विचार करना चाहिये। अब कोई दवा चुननी चाहिये, जिसके अधिक-से-अधिक लक्षण रोगीके लक्षणोंसे समता रखते हों। ऐसी औषधका चुनाव ही सच्चा सदृश (होमियोपैथिक) चुनाव है।

खुलासा—जो बीमारी बाहरी चोट आदिके कारण नहीं आती, पर रहती स्थानिक ही है, उसका इलाज करते समय, समस्त भीतरी लक्षण, बाहरी लक्षण, रोगीके मानसिक और सम्पूर्ण शारीरिक लक्षण ग्रहण करें। इस तरह जब रोगीका पूरा-पूरा चित्र तैयार कर लिया जायगा, तो स्थानिक रोगकी ठीक-ठीक दवाका चुनाव हो सकेगा। यह सब करने या किसी प्रकारकी दवा पड़नेके पहले रोगीके क्या-क्या लक्षण थे, यह सब जानकर, तब इस रोगकी दवा चुननी चाहिये; तभी ठीक सम-लक्षणवाली दवाका चुनाव हो सकता है।

[१९३]

क्या केवल भीतरी दवाके प्रयोगसे समस्त शरीरके रोगके साथ-ही-साथ स्थानिक रोग भी दूर हो जाता है?

इस तरहकी औषधके केवल भीतरी प्रयोगसे ही उस स्थानिक रोगके सास-ही-साथ समस्त आभ्यन्तरिक रोग भी आरोग्य हो जाते हैं और भीतरके साथ ही बाहरी रोग भी आरोग्य होकर यह प्रमाणित कर देता है, कि स्थानिक रोग सार्वाङ्गिक रोगपर ही विशेषकर निर्भर करते हैं। इन्हें सम्पूर्ण शरीरका अभिन्न अंश समझना चाहिये तथा यह भी समझना चाहिये कि यह समस्त रोगका एक विशेष और परिचायक लक्षण है।

खुलासा—ऊपर जिन तरह बता चुके हैं, कि स्थानिक रोगकी भी चिकित्सा समस्त मानसिक और शारीरिक लक्षण तथा पूर्वापर लक्षणको ग्रहणकर करनी चाहिये। अब उसी तरह यह कहते हैं, कि इस तरह समस्त लक्षणोंको ग्रहणकर प्रयोग की हुई दवासे, भीतरी रोगके साथ ही बाहरी रोग भी आरोग्य हो जाता है और इससे यह प्रमाणित होता है, कि भीतरी-बाहर सब एक है। यह बाहरी रोग भीतरी रोगका एक जबर्दस्त लक्षण-मात्र है। वास्तवमें यह कोई स्थानिक, बाहरी या समस्त शरीरसे अलग रोग नहीं है।

[१९४]

क्या बाहरी स्थानिक रोगमें कोई मलहम या प्रलेप न लगाना चाहिये ?

हालमें पैदा हुई किसी नयी स्थानीय बीमारीमें, या किसी अधिक दिनोंके स्थानिक रोगमें, कोई बाहरी दवा लगाना या मलना (मलहम या प्रलेप या मालिश) कभी लाभदायक नहीं है। यहाँतक कि यदि वह उस रोगकी कोई महौषधि हो, तब भी न लगाना चाहिये ; सम-लक्षण-सम्पन्नताके अनुसार उपकारी होने और भीतरी दवाके प्रयोग होनेपर भी न लगाना चाहिये ; क्योंकि वे स्थानिक रोग (जैसे—किसी खास अंगका प्रदाह, विसर्प प्रभृति), जो बाहरी चोटकी तेजीके कारण नहीं उत्पन्न हुए, बल्कि शक्ति-सम्पन्न अभ्यान्तरिक कारणसे उत्पन्न हुए हैं, वे निश्चय ही भीतरी सम-लक्षण-सम्पन्न औषधसे वशमें आ जाते हैं, जब कि उनका भीतर और बाहरी स्वास्थ्यकी अवस्थाको देखकर प्रयोग किया जाता है और जब उनका चुनाव परीक्षित ओषधियोंके बीचसे होता है तथा साधारणतः किसी दूसरी तरहकी सहायता नहीं ली जाती, तो इससे सन्देह नहीं कि भीतरी प्रयोग की हुई दवासे रोग वशमें आ

जाता है ; परन्तु यदि इतनेपर भी वह रोग पूर्णतया आरोग्य न हो और अच्छी तरह नियम पालन करनेपर भी यदि रोगवाली जगह और समस्त स्वास्थ्यपर अब भी उसका कुछ प्रभाव शेष रह जाये, और जिसे जीवनी-शक्ति स्वस्थावस्थामें न ला सके, तो समझना चाहिये कि यह रोग (जैसा अकसर हुआ करता है) सोराका परिणाम है, जो अबतक भीतर छिपा हुआ बैठा था, अब बाहर फूट निकला है और एक स्पष्ट पुरानी बीमारीके रूपमें प्रकट हुआ चाहता है।

खुलासा—हैनिमैन कहते हैं, कि यह स्थानिक रोग थोड़े दिनोंका हो या अधिक दिनोंका, इसमें किसी तरहका मलहम, प्रलेप या मालिश आदि लगानेकी जरूरत नहीं है। जरूरत है, केवल शारीरिक और मानसिक लक्षणोंपर ध्यान देकर, सम-लक्षण-सम्पन्न दवा और ऐसी दवा चुनकर देनेकी, जिनकी परीक्षा हो चुकी है। बाहरी सहायता देनेकी कोई भी आवश्यकता नहीं है। उसीसे रोग आरोग्य हो जायगा। पर यदि भाग्यवश रोग आरोग्य न हो, उसका कुछ अंश बाहर और भीतर वर्त्तमान रह जाये, रोगी पथ्य-परहेज भी भरपूर करता हो, तब भी न जाये और जवनी-शक्ति भी अपनी क्रिया द्वारा रोगीको पूरी तरह स्वस्थ न कर सके, तो समझना चाहिये कि यह नयी बीमारी उस सोरा बीजके कारण उत्पन्न हुई है, जो इतने दिनोंतक शरीरके भीतर छिपा बैठा था और अब उसने अपना जोर लगाया है तथा पुरानी बीमारीके रूपमें प्रकट होना चाहता है।

[१९५]

यदि सोरा-दोषके कारण स्थानिक रोग आरोग्य न होना चाहता हो, तो उसकी चिकित्सा कैसे करनी चाहिये ?

ऐसे रोगको जड़से आरोग्य करनेके लिये और ऐसी सफलताके उदाहरणोंकी कमी नहीं है, जब तरुण अवस्था अच्छी तरह दब जाये, तो

कोई उपयुक्त सोरा-विष-नाशक (Antipsoric) औषध (जो हमारी "पुरानी बीमारियाँ" नामक ग्रन्थमें बतायी गयी है), उन लक्षणोंके लिये चुननी चाहिये, जो अब बच गये हैं। जिस रोगको रोगी पूर्वसे भोग रहा था, उसका भी ध्यान रखना चाहिये। उन स्थानिक पुरानी बीमारियोंमें जो स्पष्ट दूषित संगमके कारण उत्पन्न न हुई हों अर्थात् जो रजित रोग नहीं हैं, उनमें केवल सोरा-दोष-नाशक भीतरी चिकित्सा ही वांछनीय है।

खुलासा—ऐसे वहुतसे रोगी देखनेमें आते हैं, जिनके वहुत-कुछ शारीरिक, मानसिक लत्तण लिये गये। खूब परिश्रमकर दवा चुनी गयी, पर फिर भी उनकी बीमारी जड़से नहीं जाती, कुछ-न-कुछ लगा ही रहता है। उन्हें भरपूर पथ्य, परहेज़ और नियमसे भी रखा जाता है; पर जो कुछ रह गया है, रोगका वह अंग किसी तरह भी आरोग्य नहीं होता। ऐसी अवस्थामें यही उपाय रह जाता है, कि उनको सोरा-दोष-नाशक दवा खिलायी जाये। इस विषयका एक अलग ग्रन्थ ही हैनिमैनने "पुरानी बीमारियाँ" के नामसे लिखा है, जिसमें सब तरहकी पुरानी बीमारियोंका इलाज बताया गया है। हैनिमैन कहते हैं, कि उसमें बतायी हुई चिकित्सा-प्रणालीके अनुसार इस ढंगका इलाज करना चाहिये, कि सोरा-दोष नष्ट हो जाये। सोरा-दोषकी चिकित्सा द्वारा ही ये आरोग्य हो सकते हैं; परन्तु इतना ख्याल रखना चाहिये, कि ये रोग दूषित संगमके कारण न हों, दूषित संगमके कारण होनेपर अन्य औषधियोंसे चिकित्सा होगी।

[१९६]

एक ही औषधका भीतरी और वाहरी व्यवहार

सच तो यह है, कि ऐसा मालुम हो सकता है कि ऐसे रोगोंमें सच्ची सम-लक्षण-सम्पन्न दवाका भीतरी और वाहरी दोनों ही प्रयोग करनेपर

रोग बहुत तेजीसे आरोग्य हो सकता है ; क्योंकि स्थानिक रोगके स्थानपर लगायी हुई दवाकी क्रिया सम्भवतः और भी जल्दी परिवर्त्तन पैदा कर दे।

खुलासा—इस सूत्रका तात्पर्य यह है, कि स्थानिक रोगमें लक्षणके अनुसार एक दवा खिलायी गई ; परन्तु यदि वही दवा लगा भी दी जाये, तो लोग सोचेंगे कि इससे रोग और भी जल्द आरोग्य हो जायगा ; क्योंकि यह एक साधारण धारणा हो सकती है, कि जिस दवाका भीतरी प्रयोग हुआ है, उसका बाहरी प्रयोग करनेपर और भी तेजीसे परिवर्त्तन हो जायगा और किसी तरहकी खराबी न आयगी।

[१९७]

क्या इस ढंगकी भीतरी और बाहरी दोनों ही प्रयोगोंवाली चिकित्सा-पद्धति उचित है ?

केवल सोरा-दोषके कारण उत्पन्न रोगमें ही नहीं, बल्कि खासकर उनमें भी जो उपदंश और प्रमेह विषके कारण उत्पन्न हुए हैं, इस ढंगके औषध व्यवहारकी अनुमति नहीं दी जा सकती। जिन रोगोंका प्रधान लक्षण बराबर स्थानिक रोगके रूपमें प्रकट होता है, उनमें किसी भी दवाके भीतरी प्रयोगके साथ-ही-साथ बाहरी प्रयोग हो। ऐसे प्रयोगसे एक बड़ा नुकसान यह होग कि उसके कारण प्रधान लक्षण (स्थानिक रोग) भीतरी रोगकी अपेक्षा शायद जल्द आरोग्य हो जाय और तब हमलोग धोखा खा जायँ, कि रोग ठीक-ठीक आरोग्य हो गया है ; क्योंकि कम-से-कम, स्थानिक लक्षण पहले ही दूर हो गये हैं। उसके साथ-ही-साथ, यह निर्णय करना भी कठिन और कभी-कभी असम्भव हो जाता है कि मूल-रोग भीतरी और बाहरी दोनों तरहके औषध व्यवहारसे अच्छा हुआ है।

खुलासा—हैनिमैनके मतसे बाहरी रोग, भीतरी रोग होनेका निदर्शन है। अतएव, जबतक भीतरी रोग आरोग्य नहीं होता, तबतक त्वचापरके रोगका किसी प्रलेप आदिके द्वारा दूर कर देना, प्रकृत आरोग्य नहीं है। अब प्रश्न उठता है, यदि भीतरी दवा भी दी जाये तथा उसी दवाका बाहरी प्रयोग भी किया जाये, तो क्या रोग शीघ्र आरोग्य न होगा? हो सकता है, कि इन दोनों उपायों द्वारा रोग शीघ्र आरोग्य हो जाये ; पर भीतर रोग है, इसका प्रमाण हमको स्थानिक बाहरी रोगसे ही लगता है। अतएव, बाहर दवा लगाकर हमने जब बाहरी रोग हटा दिया, तो सम्भव है कि हमें धोखा हो जाये, बाहरी दवाके कारण वह स्थानिक रोग आरोग्य हो जाये और भीतरका रोग सम्पूर्ण आरोग्य न हो। इस क्रिया द्वारा हमें धोखा हो सकता है और इस विधानसे मूल रोग आरोग्य न होनेके कारण ज्यों-का-त्यों रह सकता है और फिर उत्पन्न हो सकता है। अतएव, इस तरह भीतरी और बाहरी दोनों प्रकारकी दवाओंका प्रयोग अनुचित मालुम होता है।

[१९८]

बाहरी प्रयोगकी दवाओंसे और क्या हानि होती है?

पुराने रोगोंके स्थानीय लक्षणोंके लिये किसी दवाका बाह्य व्यवहार (मलहम, लेप या मालिश आदि) इसी युक्तिके आधारपर निषिद्ध है, फिर वह दवा भीतरी व्यवहारमें चाहे कितनी ही बलवान रोगनाशक है ; यदि किसी पुराने रोगके स्थानयी लक्षण मिटा दिये जायँ—चाहे एक-तरफा तौरपर ही—स्वास्थ्यकी पूर्ण बहालीके लिये औषधका भीतरी व्यवहार सन्दिग्ध बन जाता है ; क्योंकि रोगका प्रधान लक्षण—स्थानीय विकार—मिट गया और अब जो कुछ शेष रहा है—वह गौण है। वह स्थानीय लक्षणकी अपेक्षा कम कष्टकर है और कम टिकाऊ है। सम्भव

है, उसमें कोई ऐसी विशेषता न रहे, जो रोग चित्रको पूरा करे और सम-लक्षण-सम्पन्न औषधके निर्वाचनमें मार्ग दिखाये।

खुलासा—चाहे किसी ढंगकी पुरानी बीमारी हो, बाहरी दवाका प्रयोग करके उसको दूर करना हानिकर ही होता है; क्योंकि भीतरी दवाओंको खिलानेके साथ ही यदि बाहरी मलहम आदि लगाया जाता है, तो बाहरी रोग अच्छा हो जाता है और निश्चित रूपसे इस बातका पता नहीं चलता कि अभी भीतरी रोग आरोग्य हुआ है या नहीं। अब यदि दवाका भीतरी प्रयोग न कर केवल बाहरी उपचार ही जारी रखा जाये, तो भी अनुचित है; क्योंकि इससे रोग भीतर घुसकर अन्यान्य उपयोगी यंत्रोंपर अपना प्रभाव जमा लेता है। यह लक्षण जो बाहर दिखाई देता है, वह तो पुरानी बीमारीका एक स्थायी लक्षण है। यह जल्दी नहीं चला जाता और इसमें कोई-न-कोई विशेषता दिखाई देती है, जिसके सहारे दवाका चुनाव होता है; परन्तु यदि इसी लक्षणको प्रलेप आदि लगाकर दूर कर दिया जाता है, तो ऐसे लक्षण रह जाते हैं, जो स्थायी नहीं होते तथा अस्पष्ट और विशेषता-रहित रहते हैं, इनपर लक्ष्य रखकर दवाका चुनाव नहीं हो सकता। इसलिये, बाहरी प्रलेप, मलहम आदि लगाकर उन्हें कभी दूर न करना चाहिये।

[१९९]

यदि ऐसे स्थानिक रोगोंमें सम्पूर्ण सम-लक्षण-सम्पन्न औषधका प्रयोग न हो?

यदि ऐसे रोगकी सम्पूर्ण सम-लक्षण-सम्पन्न औषध न प्राप्त हुई हो, जब कि उनके स्थानिक लक्षण जखम आदि आशोषक औषध द्वारा अथवा नश्तर लगाकर नष्ट कर दिये गये हों, तो रोग और भी कष्टसाध्य हो जाता है; क्योंकि बचे हुए लक्षण बहुत ही अस्पष्ट और अल्प-स्थायी रह

जाते हैं। इसका कारण यह है, कि जिस बाहरी लक्षणकी मौजूदगीसे अत्यन्त उपयुक्त दवाके चुनावमें सबसे अधिक सहायता प्राप्त होती और जो उसी उपयुक्त दवाके भीतरी व्यवहारसे रोगके आमूल उन्मूलनपर मिटता—और इस तरह उसके मिटनेसे हम यह समझ पाते कि रोग आमूल मिट गया है (अर्थात् वह बाहरी लक्षण)—अब हमारे पर्यवेक्षणसे दूर हो गया।

खुलासा—यह ठीक है, कि सम-लक्षण-सम्पन्न औषधके भीतरी प्रयोगसे रोग आरोग्य हो सकता है, पर यदि ऐसा मौका हो कि सदृश-लक्षणवाली दवाका चुनाव होनेके पहले ही या सदृश दवा पड़नेके पहले ही रोगी अन्य चिकित्सकके हाथमें जा पड़े और उस स्थानिक रोगपर जखम करनेवाली दवा लगा दी जाये या आशोषण करनेवाली दवाका प्रयोग कर दिया जाये अथवा नश्तर लगा दिया जाये, तो उसकी क्या अवस्था होगी? ऐसा पहले होता था अर्थात् हैनिमैनके इस सदृश-लक्षण-सम्पन्न चिकित्सा-प्रणालीके आविष्कारसे पहले अथवा सोरा-विष-नाशक दवाओंके आविष्कारसे पहले ऐसा होता था। उस समय सम-लक्षण-सम्पन्न औषधियोंका प्रचार न होनेके कारण, मलहम लगाये जाते थे, अथवा उन्हें पकाकर काट दिया जाता था। हैनिमैन कहते हैं, कि इससे तो रोग और भी बिगड़ जाते हैं; क्योंकि जिसके सहारे दवाका चुनाव हो सकता है, वह अविलम्ब ही चला जाता है; क्योंकि ये स्थानिक रोग भीतरी रोगके दिखावे हैं। अतएव, इस बाहरी रोगके दब जाने या कट जानेके बाद जो लक्षण बच जाते हैं, शायद उनमें ऐसी कोई विशेष बात न रहे, जिससे कि मूल भीतरी रोगका परिचय प्राप्त हो सके।

[२००]

पर यदि वाहरी दवाओंसे स्थानिक रोग दूर न किये जायें, तो क्या सुविधा होती है ?

यदि वह (स्थानीय लक्षण) अब भी वहाँ मौजूद रहकर आभ्यन्तरिक चिकित्साके लिये पथ-प्रदर्शकका काम करता रहता, तो सम्पूर्ण रोगकी सदृश (होमियोपैथिक) औषधका आविष्कार हो सकता था और यदि वह सदृश औषध मिल जाती और उसके आभ्यन्तरिक प्रयोगके दौरानमें भी स्थानीय लक्षण बने रहते, तो उससे यह विदित होता कि अभी पूर्ण आरोग्य नहीं आया और यदि वे स्थानीय लक्षण मिट जाते, तो यह इस बातका स्पष्ट प्रमाण था कि रोगका सर्वथा उन्मूलन हो गया है। तब हमें यह भी विश्वास हो जाता कि समूचे रोगके उन्मूलनका अभीष्ट कार्य सुसम्पन्न हो गया है। सम्पूर्ण निरोगताके लिये यही तो अनिवार्य और बहुमूल्य विशेषता है।

खुलासा—बाहरी दवाओंसे स्थानिक रोग आरोग्य करनेपर क्या असुविधायें होती हैं, इसी सम्बन्धमें बताते हुए हैनिमैन कहते हैं, कि यदि बाहरी रोग अर्थात् स्थानिक रोग मलहम, प्रलेप आदि लगाकर दूर न किया जाये, तो यह लाभ होता है, कि भीतरी दवाओंका प्रयोग होनेपर, जबतक वह स्थानिक रोग आरोग्य नहीं होता, तबतक यह मालूम होता है, कि अभी भीतरी बीमारी दूर नहीं हुई है, जिसके कारण यह स्थानिक रोग उत्पन्न हुआ है। इसके बाद जब बिना कोई दवा लगाये, यह स्थानिक रोग आरोग्य हो जाता है, तब मालूम होता है, कि भीतरी रोग सम्पूर्ण रूपसे आरोग्य हो गया। यही तो एक बहुत बड़ी सुविधा है, जिससे सम्पूर्ण रोग आरोग्य होनेका प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जाता है।

[२०१]

शरीरके भीतर आये रोगसे जीवनी-शक्ति अपनी रक्षा कैसे करती है ?

यह स्पष्ट दिखाई देता है, कि जब मनुष्यकी जीवनी-शक्तिपर पुरानी बीमारीका आक्रमण होता है और अपनी ताकतसे जीवनी-शक्ति उसे दूर नहीं कर सकती, तो वह इस उद्देश्यसे शरीरके किसी बाह्य अंशपर एक स्थानिक रोग उत्पन्न कर देती है। उसका एकमात्र उद्देश्य यही होता है कि मानव-जीवनके लिये उस अनावश्यक अंगको रुग्णावस्थामें रखकर भीतरी रोगको शान्त रखे। अन्यथा सम्भव है, यह किसी प्रधान अंगको आक्रान्त करता (और शायद रोगीके प्राण भी हर लेता); दूसरे शब्दोंमें यों कहिये कि जीवनी-शक्ति अपनी रक्षाके लिये भीतर आये रोगको ऊपर धकेल देती है और तब वह विकार स्थानीय रूप ग्रहण कर लेता है। अब यह स्थानीय विकार कुछ दिनोंतक तो शान्त और निष्क्रिय रहता है, क्योंकि भतरी रोग न उसे मिटा सकता है और न स्थूल रूपमें घटा सकता है।[1] यह स्थानिक विकार आम बीमारीका एक अंशमात्र है। शरीरकी जीवनी-शक्तिने उसे एक ओर धकेल दिया है और शरीरके किसी ऐसे वाह्य अंगकी ओर धकेल दिया है, जहाँ वह कम हानि पहुँचा सके, ताकि भीतरी रोगका उपद्रव शान्त रहे ; परन्तु (जैसा पहले कहा जा चुका है) भीतरी रोगको शान्त रखनेवाले ऐसे स्थानीय लक्षण पैदा करके, जीवनी-शक्तिको कोई विशेष लाभ नहीं पहुँचता ; क्योंकि ऐसा करके वह न तो मूल रोगका घटा सकती है और

---

१. ऐलोपैथीवाले ऐसा ही करते हैं। वे स्थानीय उपकरणोंको मिटा देते हैं और समझ लेते हैं कि रोग मिट गया ; परन्तु ऐसा नहीं होता। इसके विपरीत रोगीका साधारण स्वास्थ्य और बिगड़ जाता है।

न जड़से दूर कर सकती है। इसके विपरीत वह मूल रोग क्रमशः पनपता रहता है और प्रकृति विवश होकर उन वाह्य उपकरणोंको निरन्तर बढ़ाती रहती है। धीरे-धीरे ये स्थानीय लक्षण ही उस मूल रोगकी जगह लेनेमें समर्थ हो जाते हैं और मूल रोगपर छा जाते हैं। जबतक भीतर छिपा हुआ सोरा (खाज-विष) दोष दूर न हो, टांगपर निकले व्रण कभी दूर नहीं होते। जबतक शरीरके भीतर आतशकका विष मोजूद रहता है—ऊपरी घाव दूर नहीं होता। जबतक सुजाक विष भीतर रहेगा, उसके कारण पैदा हुए मस्से बढ़ते रहेंगे। फलतः क्रमशः ऐसी दशामें मूल उपद्रव—खाज, आतशक और सुजाक अधिकाधिक कष्टसाध्य होते चले जाते हैं। ठीक इसी तरह जैसे-जैसे समय बीतता जाता है—भीतरी रोग असाध्य होता चला जाता है।

खुलासा—रोग कैसे होता है, यह पहले बताया जा चुका है। उसपर ध्यान देनेसे मालुम होता है, कि जीवनी-शक्तिपर जब किसी पुरानी बीमारीका आक्रमण होता है तथा जब अपनी ताकतसे जीवनी-शक्ति उसे दूर नहीं कर सकती, तो वह यह करती है कि भीतरी यंत्रोंमें जो बहुत ही आवश्यक अंश हैं, उनपर आक्रमण न हो जाये, इसलिये शरीरमें बाहरके कम महत्त्वपूर्ण स्थानपर एक स्थानिक रोग पैदा कर देती है। यह स्थानिक रोग जीवनी-शक्तिकी वह क्रिया है, जिसके द्वारा वह अपनी आत्म-रक्षा करती है। इस आत्म-रक्षाकी चेष्टाका यह परिणाम होता है, जो प्राचीन रोग-रूपी शत्रु शरीरके आवश्यक अंशोंको नष्टकर प्राण ले लेना चाहता है, उसकी क्रिया कुछ दिनोंके लिये शान्त हो जाती है। इसी बातको इस तरहसे भी कहा जा सकता है, कि यह एक प्रकारसे आत्मरक्षाके लिये रोगका रूपान्तर होता है। इस रूपान्तर द्वारा जीवनी-शक्ति अपनी बहुत-कुछ रक्षा कर लेती है ; पर इससे यह कदापि न समझ लेना चाहिये, कि रोगके आरोग्य होनेमें किसी प्रकारकी सहायता प्राप्त होती है। साथ ही यह भी समझ रखना चाहिये कि

स्थानिक रोगके रूपमें यह परिवर्त्तित रूप अथवा जीवनी-शक्तिकी आत्म-रक्षाकी चेष्टामें यह स्थानिक रोग क्या है? यह भी उस मूल रोगका ही एक अंश है, जो भीतर छिपा हुआ है, उसीका एक हिस्सा बाहर प्रकाशित हो गया है और प्रधान-प्रधान आवश्यक अंशोंकी रक्षाके लिये ही ऐसा किया गया। इसी वजहसे यह बराबर देखनेमें आता है, कि ज्यों-ज्यों भीतरी बीमारी बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों यह स्थानिक रोग भी बढ़ता जाता है। इससे भी यह प्रकट होता है, कि इन दोनोंका बहुत गहरा सम्बन्ध है। अब उदाहरण देखिये—किसीके शरीरमें उपदंश विष फैल गया। परिणाम यह होता है, कि उसकी लिंगेन्द्रियपर घाव हो जाता है, बदनमें लाल चकत्ते फूट निकलते हैं। यदि ये न निकलें, तो उपदंश-विष अति शीघ्र रोगीका जीवन नाश कर दे। इसीलिये, जीवनी-शक्ति इन बाहरी-स्थानिक रोगोंके रूपमें, उसकी तेजीको बाहर फेंक देती है। यह प्रायः सभी जानते हैं, कि बाहरी मलहम-पट्टी या नीमके पानी आदिसे धोनेपर ही उपदंशका रोग आरोग्य नहीं हो जाता। रक्तशोधक या अन्य औषधके रूपमें, जब दवाओंका भीतरी प्रयोग होकर समस्त शरीरपर उनकी क्रिया होती है, तब भीतरी विषका नाश या कमी होती है, तभी उपदंशका रोग अच्छा होता है। सुजाकमें फूलगोबीकी तरहके मस्से होते हैं, उनपर दवा लगानेसे तबतक कोई भी लाभ न होगा, जबतक भीतरसे उस रोगके विषका नाश न कर दिया जाये। खुजली खसराके रूपमें बाह्य शरीरपर जो रोग पैदा होते हैं, उनको भी बाहरी दवासे तबतक जड़से आरोग्य नहीं किया जा सकता, जबतक सोरा-विष-नाशक औषध खिलाकर सोरा-दोष नष्ट कर दिया जाये। बाहरसे दवा लगाकर आरोग्य करनेका मतलब है, जीवनी-शक्तिने रोगकी तेजी घटाकर सूक्ष्म आवश्यक अंशोंकी रक्षाकी, जो चेष्टा की थी, उसको नष्ट करना अर्थात् उन्हें फिर भीतर प्रवेश करा देना। यही कारण है, कि जब-जब बाहरी स्थानिक रोग इस तरह आरोग्य किये

जाते हैं, तभी-तभी भीतरी यंत्र किसी भयंकर मारात्मक रोगसे आक्रान्त हो जाते हैं। इसी बातको अगले सूत्रमें हैनिमैन और भी खुलासा रूपमें समझते हैं।

[२०२]

यदि प्राचीन चिकित्सक मलहम, प्रलेप आदि लगाकर ये स्थानिक रोग नष्ट करें, तो क्या परिणाम होगा ?

यदि प्राचीन प्रणाली अर्थात् ऐलोपैथिक चिकित्सक बाहरी दवाएँ मलहम प्रभृति लगवाकर स्थानिक लक्षणको इस धारणाके वशवर्त्ती होकर नष्ट न करें, कि इस तरहसे वे सम्पूर्ण रोगको आरोग्य कर देते हैं, तो प्रकृति, उन अन्यान्य लक्षणोंको जो स्थानिक रोग पैदा होनेपर सुप्त अवस्थामें पड़े थे, जागरित कर, इस कमीको पूरा कर देती है अर्थात् वह भीतरी बीमारीको बढ़ा देती है ; पर जब ऐसा हो जाता है, तब अकसर यही कहा जाता है, कि भूलसे स्थानिक रोगको बाहरी दवाके द्वारा शरीरके भीतरी अंशपर या स्नायुओंपर पहुँचा दिया गया है।

खुलासा—प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीवाले अर्थात् ऐलोपैथ यह समझते हैं, कि मलहम आदि बाहरी दवाओंके प्रयोगसे वे रोगको आरोग्य कर देते हैं। अपनी इस धारणाके वशवर्त्ती होकर, वे उन लक्षणोंको बाहरी दवाओंके जरिये नष्ट कर देते हैं, जिनसे उस रोगका पता लगता है और मालुम होता है, कि मूल रोगकी जड़ कितनी गहरी जमी हुई है। साथ ही ये बाहरी स्थानिक रोग भीतरकी बीमारीको बहुत-कुछ शान्त किये रहते हैं। बाहरी रोगके नष्ट होनेपर जो लक्षण अबतक दबे पड़े थे, वे ही जागरित होकर बहुत तेजीसे अपना काम करने लगते हैं और रोग जल्दी-जल्दी बढ़ने लगता है। इस समय कहा जाता है, कि बाहरी रोग भीतर प्रवेश करा दिया गया है। यह कहना भूल है।

सत्य यह है कि रोग भीतर भी था और बाहर भी, उसका कुछ अंश बाहर आया हुआ था। बाहरवाले अंशका रोग दबते ही भीतरवालेने जोर पकड़ना आरम्भ किया और यह स्पष्ट देखनेमें आया, कि बीमारी बहुत बढ़ गयी है और उसने भीतरके आवश्यक अंश तथा स्नायु-तंतुओंपर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया है। साधारण भाषामें कहा यही जाता है, कि बाहरी रोगको भीतर पहुँचा दिया गया, पर यह कहना भूल है। सच यह है कि रोगके बाहरी लक्षण या शरीरका बाहरी विकार इस बातको हमेशा प्रकट किया करता है, कि भीतर रोग है और इसलिये दोनों ही एक ही रोगके अंश हैं। अब यदि बाहरी विकारको रहने दिया जाये, बाहरी प्रयोगकी दवाओंसे उसे दबाया न जाये, तो भीतरी रोग कुछ दबा रहता है और विपरीत लक्षणकी दवाएँ देकर जब बाहरी रोगको दबा दिया जाता है, तब भीतरी विकार बढ़ने लगता है। अतएव, यह निश्चित है, कि बाहरकी बीमारी कोई दूसरा रोग नहीं है, वह भीतर नहीं ले जाया जाता ; बल्कि विपरीत चिकित्सासे आरोग्य होनेपर भीतरी रोगके सुप्त लक्षण जागरित हो जाते हैं और अत्यन्त तीव्रतासे ध्वंस कार्य आरम्भ कर देते हैं।

[२०३]

क्या स्थानिक रोगोंका बाहरी इलाज ही अनगिनती बीमारियोंका कारण है ?

ऐसे स्थानिक लक्षणोंकी हरेक बाहरी चिकित्सा, जिसका उद्देश्य शरीरके बाहरी स्तरसे उनका दूर करना रहता है, जब कि भीतरी सूक्ष्म कारणसे उत्पन्न रोग, बिना आरोग्य किये ही छोड़ दिया जाता है, जैसे कि कितने ही प्रकारके मलहम लगाकर सोराके उद्भेदोंका शरीरसे दूर कर देना, कास्टिक लगाकर उपदंशके जखमको जलाना तथा छुरीसे

मस्सा काट देना या बन्धन अथवा गर्म लोहेसे दागकर प्रमेहके मस्सेको नष्ट करना—ये सभी हानिकर बाह्य चिकित्साएँ, जो इतने दिनोंसे संसारमें व्यापक रूपसे प्रचलित हो रही हैं, उनके द्वारा ही मनुष्य जातिमें हाहाकार फैलनेवाली अनगिनती नामधारी और बिना नामकी पुरानी बीमारियाँ फैल रही हैं। चिकित्सा-जगत जिन जघन्यतम अपराधोंका दोषी हो सकता है, उन अपराधोंमें यह सबसे भयंकर अपराध है। इतनेपर भी इसे ही काममें लाया जा रहा है और चिकित्साके शिक्षा-मन्दिरोंसे इसकी ही शिक्षा दी जाती है।[1]

खुलासा—हैनिमैनकी यह वाणी एक आश्चर्यमयी वाणी है। उनका कहना है कि आज संसारमें जो इतनी पुरानी बीमारियाँ फैल रही हैं, जिनके कारण रोगियोंमें हाहाकार मचा हुआ है, जिनमें कितनों ही का नामकरण हो गया है और कितनों ही के नामका भी अभी आविष्कार नहीं हो सका है, उनका मूल कारण बाहरी प्रलेप, मलहम आदि लगाकर, शरीरके बाहरी रोगोंको आरोग्य करनेकी चेष्टा है। इसका मतलब यह है, कि यह बाहरी रोग जब बाहरी दवाएँ लगाकर आराम कर दिया जाता है, तो भीतरी व्याधि इतनी तेज हो जाती है और इतनी बढ़ जाती है, कि नाना प्रकारके यंत्रोंपर आक्रमण करती हुई मारात्मक हो उठती है! इन रोगोंके कारण रोगी-समाजमें हाहाकार मचा हुआ है; पर इसमें उन अज्ञानी रोगियोंका कोई भी दोष नहीं है। दोष है, उन चिकित्सकोंका, जो चिकित्साके नामपर रोगीको ध्वंस करते जाते हैं, वे नहीं समझते कि बाहरी मलहम द्वारा बोराके उद्भेदोंको दूर करना या

---

१. यदि इन बाह्योपचारोंके साथ कभी कोई दवा खिलाई भी जाती है, तो वह मूल रोगको घटानेकी जगह बढ़ा देती है, क्योंकि इन दवाओंमें समूचे रोगको मिटानेकी शक्ति नहीं है। वे शरीरको अधिक जर्जर बनाती हैं और औषधजनित अनेक प्रकारके पुराने रोग भी पैदा कर देती हैं।

कास्टिक लगाकर उपदंशका घाव जला देना अथवा प्रमेहके मस्सेको काटकर या बाँधकर अथवा दागकर हटा देनेका परिणाम कितना शोचनीय हो रहा रहा है। हैनिमैन कहते हैं, चिकित्साके कारण जितने अपराध होते हैं, यह उनमें सबसे गुरुतर अपराध है। यह वह अपराध है, जिसका प्रायश्चित ही नहीं है। इतनेपर भी समस्त विद्यार्थियोंको इसी ढंगकी चिकित्सा करनेकी शिक्षा दी जा रही है और वे ऐसी शिक्षा पाकर, इसी ढंगकी चिकित्सा करते हुए संसारमें मृत्युकी संख्या या पुरानी बीमारियोंका प्रसार बढ़ाते जाते हैं।

[२०४]

ये पुरानी बीमारियाँ किन रोग-बीजोंसे उत्पन्न होती है?

यदि उन पुरानी बीमारियोंको बाद कर दिया जाये, लगातार अस्वास्थ्यप्रद ढंगसे रहनेके कारण उत्पन्न होती है (सूत्र ७७) अथवा वे अनगिनती औषधज रोग (सूत्र ७४) छोड़ दिये जायें, जो अकसर प्राचीन प्रणालीवाले (ऐलोपैथिक) चिकित्सकों द्वारा साधारण बीमारियोंमें लगातार अवैज्ञानिक, जिद्दी, सतानेवाली और हानिकर चिकित्साके द्वारा उत्पन्न हो जाते हैं, तो बाकीकी पुरानी बीमारियाँ, इन्हीं तीन रोग-बीजोंके अर्थात् भीतरी उपदंश बीज, आभ्यन्तरिक प्रमेह बीज, पर खासकर और अधिक संख्यामें, आभ्यन्तरिक सोरा बीजके कारण ही उत्पन्न होती हैं। इनमेंसे प्रत्येकका संक्रामक रोग-विष, सोरामें शरीरपर उद्भेद निकलने, उपदंशमें जखम या बाघी निकलने और प्रमेहमें मस्सा होनेसे पहले ही समस्त शरीरमें और शरीरके भीतर सर्वत्र प्रसारित हो जाता है। ये स्थानिक लक्षण ही उनकी वृद्धि रोके रहते हैं और यदि इन पुरानी बीमारियोंके स्थानिक लक्षण दूर कर दिये जाते हैं, तो शक्तिशाली प्रकृति द्वारा निश्चय ही, जल्द हो या देरसे, वे बीमारियाँ

बढ़ जातीं और विकसित हो पड़ती हैं तथा इस तरह समस्त नामहीन कष्ट—अनगिनती पुरानी बीमारियाँ, जो हजारों वर्षसे मनुष्य भोग रहे हैं, पैदा कर देती हैं। यदि चिकित्सक अच्छी तरह सोच-विचारकर वैज्ञानिक प्रणालीसे, इन्हें जड़से आरोग्य करनेकी चेष्टा करते और बाहरी दवाएँ लगाकर इन तीन बीजोंके लक्षणोंको दूर न करते तथा सम-लक्षण-सम्पन्न आभ्यन्तरिक औषधियोंके प्रयोगपर निर्भर करते, तो इनमेंसे एकका भी इस तरह बारम्बार आविर्भाव न होता।

खुलासा—ये पुरानी बीमारियाँ क्या हैं, कैसे फैली हैं, इसपर ही हैनिमैनने इस सूत्रमें विचार किया है। तीन प्रकारसे उत्पन्न रोगोंका इस सूत्रमें हैनिमैनने हवाला दिया है। एक तो वे रोग, जो लगातार बहुत दिनोंतक अस्वास्थ्यकर स्थानमें रहनेके कारण उत्पन्न होते हैं, दूसरे वे, जो विपरीत चिकित्सकों द्वारा साधारणसे रोगमें अधिक मात्रामें सनियमित रूपसे औषध प्रयोग होनेके कारण हो जाते हैं और तीसरे, वे होते हैं, जो सोरा, उपदंश, प्रमेह प्रभृति रोग-बीचके कारण उत्पन्न होते हैं। हैनिमैन कहते हैं, कि यदि इनमेंसे पहलेवाले दोनोंको बाद दे दिया जाये, भीतरी उपदंश विष, भीतरी प्रमेह विष और खासकर भीतरी सोरा विष—ये विष इसके पहले ही शरीरमें फैल जाते हैं, कि उनका रूप बाहर प्रकट हो। उपदंशके कारण जखम या घाव पैदा होता है, प्रमेह विषके कारण मस्से पैदा होते हैं और सोरा विषके कारण शरीरपर नाना प्रकारके उद्भेद निकलते हैं। ये सब लक्षण पैदा होकर उन भीतरी विषोंका बढ़कर मारात्मक बन जाना रोके रहते हैं। अब बाहरी दवाएँ लगाकर यदि इनको आरोग्य कर दिया जाता है, तो इनका भीतरी विष शक्तिशाली प्रकृतिके कारण नाना प्रकारके भयंकर पुराने रोगोंके रूपमें प्रकट होता है; क्योंकि इसी ढङ्गकी चिकित्सा-प्रणाली हजारों वर्षोंसे अपना अधिकार जमाये हुए हैं। इसलिये, बराबर इसी ढङ्गसे आरोग्य होता है और हजारों वर्षोंसे मनुष्य-जाति इसी तरह विध्वंस हो रही है।

अतएव, यदि प्राचीन चिकित्सक रोगको वैज्ञानिक रूपसे आरोग्य करनेकी चेष्टा करते, यदि सम-लक्षण-सम्पन्न औषधका प्रयोग करते, तो आज बारम्बार इन रोगोंका होना बन्द हो जाता।

[२०५]

होमियोपैथिक चिकित्सक इन स्थानिक रोगोंकी किस ढंगसे चिकित्सा करते हैं?

होमियोपैथिक चिकित्सक प्राचीन रोग-बीजोंसे उत्पन्न इन प्राथमिक लक्षणोंमेंसे एककी भी, न उनके बढ़ जानेके कारण पैदा हुए गौण लक्षणकी ही, बाहरी प्रयोकी दवाएँ लगाकर चिकित्सा करते हैं (सूक्ष्म भावसे कार्य[1] करनेवाली या स्थूल भावसे कार्य करनेवाली), बल्कि वे जो कोई भी लक्षण सामने आता है, उसके सहारे, उस मूल वृहत् रोग-बीजको ही आरोग्य करता है, जिसपर ये लक्षण निर्भर करते हैं और इस तरह

१. इसीलिये मैं ओठ या चेहरेके कैन्सरको स्थानिक प्रयोगसे आरोग्य करनेका परामर्श नहीं दे सकता (ये बहुत ही बढ़े हुए सोराके, जिसमें अकसर उपदंश-विष मिला रहता है, परिणाम है) और यह नहीं कह सकता कि फ्रेरी कौस्माके अनुसार आर्सेनिक मिली औषधका उनपर प्रयोग किया जाये। वय इस कारणसे मैं नहीं मना करता हूँ, कि उनसे बहुत तकलीफ होती है और अकसर आरोग्य भी नहीं होता; बल्कि इस कारणसे मना करता हूँ कि यदि यह सूक्ष्म औषध बाह्य प्रयोगके कारण उस रोगको आरोग्य कर सकी और उस स्थानका रोग इससे दूर हो गया, तो मूल रोग उससे थोड़ा भी नहीं घटेगा। और जीवनी-शक्तिको उस रोगकी क्रिया और भी आवश्यक अंशोंपर परिवर्त्तित कर देनी पड़ेगी। इसका यह परिणाम होता है, कि अन्धापन, बहरापन, उन्माद, श्वासरोधकर दमा, शोथ, संन्यास प्रभृति रोग उत्पन्न हो जाते हैं। परन्तु इस आर्सेनिकवाली दवासे, उसी रोगमें लाभ होता है, जब कि वह जखमके आकारमें बहुत बढ़ नहीं जाता है और जब कि जीवनी-शक्ति बहुत हो क्रियाशील रहती है। पर इस अवस्थामें भी सम्पूर्ण भीतरी रोगको आरोग्य

प्राथमिक या गौण, दोनों ही लक्षण तुरन्त गायब हो जाते हैं; परन्तु क्योंकि ऐलोपैथिक चिकित्सकोंने इस प्रणालीके अनुसार चिकित्सा नहीं की है, इसलिये सम-लक्षण चिकित्सक बड़े अफसोसके साथ यही देखता है, कि प्राथमिक लक्षण बाहरी दवाएँ लगाकर पहले ही नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गये हैं और अब उन गौण लक्षणोंको आधार मानकर ही चिकित्सा करनी पड़ेगी अर्थात् उन सब रोगोंको लेकर ही अग्रसर होना पड़ेगा, जो भीतरी रोग-बीजोंके बढ़ जानेके कारण उत्पन्न हुए हैं और खासकर उन पुरानी बीमारियोंकी चिकित्सा करनी पड़ेगी, जो भीतरी सोरासे उत्पन्न हुई हैं और जिनकी आभ्यन्तरिक चिकित्सा एक बहुत दिनोंका अनुभवी चिकित्सक ही अपने अध्यवसाय, कौशल, अनुभव तथा विवेक द्वारा कर सकता है और जिसके विषयमें मैंने अपनी बीमारियाँ (Chronic diseases) नामक पुस्तकमें समझानेकी चेष्टा की है। मैं पाठकोंका ध्यान उसकी ओर आकर्षित करता हूँ।

खुलासा—ऐलोपैथिक चिकित्सक बाहरी प्रयोगकी दवाएँ लगाकर जिन रोगोंकी चिकित्सा किया करते हैं, सम-लक्षणकी प्रणालीसे चिकित्सा करनेवाले उस ढङ्गसे चिकित्सा नहीं करते। वे पहले प्राथमिक या गौण लक्षणको दूर करना नहीं चाहते, बल्कि उनका ध्यान तो उस मूल रोग-बीजपर रहता है, जिसकी वजहसे ये प्राथमिक या गौण लक्षण उत्पन्न

करना ही पड़ता है और उस जखमको आराम कर देनेपर भी यह काम अभी बाकी ही रहता है।

इसी तरह जब आभ्यन्तरिक आरोग्य किये बिना ही चेहरेका या स्तनका कैन्सर काटकर आरोग्य किया जाता है और जब इस तरह अर्बुद दूर किया जाता है, तो और भी बदतर अवस्था आ पहुँचाती है और मृत्यु भी निकट आ जाती है। ऐसा कितनी ही बार हुआ है, पर प्राचीन-प्रणाली अबतक अन्ध भावसे ही चलती जा रही है और प्रत्येक नवीन रोगीमें वैसा ही क्रिया करती है तथा परिणाम भी वैसा ही भयंकर और नाशकारी होता है।

होते हैं। इस तरह जब मूल रोग आरोग्य हो जाता है, तो ये लक्षण आप-से-आप ही उसी समय जाते हैं; परन्तु प्राचीन चिकित्सकोंकी प्रणाली इनके ठीक विपरीत है। वे बाह्य लक्षणोंको ही दूर करना चाहते हैं, मूल रोगपर उनका ध्यान ही नहीं जाता। इसलिये वे स्थानिक लक्षणको ही दूर करते हैं। एतएव, होता यह है, कि जब उनसे चिकित्सा करानेके बाद, रोगी होमियोपैथोंके हाथमें आता है, तो उन्हें स्थानिक लक्षण गायब दिखाई देते हैं। अब उनके सामने आती है, गौण-रूपमें जीवनी-शक्ति द्वारा की हुई प्रतिक्रिया। इस गौण लक्षणको आधार मानकर और इनपर ही निर्भर रहकर, उन्हें अग्रसर होना पड़ता है; परन्तु इस ढंगकी चिकित्सा करनेके लिये बहुत अधिक अनुभव, सोच-विचार और चिकित्सा-ज्ञानकी आवश्यकता रहती है। सारांश यह कि बाहरी लगानेकी दवाओंसे चिकित्सा करनेपर मूल रोग एक प्रकारसे दुरारोग्य हो जाता है।

[२०६]

किसी पुरानी बीमारीका रोग-बीज कैसे अनुसन्धान करना चाहिये?

किसी पुरानी बीमारीकी चिकित्सा आरम्भ करनेसे पहले, बहुत सावधानीके साथ यह जाँच लेना आवश्यक है कि रोगीको पहले कभी कोई रतिज (आतशक या सुजाक) रोग तो नहीं हुआ है; यदि आतशक या सुजाकका इतिहास मिले, तो फिर चिकित्सा उसी विशेष विष (Miasm) को ध्यानमें रखकर होनी चाहिये। परन्तु जब केवल आतशक या केवल सुजाकके ही लक्षण विद्यमान हों—आजकल इनमेंसे अकेली बीमारी बहुत ही कम बार आती है—तो फिर उसीको निगाहमें रखकर दवा चुननी चाहिये। यदि पहले कभी इनमेंसे कोई एक दोनों विकार आये हों,

तो उनकी चिकित्सा करते समय तीसरे दोष—सोरा (खाज-खुजली) की मौजूदगीका भी ध्यान रखें ; क्योंकि प्रायः देखा गया है कि पहले दोनों दोषोंके साथ यह तीसरा दोष मिला-जुला रहता है। जब शुद्ध रूपसे सुजाक या आतशकके लक्षण न हों, तो सोराकी उपस्थिति आवश्यक समझनी चाहिये। चिकित्सक जब सोचता है कि उसका रोगी आतशक या सुजाकका पुराना रोगी है, तो उसे सदा ही—या प्रायः सदा ही—ऐसे रोगीकी चिकित्सा करनी होती है, जिसके शरीरमें आतशक या सुजाकका विष तो है ही—साथ ही सोरा भी गुप्त रूपसे मिला हुआ है और वह खाज-खुजलीकी प्रवणता लाता है। दोषोंका ऐसा संयोग ही आमतौरपर पुरानी बीमारियोंका मुख्य कारण बनता है। अनेक बार आतशक और सोरा-विषके साथ सुजाक विष भी मिल जाता है, परन्तु आमतौरपर पुरानी बीमारियोंमें, आप उन्हें चाहे जिस नामसे पुकारें आतशक और सोराकी ही सन्धि पायी जाती है। ऐलोपैथिक चिकित्सकोंके अनाड़ीपनके कारण ये बीमारियाँ भयानक रूपमें बढ़ती और बिगड़ती जा रही हैं।

खुलासा—ऊपर बताया जा चुका है, कि रोग-बीज पुरानी बीमारियोंका कारण है। रोग-बीज तीन हैं—सोरा-रोग-विष (Psora), उपदंश-रोग-विष (Syphilis) और प्रमेह-रोग-विष (Sycosis)। अतएव, जब कभी पुरानी बीमारीका रोगी सामने आये, तो चिकित्सकको सबसे पहले यह पता लगाना होगा, कि इसमें कोई ऐसा विष है कि नहीं, जो कोई दूषित संगमके कारण पैदा हुआ हो। मान लीजिये, कि कोई उपदंशका रोगी किसी चिकित्सकके पास गया। उस समय उस चिकित्सकको यह देखना होगा, कि इसमें उपदंशके लक्षण स्पष्ट हैं या नहीं अथवा प्रमेह-विषके कारण मस्से हुए हैं या नहीं। खैर यह तो वह देख लेगा, पर उपदंशके शुद्ध लक्षण भी आजकल मिलना कठिन हो जाता है। इसका कारण यह है कि उपदंशका विष शरीरमें फैलनेसे पहले ही सोरा-विष वहाँ तैयार रहता

है। सोरा ही संगमकी ओर रुचिको प्रवृत्त करता है। यही वजह है कि अकेला उपदंश बहुत कम दिखाई देता है। अतएव, चिकित्सकको सोरा और उपदंश दोनों ही विषोंको नाश करनेवाली ओषधकी व्यवस्था करनी पड़ती है। ऐसा भी होता है, कि इन दोनोंके साथ तीसरा विष प्रमेह विष भी सम्मिलित रहता है। इस समय और भी कठिनाई आ पड़ती है और बहुत सोच-विचारकर औषधका प्रयोग करना पड़ता है; परन्तु अधिकांश स्थानोंमें सब तरहके रोगोंकी जड़में सोरा ही वर्त्तमान रहता है। एक कठिनाई और भी आती है। वह यह कि पहले ये रोगी ऐलोपैथिक चिकित्साकोंके हाथमें जाते हैं, उनकी विपरीत चिकित्साके कारण कितने ही रोग-लक्षण गायब हो जाते हैं, कितनोंका रूप परिवर्त्तित हो जाता है और बीमारी भयंकर रूपसे बढ़ जाती है। ऐसी अवस्थामें चिकित्सकके लिये मूल रोगका पकड़ना बहुत ही कठिन हो जाता है।

[२०७]

रोग-बीजके अनुसन्धानके बाद और क्या जरूरत पड़ती है?

ऊपर लिखा जानकारी मालूम हो जानेपर, सम-लक्षण-प्रणालीसे चिकित्सा करनेवाले चिकित्सकको यह जानना बाकी रह जाता है, कि इस पुरानी बीमारीमें अबतक किस ढंगकी ऐलोपैथिक चिकित्सा की जा चुकी है, कौन-सी विकृतकारी दवाएँ खासकर और बार-बार दी जा चुकी हैं, कौन-सा खनिज स्नान अबतक कराया गया है और इनका अबतक क्या प्रभाव हुआ है, ताकि यह मालूम हो सके कि प्राथमिक अवस्थासे अबतक कितनी अवनति हुई है और इस अनिष्टकारी कृत्रिम चिकित्साके दुष्परिणामका सुधार किया जा सकता है अथवा जो सब दवाएँ पहले अनुचित भावसे दी जा चुकी हैं, उनका फिरसे प्रयोग रोका जा सकता है।

खुलासा—यह मालुम हो जानेके बाद कि रोगीमें कौन-सा या कौन-कौन-सा मूल विष है और यह भी जानना जरूरी होता है, कि अबतक कौन-कौन ऐसी औषधियाँ दी गई हैं या अन्य प्रयोग किये गये हैं, जिनसे लक्षणोंमें रूपान्तर पैदा हो गया है अथवा अबतक जो कुछ चिकित्सा की गयी है, उसका क्या परिणाम हुआ है; क्योंकि इन बातोंकी जानकारी रहनेपर एक बात तो यह मालुम हो जाती है, कि असली बीमारीमें कितना परिवर्त्तन या कितना विकार उत्पन्न हो गया है, दूसरे उस दोषको संशोधन कर लेनेका उपाय निकल आता है और जिन दवाओंका बहुत और बार-बार प्रयोग हो चुका है, उनका प्रयोग रोका जा सकता है।

[२०८]

रोगीमें क्या-क्या देखना चाहिये ?

रोगीकी उमर, उसके खान-पान और रहन-सहनकी प्रणाली, उसका व्यवसाय, उसकी पारिवारिक स्थिति, उसका समाजिक सम्बन्ध और इसी तरहके अन्य विषय भी इसके बाद जान लेने चाहियें। यह इसलिये, कि इनसे मालूम हो जायगा कि ये सब उसकी रोग-वृद्धिके सहायक हैं या नहीं। इनसे चिकित्सामें बहुत अधिक सहायता या बाधा प्राप्त हो सकती है। इसी तरह, उसके चरित्र और मनकी अवस्था भी यह जाँचनेके लिये अध्ययन करनी पड़ेगी कि उनसे तो चिकित्सामें कोई बाधा नहीं पहुँचती और उन्हें किसी और परिचालित, उत्साहित करने या सुधार करनेकी तो आवश्यकता नहीं है।

खुलासा—आजकलके चिकित्सक इन बातोंकी ओर बिल्कुल ही ध्यान नहीं देते। यही करण है, कि रोगी निर्मूल आरोग्य नहीं होते। बहुत बार ऐसा होता है, कि रोगीके खान-पान या रहन-सहनके दोषसे

अथवा गृहस्थीकी चिन्ता या समाजिक गड़बड़ी आदिके कारण उनके शरीर और मनपर ऐसा प्रभाव पहुँचता है, कि वे रोगमुक्त नहीं होते ; यदि चिकित्सकको ये बातें मालुम रहती हैं, तो वह उनमें परिवर्त्तनकर रोगको शीघ्र आरोग्य होनेमें सहायता पहुँचा सकता है। व्यवसाय प्रभृतिकी जानकारीसे दवाके चुनावमें बहुत बड़ा सहायता मिलती है। मान लीजिये, किसीको सीसा, जस्ता आदिसे ही दिनभर काम करना पड़ता है, किसीको आगेके पास बैठे रहना पड़ता है या किसीको दिनभर पानीमें ही काम करना पड़ता है—अतएव, इन व्यवसायोंके लक्षणसे भी दवाके चुनावमें सहरा मिलता है। इस तरह इन समस्त बातोंको जान लेनेपर यथोचित निर्वाचन और आनुसंगिक उपाय—इन दोनोंमें ही बहुत बड़ी मदद मिलती है।

[२०९]

इसके बाद भी क्या सम्पूर्ण लक्षण लेना आवश्यक है ?

यह हो जाने बाद, रोगीसे बार-बार बातेंकर, पूछकर, पहले बताये ढंगसे. जहाँतक सम्भव हो, उसके रोगका पूरा-पूरा चित्र अंकित कर लेना चाहिये, ताकि उसे रोगीके विशेष-विशेष लक्षण मालुम हो जायें, जिनके अनुसार वह सोरा-दोषनाशक या दूसरी ऐसी प्रधान दवा चुन सके, जिसके लक्षण सबसे अधिक मिलते हों और जिसके सहारे वह चिकित्सा आरम्भ कर सके।

खुलासा—रोगीका रोग-लक्षण ग्रहण करना सबसे आवश्यक कार्य है। जबतक यह नहीं होता—रोगीके रोगकी प्रतिमूर्त्ति जबतक चिकित्सक अंकित नहीं कर लेता, तबतक तो चिकित्सा होना ही असम्भ है। अतएव, हैनिमैन कहते हैं, कि रोगीके रोगीकी पुर्व प्रतिकृति अंकित करनेके साथ-ही-साथ, उससे बार-बार बातें कर, उसकी मानसिक स्थिति,

व्यथा, रोग-लक्षण, जो कुछ छिपे हों, उनको जाकर सम-लक्षण-सम्पन्न औषध चुनकर चिकित्सा आरम्भ करनी चाहिये।

[२१०]

एकांगी रोगोंका मूल कारण क्या है? क्या ये ही मानसिक रोग है?

पहले जिन्हें हम एकांगी रोग कह आये हैं, उन सबका मूल कारण सोरा ही है। एकांगी रहनेके कारण इनका आरोग्य करना और भी कठिन होता है; क्योंकि इसके अन्य समस्त रोग-लक्षण इस एक प्रधान, स्पष्ट लक्षणके भीतर छिप जाते हैं। इस ढंगके रोगको हमलोग **मानसिक रोग** कहते हैं। जो हो, अन्य रोगोंसे विभिन्न श्रेणीके ये रोगी नहीं हैं; क्योंकि अन्य शारीरिक कहलानेवाली बीमारियोंमें भी मनुष्यकी प्रकृति और मनमें परिवर्त्तन[1] आ जाता है। अतएव, जितने भी रोगियोंकी चिकित्सा करनेकी जरूरत पड़े, उनमें शारीरिक लक्षण-समूहके साथ-साथ ये मानसिक लक्षण विशेष-रूपसे समझ लेना चाहिये। तब कहीं हमलोग रोगकी समूची तस्वीर अंकित करके, सम-लक्षण-प्रणाली होमियोपैथी द्वारा सफलता-पूर्वक चिकित्सा कर सकते हैं।

खुलासा—इस एकांगी रोगका कारण ही इस सूत्रमें बताया गया है। हैनिमैन कहते हैं, कि इन एकांगी रोगोंका कारण भी सोरा ही है, परन्तु इनका आरोग्य करना इसलिये कठिन होता है, कि इसमें समस्त

---

१. हम आये दिन देखते हैं कि रोगियोंमें भयानक क्रूरता, निष्ठुरता, तुनक-मिजाजी, कामुकता, निर्लज्जता, बुद्धिकी मन्दता या कुशाग्रता पायी जाती है और ये सब असाधारण मानसिक स्थितियाँ होमियोपैथिक चिकित्सासे आमूल नष्ट हो जाती हैं।

लक्षण स्पष्ट प्रकट नहीं होते। एकाध लक्षण ही स्पष्ट रहता है, जिसके सहारे औषधका चुनाव कष्टकर हो जाता है। मानसिक रोग भी इसी श्रेणीमें आ जाते हैं अर्थात् इन दोनोंको अलग-अलग श्रेणीमें नहीं माना जा सकता। चिकित्सामें सफलता प्राप्त करनेके लिये स्थानिक, शारीरिक और सभी मानसिक लक्षण ग्रहण करना पड़ेगा और मानसिक रोगोंमें शारीरिक लक्षण ग्रहण करने ही पड़ेंगे ; क्योंकि दोनोंमें घनिष्ठ सम्बन्ध है। शरीर खराब होनेपर मनमें कुछ परिवर्त्तन अवश्य होता है और मानसिक रोग होनेपर शारीरिक परिवर्त्तन हुए विना नहीं रहता। अतएव, कोई भी रोग हो मानसिक और शारीरिक समस्त लक्षण ग्रहण करके चिकित्सा करनी चाहिये। इन दोनोंमें भी मानसिक लक्षणोंका विशेष महत्त्व है।

[२११]

क्या रोगीकी मानसिक अवस्था ही औषध-निर्वाचनमें प्रधान सहायक होती है ?

यह सर्वथा सत्य है, कि रोगीकी मानसिक अवस्था ही, खासकर सदृश मतसे, औषध-निर्वाचनमें, पथ-प्रदर्शन मुख्य रूपसे करती है ; क्योंकि यह ऐसा सुनिश्चित और मार्ग-दर्शक लक्षण है, जो वहुत कुशाग्र बुद्धि और सूक्ष्मदर्शी चिकित्सककी निगाहसे ओझल नहीं हो सकता।

खुलासा—सत्य वात यह है, कि प्राकृतिक लक्षणके विना रोगीका असली चित्र तैयार ही नहीं हो सकता ; क्योंकि रोग होनेपर रोगीके स्वभावमें क्या परिवर्त्तन आ गया है, यह जानना भी खासकर होमियोपैथिक चिकित्सकके लिये आवश्यक है और ये मानसिक लक्षण ऐसे होते हैं, कि जो चिकित्सक अनुभवशील है और जिसमें खोज निकालनेकी शक्ति है, वह वहुत जल्द सभी प्रकृतिगत लक्षणको जान जायगा और उनके सहारे दवाका चुनाव कर सकेगा।

[२१२]

क्या औषध मनको वदल देती है ?

इन रोगनाशक साधनों—औषधोंके सृष्टिकर्त्ताने भी, सभी रोगोंके वारेमें इस मुख्य विशेषता अर्थात् मन और रुचिकी परिवर्त्तित अवस्थाका खास तौरसे ध्यान रखा है। संसारमें ऐसी कोई दवा नहीं है, जो आस्वादनोंपरान्त, स्वस्थ व्यक्तिकी मानसिक अवस्थामें, स्पष्ट परिवर्त्तन लाती हो। प्रत्येक औषध अपने तौरपर अलग-अलग परिवर्त्तन लाती है।

खुलासा—हैनिमैन कहते हैं, कि इन प्रकृतिगत तथा मानसिक लक्षणोंकी ओर सृष्टिकर्त्ताकी भी विशेष श्रद्धा थी। इसके प्रमाणमें वे कहते हैं, कि प्रत्येक औषधमें ही स्वस्थ शरीरमें मानसिक और शारीरिक परिवर्त्तन ला देनेकी शक्ति है अर्थात् औषध जो लक्षण उत्पन्न करती है, उसमें प्रकृतिगत और मानसिक तथा शारीरिक लक्षण सम्मिलित रहते हैं ; प्रत्येक रोगमें ऐसा ही होता है। अब इन तीनों प्रकारके लक्षणोंका प्रभेद समझ लेना भी आवश्यक है।

प्राकृतिक लक्षण—इसे स्वाभाविक लक्षण भी कह सकते हैं ; इस संसारमें मनुष्यकी भिन्न-भिन्न प्रकृतियाँ होती हैं। कोई हँसमुख, कोई क्रोधी, कोई चोर और कोई दुराचारी होता है। इनमें पीछेवाले तीनों ही जानते हैं, कि ऐसा करना बुरा और दोषावह है। वे चेष्टा करते हैं, पर छोड़ नहीं सकते ; प्राकृतिक क्रियाएँ आप-से-आप हुआ करती हैं। अब यदि शान्त मनुष्य क्रोधी हो जाये, सदाचारी दुराचारी वन जाये या दुराचारी भगवद्भक्त वन जाये, तो समझना होगा कि इसकी प्रकृतिमें परिवर्त्तन हो रहा है। यह प्रकृतिगत परिवर्त्तन सहजमें ही जाना जा सकता है।

मानसिक लक्षण—मन इन्द्रियोंका राजा है। वह इन्द्रियोंको परिचालित करता है ; इच्छा, अनुभूति और विचार करनेकी प्रणाली

प्रभृति इसमें सम्मिलित रहती है। मनकी क्रिया किसी उद्देश्यसे होती है, पर प्रकृतिकी क्रिया आप-से-आप होती है ; थोड़ा ध्यान देनेसे ही इनका अन्तर स्पष्ट मालूम हो जाता है।

शारीरिक लक्षण—शारीरिक लक्षण वे हैं, जो वाह्य शरीरपर प्रकट होते हैं। जैसे—शरीरका गर्म हो जाना, दाने निकल आना, दर्द होना, सूजन, प्रदाह इत्यादि।

अब किसी भी रोगमें ये तीनों परिवर्त्तन अवश्य दिखाई देते हैं। कितते ही हँसमुख रोगी चिड़चिड़े हो जाते हैं—प्रकृतिमें परिवर्त्तन। किसी स्थानपर स्थिर नहीं रहा जाता, नमक खानेकी बहुत इच्छा, शराब पीनेकी इच्छा प्रभृति मानसिक परिवर्त्तन। शरीरपर नाना प्रकारके उद्भेद, ताप, शोथ प्रभृति हो जाना—शारीरिक लक्षण। ये सभी परिवर्त्तन करनेकी शक्ति औषधमें भी रहती है। अतएव, तीनों ही लक्षण ग्रहणकर, तीनों ही प्रकट करनेवाली औषधका चुनाव करना पड़ता है ; परन्तु इन प्रकृतिगत लक्षणोंको भी लोग मानसिक लक्षणमें ही परिणत कर लेते हैं। इसी मानसिक और शारीरिक लक्षणकी ही बात अधिकतर प्रचलित है।

[२१३]

यदि मानसिक और प्रकृतिगत लक्षणोंपर ध्यान न दिया जाये ?

इसीलिये हमलोग कभी भी सम-लक्षणके अनुसार प्रकृतिकी तरह रोग आरोग्य न कर सकेंगे ; यदि हमलोग हरेक रोगमें, यहाँतक कि नयी बीमरोमें भी, अन्यान्य लक्षणोंके साथ मन और प्रकृतिके परिवर्त्तनोंपर ध्यान नहीं देंगे तथा रोगीको कष्ट दूर करनेके लिये, औषधियोंमेंसे ऐसी एक रोग उत्पन्न करनेवाली शक्ति न ढूंढ़ निकालेंगे, जो रोगके अन्यान्य

लक्षणोंके सदृश ही मन और प्रकृतिके परिवर्त्तनकी भी वैसी ही अवस्था न उत्पन्न कर सकी हो।

खुलासा—इस सूत्रमें हैनिमैन यही बता रहे हैं, कि किसी भी रोगको आरोग्य करनेके लिये रोगीकी मानसिक तथा प्रकृतिगत अवस्थाका परिवर्त्तन और शारीरिक लक्षण सभी ग्रहणकर, ठीक वैसी ही सदृश लक्षण पैदा करनेवाली दवा खोज निकालनी होगी अर्थात् वैसी ही दवाका प्रयोग करना होगा, जो वैसे ही शारीरिक, मानसिक और प्रकृतिगत लक्षण पैदा कर सके; यदि हमलोग प्राकृतिक और मानसिक लक्षणोंपर ध्यान न देंगे, तो समुचित औषधका चुनाव न कर सकेंगे और रोग भी कदापि आरोग्य नहीं होगा।

[२१४]

मानसिक रोग कैसे आरोग्य किये जा सकते हैं।

मानसिक रोगोंके आरोग्यके सम्बन्धमें जो कुछ उपदेश मुझे देना है, वह बहुत थोड़े शब्दोंमें ही दिया जा सकता है; क्योंकि वे भी उसी तरह आरोग्य किये जाते हैं, जिस तरह अन्यान्य रोग अर्थात् वे भी ऐसी ही दवासे आरोग्य किये जाते हैं, जो स्वस्थ मानव-शरीरपर और मनपर वैसे ही लक्षण उत्पन्न कर सकती है। सम्मुखस्थ रोगसे जहाँतक सदृश हो, वैसे ही सम-लक्षण पैदा करनेवाले औषधसे ही यह कार्य हो सकता है; उनका आरोग्य और किसी भी प्रणालीसे नहीं हो सकता।

खुलासा—मानसिक व्याधियोंके आरोग्यके सम्बन्धमें कुछ विशेष नियम नहीं हैं। वे भी उसी नियम या प्रणालीसे आरोग्य होती है, जिस प्रकारसे अन्य रोग अर्थात् समस्त मानसिक और शारीरिक लक्षण ग्रहणकर रोगका पूरा चित्र लेने बाद वैसी ही दवा चुनकर देनी चाहिये,

जिसके स्वस्थ शरीरपर अन्य दवाओंकी अपेक्षा अधिक सदृश-लक्षण उत्पन्न किये हों।

[२१५]

मानसिक और चित्तके आवेगवाले रोग क्या है?

ये मानसिक और चित्तावेग अथवा भावना-सम्बन्धी जो रोग कहे जाते हैं, वे शारीरिक रोगके सिवा और कुछ नहीं हैं, इनमें मन और प्रकृतिके विकारके लक्षण बढ़े रहते हैं और शारीरिक लक्षण घटते जाते हैं (कुछ-न-कुछ तेजीसे) यहाँतक कि अन्तमें एकांगी लक्षण स्पष्ट प्रकट हो जाते हैं, मानो ये मन और प्रकृतिमें छिपी रहनेवाली एक अदृश्य बीमारी हैं इत्यादि।

खुलासा—ऊपर कहा जा चुका है, कि मन और शरीरका अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतएव, मानसिक रोग होनेपर जिस तरह शारीरिक और मानसिक दोनों ही लक्षण प्रकट होते हैं, उसी तरह शारीरिक रोग होनेपर शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकट होते हैं। यह है, अवश्य, परन्तु मन या चित्तका रोग होनेपर, जो शारीरिक लक्षण प्रकट होते हैं, वे घटते जाते हैं और मानसिक रोग बढ़ते जाते हैं, होते-होते ऐसा हो जाता है, मानो उनमें बाहरी शारीरका कोई लक्षण ही नहीं है और वे न दिखाई देनेवाली मन या चित्तकी ही सूक्ष्म व्याधियाँ हैं; परन्तु इससे ऐसा न समझ लेना चाहिये, कि मानसिक व्याधियोंमें शारीरिक लक्षण पैदा ही नहीं होते। होते जरूर हैं, पर वे समय पाकर घटते जाते हैं और मानसिक व्याधि बढ़ती जाती है; यही बात आगे और भी खुलासा बताते हैं।

[२१६]

क्या शारीरिक रोग परिवर्त्तित होकर मानसिक रोगमें परिणत हो सकता है ?

ऐसे रोगी भी कम नहीं मिलते, जिनमें शारीरिक रोग कहलानेवाली बीमारियाँ, जिनके मारात्मक होनेका भय रहता है, जैसे—फेफड़ेमें पीव पैदा हो जाना, आवश्यक भीतरी अंशोंका क्षय या कोई दूसरी उग्र बीमारी, जैसे—सूतिका-गृहका रोग प्रभृति उन्मादमें या एक प्रकारकी चित्तोन्मत्ततामें या पागलपनमें, पूर्वके शारीरिक लक्षणोंकी वृद्धिके कारण परिवर्त्तित हो जाते हैं। इस तरह शारीरिक लक्षण अपनी भयंकरता गँवा बैठते हैं। या तो वे सर्वथा मिट जाते हैं और पूर्ण स्वास्थ्य बहाल हो जाता है और या उनकी मौजूदगी इतनी धुँधली पड़ जाती है कि उन्हें कोई बहुत ही सूक्ष्मदर्शी और कुशाग्र-बुद्धि चिकित्सक माप सकता है। इस तरह वे एकांगी रोगके रूपमें बदल जाते हैं अर्थात् वे स्थानीय रोगका रूप धारण कर लेते हैं। अबतक जो मानसिक लक्षण अत्यन्त नगण्य थे, वे अब प्रधान लक्षण बन जाते हैं और बहुत बड़ी हदतक, शारीरिक लक्षणोंका स्थान ले लेते हैं। शारीरिक लक्षणोंकी उग्रता दब जाती है। संक्षेपमें यों कहना चाहिये कि उग्रतर शारीरिक लक्षण आध्यात्मिक या मानसिक रोगके रूपमें परिवर्त्तित हो जाते हैं। शरीर-रचना विज्ञानवेत्ता, अपने कैंची और चाकूकी सहायतासे इन परिवर्त्तनोंके रहस्यको आज दिनतक समझ नहीं सके और आगे भी कभी समझ नहीं सकेंगे।

खुलासा—इस सूत्रमें हैनिमैनने उदाहरणके साथ मानसिक रोगमें किस तरह परिवर्त्तन होता है, यह बताया है। होता यह है, कि शरीरमें जब कोई तेज बीमारी होती है, तब मन तथा प्रकृतिसे बाह्य शरीरका सम्बन्ध रहनेके कारण उसका प्रभाव मनपर जा पहुँचता है। यदि

बीमारी बहुत तेज हुई, तो मानसिक लक्षण और भी तेज प्रकट होते हैं। जैसे—तेज बुखार होनेपर रोगी प्रलाप करने लगता है। इसी तरह फेफड़ेमें पीव होना, सूतिका रोगका बहुत बढ़ जाना प्रभृति कई ऐसी बीमारियाँ हैं, जिनका प्रभाव मस्तिष्कपर अधिक होता है। यह अवस्था यहाँतक जा पहुँचती है, कि वह उन्मादमें परिणत हो जाती है, व्याधि-शंका रोग हो जाता है या प्रचंड चित्तभ्रंश हो जाता है। जहाँ ये तेज रोग परिवर्त्तित होकर मानसिक रोग हुए, वहाँ शारीरिक लक्षण घटने आरम्भ हो गये। ज्यों-ज्यों मानसिक रोग बढ़ता जायगा, त्यों-त्यों शारीरिक रोग घटता जायगा। अन्तमें एक ऐसी अवस्था आ जाती है, कि रोगी उन्मादग्रस्त है, पर उसका शरीर मोटा-ताजा और रोगहीन-जैसा मालूम होता है। मतलब यह निकलता है, कि मानसिक रोग शारीरिक रोगपर अपना अधिकार जमा लेता है और उसे बढ़ानेके बदले आप ही फलता-फूलता है। दूसरी बात यह है कि यदि कोई शारीरिक लक्षण रह भी जाता है, तो वह इतना छिपा हुआ और सूक्ष्म भावसे रहता है, कि बहुत ही भीतर प्रवेश करनेवाली जिस चिकित्सककी बुद्धि है, होगी, वही उसका पता लगा सकेगा। इसी तरह बढ़ते-बढ़ते वह रोग एकांगी मानसिक रोगमें परिणत हो जाता है, तब कुछ स्थानीय लक्षण प्रकट होते हैं। अर्थात् अब शारीरिक विकार उसी जगह केन्द्रित हो गया। उधर मानसिक लक्षणोंकी उग्रता बढ़ जाती है।

[२१७]

मानसिक रोगवाली अवस्थाके सम्पूर्ण लक्षण कैसे लिये जायें ?

ऐसी बीमारियोंमें, हमें बहुत ही सतर्क रहकर, सारी समस्याको समझ लेना चाहिये। अर्थात् हमें रोगीके शारीरिक लक्षणों, और—निश्चय ही विशेष रूपसे—उन प्रधान और खास लक्षणोंको भी समझ

लेना चाहिये, जो पहलेसे ही, रोगीके मन और उसकी प्रवृत्तियोंपर प्रमुख रूपसे छाये हुए हैं। इन शारीरिक और मानसिक लक्षणोंकी पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त किये विना रोगका समूल उन्मूलन न होगा और न हम किसी ऐसी औषधका निर्वाचन कर सकेंगे, जो उसी तरहके सादृश्य लक्षण पैदा करनेमें समर्थ हो। अर्थात् हमें ऐसी सुपरीक्षित और विशुद्धताका निर्वाचन करना चाहिये, जो रोगीके शरीरमें जाकर, वैसे ही शारीरिक—मुख्यतः मानसिक लक्षण और भावुकता पैदा कर सके, जैसी रोगीके शरीरके भीतर मौजूद है।

खुलासा—यह तो ठीक ही है, कि किसी भी रोगकी चिकित्सा करनेके लिये समस्त मानसिक और शारीरिक लक्षण ग्रहण करने पड़ते हैं; परन्तु खासकर मानसिक रोगकी चिकित्सा करते समय तो वे समस्त पूर्वापर घटनाएँ जान लेनी चाहियें, जिनका शरीर और मन तथा प्रकृतिसे सम्बन्ध है। इस समय बहुत सावधानता-पूर्वक ये सब लक्षण ग्रहण करने होंगे। अत्यन्त तीव्र दृष्टिवाले चिकित्सकको भी शारीरिक लक्षणकी जाँच कर लेनी चाहिये; क्योंकि मानसिक लक्षण तो प्रधान और स्पष्ट ही रहते हैं। इसके बाद इन्हीं लक्षणोंके सहारे, जिस दवाके स्वस्थ शरीरपर प्रकट हुए लक्षणोंसे, रोगीके अधिकांश लक्षण मिलते हों, उसी दवाका प्रयोग करना चाहिये। सारांश यह कि जबतक दोनों प्रकारके लक्षण प्राप्त नहीं हो जाते, तबतक पूरे-पूर लक्षण नहीं मिलते और जबतक रोगीकी शारीरिक और मानसिक प्रतिमूर्त्ति तैयार नहीं हो जाती, तबतक उपयुक्त दवाका चुनाव ठीक-ठीक नहीं हो सकता और रोग जड़से आरोग्य नहीं हो सकता। यही कारण है कि होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणालीके आविष्कर्त्ता महात्मा हैनिमैनने यह नियम निर्द्धारित किया है, कि पुराने रोगकी चिकित्सा करते समय रोगीके मानसिक, शारीरिक और प्रकृतिगत—सभी प्रकारके लक्षणोंपर सतर्कतापूर्वक विचार करना चाहिये।

[२१८]

इस लक्षण-समूहमें प्रधानता किस लक्षणकी रहेगी ?

इस लक्षण-समूहमें, महत्त्वकी दृष्टिसे, प्रथम स्थान उस विशुद्ध वर्णनको मिलना और दिया जाना चाहिये, जिसका सम्बन्ध पहलेके शारीरिक रोगसे है। अर्थात् किस तरह रोग बिगड़कर एकांगी बने और मल तथा प्रवृत्तियाँ विकारग्रस्त हुईं। यह विशुद्ध वर्णन रोगीके परिजनों, बन्धुओं और मित्रोंसे प्राप्त हो सकता है।

खुलासा—सबसे पहली बात यह है, कि कोई भी मानसिक रोग हो, उसके पूर्वमें कोई-न-कोई शारीरिक रोग अवश्य ही होगा। यह बात चिकित्सकको अवश्य मालुम रहनी चाहिये, कि पहले किन लक्षणों-वाला शारीरिक रोग हुआ था, जो बढ़ता-बढ़ता ऐसी अवस्था आ गयी, कि एकांगी रोग—मन और स्वभावके रोगमें परिणत हो गया। यह बात शायद रोगी न बता सके, पर उसकी सेवा करनेवाले या बन्धु-बान्धवोंसे मालुम हो जायगी। इस सूत्रके भीतरका सारांश यह है, कि मानसिक व्याधि, शारीरिक व्याधिसे ही उत्पन्न होती है। वह कोई स्वतंत्र या अलग बीमारी नहीं है।

[२१९]

ऐसे शारीरिक रोगकी स्थिति कैसे मालूम होती है ?

शारीरिक रोगके पूर्ववर्त्ती लक्षणों और उसके वर्त्तमान अवशेषकी, चाहे वे अब कितने ही धुंधले पड़ गये हों (परन्तु वे कभी-कभी प्रमुख रूप धारण कर लेते हैं, जब मानसिक रोग घट या दब जाता है)। तुलना करनेसे यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है शारीरिक रोगके पूर्ववर्त्ती लक्षण अब भी विद्यमान हैं—चाहे वे धुंधले ही हैं।

खुलासा—शारीरिक रोगकी स्थिति मालूम करनेका एक तरीका तो यह हुआ कि—पहले क्या बीमारी हुई थी, इसका इतिहास रोगीके बन्धु-बान्धवोंसे पूछ लिया जाये। उस वर्णनपर ध्यान देने और वर्त्तमान अवस्थासे तुलना करनेपर मालूम हो जायगा कि पहले क्या लक्षण थे और अब क्या लक्षण हैं तथा शारीरिक रोगका कितना अंश अभी भी ऐसा बाकी पड़ा हुआ है, जो मानसिक रोगमें परिवर्त्तन नहीं हुआ है। यह लक्षण जाननेका एक तरीका और भी है अर्थात् बीच-बीचमें मानसिक रोग जब कुछ दिनोंके लिये विश्राम लेता है या दब जाता है, तब यह शारीरिक रोग स्पष्ट हो पड़ता है। इस अवस्थामें भी शारीरिक रोगका पता लग जाता है और मालूम हो जाता है, कि यह किस अवस्थामें अबतक वर्त्तमान है।

[२२०]

यदि मानसिक रोग कुछ दिनोंका हो, तो कैसी दवा देनी चाहिये?

इन सब लक्षणोंमें, रोगीके बन्धुओं द्वारा वर्णित तथा स्वयं चिकित्सक द्वारा अनुभव की हुई मन तथा प्रकृतिकी अवस्था मिला देनी चाहिये। इस तरह रोगीकी प्रतिमूर्त्ति पूरी तरह अंकित हो जाती है। अब यदि इस रोगक सम-लक्षण-सम्पन्न (होमियोपैथिक) औषध द्वारा दूर करना हो, तो हमें सोरा-नाशक औषध-सूचीमेंसे किसी ऐसी सिद्ध औषधका निर्वाचन करना चाहिये, जो रोगीके बताये शारीरिक और मानसिक—विशेषतः मानसिक लक्षणोंसे मिलते-जुलते लक्षण स्पष्ट रूपसे पैदा कर सकती है, बशर्ते कि यह मानसिक रोग कुछ दिनोंतक कायम रहा हो।

खुलासा—मानसिक रोग होनेसे पहले शारीरिक रोगके जो लक्षण प्रकट हुए थे, तथा, मानसिक रोग भरपूर बढ़ जानेपर जो बच रहे हैं,

उन सबका पूरा-पूरा लक्षण संग्रह करना चाहिये। उसमें रोगके बन्धु-वान्धवोंसे प्राप्त वर्णनको सम्मिलित कर लेना चाहिये। इस तरह मिलान करनेपर रोगका पूरा-पूरा चित्र तैयार हो जायगा। यदि यह मानसिक रोग कुछ अधिक दिनोंका हो, तो सोरा-विषनाशक दवाओंमेंसे कोई ऐसी दवा चुनकर प्रयोग करनी चाहिये, जिसके शारीरिक और विशेषकर मानसिक लक्षण रोगीके लक्षणोंके साथ मिलते हों। यही इन रोगोंको आरोग्य करनेकी प्रणाली है।

[२२१]

यदि मानसिक विकार एकाएक पैदा हो जाये, तो क्या करना चाहिये।

पर यदि मानसिक विकार या उन्माद (भय, चिन्ता या अत्यधिक शराब आदिके अपव्यवहारके कारण (रोगीके साधारणतः शान्त शरीरमें, एकाएक नये रोगकी भाँति, पैदा हो गया हो ; यद्यपि यह प्रायः सदा ही भीतरी सोराके कारण ही आगकी भभककी तरह उत्पन्न होते हैं और जब ऐसा रोग तरुण रूपमें आया हो, तो तुरन्त ही सोरा-दोषनाशक दवाका प्रयोग करना उचित नहीं है। बल्कि पहले दूसरी श्रेणीकी उन दवाओंसे सम-लक्षण-सम्पन्न अन्य दवा चुननी चाहिये, जिनकी सतत परीक्षा हो चुकी है (जैसे—ऐकोनाइट, वेलेडोना, स्ट्रैमोनियम, हायो-सायमस, मर्करी प्रभृति) और उनकी उच्च-शक्ति, सदृश-विधानके अनुसार, क्षुद्र मात्रामें प्रयोग करनी चाहिये, जिसके कि सोरा दब जाये और पूर्ववर्त्ती सुप्तावस्थामें जा पहुँचे, जिसमें रोगी अपनेको स्वस्थकी तरह ही अनुभव करता है।

खुलासा—यदि डरने, बहुत क्रोध करने या बहुत ज्यादा शराब आदि पीनेकी वजहसे, चित्त-विभ्रम या उन्माद रोग पैदा हो जाये और उससे

रोगीकी स्वभाविक शान्त अवस्था इस तरह नष्ट हो जाये, मानो उसको कोई नयी बीमारी हो गयी हो, तो इसको पुरानी बीमारी समझकर नये रोगमें ही इसकी गणना करनी चाहिये और आरम्भमें ही सोरा-नाशक औषधका प्रयोग न करना चाहिये ; बल्कि ऐकोनाइट, बेलेडोना प्रभृति अन्य श्रेणीकी, वैसी दवा चुनकर देनी चाहिये, जिससे लक्षण मिलते हों और जिसकी होमियोपैथिक ढंगसे अच्छी तरह परीक्षा हो चुकी हो ; पर हैनिमैनका इस ढंगका उपदेश देनेका कारण क्या है ? जब सोरासे ही ये दोष उत्पन्न होते हैं, तब एकदम सोरा-नाशक औषधका प्रयोग ही क्यों न किया जाये ?

इसका कारण यह है—(क) रोगकी प्रकृतिके अनुसार उसकी चिकित्सा करनी होगी। (ख) भय, क्रोध प्रभृतिके कारण उत्पन्न रोगमें तीव्रावस्था अवश्य रहती है, पर उनकी यह तेजी गम्भीर नहीं होती। अतएव, वैसी ही औषधका प्रयोग करना होगा, जिनकी क्रिया सम-लक्षण-सम्पन्न तो अवश्य हो, पर अत्यन्त गम्भीर न हो ; क्योंकि अल्पकालकी क्रियावाले रोगमें गम्भीर क्रियावाली दवा देना सदृश प्रयोग नहीं होता। इससे रोगकी वृद्धि हो जाती है और रोगी तकलीफमें जा पड़ता है। इस समय ऐसी दवाका प्रयोग होना चाहिये, जो उस जागे हुए सोराको दबा दे और रोगीको आराम मालुम हो। इसके बाद गम्भीरतर क्रियावाली दवा देकर रोगको जड़से आरोग्य करना होगा। यही बात आगे बताते हैं।

[२२२]

पर क्या इस तरह नये रोगसे आरोग्य होनेवाला रोगी पूर्ण आरोग्य कहा जा सकता है।

परन्तु ऐसे रोगीको, जिसके तरुण मानसिक रोगकी चिकित्सा, सोरानाशक औषधियोंकी बजाय अन्य साधारण सम-लक्षण-सम्पन्न औषधों

द्वारा हुई हो, कभी भी पूर्णतः आरोग्य हुआ नहीं समझना चाहिये। इसके विपरीत, उसे पूर्णतः रोगमुक्त बनानेके लिये, तत्काल सोरा-नाशक चिकित्सा शुरू कर देनी चाहिये।[1] कारण यह है कि यह सोरा जो पहले ही पुराना पड़ चुका है—अब दब गया है—और अब नये सिरेसे उपद्रव लानेके लिये तैयार है। यदि उसकी अविलम्ब चिकित्सा होगी, तो वह इसी तरहका नया आक्रमण नहीं कर सकेगा, बशर्ते कि रोगी खान-पानमें सावधान रहे और वह बताती हुई औषधका व्यवहार करता रहे।

खुलासा—यदि ऊपर बताये अनुसार सोरा-विष-नाशक दवाका प्रयोग न कर, दूसरी श्रेणीकी दवा देकर रोगी आरोग्य कर दिया जाये, तो यह कदापि नहीं समझ लेना चाहिये, कि रोग सम्पूर्णतया आरोग्य हो गया ; क्योंकि रोग-विषके रूपमें सोरा तो अभी भीतर छिपा बैठा ही है। जबतक यह सोरा-विष एकदम नहीं निकाल दिया जाता, तबतक यह मान लेना कि रोगी आरोग्य हो गया, एकदम गलत है। इसलिये, विना किसी तरहका समय नष्ट किये, ऐसी दवाका प्रयोग बराबर करते रहना चाहिये, जिससे वह विष ही नष्ट हो जाये। ऐसी अवस्थामें रोगी पथ्यापथ्यके नियम मानकर चलता रहेगा, तो रोग कभी लौटकर न आयेगा।

---

१. ऐसा बहुत ही कम बार होता है कि मानसिक रोग सहसा मिट जायें (क्योंकि फिर भीतरी रोग-प्रवणता भयंकर शारीरिक लक्षणोंके रूपमें प्रकट होती है); हम देखते हैं कि ऐलोपैथिक ढंगसे चिकित्सा देनेवाले किसी भी पागलखानेसे आजतक एक भी पागल स्थायी रूपसे रोगमुक्त होकर नहीं लौटा। इतनेपर भी ऐलोपैथिक चिकित्सक अपनी प्रणालीको मौलिक चिकित्सा-प्रणाली कहते हैं। इनके विपरीत होमियोपैथिक चिकित्सा ऐसे असंख्य अभागोंको पूर्ण मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान कर सकी है और उन्हें अपने मित्रोंकी सुखद संगति और सांसारिक जीवनमें वापस ला सकी है।

[२२३]

यदि सोरा-विष-नाशक चिकित्सा न हो, तो क्या परिणाम होगा ?

पर यदि सोरा-विष-नाशक चिकित्सा न की जाये, तो हमलोगोंको निश्चय रूपसे यह जान रखना चाहिये कि जिन कारणोंसे उन्माद आदिका आक्रमण हुआ था, उनसे भी हल्के कारणसे जल्द ही नया, अधिक समयतक स्थायी रहनेवाला और तेज आक्रमण होगा। अब सोरा अपनी पूरी ताकतसे उभड़ेगा और सामयिक अथवा लगातार मानसिक विकारके रूपमें प्रकट होगा, जिसका उस समय सोरा-नाशक दवाओंसे आरोग्य करना और भी कठिन होगा।

खुलासा—यदि उन्माद प्रभृति मानसिक रोगोंको दूर करनेके बाद, सोरा-नाशक चिकित्सा न की गई, तो उसका परिणाम यह होगा, कि भीतर छिपा हुआ सोरा बाहर निकले बिना कदापि न रहेगा। इस बार जब वह प्रकट होगा, तो नवीन वेषमें तथा बहुत अधिक समयतक तथा और भी भीषण आकारमें प्रकट होगा। इसका परिणाम यह होगा, कि या तो रह-रहकर मानसिक रोग पैदा होंगे अथवा लगातार बनी रहनेवाली कोई मानसिक विशृङ्खलता पैदा हो जायगी। इसका सोरा-नाशक दवाओंसे आरोग्य होना और भी कठिनतर होगा।

[२२४]

मानसिक रोगकी बीमारियाँ जाँचनेका क्या उपाय है ?

यदि यह मानसिक रोग पूर्ण विकसित न हुआ हो और यदि अब भी यह सन्देह हो, कि यह वास्तवमें किसी शारीरिक रोगसे उत्पन्न हुआ है या कुशिक्षा, बुरी आदतें, चरित-दोष, मनकी बातपर ध्यान न देना,

अन्धविश्वास या अज्ञान आदिके कारण उत्पन्न हुआ है, तो इन विषयोंका निर्णय करनेका तरीका यह है, कि यदि इनमेंसे किसी कारणसे यह रोग हुआ होगा, तो बुद्धिमत्तापूर्ण मित्रताभरे अनुरोध, सान्त्वनापूर्ण तर्क, भरपूर सहृदय प्रतिवाद और ज्ञानपूर्ण उपदेशों द्वारा घट जायगा। परन्तु नैतिक या मानसिक रोग, जो शारीरिक विकारपर निर्भर करता होगा, तेजीसे बढ़ जायगा। उदास रोगी और भी उदास, झगड़ालु, असान्त्वनीय तथा अल्पभाषी हो जायगा और मूर्ख बकवादी और भी मूर्ख हो जायगा।

खुलासा—इस सूत्रका सारांश यह है, कि यदि यह ठीक-ठीक निर्णय न हो जाये कि यह मानसिक व्याधि क्यों हुई है? यह पूर्ण विकसित न हो तथा यह पता न लगे कि यह शारीरिक कारणसे उत्पन्न हुई है अथवा यह कुशिक्षा, बुरे अभ्यास, व्यभिचार इत्यादि दूषित चरित्र या मनका ठीक-ठीक गठन न होना आदि कारण या अज्ञानताके कारण पैदा हो गयी है, तो आगे बताये उपायसे इसका निर्णय करना चाहिये अर्थात् रोगीको समझाने-बुझाने, प्रतिवाद करने, उपदेश आदि देनेपर यदि वह घटे या उसमें कुछ सुधार हो जाये, तो समझना चाहिये कि यह कुशिक्षा, बदचलनी प्रभृतिके कारण उत्पन्न हुई है और यदि इन उपायों द्वारा बढ़ जाये और रोगी अधिक चिड़चिड़ा, अज्ञानतापूर्ण कार्य करनेवाला तथा और भी विशेष मूर्खता करनेवाला हो जाये, तो समझना चाहिये कि इसका कारण शारीरिक है।

[२२५

क्या इन मानसिक व्याधियोंसे कभी स्वास्थ्य बहुत नष्ट भी होती है?

अभी जैसा कहा जा चुका है, ऐसे भी कितने ही आवेगमय रोग हैं, जो केवल शारीरिक कारणोंसे ही इतने विकसित नहीं हो पड़ते हैं, बल्कि

जो विपरीत ढंगसे, शरीरके कुछ अस्वस्थ हो जानेपर ही पैदा होते हैं, तथा लगातार चिन्ता, कष्ट, तरद्दुद, भूल, नाना प्रकारके भय और आशंकाके कारण पैदा होते हैं। इस तरहके आवेगमय रोग समय पाकर स्वास्थ्यको बहुत अधिक खराब कर देते हैं।

खुलासा—दुश्चिन्ता, उत्कण्ठा, भय प्रभृति भी ऐसे कारण हैं, जिनका आवेग होनेपर ये मानसिक रोग पैदा हो जाते हैं। इनका कारण केवल शारीरिक रोग ही नहीं रहता। इनसे स्वास्थ्य बहुत अधिक बिगड़ जाता है।

कारण यह है कि इन मानसिक आवेगोंसे वातनाड़ियों और रक्त-संचारकी स्वाभाविक क्रियामें अन्तर आता है और फिर उस अन्तरकी प्रतिक्रिया सारे शरीरपर या मुख्यतः किसी एक अंगपर होती है। जैसे अधिक चिन्ताके कारण मस्तिष्क-विकार आते हैं, मन्दाग्नि और अनिद्रा आती है। क्रोध करनेसे हृत्कम्प और मानसिक विकार आते हैं। भयसे उन्माद आ जाता है।

[२२६]

ऐसे मानसिक रोगोंको आरोग्य करनेका तरीका क्या है ?

केवल ऐसे ही मानसिक रोग, जो मनसे उत्पन्न होते हैं और मनके द्वारा ही बादमें जिनकी रक्षा होती है, यदि थोड़े दिनोंके हों और उन्होंने अभी शारीरिक अवस्थापर बहुत अधिक बुरा प्रभाव न डाला हो, तो वे मानसिक औषधियोंसे, जैसे ढाढ़स दिलाने, सरल उपदेश तथा कभी-कभी खूब छिपे मित्रतापूर्ण समझाव बुझाव रूपसे प्रवञ्चना द्वारा बहुत तेजीसे मनको, स्वस्थ अवस्थामें परिवर्त्तित किया जा सकता है और यथोचित खान-पान और नियम मानकर चलनेसे शरीर भी स्वस्थ हो जाता है।

खुलासा—सिर्फ ऐसे ही मानसिक रोग, जो केवल भय, आशंका, उद्वेग आदि मानसिक कारणोंसे उत्पन्न हुए हों तथा मनमें ही वे बैठे हुए हैं, जिनका अभी शरीरपर आक्रमण न हुआ हो ; यदि वे थोड़े दिनोंके हों, तो उपदेश, ढाढ़स बँधाने, मित्रतापूर्ण अनुरोध, रोगी समझ न सके—इस तरहके कार्यों द्वारा उसका कारण हटाना प्रभृति प्रक्रियाओंसे आरोग्य हो सकते हैं। साथ ही उन्हें खान-पानके नियम आदि भी मानकर चलना पड़ेगा।

[२२७]

इन मानसिक रोगोंकी प्रधान शक्ति क्या है ?

पर इन सब रोगोंका भी मूल कारण सोरा-विष ही है, जो अबतक पूर्ण रूपसे विकसित नहीं हो पाया था। अतएव, ऐसे आरोग्य प्राप्त रोगीपर दुबारा, फिर ऐसे ही रोगका हमला न हो जाये, इसलिये उसकी सोरा-दोष-नाशक चिकित्सा करनी ही पड़ेगी।

खुलासा—हैनिमैन कहते हैं, कि यह भय, उद्वेग, दुश्चिन्ता प्रभृति अधिक मात्रामें पैदा हो जाना और उनका मनपर आक्रमण होना, मन द्वारा ही इन आवेगमय रोगोंका पोषण होना, इनके भी मूल रोग-बीज सोरा ही वर्त्तमान रहता है। अतएव, ऊपर बताये उपायोंके यदि रोगी आरोग्य हो गया-सा मालूम हो, निश्चिन्त हो न बैठ जाना चाहिये। इसके बाद ही उसकी सोरा-दोष-नाशक चिकित्सा आरम्भ कर देना चाहिये, ताकि ऐसे मानसिक रोगोंका उसपर दुबारा आक्रमण न हो पाये। रोग शान्त हो जानेके बाद, रोगीके पहले और वर्त्तमान लक्षणोंका इकट्ठा करके विचार करना चाहिये और जो औषध उपयुक्त तथा सम-लक्षण-सम्पन्न नजर आये, वही देनी चाहिये। यदि यह औषध विफल हो जाये, तो सारे लक्षणोंपर पुनर्विचार करना चाहिये।

[२२८]

मानसिक रोगके रोगियोंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये ?

शारीरिक व्याधियोंसे पैदा होनेवाले मानसिक और आवेगमय रोग केवल सम-लक्षण-सम्पन्न औषध तथा सावधानता-पूर्वक नियमबद्ध की हुई जीवन-यापनकी प्रणालीसे ही आरोग्य हो सकते हैं। इसके लिये रोगीके पास रहनेवालेको तथा चिकित्सकको रोगीके सामने समुचित मानसिक बलका प्रदर्शन करना चाहिये, ताकि रोगीके मनको अतिरिक्त बल और ढाढ़स मिले। प्रचण्ड उन्माद रोगीके सम्मुख शान्त-साहसिकता और सौम्य-सुदृढ़ संकल्प; असन्तोषभरे, झगड़ालु, कातरोक्तिवाले रोगीके सामने समवेदना दिखलानेवाली भाव-भंगी; अज्ञानतापूर्ण बकवादीके सामने एकदम अमनोयोगी न होकर चुप रहना, विरक्त करनेवाले और घृणाजनक कार्य करनेवाले रोगीके सम्मुख वैसी बतचीतपर बिलकुल ध्यान न देना और पूर्ण उदासीन रहना चाहिये। ऐसा करनेसे रोगीकी मानसिक अवस्था बदल जायगी।

हमलोगोंको केवल इस बातकी चेष्टा करनी चाहिये, कि आस-पासकी चीजोंको रोगी नष्ट-भ्रष्ट न कर दे, उसके कार्योंके लिये रोगीको धिक्कारना न चाहिये और ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि किसी प्रकारकी शारीरिक सजा अथवा कष्ट[1] देनेकी जरूरत भी न पड़े। यह कार्य बहुत सरलतापूर्वक हो सकता है; क्योंकि बल-प्रयोग, जिसका औषध खिलानेके लिये ही समर्थन किया जा सकता है, उसकी भी होमियोपैथीमें

---

१. हैनिमैनके मतसे ऐसे तेज उन्मादग्रस्त रोगी तथा कामोन्मादवालोंकी चिकित्सा, उनके लिये खासकर बनाये पागलखानोंमें ही हो सकती है, परिवारमें रखकर नहीं।

जरूरत नहीं होती ; क्योंकि उचित दवा सूक्ष्म मात्राके कारण स्वादमें कभी बड़बड़ी नहीं पहुँचती। इसलिये विना रोगीको बताये, उसके पीनेके पानीके साथ दी जा सकती है। इसलिये किसी प्रकारके बल-प्रयोगकी जरूरत ही नहीं पड़ती।

खुलासा—इस सूत्रके कहनेका तात्पर्य यह है कि उन्माद रोगियोंके प्रति व्यवहार और यह दिखाना है, कि उन्माद रोगियोंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, जिससे उनकी बीमारी बढ़ न जाये। इसीलिये वे कहते हैं कि सम लक्षण-सम्पन्न होमियोपैथिक दवाओंके प्रयोगसे उनका रोग अवश्य आरोग्य होता है, परन्तु इसके साथ ही आरोग्यमें सहायक, उनके प्रति किया हुआ व्यवहार भी एक चीज है। अतएव, चिकित्सा तथा रोगीकी देख-रेख करनेवालोंको बहुत सावधान रहना चाहिये। अब उनके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये—यह बताते हुए वे कहते हैं, कि यदि रोगी बहुत ही उन्मत्त और प्रचण्ड हो, तो उसके सामने बहुत ही शान्त और दृढ़ भाव दिखाना चाहिये। यदि रोगी रोता-कलपता हो, कातर तरुण भाव प्रकट करता हो, तो उसके साथ सहानुभूतिक भाव दिखाना चाहिये। वृथाकी बकवाद करता हो, तो उसको ऐसा ही भाव दिखाना चाहिये, कि उसपर एकदम ध्यान है भी और नहीं भी है तथा चुप रहना चाहिये। यदि घृणाजनक बातें और व्यवहार करता है, तो उसके प्रति उदासीनता प्रकट करनी चाहिये। इससे यह होगा कि उसके मस्तिष्ककी उत्तेजना न बढ़ेगी ; उसे किसी तरह कष्ट देना, क्रोध दिखाना या तिरस्कार करना सर्वथा अनुचित है। ऐसे रोगियोंको दवा खिलाना बहुत ही कठिन होता है। इसीलिये उन्हें धर-पकड़कर या बिगड़कर दवा खिलानी पड़ती है ; परन्तु होमियोपैथिक दवाओंमें यह झंझट भी नहीं है, इसका प्रयोग तो आसानीसे पीनेके पानीके साथ हो सकता है।

[२२९]

रोगीसे कैसे व्यवहार करना चाहिये ?

इसके विपरीत, उनका प्रतिवाद करना, उनकी बातोंकी आग्रहसे व्याख्या करना अथवा बिगड़कर उनकी बातें काटना या संशोधन करना और कटु बातें कहना अथवा स्वयं ही डरकर उनके आगे झुक जाना, ऐसे रोगियोंके प्रति बिलकुल ही अनुचित है। मानसिक तथा आवेगपूर्ण रोगोंकी इस ढंगकी चिकित्सा नुकसान करनेवाली होती है। ऐसे रोगी जब उनके प्रति किये हुए तिरस्कार या छलको समझ लेते हैं, तो वे बहुत उत्तेजित हो जाते हैं और उनका रोग बहुत बढ़ जाता है। अतएव, **चिकित्सक तथा ऐसे रोगियोंकी सुश्रूषा करनेवालेको हमेशा यह भाव दिखानेका बहाना करना चाहिये, कि वे उसके तर्कोंको समझ रहे हैं और उसपर विश्वास करते हैं।**

उनकी धारणा और स्वभावके विरुद्ध रहनेवाले समस्त अशांत करनेवाले बाह्य प्रभावोंको यथासम्भव दूर कर रखना चाहिये। उनके विषादभरे प्राणपर किसी प्रकारके आमोद-प्रमोदका प्रभाव नहीं पहुँचता, कोई भी स्वास्थ्यप्रद चित्त-विनोद, किसी प्रकारका उपदेश, कोई भी बातचीत द्वारा शान्तकर प्रभाव, पुस्तक या अन्य पदार्थोंका प्रभाव उनपर नहीं पहुँचता ; क्योंकि रोगी शरीरमें आबद्ध, दुर्बल और क्षुब्ध आत्मापर न तो इनका प्रभाव पहुँचा सकता है और न ये बल प्रदान कर सकते हैं, जबतक कि उसका रोग आरोग्य न हो जाये। यह तभी होता है, जब शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा हो जाता है, तभी उनके मनकी शान्ति और सुख फिर लौट आता है।[१]

---

१. उन्माद-पीड़ितोंकी चिकित्सा घर या परिवारके अन्दर रहकर नहीं हो सकती। इसके लिये विशेष रूपसे आयोजित संस्थाओंकी जरूरत है।

खुलासा—इस समस्त सूत्रका तात्पर्य यह है, कि मानसिक रोगके कारण रोगीका मन इतना उत्तप्त रहता है, कि न तो उसपर कोई उपदेश, बातचीत, गाना-बजाना, शिक्षा प्रभृतिका प्रभाव पहुँचता है और न इससे उसे किसी तरहकी शान्ति ही मिलती है। रोगी अपने कष्टसे तड़पता रहता है, इस अवस्थामें उसके प्रति किये हुए तिरस्कार तथा छल-भरे कार्य यदि वह किसी तरह समझ पाता है, तो उसे भयानक कष्ट और उत्तेजना पैदा होकर उसका रोग बढ़ जाता है। अतएव, उसके साथ ऐसा ही व्यवहार करना चाहिये, जिसमें वह हमेशा शान्त रहे और उसके मस्तिष्कमें उत्तेजना पैदा न हो।

[२३०]

मानसिक तथा चित्तके आवेगमय रोगोंकी सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा किस प्रणाली द्वारा हो सकती है?

मानसिक तथा चित्तके आवेग-सम्बन्धी बहुत तरहके रोग हैं। यदि उनमेंसे प्रत्येकके लिये सोरा-दोष-नाशक दवाओंसे एक ऐसी दवा चुनी जाये, जिसके लक्षण, रोगीके शारीरिक और मानसिक लक्षणोंको लेकर जो चित्र अंकित किया जाता है, उस रोग-चित्रके सदृश हों, तो रोग बहुत जल्द आरोग्य हो सकता है; पर यह बहुत-सी दवाओंका ठीक-ठीक गुण मालूम रहने और वैसी सम-लक्षणवाली सबसे उपयुक्त दवाको खोज निकालनेपर निर्भर करता है; क्योंकि इस प्रकारके रोगियोंका चित्तका आवेग और मानसिक अवस्थाकी विशेषता अत्यन्त स्पष्ट तथा निर्भ्रान्त रूपसे दिखाई दे सकती है। अतएव, बहुत कम समयमें असाधारण लाभ दिखाई दे सकता है; परन्तु यही बात ऐलोपैथिक दवाओंकी अनुपयुक्त, बड़ी-बड़ी मात्राओंका बार-बार प्रयोगकर उसे मृत्युके मुँहमें पहुँचा देनेपर नहीं हो सकती। सच तो यह है कि बहुत दिनोंके

अनुभवके कारण मुझे पूरा-पूरा विश्वास है, कि चिकित्साकी अन्य समस्त प्रचलित प्रणालियोंसे तुलना करनेपर सम-लक्षण-सम्पन्न चिकित्सा-प्रणालीकी प्रधानता ही उन समस्त मानसिक या चित्तके आवेग-सम्बन्धी रोगोंपर जो शारीरिक व्याधियोंसे उत्पन्न होते हैं, वे विशेष उज्ज्वल भावसे दिखाई देती हैं।

खुलासा—इस सूत्रका तात्पर्य यह है, कि जिस तरह मानसिक या चित्तके आवेग-सम्बन्धी रोग बहुत तरहके होते हैं, उसी तरह दवाएँ भी बहुत तरहकी हैं। अतएव, लक्षण मिलाकर दवाका प्रयोग करनेपर रोग बहुत शीघ्र आरोग्य हो जाता है। विपरीत या असदृश लक्षणवाली बड़ी-बड़ी खुराकें पड़नेपर रोगी मृत्युके मुखमें जा पड़ता है। बहुत तरहकी परीक्षाओंसे ऐसा ही प्रमाणित हुआ है, कि इन रोगोंके लिये भी होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली ही सर्वश्रेठ है।

[२३१]

विरामशील रोग क्या है ?

विरामशील अर्थात् छूट-छूटकर होनेवाले रोग-विशेष ध्यान देने योग्य हैं। जैसे कि वे रोग, जो निश्चित समयपर बार-बार होते हैं, जिस तरह कि बहुत तरहके सविराम ज्वर तथा वे रोग, जो स्पष्टतः ज्वर नहीं हैं, पर सविराम ज्वरकी तरह रह-रहकर उत्पन्न होते हैं तथा और भी कितने ही रोग, जिनमें कि एक तरहकी रोगात्मक अवस्था अनिश्चित समयपर अन्य प्रकारकी अवस्थाके साथ पर्यायक्रमसे उत्पन्न होती है।

खुलासा—इस सूत्रमें हैनिमैनने रह-रहकर पैदा होनेवाले रोगोंके सम्बन्धमें आभास दिया है। इनके दो प्रभेद बताये हैं:—एक तो वे, जो सविराम ज्वर आदिकी तरह बँधे समयपर होते हैं और दूसरे वे, जो पर्यायक्रमसे अवस्था बदल-बदलकर प्रकट होते हैं। इनके पैदा होनेका

या दुबारा आक्रमण होनेका कोई बँधा समय नहीं रहता है। इस प्रकारकी व्याधियोंपर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है; क्योंकि इनका लक्षण समझना और चिकित्सामें औषधका प्रयोग कठिन होता है।

[२३२]

क्या ये पर्यायक्रमसे उत्पन्न होनेवाले सविराम रोग पुरानी बीमारीके अन्तर्गत हैं?

ये पर्यायक्रमसे उत्पन्न होनेवाले रोग भी संख्यामें अनेक[1] हैं। ये सब पुरानी बीमारीके अन्तर्गत ही हैं; ये एकमात्र सोराकी ही अभिव्यक्ति हैं। ये बहुत कम, पर कभी-कभी उपदंश-विषसे भी सम्मिलित

---

१. दो या तीन अवस्थाएँ पर्यायक्रमसे उत्पन्न हो सकती हैं। दुबारा पर्यायक्रमसे पैदा होनेवाले रोगमें पैरमें किसी तरहका दर्द लगातार हो सकता है। यह दर्द चक्षु-प्रदाह रोग दूर होनेपर होता है और ज्योंही आँखोंका प्रदाह आरोग्य होता है, त्योंही यह दर्द फिर पैदा हो जाता है। इसी तरह ऐंठन, अकड़न प्रभृति किसी शारीरिक रोग या शरीरके किसी अंशके रोगके बादमें पैदा हो सकते हैं। साधारण अस्वस्थतामें तिबारा पर्यायक्रमसे पैदा होनेवाली अवस्थामें स्वास्थ्यमें, सुधारक काल तथा शारीरिक और मानसिक शक्तियोंका अस्वाभाविक विकास दिखाई दे सकता है (जैसे—असाधारण प्रसन्नता, शरीरमें अस्वाभाविक तेज, आरामदायक भावकी अतिरिक्तता, असाधारण भूख प्रभृति हैं), पर इनके बाद एकाएक उदासी, निस्तेजता, असह्य व्याधिशंका, प्रकृतिमें गड़बड़ी, पाचन, नींद प्रभृतिमें गोलमाल पैदा हो जाता है, और इसके बाद ही स्वास्थ्य जैसा पहले खराब था, वह अवस्था आ जाती है। पर फिर ज्योंही नयी अवस्था पैदा होती है, त्योंही पहलेका कोई भी लक्षण नहीं रह जाता। किसी-किसी रोगमें ऐसा भी होता है, कि पूर्वका कुछ सामान्य चिह्न उस अवस्थामें भी जब दूसरी अवस्थाका आरम्भ हो जाता है—बना रह जाता है। कभी-कभी तो यह रोगावस्था एकदम विपरीत रहती है, जैसे कि उदासीका काल बीतनेपर घोर प्रसन्नता पैदा होती है।

रहते हैं। अतएव, यदि ये सोराकी अभिव्यक्ति हों, तो सोरा-विष-नाशक औषधसे आरोग्य किये जा सकते हैं; पर यदि पीछेवाले अर्थात् उपदंश-मिश्रित हों, तो मेरी "क्रौनिक डिजीजेज" नामकी पुस्तकमें बताये अनुसार पर्यायक्रमसे उपदंशनाशक तथा सोरानाशक औषधके व्यवहारसे आरोग्य किये जा सकते हैं।

खुलासा—ये पर्यायक्रमसे अवस्थाके प्रकट करनेवाले और रह-रहकर होनेवाले रोग पुरानी बीमारियोंके ही अन्तर्गत हैं। अधिकतर इनका कारण सोरा-दोष ही रहता है, पर कभी-कभी उपदंश-मिश्रित सोराके कारण भी ये पैदा होते हैं। अतएव, यदि केवल सोराके कारण हों, तो सोरा-दोषनाशक और यदि उपदंश-विष भी मिला दिखाई दे, तो उपदंश-विषनाशक औषधका पर्यायक्रमसे प्रयोगकर इन्हें आरोग्य करना चाहिये।

[२३३]

वास्तविक विरामशील रोग कौन हैं?

ये वास्तविक विरामशील रोग हैं, जिनमें उसी ढंगका रोग ठीक बँधे समयपर उत्पन्न होता है। इसमें रोगी नियमित समयतक पूर्ण स्वस्थावस्थामें रहता है और उसी तरह ठीक बँधे समयपर स्वास्थ्य नष्ट भी हो जाता है। यह उन्हीं ज्वरहीन रोगोंमें दिखाई देता है, जो निर्दिष्ट समयपर होते और फिर चले जाते हैं तथा उन ज्वरसे युक्त अवस्थाओंमें दिखई देता है, जो बहुत तरहके सविराम ज्वर होते हैं।

खुलासा—ठीक-ठीक विरामशील रोग वे ही हैं, जिनमें रोगीको ठीक बँधे समयपर रोगका आक्रमण होता है और ठीक निश्चित समयपर ही रोग छोड़ जाता है। यदि रोगी पूर्व स्वस्थावस्थामें रहता है, तो भी निश्चित समयपर इनका आक्रमण हुए बिना नहीं रहता।

[२३४]

क्या ये सभी उपद्रव पुरानी बीमारीके अन्तर्गत माने जा सकते हैं ?

वह जो समयपर होनेवाली, खास प्रकारकी, स्पष्ट ज्वर-रहित रोग-सूचक अवस्था है, जो एक समय एक ही रोगीपर आक्रमण करती है (स्वल्प व्यापक या बहुव्यापक रूपमें नहीं), वह पुरानी बीमारीके कारण ही होती है और खासकर सोरा-दोषके कारण होती है। इनमेंसे बहुत कममें उपदंश-विष सम्मिलित रहता है और इनकी चिकित्सा सफलता-पूर्वक उसी उपायसे हो सकती है, परन्तु उनकी सविराम प्रवृत्तिको अच्छी तरह नष्ट करनेके लिये, अन्तरकालमें सिनकोनाकी छालका शक्तिकृत रस, बहुत कम मात्रामें प्रयोग किया जाना आवश्यक हो सकता है।

खुलासा—ज्वर-रहित भावसे जो ठीक बँधे समयपर होनेवाली बीमारियाँ हैं, वे सोरा-दोषके कारण ही उत्पन्न होती हैं। उपदंश-विष शायद ही किसीमें सम्मिलित रहता हो। अतएव, ऊपर जो सोरा-दोष-नाशक चिकित्साका ढंग बताया गया है, उसीसे वे आरोग्य हो जाती हैं, परन्तु उनका बार-बार होना रोकनेके लिये सिनकोना (चायना) का रस, शक्तिकृत रूपमें स्वल्प मात्रामें प्रयोग करना चाहिये। ऐसा करनेपर उनका बार-बार होना रुक जाता है।

[२३५]

जो सविराम ज्वर स्वल्प व्यापक या बहुव्यापक रूपमें प्रकट होते हैं, उनकी चिकित्सा कैसे की जाये ?

जो सविराम-ज्वर स्वल्प व्यापक रूपमें या बहुव्यापक रूपमें प्रकट होते हैं (जो दलदलवाली भूमिके कारण होते हैं, वे नहीं), उनके प्रत्येक

आक्रमणमें पर्यायक्रमकी दो विपरीत अवस्थाएं दिखाई देती हैं (शीत, ताप—ताप-शीत), अधिकांश स्थानोंमें तीन दिखाई देती हैं (शीत, ताप और पसीना)। इसलिये उनके लिये साधारण श्रेणीकी परिक्षित दवाओंमेंसे (साधारण, सोरा-दोषनाशक नहीं), वैसी ही दवा चुनकर देनी चाहिये, जो (ऐसी ही दवाएँ निश्चित आरोग्यकर होती हैं) स्वस्थ शरीरमें दो (या तीनों ही) वैसी ही पर्यायवाचक अवस्थाएँ प्रकट करनेवाली हों अथवा सम-लक्षण प्रणालीके अनुसार यथासम्भव ऐसे सम-लक्षण उत्पन्न करनेवाली हों, जो सबसे प्रबल स्पष्ट और विशेष पर्यायशील अवस्थासे (शीत, ताप, पसीना—इनमेंसे साथके अन्य लक्षणोंके साथ जो सबसे अधिक प्रबल और विशेषतापूर्ण हो) मिलती हों, पर जिस समय रोगीमें ज्वर नहीं रहता, उस समयका रोगीका स्वास्थ्य ही उपयुक्त होमियोपैथिक औषध-निर्वाचनका प्रधान सहायक होता है।

खुलासा—दलदलवाली भूमिमें रहनेवाले मनुष्योंको जो सविराम ज्वर होते हैं, उनको छोड़ देनेपर भी सविराम ज्वरका स्वल्प व्यापक या बहुव्यापक रोगमें आक्रमण होता दिखाई देता है। इन आक्रमणोंमें किसीमें दो—शीत और ताप और कितनोंमें ही तीन—शीत, ताप और पसीना—ये अवस्थाएँ दिखाई देती हैं। अब इनकी दवा चुननी है, परन्तु इनकी दवाएँ सोरा-विष-नाशक दवाओंमेंसे न चुनी जायगी; बल्कि साधारण श्रेणीकी दवाओंमेंसे चुननी होगी। साधारण श्रेणीकी दवाओंमेंसे भी वे ही दवाएँ चुननी पड़ेंगी, जो शीत, ताप—ये दो लक्षण स्वस्वस्थ शरीरमें पैदा करती हों और जो तीनों लक्षण स्वस्थ शरीरमें पैदा कर सकी हों अथवा इन शीत, ताप और पसीना—इन तीनों लक्षणोंमें जो प्रबल हों, वही दवा सबसे उपयुक्त और शीघ्र आरोग्य करनेवाली होगी।

अब यह देखना है, कि विज्वरावस्था अर्थात् रोगीकी वह अवस्था, जिस समय ज्वर नहीं रहता, उसीको रोग आरोग्य करने योग्य दवा

चुननेकी सहायक क्यों बताया? यह इसलिये कहा कि भिन्न-भिन्न रोगियोंको ज्वर न रहनेकी अवस्थामें विभिन्न लक्षण पैदा हो जाते हैं। किसीको बहुत कमजोरी मालुम होती है। किसीके समूचे शरीर या किसी खास अंगमें दर्द पैदा हो जाता है, किसीके सरमें चक्कर आने लगता है इत्यादि। इसलिये इस विज्वरावस्थासे भी दवा चुननेमें विशेष सहायता मिलती है।

[२३६]

सविराम ज्वरके रोगियोंको औषध देनेका उपयुक्त समय क्या है?

इन सब रोगियोंको औषध देनेका सबसे उपयुक्त और लाभदायक समय है—रोगका आक्रमण समाप्त होते ही या कुछ देर बाद ही अर्थात् जब रोगी रोगके भोगसे छुटकारा पाकर कुछ स्वस्थ हुआ हो, यही वह समय है, जब रोगीका स्वास्थ्य फिरसे ठिकाने लानेके लिये, किसी बड़ी गड़बड़ या चित्तमें कोई बड़ी उथल-पुथल लाये बिना, आवश्यक परिवर्त्तन किये जा सकते हैं। क्योंकि दवा चाहे रोगीके लक्षणोंके जितनी भी अनुकूल हो, जब रोगका आक्रमण होनेसे तत्काल पहले दी जाती है, तो वह भी रोगकी स्वाभाविक उग्रताके साथ मिल जाती है और परिणाम यह होता है कि रोगकी तेजी और औषधकी शक्ति जो अब रोगके उपद्रवके अनुकूल काम करती हैं—मिलकर यदि रोगीके प्राण हरण न कर लें, तो उसे अत्यन्त अशक्त बना देती हैं। परन्तु जब दवा, दौरा बीत जानेके तत्काल बाद दी जाती है अर्थात् जब ज्वर आ लिया हो और उसके पुनरागमनमें अभी काफी देर हो, तो जीवनी-शक्ति ऐसी दशामें होती है, कि दवा उसमें अधिकाधिक परिवर्त्तन ला सकती है और इस तरह स्वास्थ्य बहाल हो जाता है।

खुलासा—सविराम ज्वरको आरोग्य करनेके लिये दवा देनेका सबसे उत्तम और लाभदायक समय वह है, जब ज्वर बिलकुल छूट गया हो, और उसके पुनराक्रमणमें देर हो। उस समय रोगीमें किसी तरहकी मानसिक या शारीरिक चंचलता नहीं रहती, उस समय यदि ठीक-ठीक चुनी हुई दवा पड़ गयी, तो जीवनी-शक्तिपर उसकी तुरन्त क्रिया होती है, रोग-वृद्धि नहीं होती और सरल भावसे अपनी क्रियाकर दवा रोगीको स्वस्थ बना देती है, पर यदि रोगकी तेजीके समय दवा दी जाती है, तो उस समय शरीरके भीतर इतनी हलचल मची रहती है, कि दवा लाभ पहुँचानेकी जगह हानि पहुँचाती है। इधर दवा अपनी क्रिया करना चाहती है, उधर रोग अपना जोर बांधे रहता है। ऐसी अवस्थामें दवाकी प्राथमिक क्रिया और रोग-शक्तिमें इतना गहरा द्वन्द्व होता है, कि रोगीका प्राण भले ही न जाये, पर वह वेहद कमजोर हो जाता है।

[२३७]

पर यदि विज्वरावस्था बहुत थोड़ी देर ठहरती हो, तो क्या उपचार करना चाहिये ?

पर जैसा कितने ही खराब ज्वरमें होता है, कि विज्वरावस्था बहुत थोड़ी देर ठहरती है या पूर्वके आक्रमणके प्रभावके कारण किसी-न-किसी तरहकी अशान्ति बनी रहती हो, तो सम-लक्षण-सम्पन्न औषधकी मात्राका उस समय प्रयोग करना चाहिये, जब पसीना होना और ज्वर घटना आरम्भ हुआ हो, अथवा ज्वर छूटनेकी कोई दूसरी सूचना मिलती हो।

खुलासा—ऐसे भी बहुत तरहके दूषित ज्वर होते हैं, जिनका ज्वर-विच्छेदकाल बहुत थोड़ा रहता है अथवा ऐसा भी होता है, कि ज्वर तो छूटा, पर उसका प्रभाव इतना रह गया कि मन और शरीर अशान्त ही बन रहा। ऐसी अवस्थामें ज्वरकी अन्तिम अवस्था अथवा जब

पसीनेका जोर होना आरम्भ हो अथवा ज्वर छूटनेके बादका कोई दूसरा उपसर्ग घटना आरम्भ हुआ हो। इसका मतलब यह है, कि पसीना आनेके बाद भी कुछ उपसर्ग किसी-किसी ज्वरमें रह जाते हैं, जो पसीना होनेके बाद घटते हैं। अतएव, यदि ऐसा ज्वर हो, तो अन्तिम उपसर्ग घटनेका समय ओषधका प्रयोग करना चाहिये। इन बातोंका यह मतलब निकला कि सविराम ज्वरकी चिकित्साके समय सम-लक्षण-सम्पन्न औषधके चुनावके साथ-ही-साथ, इन बातोंपर ख्याल रखना भी अत्यन्त आवश्यक है।

[२३८]

क्या ऐसी स्थिति भी आ जाती है, जब औषध लाभ न करती हो ?

अकसर उपयुक्त औषधकी एक ही मात्रा, सविराम ज्वरोंके कितने ही आक्रमणको रोक देती है और पुनः स्वास्थ्य लौटा लाती है, पर अधिकांश रोगियोंको प्रत्येक आक्रमणके बाद एक दूसरी खुराक देनी चाहिये। इससे भी अच्छा यह होगा, कि यदि लक्षणोंमें कोई परिवर्त्तन न हुआ हो, तो वही दवा (सूत्र १७० की टीका) औषध-भरी शीशीमें, हर बार दवा देनेसे पहले, दस बार हिलाकर, दी जा सकती है, ताकि औषध-शक्ति बढ़ जाये। यद्यपि ऐसा होता कम है, पर ऐसा भी देखा जाता है, कि कई दिनोंतक अच्छे रहनेके बाद, सविराम ज्वरका फिर आक्रमण हो जाता है। ऐसा पुनराक्रमण प्रायः तब होता है, जब वही विष, जो पहले ज्वर लाया था—अब रोगमुक्तिके बादके अन्तरकालमें, क्रियाशील रहा हो। दलदलोंवाले इलाकोंमें प्रायः ऐसा ही हुआ करता है। ऐसी हालतमें स्वास्थ्यको स्थायी रूपमें तभी बहाल किया जा सकता है, जब मूल कारण मिट जाये ; अर्थात् यदि ज्वर दलदलवाले

इलाकेमें रहनेसे ही बार-बार आता है, तो रोगीको पहाड़ी स्थानोंमें भेज देना चाहिये।

खुलासा—यदि ठीक चुनी हुई दवाका प्रयोग होता है, तो एक ही खुराक पड़नेपर रोग—सविराम ज्वर बन्द हो जाता है और रोगी आरोग्य हो जाता है ; परन्तु अधिकांश स्थानोंपर ऐसा भी होता है, कि ज्वरके आक्रमणके बाद भी दवा देनेकी जरूरत पड़ती है। पर यदि ऐसा हो कि उन्हीं लक्षणोंके साथ बुखार फिर आ जाये अर्थात् लक्षणोंमें कोई परिवर्त्तन न होता हो, तो पहलेवाली चुनी हुई दवाको ही नवीन नियमके अनुसार कुछ बदली हुई शक्तिमें प्रयोग किया जा सकता है। ऐसा भी देखा जाता है, कि कुछ दिनोंतक आराम रहनेके बाद, रोगीको सविराम ज्वर हो जाता है, सीड़-भरे दूषित स्थानोंमें रहनेके कारण ही ऐसा होता है, यह सीड़-भरी जमीन ही रोगका उत्तेजक कारण होती है। अतएव, इस उत्तेजक कारणको दूरतक पहाड़ी स्थानोंमें चले जानेसे ही वह आरोग्य हो जाता है।

[२३९]

क्या औषधियोंके द्वारा भी बुखार उत्पन्न होता है ?

चूँकि प्रायः प्रत्येक औषध अपने शुद्ध स्वाभाविक धर्मानुसार एक विशेष ढंगका ज्वर लाती है—यहाँतक कि वह अदलती-बदलती हालतोंमें एक प्रकारका सविराम ज्वर भी लाती है। ये भेषजजनित ज्वर और सविराम ज्वर, स्वाभाविक ज्वर और सविराम ज्वरसे सर्वथा भिन्न होते हैं। विभिन्न प्रकारके स्वाभाविक सविराम ज्वरोंके लिये, आपको विशाल औषध-क्षेत्रमेंसे, अनेक सादृश्य (होमियोपैथिक) औषधियाँ मिलेंगी। इनमेंसे अनेक प्रकारके ज्वरोंके लिये तो उन औषधियोंमेंसे भी सदृश औषध मिल जायेगी, जिनकी स्वस्थ व्यक्तिओंपर परीक्षा हो चुकी है।

खुलासा—सभी दवाओंमें एक प्रकारकी ज्वर उत्पन्न करनेकी शक्ति रहती है, पर यह ज्वर स्वाभाविक ज्वरसे विभिन्न प्रकारका होता है। जिस तरह स्वाभाविक ज्वर बहुत तरहके होते हैं, उसी तरह विभिन्न औषधियोंसे भी विभिन्न प्रकारके ज्वर उत्पन्न होते हैं। इन औषधियों द्वारा कृत्रिम ज्वर उत्पन्नकर सम-लक्षणवाले स्वाभाविक ज्वर आरोग्य किये जा सकते हैं, अबतक जिन औषधियोंकी परीक्षा हो चुकी है, उनमें भी बहुत तरहके ज्वरोंका लक्षण मिलता है। इस तरह ज्वरके लक्षणसे औषधसे उत्पन्न ज्वरका लक्षण मिलाकर प्रयोग करनेसे आशातीत लाभ होता है।

[२४०]

परन्तु यदि कोई सविराम ज्वर सदृश औषधसे आरोग्य न हो, तो क्या समझना चाहिये?

यदि किसी महामारीके रूपमें फैले हुए सविराम ज्वरमें कोई दवा सदृश लक्षणके अनुसार अमोघ औषध मालूम हो और इतनेपर भी उससे किसी रोगको पूर्ण रूपसे आरोग्य न हो और यदि यह ज्वर सीड़-भरी जमीनके प्रभावके कारण न हो, जो आरोग्यमें बाधा पहुँचाती हो, तो यह समझना चाहिये, कि इसके पीछे सोरा-रोग-विष छिपा है। ऐसी अवस्थामें जबतक पूर्ण आरोग्य प्राप्त न हो जाये, तबतक सोरा-विष-नाशक दवा देनी चाहिये।

खुलासा—इसका तात्पर्य यह है, कि जब सविराम ज्वर बहुत फैला हो और ठीक-ठीक चुनी हुई दवासे लाभ न होता हो या रोगी पूर्ण रूपसे आरोग्य न होता हो तो यह निश्चय है, कि इसके भीतर कोई-न-कोई कारण अवश्य ही छिपा है। एक कारण तो यह हो सकता है, कि रोगी सीड़-भरी जलीय-भूमिमें रहता हो; परन्तु यदि यह सीड़-भरी जगह

रोग आरोग्य न होनेका कारण न हो, तो समझ लेना चाहिये कि इसके भीतर सोरा-विष-दोष छिपा है और सोरा-दोषनाशक चिकित्सा आरम्भ कर देनी चाहिये और यह चिकित्सा तबतक जारी रखनी चाहिये, जबतक रोग पूर्ण रूपसे आरोग्य न हो जाये।

२४१]

महामारीके रूपमें फैले ज्वरोंके लिये सम-लक्षण-सम्पन्न औषध कैसी चुनी जाये ?

जब सविराम ज्वर किसी ऐसे इलाकेमें महामारीके रूपमें फैला हो, जहाँ वह आमतौरपर उस रूपमें, नहीं पाया जाता, तो वहाँ ऐसी पुरानी बीमारीके रूपमें पाया जाता है, जो तेज दौरोंके रूपमें आती है। ऐसी महामारीका जितने व्यक्तियोंपर आक्रमण होता है, उन सबके रोगकी रूप-रेखा प्रायः एक जैसी होती है। जब सबके आम लक्षण मिल जायँ, तो फिर सबके लिये सम-लक्षण-सम्पन्न (होमियोपैथिक (रामबाण औषध तलाश की जा सकती है। यह औषध उन सभी व्यक्तियोंके लिये हितकर होगी, जो आक्रान्त होनेसे पहले स्वास्थ्यकी दृष्टिसे अच्छी दशामें थे अर्थात् वे समुन्नति प्राप्त सोरा-विषके पुराने रोगी नहीं थे।

खुलासा—सड़ी-मरी जमीन आदिमें रहना प्रभृति स्थानीय कारणोंसे यदि बुखार न हुआ हो अर्थात् ऐसा कोई कारण न हो और बहुव्यापक रूपसे सविराम ज्वर उत्पन्न हो जाये, तो यह होगा, कि उसका जोरका आक्रमण एक होगा तथा उसकी प्रकृति पुरानी बीमारी जैसी होगी। ऐसा भी हो सकता है, कि उस समय जितने रोगी हों, सबमें इस रोगके एक ही लक्षण प्रकट हों, तो ऐसी सम-लक्षण-सम्पन्न दवा यदि खोज निकाली जाये, तो उन रोगियोंको आवश्य ही आरोग्य करेगी,

जो वर्त्तमान सविराम ज्वरके रोगी तो हैं, पर जो बढ़े हुए सोरा-दोषके कारण पुरानी बीमारीके रोगी नहीं है।

[२४२]

पर यदि सविराम ज्वरका एक आक्रमण एक बार होकर बन्द न हो जाये?

पर यदि ऐसा सविराम ज्वर, पहली ही बारके आक्रमणमें, आरोग्य न होकर, रह जाये ; अथवा यदि अनुपयुक्त ऐलोपैथिक औषधियाँ खाकर रोगी दुर्वल हो गया हो, तो जन्मगत सोरा, जो अनेक मनुष्योंमें निष्क्रिय रूपसे पड़ा रहता है, भड़क उठता है। वह सविराम ज्वरकी प्रकृति ग्रहण कर लेता है और सब तरहके बहुव्यापक सविराम ज्वरकी क्रिया करने लगता है। अतः जो औषध पहले आक्रमणके कालमें लाभदायक होती (सोरानाशक बहुत कम) है, वही उपयुक्त नहीं हो सकती। अब तो हमें केवल सोरासे उत्पन्न सविराम ज्वरका सामना करना पड़ता है और यह ज्वर उस शक्तिके सल्फर या हिपर-सल्फरकी सूक्ष्म मात्राका बारम्बार प्रयोग करनेसे ही आरोग्य होता है।

खुलासा—इसमें दो बातें सामने आती हैं। एक तो यह कि यदि एक ही बारके आक्रमणके बाद, बहुव्यापक सविराम ज्वर आरोग्य न किया जा सका अथवा दूसरे यदि रोगीने ऐलोपैथिक दवाएँ खा लीं और कमजोर हो पड़ा हो, तो उसके भीतर छिपा हुआ सोरा जाग उठेगा और वह सोरा ही सविराम ज्वरका रूप धारणकर बार-बार आक्रमण करने लगेगा। परिणाम क्या हुआ? परिणाम यह हुआ कि प्रथम आक्रमणके समय जो दवा लाभ करती, अब वह कामकी नहीं रही। ऐसी अवस्थामें इस सविराम ज्वरको आरोग्य करनेके लिये, लक्षणके

अनुसार सल्फर और हिपर-सल्फर प्रभृति सोरा-दोषनाशक दवाएँ देनी पड़ेंगी।

[२४३]

पर जो सविराम ज्वर अत्यन्त मारात्मक हो, उनमें क्या करना चाहिये?

जो सविराम ज्वर अक्सर अत्यन्त प्राणघातक हो जाते हैं और जो एक ही मनुष्यपर आक्रमण करते हैं, जो जलीय भूमिमें रहनेके कारण पैदा नहीं होते, वैसे ज्वरमें हमलोगोंको पहले कई दिन, जैसे सोरासे उत्पन्न नयी बीमारीमें साधारणतः किया जाता है; उसी तरह सोरा-नाशक दवाओंके अलावा अन्य श्रेणीकी परीक्षित सदृश दवाओंमेंसे एक दवाका प्रयोगकर, यह देखना होगा, कि उससे कितना लाभ होता है; पर यदि इतनेपर भी यह मालूम हो कि आरोग्यमें देर हो रही है, तो समझना होगा कि हमलोगोंको बढ़ते हुए सोराका सामना करना है। ऐसी अवस्थामें केवल सोरानाशक दवासे ही सम्पूर्ण आरोग्य हो सकता है।

खुलासा—कितनी ही वार इस ढंगका प्राणघातक सविराम ज्वर भी पैदा होता है, जो न तो जलीय भूमिमें रहनेके कारण उत्पन्न होता है और न बहुतसे आदमियोंपर व्यापक रूपसे आक्रमण ही करता है। ऐसे रोगियोंकी चिकित्सा करनेका यह ढग है, कि ऐसी दवा चुनकर देनी चाहिये, जो सोरा-दोषघ्न तो न हो, पर रोगके सदृश लक्षणोंसे सम्पन्न हो। ऐसी चिकित्सा पहले कुछ दिन करनी चाहिये। यदि इससे रोग आरोग्य हो जाये, तब तो ठीक ही है, पर यदि इससे आरोग्य न हो, तो समझना चाहिये कि अब सोरासे युद्ध है और सोरा-नाशक दवाओंका प्रयोग करना चाहिये। उससे रोग शीघ्र ही आरोग्य हो जायगा।

[२४४]

जलीय-भूमिमें बार-बार होनेवाले सविराम ज्वरकी चिकित्सा कैसे करनी चाहिये ?

जो सविराम ज्वर जलीय-भूमिमें या उन स्थानोंमें उत्पन्न होते हैं, जहाँ बार-बार बाढ़ आती है, वहाँके लिये ऐलोपैथिक चिकित्सकोंको बहुत कम काम करना पड़ता है। इतनेपर भी कोई-कोई स्वस्थ मनुष्य अपनी जवानीमें जलीय भागोंमें भी उस अवस्थामें स्वस्थ अवस्थामें रह सकता है, यदि वह निर्दोष-रूपसे पथ्यापथ्यको पालन करता हुआ अपना जीवन बिताये तथा उसका शरीर अभाव, थकावट या दूषित प्रकृति वगैरहके कारण अवनत न हो पड़े। यह हो सकता है, कि उसके वहाँ पहुँचनेपर एक बार सविराम स्थानिक ज्वरका उसपर आक्रमण हो; परन्तु सिनकोनाकी छालके ऊँचे शक्तिकृत सवकी एक या दो सूक्ष्म मात्राएँ तथा नियमवद्ध जीवन-निर्वाह, सम्मिलित होकर उसे रोग-मुक्त कर देंगे। पर भरपूर शारीरिक व्यायाम करनेवाले और स्वास्थ्य-सम्पन्न मानसिक कार्यमें लगे रहनेवाले भी यदि जलीय-भूमिमें पैदा होनेवाले इस तरहके सविराम ज्वरमें सिनकोनाकी कई खुराकोंसे आरोग्य न हो सकें, तो ऐसे मनुष्योंमें, रोगकी जड़में सोरा सदैव रहा करता है और उनका सविराम ज्वर जलीय-भूमिमें सोरा-नाशक चिकिरसाके विना आरोग्य नहीं किया जा सकता। ऐसा होता है कि ये मनुष्य जब जलीय-भूमि छोड़कर तुरन्त किसी पहाड़ी सूखी भूमिमें चले जाते हैं, तो यदि वे रोगमें अबतक खूब डूबे हुए नहीं रहते, तो आरोग्य हो जाते हैं (ज्वर छोड़ देता है) अर्थात् उनमें सोरा खूब वर्द्धित अवस्थामें नहीं रहता और इसी वजहसे अपनी पुरानी अवस्थामें चला जाता है, परन्तु उनकी जबतक सोरा-नाशक चिकिरसा न होगी, तबतक ये कदापि पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त नहीं कर सकते।

खुलासा—इसका सारांश यह है, कि जलीय-भूमिका सविराम ज्वर जिस समय फैलता है, उस समय ऐलोपैथिक चिकित्सोंका कार्य इस कारणसे बढ़ जाता है, कि—(१) पहले वे ही चिकित्साके लिये बुलाये जाते हैं। (२) उनके आरोग्य किये हुए रोगियोंकी यह अवस्था रहती है, कि एक वार आरोग्य हुए, दो-चार दिन कुछ काम-काज किया था, किसी तरहका अनियम हो गया कि सविराम ज्वरने फिर घर दबाया अर्थात् उनका ज्वर छोड़-छोड़कर आता है और इस तत्त्वण आरोग्यके मोहमें रोगी उनका मोह नहीं त्याग सकता। जलीय स्थानोंका सविराम ज्वर होता ऐसा ही है, परन्तु वैसे स्थानोंमें भी यदि कोई स्वस्थ युवक जाकर रहता है और नियमपूर्वक रहता है, अनाचार नहीं करता या अभाव, अतिरिक्त श्रम अथवा दुर्दमनीय प्रवृत्तियोंके फेरेमें नहीं पड़ जाता है, तो उस ज्वरके आक्रमणसे बचा रहता है। यह हो सकता है, कि जानेके साथ ही उसपर एक बार आक्रमण हो जाये, परन्तु नियमोंका पालन और सिनकोनाके सतकी शक्तिकृत सूक्ष्म मात्राका एक-दो वार प्रयोग करनेसे ही आरोग्य हो जाता है, पर ऐसे भी आदमी होते हैं, जो व्यायाम भी करते तथा मानसिक और शारीरिक कार्य भी कम करते हैं, उनका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है, फिर भी उनपर रोगका आक्रमण हो जाता है और वे सिनकोनाकी एक-दो खुराकोंसे आरोग्य नहीं होते। ऐसे रोगियोंको समझ लेना चाहिये कि इनके भीतर छिपे हुए सोराका विकास हो रहा है। तथा उस जलीय स्थानमें ही रहकर सोरा-नाशक चिकित्साके बिना उनका रोग आरोग्य नहीं हो सकता। ऐसा भी कभी-कभी होता है, कि ये ही रोगी जब उस जलीय स्थानको छोड़कर पहाड़ी या सूखी भूमिमें चले जाते हैं, तो उनका ज्वर छूट जाता है, पर अब भी उन्हें पूर्ण आरोग्य न समझना चाहिये और पूर्ण आरोग्य करनेके लिये, उनकी सोरा-नाशक चिकित्सा करनी चाहिये।

[२४५]

औषध, उनका प्रयोग तथा उनके विधि-निषेधकी जानकारी ;

यह दिखानेके बाद कि होमियोपैथिक चिकित्सामें रोगोंके खास-खास प्रकार, भेद तथा उनसे सम्मिलित रहनेवाली घटनाओंपर किस तरह ध्यान देना चाहिये। अब हम औषध, उनकी व्यवहार-विधि तथा विधि-निषेधके सम्बन्धमें बता रहे हैं।

खुलासा—हैनिमैनने पहले तो नया और पुराना—इस तरह दो प्रकारका रोग विभाग दिखाया। इसके बाद नयी और पुरानी बीमारियोंके उत्तेजक कारणोंपर विचार किया ; फिर बताया कि किस नयी बीमारीका पुरानेसे और पुरानीका नयीसे भ्रम कैसे हो सकता है। फिर सोरा, सिफिलिस और साइकोसिस तीन प्रधान ऐसे विष बताये, जो पुरानी बीमारियोंके कारण हैं। फिर स्थानिक व्याधि, एकांगी व्याधि आदि बताते हुए सविराम ज्वरसे लक्षण, उत्पत्ति और चिकित्सा-भेद बताकर उन्होंने रोगका वर्णन समाप्त किया। अब दवाओंका प्रयोग, मात्रा, पथ्यापथ्य प्रभृतिका विषय आगे वर्णन किया जायगा।

[२४६]

औषध-प्रयोगका कौन-सा समय है ?

चिकित्साके समय जब प्रत्यक्ष-भावसे उन्नति दिखाई दे और यह मालुम हो कि रोग घट रहा है, तो यह वह अवस्था है, कि जबतक यह अवस्था वर्त्तमान रहे, तबतक किसी भी दवाका पुनः प्रयोग एकदम मना है ; क्योंकि दी हुई दवाका जो कुछ लाभ हुआ है, वह अब पूर्णताकी ओर तेजीसे बढ़ रहा है। नयी बीमारीमें अकसर ऐसा होता है, पर दूसरी ओर, बहुत दिनोंकी पुरानी बीमारियोंमें, ठीक-ठीक रीतिसे चुनी हुई दवाकी एक मात्रा धीरे-धीरे बढ़ती हुई उन्नतिको पूरा कर देती है

और ऐसे रोगियोंमें ऐसी दवासे ऐसी सहायता पहुँचा सकती है, कि स्वाभाविक रूपसे ५०, ६० या १०० दिनोंमें पूर्ण आरोग्य हो ; परन्तु ऐसा बहुत ही कम होता है। इसके अलावा, यह रोगी तथा चिकित्सक दोनोंके लिये ही आवश्यक विषय है, कि यह ऊपर कहा हुआ समय— यदि आधा, चौथाई अथवा उससे भी घट जाये और कम समयमें और भी तेजीसे आरोग्य प्राप्त हो सके। नवीन तथा बार-बारके अनुभव तथा परीक्षणसे मुझे अब यह शिक्षा मिली है, कि निम्नलिखित अवस्थाओंमें यह कार्य अत्यन्त सुखपूर्वक हो सकता है। पहली बात तो यह है, कि दवा अत्यन्त सावधानता-पूर्वक चुनी जाये और वह एकदम सदृश लक्षण-सम्पन्न हो। दूसरे—यदि यह उच्च शक्तिकृत हो, पानीमें गला ली गयी हो और उपयुक्त सूक्ष्म मात्रामें उपयुक्त अन्तरसे दी गयी हो, तो अनुभवसे मालूम हुआ है, कि यह रोगको दूर करनेका शीघ्रतम उपाय है। परन्तु अब भी इस मार्गका अवलम्बन किया जाये, तो बहुत सावधान रहनेकी आवश्यकता है। कारण यह है कि हर नयी मात्रा पहली मात्रासे भिन्न रूपमें जायेगी और शरीरके भी भीतर जाकर भिन्न कार्य करेगी। अतएव, ध्यान रखना चाहिये कि कि जिस जीवनी-शक्तिके ऊपर उसके वर्त्तमान रोग जैसा भेषज-रोग पैदा करना है, वह कोई अप्रिय प्रतिक्रिया न दिखा दे और विद्रोह न कर दे। जब अपरिवर्त्तित रूपमें वही दवा बार-बार और शीघ्र-शीघ्र दी जाती है, तो प्रायः ऐसा हो जाता है।

खुलासा—दवा देनेका मतलब है, रोगीकी अवस्थामें आरोग्योत्पादक परिवर्त्तन ला देना। अतएव, दवा देनेके बाद जबतक यह आरोग्यकी ओर बढ़ता हुआ परिवर्त्तन दिखाई देता रहे अर्थात् रोगीकी शारीरिक और मानसिक उन्नति स्पष्ट दिखाई दे, तबतक दवाका दूसरी बार प्रयोग न करना चाहिये ; क्योंकि रोगी तो आरोग्यकी ओर स्वयं ही बढ़ रहा है। उसे अब दवाकी जरूरत ही क्या है? नयी बीमारियोंमें ऐसा ही होता है ; परन्तु पुरानी, बहुत दिनोंकी बीमारीमें ऐसा नहीं

हो सकता कि एक मात्रा देकर ४०, ५० अथवा १०० दिनोंतक बैठ रहा जा सके ; क्योंकि इस तरह बहुत दिन आरोग्यमें लग जा सकते हैं। इसीलिये, ऐसी दवा देनी पड़ती है, कि यह कार्य और भी शीघ्र अर्थात् ऊपर बताये हुए समयके आधे या चौथाई समयमें ही हो जाये। हैनिमैन कहते हैं, कि यह कार्य और भी सरलतापूर्वक हो सकता है ; क्योंकि नवीन तथा बार-बारके अनुभवसे अब यह बात मालूम हो गई है, कि दो ढंगसे प्रयोग करनेपर विशेष लाभ होता है। एक तो यह कि दवाका चुनाव इतना सदृश हो, कि इसमें कोई फर्क न रहे। दूसरे—दवा उच्च-शक्तिकी हो, उसे सूखी न देकर पानी मिला लिया जाये और उस एक ही शक्तिकी दवाका बार-बार प्रयोग न किया जाये अर्थात् जिस शक्तिकी मात्रा पहले दी गयी हो, दूसरी मात्रा उससे कुछ बढ़ी हुई शक्तिकी होनी चाहिये। ऐसा इसलिये करना चाहिये कि एक ही शक्तिकी मात्राका बार-बार प्रयोग करनेसे जीवनी-शक्तिकी प्रतिक्रिया दूषित हो जाती है, कष्टदायक लक्षण पैदा हो जाते हैं और रोगीको तकलीफ होती है ; परन्तु वही दवा यदि कुछ-कुछ बढ़ी हुई शक्तिमें और सुधार कर दी जाती है, तो ऐसा नहीं होता। सुधरी हुई अथवा क्रम वर्द्धमान मात्रा देनेसे रोगीके शरीरमें इस प्रकारके दोष नहीं आते।

इस सूत्रसे निम्नलिखित विषय सामने आये :—

(१) जबतक फायदा मालुम होता रहे, दुबारा दवा न देना।

(२) सम-लक्षणवाली दवा देना।

(३) दवा जलमें गलाकर तथा उच्च शक्तिकी देना।

(४) जब दवा देनेकी जरूरत मालुम हो, तो उसकी शक्ति[1] कुछ बढ़ाकर देना।

---

१. जब किसी पुराने रोगमें ऊँची शक्ति देनी हो, तो पहले एक-दो सप्ताहतक निम्न क्रम देकर रोगीकी प्रतिक्रिया देख लेनी चाहिये। इसके बाद जबतक आवश्यकता हो—ऊँचे क्रमका व्यवहार जारी रखा जा सकता है।

[२४७]

क्या क्रमशः शक्ति वृद्धि किये बिना, दूसरी खुराक देनेपर रोगमें वृद्धि हो सकती है ?

किसी औषधकी अपरिवर्त्तित मात्राका बार-बार देना तो दूसरेकी बात रही, एक बार भी दुबारा देना (और आरोग्य शीघ्र आये इसलिये जल्दी-जल्दी देना) अनुचित है ; क्योंकि बिना बाधाके जीवनी-शक्ति ऐसी अपरिर्त्तित मात्राको ग्रहण नहीं करना चाहती अर्थात् ऐसा करनेसे आरोग्य होनेवाले रोगके सदृश लक्षणके अलावा औषधके भी कितने ही दूसरे-दूसरे लक्षण प्रकट हो जाते हैं। इसका कारण यह है, कि पहली खुराकने ही जीवनी-शक्तिमें इच्छित परिवर्त्तन ला दिया है। क्योंकि जब उसी दवाकी अपरिवर्त्तित तथा विद्युत रूपसे काम करनेवाली मात्रा जब भीतर जाती है, तो उसे रोगकी वही स्थिति नहीं मिलती, जो उसी दवाकी पहली मात्राको मिली थी और जिसके लिये वह दवा चुनी गई थी। ऐसी औषधकी अपरिवर्त्तित मात्रा निश्चय ही, किसी-न-किसी रूपमें, शरीरको उत्पीड़ित करेगी ; शायद पहलेसे अधिक पीड़ित बना दे ; कारण यह है कि अब मूल रोगके लिये सादृश्यताके आधारपर चुनी हुई दवाके पैदा किये हुए लक्षण प्रकट हो रहे हैं, अतः मूल रोगमें सुधार नहीं आ सकता। अब जो हो रहा है, वह मूल रोगमें वृद्धि हो रही है। परन्तु यदि अगली मात्रामें हर बार कुछ-न-कुछ परिवर्त्तन कर दिया जाये अर्थात् वह कुछ ऊँची शक्तिमें दी जाये (२६९—२७०), तो वही दवा किसी कठीनाईके बिना सुधार ला सकती है। स्वाभाविक रूपसे आया हुआ रोग मिट जायगा और इस तरह पूर्ण स्वास्थ्यके समीप पहुँच जायेगा।[1]

---

१. हमलोगोंको खूब चुनी हुई दवाकी एक छोटी गोलीको भी उसी शक्तिमें कभी सूखी दुबारा प्रयोग न करनी चाहिये। भले ही उससे पहली बार फायदा

खुलासा—इसका सारांश यह है, कि किसी भी दवाकी वही शक्ति दुबारा न देनी चाहिये। यह विचार करना कि इस दवासे लाभ हुआ है, अतएव, इसके बार-बार प्रयोगसे रोगी शीघ्र आरोग्य हो जायगा, भूल है ; क्योंकि होमियोपैथीमें सदृश लक्षणके अनुसार दवा दी जाती है। किसी भी दवाका जब सदृश लक्षणके अनुसार प्रयोग होता है, तो वह जीवनी-शक्तिमें अवश्य परिवर्त्तन पैदा कर सकती है। एक खुराक दी गयी, जीवनी-शक्तिमें परिवर्त्तन हुआ। अब यदि हम दूसरी खुराक देते हैं और उसी दवा और शक्तिको देते हैं, तो जीवनी-शक्तिमें पहली खुराकसे परिवर्त्तन आ जानेके कारण उस दूसरी खुराकको पहले जैसे ही सदृश लक्षण प्राप्त नहीं हो सकते। अतएव, दूसर खुराकका प्रयोग असदृश और इसीलिये हानिकर हो सकता है। इससे आरोग्यमें बाधा पहुँच सकती है और रोगीकी रोग-वृद्धि हो सकती है ; पर यदि वही खुराक प्रत्येक वार कुछ अधिक शक्तिशाली बनाकर दी जाये, तो आरोग्य शीघ्र हो सकता है।

दिखाई दिया हो। इसी तरह यदि दवा पानीमें गलाकर दी जाती हो तथा पहली खुराकसे लाभ हुआ हो, तो भी उस स्थिर शीशीसे दूसरी या तीसरी खुराक न देनी चाहिये। यदि कुछ दिनोंके अन्तरसे देना हो, तो भी न देना चाहिये ; परन्तु यदि यही बाधा दूर करनेके लिये दो वार भी हिलाकर दवा दी जायगी, तो लाभ होगा। यह ऊपर बताये कारणसे ही होता है ; पर शक्तिकरणके अनुसार उसकी सुधारी हुई प्रत्येक खुराक, जैसा कि बताता हूँ, उससे वार-वार प्रयोग करनेपर भी कोई हानि न होगी। भले ही बहुत हिलानेके कारण उसकी शक्ति बढ़ गई हो। ऐसा मालूम होता है, कि यदि विभिन्न रूपोंमें होमियोपैथिक दवाका प्रयोग हो, तो पुरानी बीमारीमें भी जीवनी-शक्तिकी बड़बड़ीको सर्वोत्तम भावसे दूर कर सकेगी।

[२४८]

औषधकी मात्राकी व्यवस्था

इसी उद्देश्यसे हमलोग औषध-द्रव[1] को (८-१०-१२ बार हिलाकर) नये सिरेसे शक्तिकृत करते हैं, जिसकी हमलोग (बढ़ा-बढ़ाकर) रोगीको एक या कई चायके चम्मचकी मात्राके अनुसार दवाकी खुराक (मात्रा) देते हैं। बहुत दिनोंकी बीमारीमें हमलोग नित्य या एक दिन नागा देकर इस तरह दवा देते हैं और नयी बीमारीमें दोसे छः घण्टोंका अन्तर देकर और बहुत ही आवश्यक स्थानोंमें प्रत्येक घण्टे या उससे भी शीघ्र प्रयोग करते हैं। इस तरह ठीक-ठीक चुनी हुई दवा और वैसा ही, जिसकी क्रिया बहुत दिनोंतक स्थायी रह सकती है, उसका भी पुरानी बीमारीमें महीनोंतक नित्य प्रयोग किया जा सकता है

---

१. यह द्रव ४०, ३०, १५ या ८ चम्मच पानीमें दवा गलाकर बनाया जाता है। उसमें थोड़ा सुरासार या चारकोलका एक टुकड़ा, इसलिये डाल दिया जाता है, कि बिगड़ न जाये। यदि कोयला व्यवहार किया जाये, तो उसे डोरीमें बांधकर शीशीमें डाल देना चाहिये और शीशी हिलाते समय निकाल लेना चाहिये। शक्तिकृत दवाकी एक गोलीका द्रव (एक गोलीसे ज्यादा गलानेकी शायद ही जरूरत पड़ती है)। ७-८ चम्मच पानी भर एक गिलासमें डाल देना चाहिये। इसे खूब अच्छी तरह हिलाने बाद एक खुराक इसमेंसे रोगीको देनी चाहिये। यदि रोगी अस्वाभाविक रूपसे उत्तेजना और सनुभूति-सम्पन्न हो, तो इस गिलासके द्रवमेंसे एक चम्मच लेकर किसी दूसरे उतने ही जल-भरे गिलासमें डालना और उसको खूब हिलाकर उसमेंसे एक चायका चम्मच रोगी देना चाहिये। कितने ही ऐसे अनुभूति-सम्पन्न रोगी रहते हैं, कि ऐसे ही तीसरे या चौथे गिलासमें तैयार की हुई दवा देनी पड़ती है। ऐसा प्रत्येक गिलास नित्य ताजा बनाना चाहिये। उच्च शक्तिकी गोलीकी कई ग्रेन दूधकी चीनीके साथ खूब चूरकर शीशीमें रखनी और उपयुक्त जल डालकर शीशीको हिला लेना चाहिये।

और लाभ भी अधिक ही दिखाई देता जाता है। यदि यह द्रव सात या पन्द्रह दिनोंमें समाप्त हो जाये और ऐसी दवाके लक्षण तबतक भी वर्त्तमान रहें, तो इसी ओषधकी और भी ऊंची शक्तिकी (और साथ ही कभी-कभी) कई छोटी गोलियाँ मिला देनी पड़ती है। इस तरह जबतक रोगीको लाभ मालुम हो, जो उसने जीवनमें कभी अनुभव न किया हो, तबतक उसका प्रयोग करते रहना चाहिये। पर यदि ऐसा हो, कि बचा हुआ रोग दूसरे परिवर्त्तित लक्षणोंमें प्रकट हो, तो एक दूसरी अधिक सदृश लक्षण-सम्पन्न दवाका चुनावकर पहलीके बदलेमें बारम्बार प्रयोग करना चाहिये। उस समय भी याद रखना चाहिये कि इस द्रवकी भी प्रत्येक मात्राकी शक्तिको जोर-जोरसे हिलाकर कुछ बढ़ा लेना चाहिये। इसके अलावा, ठीक-ठीक सदृश दवाके नित्य प्रयोगके समय पुरानी बीमारीके अन्तिम भागमें यदि होमियोपैथिक रोग-वृद्धि (सूत्र १६१) के लक्षण दिखाई दें, जिससे कि मालुम हो कि रोगका बाकी अंश कुछ बढ़ गया (उस समय पहलेको बीमारीके सदृश, ओषधसे उत्पन्न रोग लगातार बाहर निकला करता है), तब दवाकी मात्रा घटा देनी होगी या बहुत समयका अन्तर देकर दवा देनी होगी अथवा सम्भव हो, तो कुछ दिनोंके लिये दवा बन्द कर देनी होगी और देखना होगा कि रोगसे छुटकारा पानेके लिये और भी दवा देनेकी जरूरत है या नहीं। दिखाई देनेवाले लक्षण (Schein symptoms), जो अत्यधिक सदृश ओषध प्रयोगके कारण हो गये होंगे, वे जल्द ही दूर हो जायेंगे और रोग-रहित स्वास्थ्य जागरित हो उठेगा। यदि एक छोटी शीशी अर्थात् एक ड्राम जल-मिश्रित अलकोहल चिकित्सामें काममें लाया जाये, जिसमें कि केवल दवाकी एक गोली गला ली जाये और खूब हिलाकर दो या तीन अथवा चार दिनका अन्तर देकर सुंघया जाये, तो सुंघानेके पहले उसे भी आठ-दस बार हिला लेना चाहिये। यह होमियोपैथी चिकित्सामें वर्द्धमान क्रम पद्धति कहलाती है।

खुलासा—इस सूत्रपर ध्यान देनेसे मालूम होता है, कि :—

(१) जब पूर्वकी दवाका ही दुबारा प्रयोग करना हो, तो उसे पानीमें गलाकर खुराक बना लेनी चाहिये और दस-बारह बार जोरसे हिला लेना चाहिये।

(२) यदि बीमारी नयी हो, तो ऐसी दवाकी मात्रा दोसे छः घण्टेके भीतर देनी चाहिये।

(३) पुरानी बीमारी हो, तो नित्य या एक दिनका अन्तर देकर प्रयोग करना चाहिये।

(४) तेज बीमारीमें जरूरत दिखाई देनेपर और भी जल्दी-जल्दी दवाका प्रयोग करना चाहिये।

(५) इसकी मात्रा साधारणतः चायका एक चम्मच हो।

(६) यदि द्रव समाप्त हो जाये और वे ही लक्षण वर्त्तमान हों, तो ऊँची शक्तिकी एक या कई गोलियाँ पानीमें गलाकर, फिर द्रव तैयार कर लेना चाहिये और जबतक लाभ होता रहे तथा कोई नये लक्षण न पैदा हों, तबतक देते रहना चाहिये। यदि लक्षण बदल जाये, तो परिवर्त्तित लक्षणके अनुसार दूसरी सदृश दवाका इसी तरह प्रयोग करना चाहिये और ऊपर बताये ढंगसे देना चाहिये।

(७) यदि रोग आराम होते-होते अन्तमें लक्षण बढ़ने दिखाई दें और दवा अधिक हो जानेके कारण ऐसा हो, तो मात्रा घटाना, बहुत अधिक अन्तरसे देना या बन्द ही कर देना चाहिये। सम्भव है, कि बन्द कर देनेसे ही रोग एकदम आरोग्य हो जाये।

(८) पर यदि सुँघानेकी दवाका प्रयोग करना हो, तो जल-मिश्रित सुरासारमें दवा गलाकर सुँघाना चाहिये और प्रत्येक बार सुँघानेके पहले उसे भी हिलाकर उसकी शक्ति बढ़ा लेनी चाहिये।

(९) दवा द्रवके रूपमें तैयार करनेका तरीका जाननेके लिये पाद-टीका देखिये।

[२४९]

यदि दी हुई दवासे कष्टकर लक्षण पैदा हो जायें, तो उसे किस तरह दबाना चाहिये ?

यदि ऐसा हो कि किसी रोगीको दी हुई दवा, ऐसे नये और कष्टकर लक्षण उत्पन्न कर दे, जो मूल रोगके लक्षणोंमें न थे, तो समझना चाहिये कि वह दवा वास्तविक लाभ करने योग्य नहीं है। ऐसा दवा सदृश-लक्षण-सम्पन्न दवा भी न समझी जानी चाहिये। इसलिये, यदि रोग-वृद्धि अधिक हो, तो और कोई उपयुक्त दवा देनेसे पहले, उसकी प्रतिषेधक औषध देकर, जितना शीघ्र सम्भव हो, उसकी क्रियाको आंशिक रूपसे घटा देना चाहिये अथवा यदि ये कष्टकर लक्षण बहुत तेज न हों, तो उस प्रथम अनुपयुक्त औषधका स्थान ग्रहण करनेके लिये तुरन्त दूसरी दवा देनी चाहिये।

खुलासा—यदि रोगीको कोई ऐसी दवा पड़ जाये, कि उससे उसके रोग-लक्षण बहुत बढ़ जायें या नये-नये लक्षण पैदा होने लगें, तो समझना होगा कि दवाका ठीक चुनाव नहीं हुआ—चुनावमें गलती हुई है। ऐसी दवासे रोग आरोग्य नहीं होता। ऐसी अवस्थामें दो बातें सामने आती है। यदि रोग-वृद्धि या नवीन लक्षण तेज और मारात्मक हैं, तो प्रतिषेधक दवा देकर उसका प्रभाव दूर कर देना पड़ता है, उसके बाद दूसरी उपयुक्त दवा देनी पड़ती है। यदि ये नवीन लक्षण हल्के हों, तो तुरन्त ही कोई दूसरी ठीक-ठीक उपयुक्त दवा चुनकर देनी चाहिये (सूत्र १६७)।

[२५०]

यदि रोगीकी अवस्था घण्टा-प्रति-घण्टा खराब होती जाती हो ?

रोगको खूब अच्छी तरह जाँचकर देखनेवाले मननशील चिकित्सकको किसी भयानक रोगोंमें छः, आठ या बारह घण्टे बीत जानेपर, जब ऐसा मालूम हो कि अन्तिम बार दी हुई दवाका चुनाव ठीक नहीं हुआ है, रोगीकी अवस्था स्पष्ट रूपसे, यद्यपि धीरे-धीरे, घण्टा-प्रति-घण्टा खराब ही होती जाती है, नये लक्षण तथा कष्ट पैदा होते जाते हैं, तो उचित ही नहीं, बल्कि यह उसका कर्त्तव्य भी है, कि केवल सहन करने योग्य उपयुक्त ही नहीं, बल्कि जहाँतक सम्भव हो, रोगकी वर्त्तमान अवस्थाके सदृश औषधका चुनाव और प्रयोगकर अपनी भूलका सुधार करे।

खुलासा—भयंकर बीमारियोंमें, जिनमें रोगीकी अवस्था खराब ही होती जानेकी सम्भावना रहती है, उसमें ऐसा चिकित्सक जिसमें रोगीको जाँचनेकी खूब अधिक सामर्थ्य है, यदि यह देखे कि छः, आठ या बारह घण्टे बीत गये और दवाकी लाभदायक क्रिया न हुई, रोगीकी अवस्था क्रमशः खराब ही होती जा रही है, उसमें नये-नये लक्षण और कष्ट पैदा होते जाते हैं, तो समझ लेना चाहिये, कि उसने दवाके चुनावमें भूल की है और उसे तुरन्त इन अवस्थाके उपयुक्त दूसरी होमियोपैथिक—सदृश-लक्षण-सम्पन्न दवा ठीक-ठीक चुनकर देनी चाहिये।

[२५१]

पर्यायगत क्रिया प्रकट करनेवाली दवाओंका कब व्यवहार करना चाहिये ?

कुछ ऐसी भी दवाएँ हैं (जैसे—इग्नेशिया, ब्रायोनिया, रस-टक्स और कभी-कभी बेलेडोना), जिनकी मानव-स्वास्थ्यमें परिवर्त्तन लानेकी

शक्ति पर्यायक्रमसे दिखाई देती हैं—अपनी प्राथमिक क्रियामें एक प्रकारके ऐसे लक्षण उत्पन्न करती हैं, जो आपसमें विपरीत रहते हैं, यदि इनमेंसे किसीका प्रयोग ठीक-ठीक सदृश नियमके अनुसार करनेपर भी चिकित्सक यह देखे, कि कोई लाभ नहीं होता है, तो (नयी बीमारीके कई घण्टोंके भीतर ही) उसी औषधकी पहलेकी भाँति एक और भी क्षुद्र मात्रा प्रयोगकर अपना उद्देश्य सफल कर सकता है।

खुलासा—बहुत-सी ऐसी दवाएँ हैं, जिनकी प्राथमिक क्रियाके लक्षण पर्यायक्रमसे उत्पन्न होते हैं। वे जब होते हैं, तो एक दूसरेके विपरीत रहते हैं। इनमें इग्नेशिया, ब्रायोनिया, रस-टक्स, वेलेडोना प्रभृति प्रधान हैं। यदि इनका सम-लक्षणके अनुसार चुनकर प्रयोग हो, तो यह होगा कि पहली मात्राके प्रयोगके बाद, इनके प्राथमिक लक्षणमें दो प्रकारकी विभिन्न अवस्थाएँ दिखाई देंगी। इनको देखकर डरना न चाहिये कि चुनावमें गड़बड़ी हो गयी है, वल्कि खूब सोच-विचारकर यह देखना चाहिये, कि वास्तविक रोगमें क्या नवीन लक्षण आये हैं, या उस दवाका ही यह पर्यायक्रमसे पैदा हुआ प्रभाव है। यदि दवाका ही प्रभाव हो, तो उसी दवाकी एक सूक्ष्म मात्रा और दे देनेपर सारी गड़बड़ियाँ मिट जायँगी।

[२५२]

पर यदि पुरानी बीमारीमें यह मालूम हो कि सोरानाशक दवासे कोई लाभ नहीं होता, तो ?

परन्तु पुरानी सोराजनित बीमारीमें दूसरी-दूसरी दवाओंका प्रयोग करते समय, यदि यह मालूम हो कि सर्वोत्तम रूपसे चुनी हुई सदृश-लक्षण-सम्पन्न (होमियोपैथिक) सोरा-नाशक दवाका सूक्ष्म मात्रामें प्रयोग करनेपर भी कोई लाभ नहीं हुआ, तो निश्चयपूर्वक यह समझना

चाहिये, कि जिस कारणसे रोग पुष्ट हो रहा था, वह अब भी मौजूद है तथा रोगीके जीवन-यापनके नियम अथवा उसकी रहन-सहनकी अवस्थामें ऐसी कोई घटना अवश्य है, जिसे स्थायी रूपसे आरोग्य करनेके लिये अवश्य ही दूर करना होगा।

खुलासा—सोराके कारण पैदा हुई पुरानी बीमारी यदि उपयुक्त सोरा-नाशक दवाका प्रयोग होनेपर भी आरोग्य न हो, तो चिकित्सकको कदापि हताश न होना चाहिये। अवश्य ही कोई-न-कोई कारण इसके भीतर छिपा रह सकता है। खान-पान, रहन-सहन अथवा रोगीके रहनेकी जगह प्रभृति कोई-न-कोई कारण ऐसा छिपा रह सकता है, जिससे उसका रोग न हटता हो। अतएव, इसका पता लगाकर उस कारणको दूर कर देनेसे ही रोग आरोग्य हो जायगा।

[२५३]

रोग-वृद्धिका ज्ञान कैसे हो सकता है ?

सभी रोगोंमें, खासकर ऐसे रोगोंमें, जो नयी बीमारीकी प्रकृतिके हैं, जो ऐसे चिह्न प्रकट होते हैं, जिनसे रोगका ह्रास या वृद्धिके आरम्भका सामान्य आभास प्राप्त होता है, जिसे सब कोई नहीं समझ सकते, उनमें रोगीके मनकी अवस्था और रोगीके सभी आचरण बड़े ही निश्चित और शिक्षा देनेवाले होते हैं। इस तरह रोगका थोड़ा-सा भी ह्रास होनेपर हमलोग देखते हैं, कि रोगीको बहुत कुछ आराम मालुम होने लगा है। उसके मनकी शान्ति और स्वतन्त्रता बढ़ गयी है, तथा उसमें एक प्रकारकी विशेष प्रफुल्लता आ गयी है—एक तरहसे वह स्वाभाविक अवस्थामें आ रहा है, पर इसके विपरीत जब थोड़ी भी रोग-वृद्धि होती है, तो इससे ठीक उल्टा ही होने लगता है ; अर्थात् रोगीके मनकी और मस्तिष्ककी तथा उसके समस्त आचरण, उसकी सारी भाव-भंगियाँ,

स्थिति तथा कार्योंमें एक प्रकारकी बेचैनी तथा बेबसी आ जाती है। यह बात ध्यान देनेपर अच्छी तरह मालुम हो सकती है, पर यह शब्दोंमें नहीं वर्णन की जा सकती।[१]

खुलासा—सभी बीमारियोंमें और खासकर नयी बीमारीमें ऐसा ही हो जाता है, कि अगर थोड़ी-सी भी बीमारी घटी, तो रोगी जो बेचैनी प्रकट करता था, वह घट जाती है, उसको कुछ आराम मालुम होता है और उसे प्रतीत होता है कि वह अपनी स्वाभाविक अवस्थामें आ रहा है। चिकित्सकको यह बात खूब गौरसे देखनी चाहिये; क्योंकि यदि इधर ह्रास आरम्भ हुआ और दवाकी कोई दूसरी मात्रा पड़ गयी, तो गड़बड़ी हो जायगी। ठीक यही अवस्था तब भी रहती है, जब रोग बढ़ता है, अर्थात् रोगीकी सभी मानसिक और शारीरिक अवस्थाएँ जरा-सा भी रोग बढ़नेके साथ ही बदल जाती हैं। यदि चिकित्सक इस वृद्धिपर

---

१. मन और प्रवृत्तियोंमें सुधार आनेकी आशा दवा देनेके तत्काल बाद केवल उसी हालतमें की जा सकती है, जब औषधकी मात्रा पर्याप्त रूपमें सूक्ष्म हो अर्थात् यथासम्भव कम-से-कम मात्रा हो। यदि औषध उपयुक्ततम हो और उसकी मात्रा अनावश्यक रूपसे अधिक हो, तो वह शरीरके भीतर जाकर बहुत जोरसे काम करेगी। वह जाते ही मन और प्रवृत्तिमें ऐसी भारी और कुछ दिनोंतक टिक सकनेवाली गड़बड़ी पैदा कर देगी कि हम हठात् समझ लेंगे कि सुधार आना शुरू हो गया है। मैं यहाँ यह बात स्पष्ट रूपसे कह देना चाहता हूँ, कि नवसिखुये होमियोपैथ इस परमावश्यक नियमका उल्लंघन करते हैं। जो ऐलोपैथ होमियोपैथ बन जाते हैं, वे भी इस कायदेका उल्लंघन करते हैं। चूँकि वे देरसे अति मात्राका व्यवहार करनेके अभ्यस्त होते हैं—इसलिये उन्हें सूक्ष्म मात्रापर विश्वास नहीं जमता। इस तरह वे सूक्ष्म मात्राके आशातीत लाभका परीक्षण करनेसे वंचित रह जाते हैं, हलांकि हजारों बार ऐसे आश्चर्यजनक परीक्षण हो चुके हैं। होमियोपैथी जो कुछ कर सकती है—इस तरह अपने दूषित अभ्यासके कारण वे उससे उतना लाभ नहीं उठा सकते। इस तरह उन्हें यह दावा करनेका कोई अधिकार नहीं है कि वे होमियोपैथीके अनुयायी हैं।

ध्यान नहीं देता, तो वह औषधिका चुनाव नहीं कर सकता। हैनिमैन कहते हैं, कि यह ह्रास-वृद्धिकी अवस्था मनोयोगके साथ देखनेपर ही समझमें आ सकती है, इसका शब्दों द्वारा वर्णन नहीं हो सकता।

[२४५]

ह्रास-वृद्धिका सन्देह कैसे दूर हो सकता है?

दूसरे-दूसरे नवीन और बढ़े हुए लक्षण या इसके विपरीत, नये लक्षणोंके उत्पन्न हुए विना ही मूल लक्षणोंका घटना ध्यानपूर्वक देखनेवाले चिकित्सकके मनसे ह्रास या वृद्धि-सम्बन्धी समस्त सन्देहोंको दूर कर देगा। यद्यपि ऐसे भी रोगी मिलते हैं, जो अपने रोगकी ह्रास-वृद्धिके सम्बन्धमें या तो वताना ही नहीं चाहये अथवा उनमें इनको वर्णन करनेकी शक्ति ही नहीं रहती।

खुलासा—यह भी रोगके ह्रास-वृद्धिका ही विषय है। इस सूत्रका तात्पर्य यह है, कि वहुतसे चिकित्सक इस बातको लेकर गड़बड़ीमें पड़ जाते हैं कि औषधके प्रयोगसे लाभ हुआ या नहीं अथवा वीमारी बढ़ती ही जाती है या घटती। महात्मा हैनिमैनने इस सूत्रमें यही जाननेका तरीका वताया है अर्थात् वे कहते हैं, कि रोग आरम्भके समय जो लक्षण प्रकट हुए थे, वे क्रमशः घटते चले जा रहे हैं, उनमें कोई नया लक्षण आकर नहीं मिलता, तो समझना चाहिते कि बीमारी घटती जा रही है; परन्तु यदि इसके विपरीत, उस पुराने लक्षण-समूहमें नये-नये लक्षण आकर मिलते जाते हैं, और रोगीकी विकलता बढ़ती जाती है, तो समझना होगा कि रोग बढ़ता जा रहा है। परन्तु चिकित्सकको यह बात जाननेके लिये भी अत्यन्त मनोयोगके साथ काम करना होगा अर्थात् यह बात सहजमें ही न मालूम हो जायगी, क्योंकि ऐसे रोगी, उनको मिल सकती हैं, जिनमें अपनी तकलीफोंको समझकर वर्णन

करनेकी क्षमता नहीं होती, इसी वजहसे वे नहीं बताते अथवा उन्हें बतानेकी इच्छा ही नहीं होती। ऐसी अवस्थामें बहुत सावधानता और मनोयोगपूर्वक ह्रास-वृद्धिको जाननेकी चेष्टा करनी होगी।

[२५६]

जो रोगी रोग-लक्षण बतानेमें असमर्थ या अनिच्छुक है, उनकी ह्रास-वृद्धि कैसे जानी जायगी?

ऐसी अवस्थामें—अर्थात् यदि ऐसे व्यक्ति मिल जायें (जो रोग-लक्षण बताना नहीं चाहते), तो उनका रोग-विवरण, जो हमलोगोंके पास लिखा रहता है और उनमें जो-जो लक्षण लिखे हुए हैं, उनमेंसे एक-एकको लेकर हमलोग जाँचना आरम्भ करें और उनसे पूछें। यदि हमलोगोंको यह दिखाई दे कि उनमें किसी नये लक्षणके आ मिलनेकी बात रोगी नहीं बताता तथा पुराने लक्षण भी कुछ बढ़ नहीं गये हैं, तो इस विषयमें हमलोग बहुत कुछ निश्चिन्त हो सकते हैं। यदि ऐसी बात हो और यदि प्रकृति और मनकी दशामें कुछ उन्नति देखनेमें आयी हो, तो समझना चाहिये कि औषधने रोगको अवश्य ही कुछ-न-कुछ घटाया है और यदि दवाका सेवन करते-करते, काफी समय नहीं बीत गया है, तो समझना चाहिये कि अवश्य ही रोगपर औषध अपना प्रभाव जमा लेगी। इसके अलावा, अब यदि उन्नतिके प्रकट होनेमें बहुत देर हो रही है, तो इसका कारण रोगीकी कोई भूल हो सकती है या कोई दूसरी परिस्थिति इसमें आकर बाधा पहुँचा सकती है।

खुलासा—ऐसी अवस्थामें अर्थात् यदि ऐसा रोगी मिल जाये, जो अपना लक्षण बताना नहीं चाहता हो अथवा उसमें यह क्षमता न हो कि वह आप-से-आप सब लक्षण बता दे, तो उस समय चिकित्सकको यह करना चाहिये कि प्रथम बार रोगीकी परीक्षा करते समय उसने रोगीके

जो लक्षण अपनी नोट-बुकमें लिख रखे हैं, उनमेंसे एक-एकको लेकर जाँचना और रोगीसे पूछना आरम्भ कर दे। इससे रोगीकी प्रकृतिके कारण ह्रास-वृद्धि जाननेके सम्बन्धमें जो गड़बड़ी पैदा हो रही थी, वह दूर हो जायगी और उससे सरलतापूर्वक मालुम हो जायगा कि रोगीके लक्षणोंमें क्या वृद्धि हुई है और कितना ह्रास हुआ है। अब एक दूसरी बात यह सामने आती है, कि दवाकी क्रिया कैसी हुई है। यदि मूल रोगके लक्षण घट गये हैं, तब तो दवाकी क्रिया ठीक-ठीक ही हुई है; पर यदि अबतक दवाकी क्रिया ठीक-ठीक नहीं हुई, तो चिकित्सकको यह देखना होगा कि क्या दवा दिये काफी समय बीत गया है? यदि नहीं बीता है, तो अवश्य ही दवाको अपना असर जाहिर करनेके लिये समय देना चाहिये; पर यदि दवाका चुनाव भी ठीक है और समय भी बीतता जा रहा है, तो समझना होगा कि रोगीकी कार्यावली अथवा नियम-पालनमें कोई भूल हो रही है अथवा वह किसी ऐसी परिस्थितिमें जा पड़ा है, कि उसपर दवाकी क्रिया प्रकट नहीं होती। ऐसी दशामें अपनी दवाकी उपयुक्ततापर पुनर्विचार करनेके बाद रोगीके रहन-सहन और खान-पानपर ध्यान देना चाहिये।

[२५६]

यह कैसे जाना जाय कि दवाका चुनाव ठीक-ठीक नहीं हुआ है?

इसके विपरीत, अगर रोगी कुछ नये आवश्यक लक्षण पैदा हो जानेकी बात अथवा नयी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ बताये, तो समझना होगा कि यह इस विषयका निदर्शन है, कि दवाका चुनाव लक्षणोंके अनुसार ठीक-ठीक नहीं हुआ है; चाहे रोगी अपनी भली प्रकृतिके कारण यह कह भी दे कि उसे कुछ अच्छा मालुम होता है। जैसा कि फेफड़ेमें

फोड़ा हो जानेवाले यक्ष्माके रोगी कहा करते हैं, तो उसपर ध्यान न देना चाहिये। उसकी बातपर विश्वास न करना चाहिये। इस अवस्थाको रोगके बढ़ जानेकी अवस्था ही समझना चाहिये, जो शीघ्र ही प्रकट हो जायगी।

खुलासा—रोगके ह्रासके सम्बन्धमें हैनिमैन ऊपर बता चुके हैं। वे कहते हैं, कि रोगकी वृद्धि कैसे प्रकट होती है। अब होता यह है कि यदि रोगीको दवासे फायदा नहीं होता, तो उसमें नाना प्रकारके नये लक्षण पैदा हो जाते हैं और वह नये लक्षण तथा नवीन-नवीन घटनाओंका वर्णन करता है। अब दवाका चुनाव ठीक-ठीक नहीं हुआ है, इसका पता इसीसे लग जाता है, कि रोग लक्षणके दबनेके बदले और भी कितने ही नये-नये लक्षण और नवीन तकलीफें रोगीमें बढ़ गयी ; परन्तु इस अवस्थामें भी एक बड़बड़ी पैदा हो जाती है अर्थात् भली तबीयतके रोगी डाक्टरके सन्तोषार्थ कह देते हैं, कि कुछ अच्छा तो मालुम होता है ; पर वास्तवमें उनको अच्छा मालुम नहीं होता। चिकित्सकको उनकी बातपर विश्वास न कर रोगके लक्षण और वास्तविक फायदा है या नहीं ; यह खोज निकालनेकी चेष्टा करनी चाहिये। जिनके फेफड़ेमें फोड़ा रहता है, ऐसे यक्ष्माके रोगी अकसर इसी ढंगकी बात कहा करते हैं। अतएव, इस बातपर कभी भी ध्यान न देकर यही समझना चाहिये कि दवाके चुनावमें गलती हुई है और रोग बढ़ा हुआ है।

[२५७]

चिकित्सककी औषधियोंपर किस तरहका लक्ष्य रखना चाहिये ?

सच्चे चिकित्सकको सदा ही यह ध्यान रखना चाहिये, कि कोई औषध उसकी प्रिय औषध न बनने पाये। सम्भव है, ऐसी औषधका

व्यवहार घटनाक्रमसे ही लाभदायक प्रमाणित हुआ हो और उसे ऐसा अवसर प्राप्त हुआ हो, कि सफलतापूर्वक उसका व्यवहार कर सका है। यदि वह सदा ही ऐसा करता है, तो बहुत-सी ऐसी दवाएँ, जो कम व्यवहारमें आती हैं और जो अत्यधिक सम-लक्षण-सम्पन्न अथवा लाभ-दायक हो सकती हैं, छूट जाती हैं।

खुलासा—चिकित्सा-जीवनमें ऐसा होता है, कि कितनी ही ऐसी दवाएँ होती हैं, जो चिकित्सकको भी बहुत प्रिय बन जाती हैं अर्थात् चिकित्सकको उनका व्यावहार करनेकी आदत पड़ जाती है, चाहे उनके लिये उपयुक्त केस हो या न हो। इसीलिये वे उनकी प्रिय औषध हो जाती हैं और इनको ही वे अकसर व्यवहार किया करते हैं। इसी विषयको लक्ष्यकर महात्मा हैनिमैन कहते हैं, कि यह बिलकुल ही बेजा बात है। इससे बहुत-सी वे दवाएँ, जो व्यवहारमें कम आती है, उनका प्रयोग होना छूट जाता है। सम्भव है, कि ये दवाएँ बहुत ही अधिक सदृश-लक्षण-सम्पन्न होतीं ; पर चिकित्सकके लिये कोई विशेष औषध अधिक प्रिय रहनेके कारण उसका प्रयोग वे कर नहीं पाते। मुम्किन है, कि इससे ज्यादा फायदा होता। अतएव, ऐसा अभ्यास चिकित्सकको त्याग देना चाहिये।

[२५८]

क्या जिन औषधियोंसे लाभ न दिखाई दिया है, उन्हें चिकित्सको छोड़ ही देना चाहिये ?

इसके अलावा, सच्चे चिकित्सकको अपने चिकित्सा-व्यवसायके समय, अपने भ्रमके कारण उन दवाओंका प्रयोग कदापि न त्याग देना चाहिये ; जिनका कभी-कभी प्रयोगकर उन्हें लाभ न हुआ है या नुकसान हुआ है। ऐसा उनके गलत चुनावके कारण हुआ है (इसलिये,

यह उनकी ही भूल है) या किसी दूसरी वजहसे (भ्रमवश) उन्हें न त्याग दें ; क्योंकि रोगके सदृश न रहनेके कारण ऐसा हुआ था। उन्हें हमेशा यह सत्य स्मरण रखना चाहिये, कि हरेक असली रोगमें, सिर्फ उसी दवाका प्रयोग करना होगा, जिसके चरित्रगत लक्षण, रोगके लक्षणसे बिलकुल ठीक-ठीक मिलते होंगे और ऐसे चुनावके समय किसी तरहका भी पक्षपात न बना रहना चाहिये।

खुलासा—सच तो यह है, कि दवाका चुनाव एकदम सहज सरल काम नहीं है। रोग-लक्षण और औषध-लक्षणका सादृश्य होनेपर ही सफलता प्राप्त हो सकती है। जब यह नहीं होता, तो होमियोपैथीके अनुसार बढ़िया-से-बढ़िया दवा भी कोई काम नहीं कर सकती। इसीलिये, यदि किसी चिकित्सकको कोई औषध प्रयोगकर सफलता न मिली हो, तो यह कदापि न समझ लेना चाहिये कि यह दवा कामकी नहीं है।

[२५९]

होमियो-चिकित्सा-कालमें खान-पानका कैसा प्रबन्ध रखना चाहिये ?

सम-लक्षण-सम्पन्न चिकित्सामें जिस तरह सूक्ष्म मात्राका प्रयोग उचित और आवश्यक होता है, उससे हमलोगोंके ध्यानमें यह बात अत्यन्त सरलतापूर्वक आ सकती है, कि होमियोपैथिक चिकित्साके समय भोजनके पदार्थ और पथ्यापथ्यके नियमसे वे सभी चीजें हटा देनी चाहियें, जिसमें औषध-गुण हो ; ताकि किसी वाह्य औषधात्मक उत्तेजक पदार्थका प्रभाव इस क्षुद्र मात्रापर न छा जाये और उसकी क्रियामें व्याघात न पैदा हो जाये।

खुलासा—होमियोपैथिक औषधियोंका प्रयोग बहुत ही सूक्ष्म मात्रामें होता है। इसीका यह परिणाम होता है, कि वे शरीरके

सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अंश तथा अत्यन्त सूक्ष्म जीवनी-शक्तिपर अपनी क्रिया प्रकट कर सकती हैं। इसलिये, इसमें उस अन्य पदार्थोंका भी प्रभाव तुरन्त पहुँच जाता है, जिनमें औषध-गुण रहता है अर्थात् यदि रोगीके खान-पानमें कोई ऐसी चीज सम्मिलित रहती है, जिसमें किसी तरहका औषधात्मक गुण रहता है, तो वह उस सूक्ष्म मात्राकी क्रियापर अपना प्रभाव जमा लेता है और इसीका यह परिणाम होता है, कि उक्त औषधकी सूक्ष्म क्रिया हो नहीं पाती। इसलिये चिकित्सकको खान-पान तथा रहन-सहनका, रोगीके लिये ऐसा नियम बना देना चाहिये, कि न तो उसके खान-पानके साथ ऐसी कोई भी चीज पेटमें जाये और न उसके संसर्गमें कोई तीव्र पदार्थ पहुँचने पाये, जिसकी गन्धसे उसकी क्रिया नष्ट हो सके। इसीलिये, होमियोपैथीमें सब तरहके उत्तेजक पदार्थ, नशीली चीजें तथा अन्य तम्बाकू इत्यादिकी तरहके कई द्रव्योंका प्रयोग मना है।

[२६०]

क्या पुरानी बीमारियोंके रोगियोंको पथ्यापथ्यका नियम पालन करना चाहिये ?

इसी वजहसे पुरानी बीमारीके रोगियोंके लिये आरोग्यमें बाधक इन विषयोंकी खोजकी और भी अधिक आवश्यकता है; क्योंकि उनकी बीमारियाँ ऐसे हानिकारक प्रभावोंसे तथा खाद्य और पथ्यापथ्यके नियमपर ध्यान न रखनेसे, जिनपर अकसर उनका ध्यान नहीं रहता, बढ़ जाया करती है।[1]

---

१. पथ्यापथ्यके सम्बन्धमें हैनिमैनका कथन है:—काफी, चीनीकी या दूसरे प्रकारकी चाय, दवाके काममें आनेवाले नाना प्रकारके पदार्थोंसे बनी बियर नामकी शराब, मसालेदार चीजोंसे बनी शराब, सब तरहके मसाले, पंच नामक शराब,

खुलासा—नयी बीमारीके रोगी तो पथ्यापथ्यपर कुछ ध्यान भी रखते हैं; परन्तु पुरानी बीमारियोंके रोगियोंका इसपर बिलकुल ही ध्यान नहीं रहता। वे बहुत दिनोंतक रोग भोगते रहनेके कारण पथ्यके नियमोंपर ख्याल नहीं रख सकते। यह उनके लिये आरोग्यमें बाधा है और इससे उनकी बीमारीके बढ़ जानेकी सम्भावना रहती है। इसीलिये, हैनिमैनने कहा है, कि पुरानी बीमारीके रोगियोंको तो इस बातपर और भी अधिक ख्याल रखना चाहिये।

[२६१]

पुरानी बीमारियोंमें रोगीको किस प्रकार रखना चाहिये?

पुरानी बीमारियोंमें दवा प्रयोग करनेके समय, आरोग्यकी इन बाधाओंको दूर करना तथा आवश्यक होनेपर इसके विपरीत नियम

मसालेदार चोकोलेट, गन्धवाले पानी और बहुत तरहके सुगन्धित द्रव्य, तेज गन्धवाले फूलोंका कमरेमें रखना, दन्त-मंजन और इत्र, तेज मसालेदार पदार्थ और चटनियाँ, मसालेदार रोटियाँ और बरफ, दवाके लिये काममें आनेवाली चीजोंके शोरबे, साग-सब्जियाँ, कन्द-मूल, ऐस्पेरोगस नामका एक प्रकारका उद्भिद, प्याज, लहसुन तथा समस्त औषध-गुण-सम्पन्न पदार्थ इत्यादि। पुराना पनीर तथा बिगड़े हुए गोश्त या ऐसा मांस, जिनमें औषध-गुण-सम्पन्न पदार्थ मिश्रित हैं, ये सब रोगीको न खाने चाहियें। इसके अलावा, रोगीको अधिक खाना-पीना या ज्यादा चीनी या तेल व्यवहार करना, नशीली चीजें पीना, पानी मिलाये बिना शराब पीना, गर्म कमरा, बिना कुछ नीचे पहने ऊनी वस्त्र पहनना, बन्द कमरेमें बैठे-बैठे जीवन बिताना या घुड़सवारी आदि तेज व्यायाम करना, गाड़ी चलाना या झूला झूलना, बहुत दिनोंतक स्तनसे दूध पिलाना, तीसरे पहरके समय बहुत देरतक लेटे-लेटे सोना, रातमें बहुत देरतक जागना, गन्दे स्थानमें रहना, अस्वाभाविक व्यभिचार, अश्लील पुस्तकें पढ़ना, हस्तमैथुन, गर्भ रोकनेके लिये पूरा-पूरा सहवास न करना या रोककर करना, क्रोध, शोक आदिमें लगे रहना, बहुत अधिक शारीरिक या मानसिक परिश्रम, सीड़-भरी जमीनमें रहना, अभावपूर्ण जमीन,—ये सभी बातें त्याग देनी चाहियें।

पालन करवाना, जैसे—निर्दोष मानसिक आमोद-प्रमोद, सब तरहकी ऋतुओंमें खुली हवामें व्यायाम (नित्य टहलना और हल्का मानसिक परिश्रम), यथोचित पोषक तथा ऐसे पदार्थ, जिनमें औषध-गुण न हो, सेवनका प्रबन्ध करना चाहिये।

खुलासा—पुरानी बीमारीका इलाज करनेके समय २६०वें सूत्रमें आरोग्य-सम्बन्धी जिन बाधाओंको दूर करनेकी बात बतायी है, उनका पालन करना तो अत्यन्त आवश्यक ही है। इसके अलावा, रोगीकी तबीयत बहलाकर उसकी मानसिक उन्नति करनेके लिये यह भी आवश्यक है, कि उसे निर्दोष आमोद-प्रमोदमें व्यस्त रखें। उसके लिये ऐसा प्रबन्ध करें कि सभी ऋतुओंमें वह खुली हवामें टहले, बन्द कमरेमें न बैठा रहे तथा उसके खाने-पीनेका ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये, कि उसे पोषक खाने-पीनेकी ऐसी चीजें मिलती रहें, जिनमें दवाका गुण नष्ट करनेवाला औषध-गुण न रहे।

[२६२]

नयी बीमारियोंमें रोगीके साथ कैसा व्यवहार और नियम रखना चाहिये ?

इसके विपरीत, मानसिक विकारके रोगोंके सिवा, अन्य नयी बीमारियोंमें जागरित जीवनी-शक्तिका सूक्ष्म, निर्मल, भीतरी कार्य इतना स्पष्ट होता है, कि चिकित्सकके लिये केवल यही कर्त्तव्य रह जाता है, कि वह रोगीकी सेवा-सुश्रूषा करनेवाले तथा बन्धु-बान्धवोंको यह उपदेश दे, कि रोगी जिस चीजके खानेका आग्रह करे, वह उसे दें और इस तरह प्रकृतिकी इस मांगको पूरा करनेसे इन्कार न करें तथा उसे कोई हानिकर चीज खानेके लिये प्रेरित न करें।

खुलासा—इसका तात्पर्य यह है, कि कभी-कभी रोगीमें किसी पदार्थके खाने-पीनेकी प्रबल इच्छा जागरित हो पड़ती है, वह उस पदार्थके

लिये तड़पता और मचलता है। यह उसके भीतरकी जीवनको रक्षा करनेवाली शक्तिकी आवाज है। इसके द्वारा प्रकृति वह चीज मांगती है, जो उसके लिये हितकर है। जैसे—कितने ही ज्वरोंमें पानीकी अदम्य इच्छा, हैजामें तेज प्यास, इनको रोकना या न देना रोगीको हानि पहुँचाना है। अतएव, चिकित्सकको उचित है, कि रोगीकी सेवा करनेवाले और उसके बन्धु-वान्धवोंको समझा दें, कि रोगीको इससे रोककर कोई दूसरी हानिकर चीज पथ्य-रूपमें देनेकी चेष्टा न करें ; क्योंकि इससे नयी बीमारियोंमें, विशेषकर भीतरी कमी पूरी होती है।

[२६३]

रोगीके खान-पानका कैसा प्रबन्ध रहना चाहिये ?

नयी बीमारीके रोगीकी खान-पानके सम्वन्धमें आकांक्षा, निश्चित रूपसे और खासकर उन्हीं चीजोंके लिये होती है, जो उसके कष्टको सामयिक शान्ति प्रदान करनेवाली होती है। ये किसी प्रकारकी औषध-गुण-सम्पन्न चीजोंके ढंगकी नहीं होतीं और इनसे केवल एक अभावकी पूर्त्ति होती है। परिमित भावसे इस इच्छाकी पूर्त्तिके कारण, रोगको पूरी तरह दूर करनेमें जो थोड़ी-सी सामान्य वाधा प्राप्त होती है, वह सम-लक्षण-सम्पन्न उचित औषधसे रोकी जा सकती है और दूर की जा सकती है तथा जीवनी-शक्तिमें इस तरह इच्छित पदार्थ प्राप्त होनेसे स्फूर्ति उत्पन्न होती है। इसी तरह नयी बीमारियोंमें कमरेकी गर्मी और बिछावनकी सर्दी-गर्मीका भी प्रबन्ध रोगीकी इच्छाके अनुसार ही करना चाहिये। उसको सब तरहके मानसिक श्रम तथा उत्तेजक कारणोंसे अलग रखना चाहिये।

खुलासा—रोगीकी इच्छाके अनुसार उसे शान्तिपूर्वक रखनेसे रोगके आरोग्यमें बहुत-कुछ सहायता प्राप्त होती है। इसीलिये हैनिमैनने

यह उपदेश दिया है, कि यदि रोगीमें किसी चीजकी बहुत प्रबल मांग पैदा हो जाये, तो उसे परिमित मात्रामें देना चाहिये। इससे उसे थोड़ी देरके लिये शान्ति प्राप्त होती है और यदि इससे रोगके आरोग्यमें किसी तरहकी बाधा भी पहुँचती है, तो सम-लक्षणकी समुचित दवाके प्रयोगसे वह बाधा दूर हो जाती है, तथा ऐसे स्फूर्तिदायक पदार्थोंके प्रभावसे जीवनी-शक्तिको बल मिलता है और रोगी भी शीघ्र आरोग्य हो जाता है। इसी तरह रोगीके कमरेकी सर्दी-गर्मी और बिछावनका भी प्रबन्ध करना चाहिये। सारांश यह कि उसमें किसी तरहकी उत्तेजनाका भाव या मानसिक श्रम न पैदा होने देना चाहिये।

[२६४]

चिकित्सकको सबसे अधिक किस चीजकी जरूरत रहती है ?

सच्चे चिकित्सकको विशुद्ध शक्ति-सम्पन्न दवाओंसे सुसज्जित रहना चाहियें, ताकि वह उनकी आरोग्यकारिणी शक्तिपर निर्भर कर सके; उनके असली होनेकी जाँच करनेकी योग्यता भी उसमें होनी चाहिये।

खुलासा—चिकित्सकमें विद्या, बुद्धि तथा रोग-निदान आदिकी शक्ति रहनेकी तो आवश्यकता है ही; परन्तु साथ ही इस बातकी भी बड़ी जरूरत है कि, जो दवा उसे प्राप्त हो, वह शुद्ध रहे, उसकी ताकत किसी तरह नष्ट न हो गयी हो, नहीं तो रोगीपर उसकी क्रिया ही न होगी। साथ ही चिकित्सकमें यह क्षमता भी रहनी चाहिये कि वह यह जाँच ले कि यह दवा शुद्ध है या नहीं; परन्तु होमियोपैथिक दवाओंकी यह जाँच सरल काम नहीं है, सभी दवाएँ एक समान रंग-रूपकी होती हैं। अतएव, या तो चिकित्सकको स्वयं औषध तैयार करनी चाहिये अथवा ऐसे स्थानसे ग्रहण करनी चाहिये, जहाँकी सत्यतापर वह विश्वास रख सके।

[२६५]

क्या चिकित्सकको दवा स्वयं तैयार करनी चाहिये ?

यह चिकित्सकके विवेकका विषय है, कि वह पूरी तरह निश्चित कर ले कि रोगीको जो दवा दी जा रही है, वह सही है; इसलिये उसे रोगीको ठीक-ठीक चुनी हुई दवा, विशेषकर अपनी तैयार की हुई दवा ही देनी चाहिये।

खुलासा—हैनिमैनके इस सूत्रका प्रधान लक्ष्य है, कि रोगीको एकदम विशुद्ध औषधि मिलनी चाहिये। इसीलिये उन्होंने स्वयं औषध प्रस्तुत करके देनेकी बात कही है। उस कालमें होमियोपैथिक दवाएँ तैयार करनेके कारख़ाने भी न थे। दूसरे हैनिमैनपर चारों ओरसे इस तरह विरोधी लगे थे, कि वे किसीपर विश्वास भी न कर सकते थे; पर अब विशुद्ध दवा बेचनेवालोंका अभाव नहीं है। अतएव, विश्वस्त स्थानसे खरीदकर भी दवाएँ दी जा सकती हैं और चिकित्सक स्वयं भी तैयार कर सकता है।

[२६६]

ये औषधियाँ कहाँसे प्राप्त होती हैं ?

जीव या उद्भिद-जगतके पदार्थोंकी कच्ची अवस्थामें ही औषध-गुण अधिक रहता है।

खुलासा—दवाएँ जीव तथा उद्भिदोंसे प्राप्त होती हैं; परन्तु जबतक ये चीजें कच्ची और तर अवस्थामें रहती हैं, तभीतक उनमें औषध-गुण ज्यादा रहता है। अतएव, जीव और उद्भिदसे जो दवाएँ बनानी हों, उन्हें कच्ची अवस्थामें ही लेना चाहिये।

[२६७]

दवा तैयार करनेका तरीका क्या है ?

हमलोगोंको बहुतसे उद्भिद ताजी अवस्थामें प्राप्त हो सकते हैं, ऐसे उद्भिदोंके ताजे निकाले हुए रसके साथ, इतनी ताकतका सुरासार (अलकोहल) मिलाना चाहिये, जिससे बत्ती जब उठे। यह सम-परिमाणमें मिलाना चाहिये। यह मिश्रित पदार्थको अच्छी तरह कसा हुआ काग लगे बोतलमें एक दिन और एक रात रख छोड़ना चाहिये। इससे यह होगा कि उसके रेशे और अण्डलालवाला अंश बोतलकी तलीमें जम जायगा। अब यह ऊपरवाला साफ तरल पदार्थ दवाके रूपमें, व्यवहारमें आ सकता है। इन उद्भिदोंके सड़नेके करण जो फूही जमती है, वह सुरासारके कारण तुरन्त नष्ट हो जाती है, जो उसके साथ मिला रहता है और भविष्यमें भी उसे सड़ने नहीं देता ; इस तरह उसके भीतरकी सम्पूर्ण भैषज-शक्ति ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। पर यह सदाके लिये तब बनी रहती है, जब इस तरलको, खूब कसे काग लगे बोतलमें, भरपूर मोम लगाकर इस तरह बन्द कर दिया जाता है, कि वह भाफ बनकर उड़ न जाये तथा उसमें किसी तरह धूप न लगने पाये।

खुलासा—यह सूत्र दवा तैयार करनेका पहला तरीका बताता है। ताजी जड़ी-बूटियोंका रस निकालकर, जितना रस हो, उतने ही सुरासारमें मिला, दिन-रात, खूब कसकर काग लगे बोतलमें रखना चाहिये। उसकी जो तली जमती है, उसे छोड़कर बाकी दवा बराबर काममें आती है और यह कभी बिगड़ नहीं सकती। इस दवाको सुरक्षित रूपसे रखनेके लिये, उसे बोतलमें भर, काग लगा, मोम लपेट देना चाहिये, जिसमें दवा उड़ न जाये तथा धूप इत्यादिसे उसे बचाये रखना चाहिये।

[२६८]

पर जो दवाएँ ताजी न मिलें, उनका प्रयोग कैसे हो ?

पर दूसरे देशोंमें उत्पन्न पौधे, छाल, बीज या मूल, जो ताजी अवस्थामें प्राप्त नहीं हो सकते, उन्हें बुद्धिमान चिकित्सकको कभी भी चूर्ण अवस्थामें केवल विश्वासपर निर्भर करके ग्रहण न करना चाहिये ; बल्कि उनको सम्पूर्ण और मूल अवस्थामें लेकर उनकी शुद्धताकी जाँच कर लेनी चाहिये और तब औषधके काममें उन्हें लाना चाहिये।[1]

---

१. दवाओंको चूर्णके रूपमें रखनेकी एक प्रक्रिया है, जिसपर अबतक औषध विक्रेता ध्यान नहीं देते और इसीलिये जीव तथा उद्भिद पदार्थोंके बहुतसे विचूर्ण अच्छी तरह काग लगे बोतलोंमें रखनेपर भी नष्ट हो जाते हैं। खूब सूखे रहनेपर भी, मूल उद्भिद् पदार्थोंमें उनकी प्रकृति तथा संसर्गके कारण कुछ नमी आ जाती है, जो उन्हें एकदम सूखा नहीं रहने देती। यही बात खूब विचूर्ण किये हुए पदार्थमें भी आ जाती है। इसीलिये, जीव और उद्भित पदार्थ, जो अपनी मूल अवस्थामें खूब सूखे थे, विचूर्ण होनेपर कुछ तर-से हो जाते हैं। ये यदि उस तरीकेसे सुरक्षित नहीं कर दिये जाते, तो बहुत जल्द खराब होने लगते हैं। इस खराबीसे बचानेके लिये, उन्हें एक ऊँचे किनारेकी तश्तरीमें बिछा देना चाहिये। इस तश्तरीको एक खूब खौलते हुए गर्म पानीपर इस तरह रखना चाहिये कि वह तैरती रहे और इस तरह उस तश्तरीके चूर्णको चलाते रहना चाहिये कि उसके सब दाने टूट जायें, आपसमें अलग हो जायँ और एकदम चूर्णमें परिणत हो जायें। इस अवस्थामें आनेपर वह विचूर्ण बिना खराबी आये, काग लगे बोतलमें रखा जा सकता है। इस तरह यह चूर्ण भेषज-शक्तिसे पूर्ण अवस्थामें बराबर बना रहेगा और उसमें घुन, कीड़े इत्यादि कभी न लगेंगे। इनको दिनकी रोशनीसे भी बचानेके लिये, बक्स या आलमारीमें रखना चाहिये। यदि ऐसे बोतलोंमें यह न रखा जायगा, जिसमें हवा न जाये और दिनकी रोशनी तथा धूपसे न बचाया जायगा, तो सभी उद्भिद और जीव पदार्थ भेषज गुणसे रहित हो जायेंगे। चूर्णकी अवस्थामें ऐसा विशेषकर होता है।

खुलासा—स्थानिक चीजें तो ताजी अवस्थामें मिल जाती हैं, उनका तो रस निकालकर दवा तैयार कर ली जाती है ; परन्तु कितनी ही दवाएँ ऐसी हैं, जो ताजी अवस्थामें नहीं मिलतीं या दूसरे देशोंसे मँगानी पड़ती हैं। ये चूर्णकी हालतमें आ सकती हैं, पर चूर्ण हो जानेपर पता नहीं लगता कि ये असली चीजें हैं या नहीं। इसलिये, हैनिमैन कहते हैं, कि इनको चूर्णकी आवस्थामें कदापि न लेना चाहिये। सम्पूर्ण और सर्वाङ्ग मँगाकर देख लेना चाहिये कि ये वे ही चीजें हैं या नहीं, जिनकी जरूरत है, सड़ी-गली, घुन खाई तो नहीं हैं। तब उन्हें दवाके काममें लाना चाहिये।

[२६९]

शक्ति या क्रम क्या है ?

सदृश-चिकित्सा-प्रणाली, अपने विशेष व्यवहारके लिये, एक ऐसी रीतिसे जो आजतक कभी सुनी न गयी थी, स्थूल पदार्थोंमें एक खास तरीकेकी प्रक्रिया द्वारा भेषज शक्ति पैदा कर देती है। इस प्रणालीकी आजतक परीक्षा नहीं की गयी थी। इस प्रक्रियासे दवाएँ और वे चीजें भी, जिनमें अबतक जरा भी भेषज-शक्तिका प्रमाण न पाया जाता था, असाधारण रूपसे लाभदायक और आरोग्यकारी प्रमाणित हुई हैं।

प्राकृतिक पदार्थोंके गुणमें, इस तरहका आश्चर्यजनक परिवर्त्तन, उनकी छिपी और मानो सोयी तथा गुप्त सूक्ष्म शक्तियोंको, जिनका अभीतक पता न चला था, जागरित कर देता है। ये शक्तियाँ जीवनी-शक्तिपर प्रभाव डालकर जीवके स्वास्थ्यमें परिवर्त्तन ला देती हैं। यह काम उनके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अणुओंपर रगड़ने, हिलाने तथा शुष्क और तरल निष्क्रिय पदार्थोंके सहयोगसे एकको दूसरेसे अलग रखते हुए किया जाता है। यह प्रणाली शक्तिकरण, क्रमोन्नतकरण (भेषज-शक्तिका विकास)

कहलाता है और उससे जो चीज उत्पन्न होती है, उसको एक विशेष प्रकारकी शक्ति या क्रम कहते हैं।

खुलासा—होमियोपैथीका यह शक्तिकरण एक अद्भुत पदार्थ है। अबतक इसपर किसीका भी ध्यान न गया था। यद्यपि यह क्रिया मलने, घसने या हिलाने द्वारा होती है, पर इससे होता यह है, कि प्रत्येक पदार्थके अणु-अणुमें एक तरहकी बिजली-सी पैदा हो जाती है, उनमें छिपी या उनकी सोई शक्ति जाग उठती है और इस तरह वे पदार्थ भी जिनकी आरोग्यदायिनी शक्तिका अबतक कुछ पता न था, बहुत ही आरोग्यदायक हो जाते हैं। इस प्रक्रियाको शक्तिकरण या क्रमोन्नतकरण कहते हैं और इस तरहकी प्रक्रिया द्वारा जो चीज तैयार होती, वह उसी दर्जेकी शक्तिकृत या क्रम रूपमें लायी हुई मानी जाती है।

[२७०]

शक्तिकरणका तरीका क्या है ?

शक्तिके इस विकासको पूरी तरह प्राप्त करनेके लिये जिस पदार्थकी शक्तिको बढ़ाना हो, उसका एक सूक्ष्म भाग, मान लीजिये कि एक ग्रेन दवाको तीन घण्टेतक, तीन सौ ग्रेन दूधकी चीनीके साथ निम्नलिखित प्रणालीके अनुसार तबतक घोंटा जाता है, जबतक वह दस लाख अंशतक विचूर्णित न हो जाये। नीचे लिखे कारणोंसे इस चूर्णका १ ग्रेन ५०० बूंद उस मिश्रणमें मिला दिया जाता है, जिसमें एक भाग सुरासार और ४ भाग चुआया हुआ पानी सम्मिलित हो। इसकी एक बूंद एक शीशीमें रख दी जाती है। इसमें १०० बूंद सुरासार मिला दिया जाता है तथा हाथसे किसी कड़ी, पर लचीली चीजपर १०० बार जोर-जोरसे ठोंका जाता है। यही शक्तिकृत दवाका १म क्रम हुआ। इसके साथ दूधकी चीनीसे बनी गोली तरकर, सुखानेवाले कागज (ब्लार्टिंग) पर

फैलाकर, सूख जाने बाद, अच्छी काग लगी शीशीमें रखकर उसपर (१) निशान लगा देना चाहिये। इसमेंसे केवल एक अनुवटिका लेकर बादकी अगली शक्ति तैयार करनेके लिये दूसरी नयी शीशीमें एक बूंद पानीमें गलाकर रखा जाता है और फिर उसमें १०० बूंद बढ़िया सुरासार मिला दिया जाता है और उसी तरह जोर-जोरसे १०० बार ठोंककर शक्तिकृत किया जाता है।

इस सुरासार मिले औषधवाले तरल पदार्थमें फिर अनुवटिकाएँ तर कर ली जाती हैं, उन्हें ब्लाटिंग कागजपर फैलाकर फुर्त्तीसे सुखा लिया जाता है तथा एक काग लगी शीशीमें भरकर धूप तथा दिनकी रोशनीसे बचाते हुए रख दिया जाता है। इसपर (२) शक्तिका चिह्न लगा दिया जाता है। इसी तरह चलते-चलते औषधका २९वाँ क्रम तैयार हो जाता है। अब इसके बाद १०० बूंद सुरासारके साथ १०० बार हिलाकर सुरासार मिला, औषधका ३०वाँ क्रम तैयार होता है। इसमें चीनीकी बनी अनुवटिका तरकर फिर सुखा लेनी पड़ती है।

स्थूल-द्रव्योंपर इस ढंगकी प्रक्रिया करनेसे जो चीज तैयार होती है, उसीमें यह शक्ति रहती है, कि रोगी शरीरके रोगवाले अंशतक पहुँचकर विद्युत शक्तिसे अपनी क्रिया प्रकट कर सके। इस तरह, सम-लक्षण-वाले कृत्रिम रोगसे, जीवनी-शक्तिपर प्राकृतिक रोगका जो प्रभाव रहता है, उसको दूर किया जाता है। ऊपर बताये ढंगसे, यदि यह प्रक्रिया ठीक-ठीक की जाती है, तो जो कोई चीज अपनी मूल अवस्थामें एकदम जड़की भाँति तथा भेषज-शक्तिसे रहित मालूम होती थी, उसमें भी एक तरहका आश्चर्यजनक और विद्युत शक्ति-सम्पन्न परिवर्त्तन पैदा हो जाता है और इसी तरह जब यह शक्तिकरणके उच्च-से-उच्चतर स्तरपर जाती है, तो एकदम परिवर्त्तित हो जाती है और उसमें एक सूक्ष्म-शक्तिकी भाँति भेषज-शक्ति उत्पन्न हो जाती है, जो यद्यपि हमलोगोंके लिये इन्द्रिय-गम्य

नहीं रहती, पर जिसमें तैयार की हुई औषध रूपकी अनुबटिका[1] सूखी, पर विशेषकर जब वह पानीमें गला ली जाती है, तो वह बिजलीका-सा काम करती है और इस अवस्थामें रोगी शरीरमें अदृश्य शक्तिका आरोग्यदायक गुण प्रकट करती है।

खुलासा—इस सूत्रमें दवा बनानेका तरीका बताया गया है। जो स्वयं दवा बनाना चाहते हैं, उन्हें इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिये।

हैनिमैनने निम्नलिखित प्रणालीका इस सूत्रके आरम्भमें उल्लेख किया है :—

एक सौ ग्रेन चीनीको तीन भागोंमें विभक्तकर उसमेंसे एक भाग खरलमें पहले रखा जाता है। उस खरलका भीतरी भाग पेंदा—अच्छी तरह महीन बालूसे रगड़कर साफ कर देना चाहिये, तब चीनी डालनी चाहिये। इस चीनीपर एक ग्रेन दवावाला पदार्थ (पारा, पेट्रोल प्रभृति) रखना चाहिये। इस शक्तिकरणके लिये जो दूधकी चीनी ली जाये, वह खासकर बढ़िया होनी चाहिये। चीनी और दवाको पोर्सिलेनके चम्मचसे मिला लेना चाहिये। इसके बाद ६-७ मिनटतक खूब खरल करना चाहिये और फिर ३-४ मिनटतक उसे खरलसे छुड़ाना चाहिये। इसी तरह दूसरी बार बिना कुछ मिलाये ६-७ मिनटतक घोंटना और ३-४ मिनटतक छुड़ाना चाहिये। इसके बाद तीन हिस्साकर जो चीनी रखी गयी थी, उसका दूसरा हिस्सा मिलाना चाहिये ; इसको भी पहलेके चूर्णके साथ अच्छी तरह चम्मचसे मिलाकर ६-७ मिनटतक घोंटना चाहिये। फिर ३-४ मिनटतक छुड़ाना और फिर ६-७ मिनटतक घोंटना और ३-४ मिनटतक छुड़ाना चाहिये। अब बाकी चीनीका जो तिहाई अंश बचा हुआ है, उसको उसमें अच्छी तरह चम्मचसे पहले मिलाना, ६-७ मिनटोंतक घोंटना और ३-४ मिनटोंतक छुड़ाना, फिर

---

१. यह चीनीसे ही बनती है—१ ग्रेनमें १०० गोली।

दुबारा ६-७ मिनटतक घोंटना और ३-४ मिनटोंतक छुड़ानेकी प्रक्रिया करनी चाहिये। इस तरह घोंटने और छुड़ानेकी प्रक्रियामें २० मिनटोंका समय प्रत्येक वार लगता है। इस तरह तैयार हुआ विचूर्ण एक काग लगी शीशीमें रख दिया जाता है और उसपर १/१०० अंश अर्थात् दवाका अंश सौमें एक हिस्सा लिख दिया जाता है। अब इसका १/१०,००० शक्ति बढ़ानेके लिये, इस १/१०० वाले विचूर्णका १ ग्रेन दूधकी चीनी १०० ग्रेनके तिहाई हिस्सेके साथ मिलाकर, पहलेकी ही भाँति तीन बार उसी तरह ६-७ मिनटतक घोंटना, ३-४ मिनटोंतक छुड़ाना—क्रिया द्वारा तीन बारमें तीनों हिस्से घोंट डालना चाहिये। इस बार जो क्रम तैयार हुआ, वह १/१०,००० क्रम हुआ। अब यदि इस १/१०,००० का एक ग्रेन लेकर उसी तरह १०० भाग दूधकी चीनीके साथ मिलाया जाये, तो १/१०००,००० अर्थात् प्रत्येक ग्रेनमें मूल पदार्थका १/१०००,००० अंश रहेगा। इस तरह तीनों डिगरियोंका क्रम तैयार करनेमें, ६ बार ६ से ७ मिनट घोंटने और ३ से ४ मिनटतक छुड़ाने, इस तरह प्रत्येक डिगरीका क्रम बनानेमें एक घण्टेका समय लगता है। पहली डिगरीके एक घण्टेतककी घोंटाईसे जो विचूर्ण तैयार होगा, उसके प्रत्येक ग्रेनमें १/१०० ; दूसरेमें १/१०,००० और तीसरेमें १/१०००,००० अंश दवाका रहेगा।

हैनिमैनने इस विचूर्णकी प्रणाली बतानेके लिये ही नीचे कहे अनुसारका हवाला दिया था।

दूधकी चीनीसे ही अनुवटिका तैयार की जाती है। उसका वजन १ ग्रेनमें १०० होता है। इस सूत्रमें जो अनुवटिका शब्द आया है, वह इन्हीं गोलियोंके सम्बन्धमें आया है।

इस सूत्रमें क्रम बनानेकी पद्धति ३० तक बतायी है, परन्तु इसी तरह हजारों, लाखोंतकके क्रम तैयार होते हैं।

[२७१]

सूखी तथा स्निग्ध प्रकृतिकी दवाएँ कैसे तैयार की जाती हैं ?

रोगीको रोगसे आरोग्य करनेके लिये यदि चिकित्सक अपनी सम-लक्षण-सम्पन्न औषध स्वयं तैयार करता हो, जैसा कि उसे करना चाहिये, तो उसे ताजी जड़ी-बूटियाँ ही व्यवहार करनी चाहियें ; क्योंकि यदि आरोग्यके लिये निकाले हुए रसकी जरूरत न हो, तो इस मूल द्रव्यकी बहुत कम ही आवश्यकता पड़ेगी। उसे मूल दवाके कई ग्रेन खरलमें रखना चाहिये और उसमें १०० ग्रेन दूधकी चीनी डालकर तीन बार घोंटना चाहिये (२७० सूत्रके अनुसार) और इस तरहसे उसको घोंटकर तैयार करे, कि प्रति ग्रेणमें $\frac{१}{१००००००}$ भाग दवा मिले। इसके बाद उसीका एक छोटा-सा अंश लेकर हिलानेकी प्रणालीके अनुसार शक्ति तैयार करे। यदि अन्य द्रव्य सूखे या स्निग्ध प्रकृतिके हों, तो उससे भी इसी अनुसार औषध तैयार करे।

खुलासा—इसमें भी २७०वें सूत्रकी भाँति दवा तैयार करनेका ही तरीका बताया गया है ; परन्तु यहाँ यह ख्याल रखना चाहिये कि जहाँ कुछ ग्रेन लिखा है, वहाँ १ ग्रेन लेना चाहिये।

[२७२]

ऐसी तैयार की हुई गोलियोंका क्या प्रभाव होता है ?

यदि इस तरह तैयार की हुई एक गोली यों ही जबानपर रख दी जाये, तो वह थोड़े दिनोंकी हल्की बीमारीके लिये सबसे छोटी मात्रा होती है। इस अवस्थामें औषधका प्रभाव थोड़े ही स्नायुओंपर होता है। ऐसी ही एक गोली, दूधकी चीनीके साथ कुचलकर यदि काफी पानीमें गला ली जाये (सूत्र २४७) और प्रत्येक बार सेवन करानेसे

पहले अच्छी तरह हिला ली जाये, तो उससे कहीं जबर्दस्त प्रभाव पहुँचेगा और कई दिनोंतक उसका व्यवहार हो सकेगा। इसकी प्रत्येक खुराक भले ही कितनी ही कम क्यों न हो, इसके विपरीत अनेक स्नायुओंपर अपना प्रभाव दिखायेगी।

खुलासा—दो तरहसे दवाके सेवनका विधान है,—सूखी गोली खा लेना और गलाकर पानीमें खाना। यदि १ ग्रेनमें बनी हुई १०० गोलियोंमेंसे एक गोली खायी जायगी, तो उसका प्रभाव यह होगा कि नयी तथा हल्की बीमारीमें वह शरीरके थोड़े ही स्नायुओंपर अपना प्रभाव जमायेगी और यदि वही भरपूर पानीमें मिला ली जायगी (२४७वें देखिये), तो कई दिनोंतक चलेगी और उसका प्रभाव भी अधिक होगा।

[२७३]

क्या दो सम्मिलित औषधियाँ एक साथ दी जा सकती हैं?

इलाजके दौरानमें, कभी, किसी हालतमें भी इस बातको अनुमति नहीं दी जा सकती कि रोगीको, एक साथ, एकसे अधिक दवा दी जाय (अर्थात् एक बारमें केवल एक ही और वह भी रोगीके लक्षणोंके अनुसार दवा देनी चाहिये)। एक समयमें एकसे अधिक विपरीतधर्मा औषधोंकी मिक्चरके रूपमें, व्यवस्था देना प्रकृतिके नियम और कल्पनासे बाहरकी बात है। अधिक मौलिक पद्धति यही है कि एक बारमें एक ही और अमिश्रित[1] औषध दी जाये। फलतः होमियोपैथीमें, जो सच्ची, सादा

---

१. प्रकृति स्वतंत्र रूपसे अनेक विपरीतधर्मा पदार्थ पैदा करती है, जैसे—नेट्रम-सल्फ और कैल्केरिया-सल्फ; हमलोग उन्हें सादा और अमिश्रित औषध मानते हैं और अपने रोगियोंपर उनका व्यवहार करते हैं। इनके विपरीत ऐसे बहुतसे वानस्पतिक खार हैं, जैसे—चिनीनम, स्ट्रिकनीन, मारफीन आदि, जिन्हें हम अमिश्रित या सादा औषध नहीं मानते।

और प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति है, किसी एक रोगीको, एक बारमें दो बिभिन्न औषधियाँ देनेकी अनुमति नहीं है।

खुलासा—हैनिमैन इस मिश्रित औषधके सम्बन्धमें ऐलोपैथीपर विचार करते हुए पहले बहुत कुछ बता चुके हैं। अतएव, अब वे कहते हैं, कि इस बातपर तो सन्देह ही नहीं हो सकता कि दवा अकेली एक, एक बारमें दी जाये अथवा कई दवाओंके लक्षण दिखाई देते हों, तो उन्हें मिलाकर दिया जाये। इस सत्य और सरल तथा पूर्ण आरोग्य-कारिणी चिकित्सा-पद्धतिमें एकसे अधिक दवा मिलाकर देनेकी कभी जरूरत ही नहीं पड़ती, बल्कि ऐसा करना मना है।

[२७४]

मिश्रित औषधके प्रयोगसे क्या हानि होती है ?

क्योंकि सच्चे चिकित्सकको एक ही दवा, अकेली और अमिश्रित देनेसे, यथासम्भव जो वह चाहता है, उसकी वह इच्छा पूरी हो जाती है (अर्थात् नकली रोग-शक्ति उत्पन्न करना ; जो सम-लक्षण-सम्पन्न शक्तिके द्वारा स्वाभाविक रोगको जड़से और पूरी तरह दूर कर सकती है)। वह हमेशा इस बुद्धिमानीकी बातपर ध्यान रखेगा कि जब "एकसे काम होता है, तो अधिकका व्यवहार बुरा है" और कभी दवाके रूपमें एकसे अधिक पदार्थ एक साथ व्यवहार न करेगा। यह इस कारणसे भी, कि प्रत्येक दवाकी परीक्षाके समय स्वस्थ मनुष्यपर होनेवाला प्रभाव पूरी तरह मालूम हो गया है। इसीलिये यह असम्भव है, कि पहलेसे मालूम कर लिया जाये कि दो सम्मिलित औषधियोंका मानव-शरीरपर क्या प्रभाव होगा और एक दूसरेकी क्रियामें क्या बाधा पहुँचायगी। इसके अलावा, केवल एक ही ऐसी दवाका जब किसी रोगमें प्रयोग होता है, जिसके लक्षण-समूह पुरी तरह मालूम हो गये हैं, तो सम-लक्षण-रूपसे चुनाव

होनेपर उससे ही भरपूर सहायता प्राप्त हो जाती और यदि यह मान लिया जाये, कि खराबी हुई, तो समझना होगा कि दवाका सम-लक्षणके अनुसार ठीक-ठीक चुनाव नहीं हुआ है और इसीलिये उससे कोई फायदा नहीं पहुँचा, पर इससे भी दवाके सम्बन्धका ज्ञान बढ़ जाता है ; क्योंकि ऐसी अवस्थामें उनसे पैदा हुए नये लक्षण, जो औषधकी परीक्षा करते समय स्वस्थ शरीरपर प्रकट हुए थे, वे ठीक मालुम हो जाते हैं ; परन्तु कई मिश्रित औषधोंके व्यवहारसे यह फायदा नहीं होता।[1]

[२७५]

किसी रोगको आरोग्य करनेके लिये औषध-सम्बन्धी किन विशेषताओंकी जरूरत है ?

किसी विचाराधीन रोगीके लिये औषधकी उपयुक्तता केवल इसी एक बातपर निर्भर नहीं करती—कि वह विशुद्ध रूपसे सम-लक्षण-सम्पन्न औषध है, वरन इसके लिये मात्राका न्यूनतम होना भी परमावश्यक है। यदि औषध, नियमानुसार, रोगीके लक्षणोंके सर्वथा अनुरूप है और हम उसका "अति मात्रा" में व्यवहार करा दे, तो वह अपने गुणधर्मानुसार लाभदायक होते हुए भी—अति मात्राके कारण, हानिकर सिद्ध होगी। (इसके हानिकर सिद्ध होनेका) दूसरा कारण यह है, कि वह अपने सदृश लक्षण पैदा करनेमें समर्थ होनेके धर्मके कारण—अति मात्रामें जानेसे,—अनावश्यक रूपसे जीवनी-शक्तिपर अधिक कड़ा असर लायेगी

---

१. जब मौलिक चिकित्सक अपने रोगीके लिये खूब अच्छी तरह सोच-विचारकर सम-लक्षण-सम्पन्न औषध चुन लेता है और उसका आभ्यान्तरिक व्यवहार कराता है, तो वह पीने, सेंकने, मालिश करने या इन्जेक्शन लगानेका अवैज्ञानिक कार्य ऐलोपैथिक चिकित्सकोंके करनेके लिये छोड़ देता है।

और जीवनी-शक्तिको प्रभावित बनाकर शरीरके अन्य अधिक असहिष्णु अंगोंपर भी बुरा असर करेगी, हालां कि वे अंग स्वाभाविक रोग द्वारा पहले ही आक्रान्त हैं।

खुलासा—यह ठीक है, कि किसी बीमारीको आरोग्य करनेके लिये सदृश लक्षण-सम्पन्न दवाकी जरूरत पड़ती है। बिना इसके काम ही नहीं हो सकता, पर केवल इतनी-सी बातसे ही रोगके आरोग्य हो जानेमें सहूलियत नहीं होती। रोगका आरोग्य, चुनी हुई सम-लक्षण-सम्पन्न औषध और साथ ही दवाकी सूक्ष्म मात्रापर भी निर्भर करता है ; अर्थात् इन दोनों बातोंकी ही जरूरत रहती है, क्योंकि यदि दवा सम-लक्षण-सम्पन्न रही, चुनाव भी उत्तम हुआ, पर यदि दवा अधिक मात्रामें पड़ गयी, तो उसका परिणाम यह होगा कि पहले तो वह जीवनी-शक्तिपर अपना कठोर प्रभाव डालकर उसकी समता नष्ट कर देगी। इसके बाद जीवनी-शक्ति द्वारा पहलेसे रोगी अंशपर अपना बुरा प्रभाव पहुँचायेगी, इससे रोगीकी तकलीफें बहुत बढ़ जायँगी और उसे हानि पहुँचेगी। इसीलिये, कभी स्थूल मात्रामें औषधका प्रयोग न करना चाहिये। इससे लाभदायक औषध भी हानिकर हो जाती है।

[२७६]

क्या बड़ी मात्रामें औषध प्रयोग करनेपर हानि पहुँचाती है ?

इसीलिये यदि कोई दवा किसी रोगके लिये सदृश लक्षण-सम्पन्न भी हो, तो प्रत्येक बड़ी खुराकमें हानि पहुँचाती है और दवा जितनी ही सदृश लक्षणकी तथा जितनी ही उच्च शक्तिकी होती है, उसकी बड़ी मात्रासे, जो सदृश लक्षण-सम्पन्न नहीं है और जो रोग लक्षणके अनुसार नहीं चुनी गयी है (ऐलोपैथिक), उनसे भी अधिक हानि पहुँचती है।

यह तो एक नियम है, कि किसी ठीक-ठीक चुनी हुई होमियोपैथिक दवाकी वृहत मात्रा और विशेषकर उनका वारम्वार प्रयोग तो बहुत अधिक कष्ट पैदा कर देता है। वह रोगीके जीवनको खतरेमें डाल देती है या उसकी वीमारीको असाध्य वना देती है। इसमें सन्देह नहीं कि जीवन-तत्वकी अनुभूतिके हिसावसे वह स्वाभाविक वीमारीको दूर कर देती हैं और रोगीके पहलेवाले मूल रोगका जो कष्ट रहता है, उसी समयसे वह कष्ट उसे नहीं भोगना पड़ता है, जिस समयसे सम-लक्षण-सम्पन्न औषधकी वड़ी मात्राका प्रयोग होता है, परन्तु परिणाममें उसी ढंगके एक औषधज भयंकर रोगसे और भी रुग्ण हो जाता है, जिसको आरोग्य करना वहुत ही कठिन हो जाता है।

खुलासा—इस सूत्रपर ध्यान देनेसे तीन वातें सामने आती हैं, अर्थात् (१) सम-लक्षण-सम्पन्न दवाका यदि वड़ी मात्रामें प्रयोग होता है, तो हानि तो होती ही है, पर यदि वारम्वार वड़ी मात्राओंका प्रयोग होता है, तो शरीरको वहुत ज्यादा हानि पहुँच जाती है, वल्कि इसकी अपेक्षा असम-लक्षणकी ऐलोपैथिक दवाओंसे कम हानि पहुँचती है। इसका कारण यह है कि सम-लक्षण-सम्पन्न औषध एकदम जीवनी-शक्तिपर जाकर अपना प्रभाव जमाती है और उसी लक्षणवाला एक कृत्रिम रोग पैदा कर देती है। जीवनी-शक्तिपर पैदा हुई यह औषधज कृत्रिम व्याधि ही मूल रोगको आरोग्य करनेमें समर्थ होती है। अतएव, जव जीवनी-शक्तिपर झोंकसे आक्रमण होता है, तो रोगी अंशोंपर गहरा प्रभाव पहुँचता है। असम लक्षणवाली दवाओंसे जीवनी-शक्तिपर उतना प्रभाव नहीं पहुँचता, इसलिये उतनी हानि नहीं होती। (२) उच्च शक्तिकी दवाका यदि बड़ी मात्रामें प्रयोग होता है, तो उसकी क्रिया और भी भयंकर होती है तथा वह भी उसी तरह रोगीको कष्टमें डाल देती है। (३) सवसे भयंकर परिणाम तो यह होता है, कि यद्यपि रोग तो आरोग्य हुआ-सा मालूम होता है, पहलेवाले रोगकी तकलीफ वीमारीको

फिर नहीं मालूम होती ; पर उस दवासे जो कृत्रिम रोग पैदा होता है, वह इतना भीषण होता है, कि हटाये नहीं हटता, बल्कि रोग एक प्रकारसे असाध्य हो जाता है।

[२७७]

चुनी हुई दवाकी मात्रा जितनी ही सूक्ष्म होती है, वह उतनी ही लाभदायक क्यों होती है ?

इसी तर्कके आधारपर, यदि दवाकी मात्रा खूब सूक्ष्म हुई और सदृश लक्षणके अनुसार उसका चुनाव हुआ रहनेके कारण, अधिक शान्ति-दायक और आश्चर्यजनक रूपसे लाभदायक होती है। इसी वजहसे जो दवा सम-लक्षणके अनुसार चुनी गई है, उसकी मात्रा इतनी घटा देनी चाहिये कि उसकी क्रिया उपद्रव रहित और कोमल हो।

खुलासा—होमियोपैथिक औषधका प्रभाव गहरा होता है, यद्यपि उसकी मात्रा छोटी रहती है। हैनिमैन कहते हैं, कि किसी तरहका उपद्रव न हो और रोगीमें तीव्र औषधज व्याधि न उत्पन्न हो जाये, इसलिये उसकी मात्रा घटा देना चाहिये।

[२७८]

यह मात्रा कितनी छोटी होनी चाहिये ?

यहाँ यह प्रश्न उठता है, कि औषधकी निश्चित और सरल क्रियाके लिये मात्रा कितनी क्षुद्र होनी चाहिये ? उसका परिमाण क्या है ? दूसरे शब्दोंमें यह इस तरह भी कहा जा सकता है कि प्रत्येक चुनी हुई सम-लक्षणवाली दवाकी, रोगके लिये कैसी मात्रा होनी चाहिये, जिससे वह पूरी तरह आरोग्य हो जाये ? यह सवाल हल करना और खास-खास दवाएँ सदृश लक्षण-पद्धतिके अनुसार किस मात्रामें दी जायँ और वे इतनी

क्षुद्र भी हों, कि उससे सरलतापूर्वक और शीघ्रतासे आरोग्यका भी काम हो जाये—यह सवाल हल करना—सहजमें ही समझमें आ सकता है, कि अनुमानके द्वारा नहीं हो सकता, न धारणासे ही हल हो सकता है और न भ्रान्त तर्कसे ही सिद्ध हो सकता है। यह तो उसी तरह असम्भव है, जिस तरह पहलेसे ही रोगोंकी सूची बना रखना। विशुद्ध परीक्षा तथा प्रत्येक रोगीकी सहनशीलतापर सावधानतापूर्वक विचार तथा ठीक-ठीक अनुभव ही, हरेक रोगीके लिये इसे स्थिर कर सकता है। परन्तु पुरानी प्रथाके अनुसार बड़ी-बड़ी खुराकों (ऐलोपैथिक) का देना, जो सदृश लक्षणके अनुसार रोगवाले स्थानको स्पर्शतक नहीं करती, बल्कि रोगहीन अंशोंपर आक्रमण करती हैं, सूक्ष्म मात्राके सम्बन्धमें जो शुद्ध जानकारी प्राप्त हुई है, उसके विपरीत ही कार्य करना है।

खुलासा—हैनिमैनने ऊपरके सूत्रमें यह तो कह दिया कि मात्रा सूक्ष्म होनी चाहिये, पर यह मात्रा कितनी सूक्ष्म होनी चाहिये ; यह एक विचारणीय विषय हो जाता है। इस स्थानपर तीन बातें सामने आती हैं और चिकित्सा तथा आरोग्यके लिये अत्यन्त आवश्यक मालूम होती हैं। (१) रोग लक्षणके सदृश लक्षणकी दवाका चुनाव। (२) क्रम या शक्तिका चुनाव और (मात्राका चुनाव। औषधके चुनावके सम्धन्वमें पहले बहुत कुछ बताया जा चुका है। वही क्रम और मात्रा—ये दोनों ही चीजें ऐसी हैं, कि रोगीकी अवस्थापर विचारकर इनका प्रयोग करना पड़ता है। किस रोगीको, किस क्रम और कितनी मात्रामें दवा देनी चाहिये, इसका पहलेसे ही निर्णय कर लेना असम्भव है ; क्योंकि रोग नाना प्रकारके होते हैं, अनेक प्रकारके रोगोंके अनेक रोगियोंकी शारीरिक और मानसिक अवस्थाएँ भी अलग-अलग होती हैं ; उनकी प्रकृति भी भिन्न-भिन्न होती है। अतएव, उनकी सहनशीलता या असहनीयताको लक्ष्यमें रखकर दवाका क्रम या शक्ति और मात्राका चुनाव करना पड़ता है। ऐलोपैथीकी भाँति होमियोपैथीमें इसके लिये कोई

नियम नहीं बन सकता और न इसमें बँधी गतके अनुसार दवाकी मात्राका प्रयोग ही हो सकता है। यह तो चिकित्सककी रोगीको जाँचनेकी शक्ति, रोगीकी अवस्था और रोगकी सहन-शक्तिपर निर्भर करता है।

[२७९]

क्या सूक्ष्म-से-सूक्ष्म मात्रा रोगसे जबर्दस्त होती है ?

शुद्ध अनुभवसे सभी जगह यह मालुम होता है, कि यदि रोगने शरीरके किसी भीतरी आवश्यक शरीरांशको क्षय नहीं कर दिया है (यहाँतक कि यदि वह पुरानी और जटिल बीमारी क्यों न हो) और चिकित्साके समय किसी भी दूसरी विपरीत दवाका रोगीपर प्रभाव नहीं है, तो किसी आवश्यक और खासकर पुरानी बीमारीकी चिकित्साके लिये सम-लक्षण-सम्मत, उच्च शक्तिकृत औषधकी मात्रा, इतनी छोटी कभी भी तैयार नहीं की जा सकती, जो स्वाभाविक रोगसे जबर्दस्त न हो और उसपर अपना कम-से-कम आंशिक अधिकार भी न जमा सके तथा जीवनी-शक्तिके ऊपरसे उसकी अनुभूति हटाकर आरोग्यका आरम्भ न कर सके।

खुलासा—बहुत दिनोंके अनुभवसे यही बात मालुम हुई है, कि यदि दवाका चुनाव सदृश हुआ है, तो उसकी छोटी-से-छोटी मात्रा भी रोगपर अपना प्रभाव जमा सकती है। उच्च शक्तिकृत औषधकी इतनी छोटी कोई मात्रा ही नहीं हो सकती, जिसका प्रभाव जीवनी-शक्तिपर न पहुँचे और होमियोपैथिक नियमके अनुसार समस्त रोगपर एक वैसी ही नकली बीमारी पैदा न कर सके ; परन्तु यदि फेफड़ा प्रभृति किसी आवश्क अंशका क्षय हो गया है, तथा वह कार्यशील नहीं रहा, तो ऐसा हो सकता है कि दवाकी क्षुद्र मात्राका कोई प्रभाव न हो। दवाकी क्रिया न होनेका एक दूसरा कारण भी है ; अर्थात् अन्य औषधका प्रभाव या रोगीका

वैसी कोई चीज सेवन करते रहना, जिसमें औषधका गुण है। अतएव किसी भी ऐसी चीजसे रोगीको अलग रखनेपर दवाका पूरा-पूरा गुण प्रकट होता दिखाई दे सकता है। ऐसा बहुत बार होता है, कि रोगी अफीम, तम्बाकू इत्यादिका सेवन करता रहता है और इसी कारणसे औषधकी क्रियामें बाधा पड़ती है और रोगी आरोग्य नहीं हो पाता।

[२८०]

दवाका किस क्रममें और किस तरह प्रयोग करना चाहिये?

बिना कोई कष्टकर लक्षण पैदा किये, दवाकी जो मात्रा लाभ दिखाती जा रही है, उसको क्रमशः ऊँची शक्तिमें तबतक प्रयोग करना होगा, जबतक रोगीमें साधारण उन्नति होनेके साथ-ही-साथ पुराने मूल रोगके लक्षण धीमे भावसे अनुभवमें न आने लगें। इसका मतलब यह है, कि प्रत्येक बार बढ़ाकर दी हुई और हिलाकर दी हुई (सूत्र २४७) क्रमोन्नत मात्राने उसको आरोग्यके निकट पहुँचा दिया है। साथ ही यह भी मालूम होता है, कि जीवनी-शक्तिपर स्वाभाविक रोगकी अनुभूति दूर करनेके लिये, अब वैसे ही औषधसे उत्पन्न रोगकी आवश्यकता नहीं है (सूत्र १४८)। इससे यही प्रकट होता है, कि जीवनी-शक्ति अब स्वाभाविक रोगसे मुक्त हो गयी है और अब उसपर केवल औषधज रोगका प्रभाव है, जो होमियोपैथिक रोग-वृद्धि कहलाता है।

खुलासा—दवाकी शक्ति कैसे बढ़ायी जाती है? यह हैनिमैन २४७वें परिच्छेदमें बता चुके हैं अर्थात् किसी दवाकी एक गोली पानीमें गलाकर एक चम्मचकी मात्रामें जब उसे दिया गया और उसने लाभ दिखाना आरम्भ किया, तो उसकी दूसरी खुराक उसी शीशीको दस बार हिलाकर, उसकी शक्ति बढ़ाकर देनी चाहिये। इस तरह यह मात्रा तबतक बराबर देते रहना चाहिये, जबतक रोगी आरोग्य होता-होता इस

अवस्थापर न पहुँच जाये, कि उसको सबके पहलेवाली बीमारीके कुछ लक्षण, धीमे भावसे अनुभवमें आने लगें। अब यह पुराने लक्षणका अनुभवमें आना ही बताता है, कि रोगी आरोग्यके पथपर आ गया और अब जीवनी-शक्तिपर कृत्रिम रोग उत्पन्न करनेकी जरूरत नहीं है और साथ ही इससे यह भी मालुम होता है, कि अब जो कुछ बाकी है, वह दवासे पैदा हुई नकली बीमारी है, जिसे होमियोपैथिक रोग-वृद्धि कहा जाता है। अब किसी दवाके सेवनकी आवश्यकता नहीं है।

[२८१]

रोगी आरोग्य-पथपर यदि आ जाये, तो क्या करना चाहिये ?

इस सम्बन्धमें निःसन्देह होनेके लिये रोगीको ८, १० या १५ दिनोंके लिये बिना दवाके ही छोड़ दिया जाता है। इस बीचमें उसे केवल दूधकी चीनीकी पुड़ियाँ दी जाती हैं। अब जो रोगके थोड़ेसे उपसर्ग रह गये हैं, यदि वे उस दवाके कारण हैं, तो ये लक्षण कई घण्टे या कई दिनोंमें आपसे-आप दूर हो जायँगे। यदि इन कई दिनोंमें, स्वास्थ्यके नियम पूरी तरह पालन करते रहनेपर, बिना दवा खाये ही, मूल रोगका कोई अंश दिखाई न दे, तो समझना चाहिये, कि वह शायद आरोग्य हो गया है। पर यदि अन्तके दिनोंमें पूर्वके रोगात्मक लक्षणोंका चिह्न फिर दिखाई देने लगे, तो ये उस मूल रोगके ही प्रतिचिह्न हैं, जो एकदम आरोग्य नहीं हुआ है। अब इसका इलाज पूर्वमें बतायी हुई प्रणालीसे और भी ऊँची शक्तिसे करना चाहिये। यदि इसे आरोग्य करना है, तो पहले कई अल्प मात्राएँ, फिर क्रमोन्नत करते हुए देनी होंगी। पर जहाँ रोगी बहुत ही असहिष्णु मालूम हो, वहाँ और भी थोड़ी मात्रामें धीरे-धीरे क्रमको ऊँचा करना होगा और जहाँ रोगी सहनशील दिखाई दे, वहाँ जल्दी-जल्दी ऊँचा करते हुए मात्राका

प्रयोग किया जा सकता है। ऐसे बहुतसे रोगी मिलेंगे, जिनकी असहिष्णुता, सहिष्णुतावालेकी तुलनामें १००० में १ पायी जायगी।

खुलासा—रोग अभी बाकी है या रोगकी औषधसे उत्पन्न वृद्धि घट रही है, उसकी जाँचके लिये यह करना चाहिये कि रोगीको आठ, दस या पन्द्रह दिनोंतक कोई दवा ही न देनी चाहिये। यदि यह रोग-वृद्धि है, तो आप-से-आप दूर हो जायगी और जो कुछ मूल रोगके लक्षण रह गये हैं, वे आप-से-आप दूर हो जायेंगे। इस तरह यद्यपि यह होमियोपैथिक रोग-वृद्धि दूर हो जायगी, पर इस समय भी खूब नियमसे रहना चाहिये। यदि इन दिनोंके अन्तमें रोगका अंश फिरसे दिखाई देने लगे, तो समझना होगा कि मूल रोग, अभी पूरी तरह नहीं गया। इस अवस्थामें जैसा कि पहले बताया जा चुका है, उसी तरह पहले जिस शक्तिकी दवा दी गयी थी, उससे ऊँची शक्तिकी दवा देनी होगी, उसको भी उसी तरह हिला-हिलाकर क्रमकी वृद्धि करते हुए देना पड़ेगा। इस समय भी रोगीपर ख्याल रखना पड़ेगा अर्थात् अगर यह मालूम हो कि रोगीपर दवाका बहुत जल्द प्रभाव पहुँचेगा, वह असहिष्णु है, तो मात्रा देरसे देनी होगी और सहिष्णु रोगीको जल्दी-जल्दी देकर आरोग्य साधन कर देना होगा। असहिष्णु रोगीकी संख्या १००० में १ पायी जाती है।

[२८२]

यदि पहली ही मात्रामें रोग बढ़ जाये, तो क्या समझना चाहिये ?

यदि चिकित्साके समय और खासकर पुरानी बीमारीमें पहली खुराक देनेके साथ ही अकसर होमियोपैथिक रोग-वृद्धिका लक्षण अर्थात् पहले जो मूल रोग-लक्षण दिखाई दिया था, उसका बहुत बढ़ जाना दिखाई दे, तो समझना होगा कि दवाकी मात्रा बहुत अधिक हो जानेका

ही यह चिह्न है और दुबारा दी हुई प्रत्येक खुराक (सूत्र २४७) चाहे कितनी ही हिलाकर सुधारते हुए क्यों न दी जाये (अर्थात् उसकी शक्ति बढ़ाते हुए), उसका यही प्रभाव होगा।

खुलासा—यदि इलाज करते समय और खासकर पुरानी बीमारीका इलाज करते समय यह दिखाई दे, कि मूल रोगके लक्षण बढ़ गये, जिसे होमियोपैथिक रोग-वृद्धि करते हैं, तो समझना होगा कि दवाकी मात्रा बहुत अधिक है। यदि यह मात्रा २४७वें सूत्रमें बताये अनुसार हिला-हिलाकर, क्रम-वृद्धि करते हुए भी दी जायगी, तो भी ऐसा ही होगा। इसमें कोई फर्क न आयगा। इस सूत्रपर ध्यान देनेसे यही मालुम होता है, कि मात्राका सूक्ष्म रहना आवश्यक है, नहीं तो रोग-वृद्धि होकर रोगीको कष्ट पहुँचेगा।

[२८३]

इतनी सूक्ष्म मात्रामें औषध-प्रयोगकी आवश्यकता क्या है?

पूर्णांशमें प्रकृतिके अनुकूल रहकर काम करनेके उद्देश्यसे, सच्चा चिकित्सक सदा ही अधिकाधिक्य उपयुक्त और यथासम्भव न्यूनतम मात्रामें दवा देगा। यदि वह मानवीय दुर्बलतावश,—भूलसे, किसी अनुपयुक्त औषधका व्यवहार कर बैठे, तो, रोगीको इतनी कम हानि पहुँचेगी कि वह अपनी ही जीवनी-शक्तिके बलसे, और भूल मालुम हो जानेपर—लक्षणोंसे अनुरूप चुनी हुई जो सही दवा (सूत्र २४६); न्यूनतम मात्रामें, उसके शरीरमें जायगी,—उसका सद्यप्रभाव,—दोनों मिलकर, उसे शीघ्रतापूर्वक दूर कर देंगे।

खुलासा—सूक्ष्म मात्रामें दवा क्यों दी जानी चाहिये, इसीका कारण यहाँ हैनिमैन फिर बता रहे हैं। वे कहते हैं, सच्ची आरोग्य करनेवाली इस कलाका जानकार अर्थात् उत्तम होमियोपैथिक चिकित्सक

इसी वजहसे अधिक मात्रामें दवा नहीं देता कि सम्भव है, कि औषध-निर्वाचनमें भ्रम हो जाये। यह भ्रम हो जाने और असदृश दवा पड़ जानेपर रोगीको हानि पहुँच सकती है। इसीलिये, वह इतनी सूक्ष्म मात्रामें दवा देता है, कि यदि कोई कष्टदायक लक्षण पैदा हो जाये, तो स्वयं रोगीकी जीवनी-शक्ति और बादकी चुनी हुई दवाकी सहायतासे सहजमें ही उसे दूर कर सकें।

[२८४]

खानेके सिवा और किसी तरहसे दवाका प्रयोग किया जा सकता है?

साधारणतः दी हुई दवाका प्रभाव जीभ, मुँह और पाकाशयपर सबसे अधिक होता है; पर इनके सिवा नाक और श्वास-यंत्र द्वारा सुँघाने और मुँहसे साँस लेनेके कारण तरल अवस्थाकी दवा भी काम करती है; परन्तु त्वचासे ढँके बाकी समूचे शरीरके अंश भी द्रव-रूपकी दवाकी क्रिया ग्रहण करनेमें समर्थ करते हैं, खासकर यदि दवा मलनेके साथ-ही-साथ उसका भीतरी प्रयोग भी किया जाये।[१]

---

१. छोटे बच्चोंपर स्तन पिलानेवाली माता या धायके दूधके साथ दवाका आश्चर्यजनक प्रभाव पहुँच जाता है। बच्चोंका इलाज करते समय, यदि ठीक-ठीक चुनी हुई दवाका, मातापर प्रयोग किया जाये, तो उसका बहुत अधिक प्रभाव होता है। इस बातकी उपयोगिता पुराने जमानेकी अपेक्षा नये जमानेमें अधिक प्रत्यक्ष हो रही है। ऐसा भी होता है, कि यदि मातामें सोरा-दोष नहीं है और बच्चेको मातासे सोरा नहीं प्राप्त हुआ है, पर दूध पिलानेवाली धायसे उसे प्राप्त हो गया है। यदि धायको सोरा-नाशक दवा खिलायी जाये, तो उस दूधसे बच्चेको सोरा-दोषसे रक्षा हो सकती है; पर यदि माताको गर्भावस्थामें ही शक्तिकृत सल्फर खिलाया जाये (सूत्र २७०), तो अनेक रोगोंके जन्मदाता सोरासे भावी सन्ततिकी रक्षा हो

खुलासा—जब दवाएँ खिलायी जाती हैं, तो साधारणतः उनकी क्रिया जीभ, मुख और पाकाशयपर होती है ; परन्तु इतना ही नहीं ; इनके अलावा नाक और श्वासयंत्र द्वारा सुँघानेसे तथा मुँहसे साँस द्वारा लेनेपर, यदि दवा तरल अवस्थामें रही, तो इसकी क्रिया होती है। असलमें होता यह है, कि इन यंत्रों द्वारा स्नायुओंसे स्पर्श होनेके कारण उस दवाका प्रभाव मस्तिष्कमें पहुँचाता है और वहाँसे जीवनी-शक्तिपर अपना प्रभाव दिखाकर रोगके आरोग्यमें सहायता पहुँचती है ; इतना ही नहीं समझना चाहिये, कि इन्हीं स्थानोंपर क्रिया होकर रह जाती है। जिस त्वचासे शरीर ढँका हुआ है, उस त्वचामें भी औषध-गुण ग्रहण करनेकी क्षमता है। अतएव, पतली या जलमें गलायी हुई दवा जब शरीरमें मल दी जाती है, तब भी उसका कार्य होता है। इस तरह दवा मलनेके साथ-ही-साथ भीतरी दवा खिलाते भी रहना चाहिये। इस सूत्रका एक तात्पर्य और भी निकलता है अर्थात् यदि रोगी ऐसी अवस्थामें है, कि दवा खा नहीं सकता, तो दवा सुँघाकर काम निकाला जा सकता है और यही काम शरीरमें मालिश करके भी हो सकता है।

[२८५]

मालिशकी दवाका किस तरह प्रयोग करनी चाहिये ?

इस तरह चिकित्सक, बहुत पुरानी बीमारीमें जो दवा वह खिला रहा है, उसीको बाहर पीठ, बाँह, हाथ, पैर आदिमें मालिश कर, उस

सकती है। इससे यह होता है, कि माता भ्रूणका आरम्भमें ही सोरा-विष नष्ट हो जाता है, तथा बढ़ी हुई अवस्थामें रोग नहीं होता। गर्भवतीको यह खिलाकर चिकित्सा की गई है और उसने अत्यन्त स्वस्थ और शुद्ध सन्तानको जन्म दिया है। मेरे द्वारा आविष्कृत सोराका यह नया सिद्धान्त इससे और भी हर तरह दृढ़तासे प्रमाणित होता है।

रोगको बहुत जल्द आराम होनेमें सहायता पहुँचा सकता है ; पर शरीरके जिन अंशोंमें दर्द, अकड़न या उद्भेद आदि हों, उन अंशोंमें मालिश न करनी चाहिये।

खुलासा—पुरानी-से-पुरानी बीमारीमें भी चिकित्सक इस तरह रोगके जल्द आराम होनेमें सहायता पहुँचा सकता है, कि जो दवा वह खिला रहा हो, उसे ही वह शरीरमें, पीठ, बाँह और हाथ-पैरमें मालिश कर दे। दर्द, अकड़न या फोड़े-फुन्सीवाली जगहपर उसे मालिश न करनी चाहिये।

[२८६]

चुम्बक, बिजली और रासायनिक बिजलीकी शरीरपर सम-लक्षण क्रिया होती है या नहीं ?

खनिज चुम्बक, बिजली और रासायनिक ताड़ित-शक्तिकी क्रिया हमारी जीवनी-शक्तिपर कम नहीं होती तथा वे उन दवाओंकी अपेक्षा कम सम-लक्षण-सम्पन्न नहीं हैं, जो मुँहसे खाने, त्वचापर मालिश करने या सूँघनेके द्वारा रोगी ग्रहण करता है और जो रोगको आरोग्य करती हैं। ऐसी कितनी ही बीमारियाँ हो सकती हैं और खासकर अनुभूति और चेतना-सम्बन्धी रोग, अस्वाभाविक अनुभूतियाँ तथा इच्छा न रहनेपर भी पेशियोंका फड़कना आदि,—जो इसी तरकीबसे आरोग्य की जा सकती हैं ; परन्तु अन्तिम दोनों विधियाँ और खासकर बिजलीका यंत्र (electro-magnetic-machine) का सदृश लक्षणके अनुसार व्यवहार करना अभी अज्ञात है। अबतक तो बिजली और इस रसायनिक बिजलीका रोगीको सामयिक शान्ति पहुँचानेके लिये ही प्रयोग किया जाता है और इनसे रोगीको बहुत अधिक हानि पहुँचती है। इन दोनोंकी मानव-स्वास्थ्यपर शुद्ध और ठीक-ठीक क्रियाकी अबतक विश्वस्त परीक्षा नहीं हुई।

खुलासा—मुँहसे खायी, नाक-मुँहसे सूँघी और मालिश की हुई दवासे सम-लक्षणके अनुसार रोग आरोग्य होते हैं। इनमें जिस तरह रोगको आराम करनेकी शक्ति है, उसी तरहकी शक्ति—चुम्बक, बिजली और रसायनिक बिजलीमें भी है। खासकर अनुभव-सम्बन्धी तथा इच्छा न रहनेपर भी मांस-पेशियोंका फड़क उठना आदि जो रोग होते हैं, उनपर तो इनकी क्रिया दिखाई देती है ; परन्तु अबतक मानव-स्वास्थ्यपर इन चीजोंकी परीक्षा नहीं हो सकी और इनकी सम-लक्षण-सम्पन्न क्रिया हो सकती है या नहीं, इसका कुछ भी पता नहीं लग सका है।

[२८७]

आरोग्यताके लिये चुम्बक शक्तिका किस तरह प्रयोग किया जा सकता है ?

मेटिरिया-मेडिका पुरामें लिखे अनुसार आरोग्यके कार्यके लिये और भी निश्चयके साथ चुम्बक शक्तिका प्रयोग किया जा सकता है। यद्यपि उत्तरीय और दक्षिणीय दोनों ही ध्रुव समान भावसे शक्तिशाली हैं, तथापि वे अपनी-अपनी क्रियाके अनुसार एक दूसरीकी क्रियामें बाधा डालते हैं। एक या दूसरे ध्रुवसे सम्पर्क रखनेके समयमें न्यूनाधिकता करके मात्रामें परिवर्त्तन किया जा सकता है। चूँकि दोनों ध्रुवोंके लक्षण स्पष्ट हैं—अतः उनके अनुसार दोनोंका व्यवहार हो सकता है। जब किसी एक ध्रुवका असर अधिक तेज हो गया हो, तो उसे कम करनेके लिये जस्तेकी पालिश की हुई तख्तीका व्यवहार पर्याप्त है।

खुलासा—हैनिमैनने अपनी लिखी मेटिरिया-मेडिका पुरा पुस्तकमें चुम्बक शक्तिसे आरोग्य होनेके विषयमें बहुत-कुछ बताया है। उसी बातको अब यहाँ भी उन्होंने संक्षेपमें बताया है, कि उसके प्रयोगसे भी

रोग आरोग्य होता है और उत्तरकी ओर उसका जो छोर रहता है, उसे ध्रुव और दक्षिणकी ओर जो रहता है, उसे दक्षिणी ध्रुव कहते हैं। इनके लक्षणके अनुसार समय घटा-बढ़ाकर इनका प्रयोग होता है और उसकी तेज क्रिया रोकनेके लिये एक जस्तेका टुकड़ा शरीर और चुम्बकके बीचमें रख दिया जाता है।

[२८८]

जैव चुम्बक और उसका प्रयोग क्या है ?

यहाँ हम जैव चुम्बक, जैसा कि इसका नामकरण हुआ है, उसके सम्बन्धमें भी कुछ कहना आवश्यक समझते हैं। इसका नाम मेस्मेरिज्म है (मेस्मेर नामक इसके आविष्कर्त्ताके सम्मानार्थ ही इसका यह नाम पड़ा है)। यह सभी आरोग्यकारी पदार्थोंसे अपनी प्रकृतिमें भिन्न ही है। इस रोगनाशक साधनको, प्रायः गत १०० वर्षसे, मूर्खतापूर्ण ढंगसे और अनुपयुक्त बताकर, ग्रहण करनेसे इन्कार किया गया है। यह सर्वथा भिन्न प्रकारसे काम करता है। यह सृष्टिकर्त्ता भगवानका मानवके लिये आश्चर्यजनक और अमूल्य उपहार है। जिस तरह चुम्बक-दण्डका एक छोर लोहेपर अपनी क्रिया प्रकट करता है, ठीक उसी तरह कोई सदिच्छा रखनेवाला मनुष्य अपनी सुदृढ़ इच्छा-शक्तिके द्वारा, रोगीको छूकर, यहाँतक कि दूर रहकर भी अपनी स्वस्थ जीवनी-शक्ति द्वारा रोगीको प्रभावित कर सकता है।

इसकी क्रिया रोगी शरीरके उन-उन स्थानोंपर होती है, जहाँ-जहाँकी जीवनी-शक्ति कमजोर पड़ गयी है तथा उन स्थानोंकी जीवनी-शक्तिको, हटाती या कम करती है, जहाँ वह अधिक एकत्र होकर स्नायविक उत्तेजना या प्रदाह इत्यादि उत्पन्न कर रही है। अथवा ऐसा होता है, कि उसे समान भावसे सारे शरीरमें फैला देती है और रोगीकी

जीवनी-शक्तिकी अस्वस्थ अवस्था, पुराने जखम, अन्धापन, शरीरके किसी विशेष अंशका पक्षाघात वगैरह दूर कर देती है और इसके बदले इस शक्तिको प्रयोग करनेवाला रोगीको स्वस्थावस्थामें ला देता है। सभी समयके शक्तिशाली मेस्मेरिज्मवालोंने रोगीको जिस तरह स्पष्ट भावसे और तेजीसे आरोग्य किया है, वह सभी इसी ढंगका है। जो सब मनुष्य मुर्देकी तरह पड़े थे, उनपर पूरी-पूरी जीवनी-शक्तिसे परिपूर्ण शक्ति-सम्पन्न मनुष्योंकी इच्छा-शक्ति द्वारा, उनको फिरसे जीवन प्राप्त हुआ है। यह मनुष्यों द्वारा, शक्ति-परिचालनका एक अत्यन्त ज्वलन्त उदाहरण है। इतिहासमें इस तरह पुनर्जीवन प्राप्त करनेके बहुतसे उदाहरण मिलते हैं, जिनको न मानना बिलकुल असम्भव है।

यदि यह शक्ति प्रयोग करनेवाला सम्मोहक, स्त्री हो या पुरुष, उत्तम प्रकृतिका और उत्साही हो (भले ही इसका रूप बिगड़कर यह धर्मान्धता, धर्मोन्मत्तता या दानशीलताके विचारोंमें परिणत हो गया हो), तो वह अपनी इस लोक-हितकारिणी तथा अपनेको उत्सर्ग करनेवाली प्रक्रिया द्वारा, अपने सहायकपर अपनी सदिच्छा शक्तिका और भी उत्तमतासे प्रयोग कर सकेगा और कभी-कभी इस शक्तिको केन्द्रीभूतकर अलौकिक कार्य भी कर सकेगा।

खुलासा—इन आरोग्य करनेवाली प्रणालियोंमें एक प्रणाली मेस्मेरिज्मकी भी है, इसके आविष्कर्त्ता मेस्मेर नामक साहब थे। इसमें स्वस्थ मनुष्य रोगीको छूकर या दूरसे ही अपनी इच्छा-शक्तिको रोगीमें प्रवेश कराकर उसका रोग आरोग्य कर सकता है। हैनिमैन इस प्रणालीको स्वीकार करते हुए कहते हैं, कि इस प्रणालीसे बहुतसे दुरारोग्य रोग भी आरोग्य हो जाते हैं।

[२८९]

मेस्मेरिज्म कितने प्रकारके हैं और उनकी क्रिया कैसी होती है?

मेस्मेरिज्मके प्रयोगकी ऊपर लिखी प्रक्रियाएँ, कुछ-न-कुछ जीवनी-शक्तिको रोगीमें प्रवेश करानेपर निर्भर करती हैं, इसलिये इस ढंगकी क्रियाको पूरक मेस्मेरिज्म कहते हैं। मेस्मेरिज्मके प्रयोगका ठीक इसके विपरीत भी एक ढङ्ग है, इसका प्रभाव भी विल्कुल उल्टा ही होता है, इसे रेचक मेस्मेरिज्म कहा जा सकता है। इस क्रियामें नकली नींदसे जगानेके लिये हाथ फेरा जाता है तथा इससे शान्ति प्रदान करने और उन्नत करनेकी क्रियाएँ होती हैं। ऐसे रोगी, जो कमजोर नहीं हो गये हैं, उनके शरीरमें जीवनी-शक्ति कहीं अधिक और कहीं कम हो जाती है, तो उसे इस रेचक मेस्मेरिज्मकी प्रथाके अनुसार निकाल लेते हैं। इसमें रोगीके शरीरसे १ इञ्च अन्तरकी दूरीपर तलहत्थी फैलाकर, दोनों हाथ, सामान्तर भावसे रखकर, माथेके ऊपरी भागसे लेकर पैरकी अंगुलीके अन्तिम भागतक हाथ चलाया जाता है और वह तेजीसे तथा निश्चित भावसे चलाया जाता है। जितनी ही तेजीसे हाथ चलाया जायगा, उतना ही अधिक प्रभाव भी होगा। उदाहरणार्थ, यदि पहलेकी किसी स्वस्थ स्त्रीको किसी मानसिक आघातके कारण उसका रजः-स्राव सहसा बन्द हो जाये और वह मुर्देकी तरह पड़ जाये, तो हो सकता है, कि उसकी जीवनी-शक्ति हृत्पिण्डके स्थानपर संचित हो गयी हो। अब उसपर यदि इसी तरह तेजीसे हाथ फेरा जाये, तो यह संचय हटकर उसका शरीर फिर साम्यावस्थामें आ जायगा और रोगिणी फिर जीवित हो उठेगी। इसी तरह किसी अत्यन्त असहनशील मनुष्युमें जबर्दस्त हस्त-संचालनके कारण जो बेचैनी, अनिद्रा और उत्कंठाका भाव पैदा हो जाता है, उसको भी धीमे हस्त-संचालनसे आरोग्य किया जा सकता है।

खुलासा—इस सूत्रमें भी हैनिमैनने मेस्मेरिज्मकी क्रियाकी ही उपयोगिता बतायी है और कहा है, कि दो तरहकी क्रिया होती है। एक तो वह, जिसमें सम्मोहक अपनी जीवनी-शक्ति जिसपर प्रयोग करता है, उसमें जीवनी-शक्ति भरता है और दूसरा वह, जिसमें रोगीके शरीरके किसी स्थानपर यदि किसी कारणवश अधिक जीवनी-शक्ति एकत्र हो जाता है, उसे निकाल लेता है। इसी प्रक्रियाका हवाला इस सूत्रमें दिया है।

[२९०]

मलने और दबानेसे क्या होता है? क्या मेस्मेरिज्मसे इसका कोई सम्बन्ध है?

रोग आराम हो जानेपर भी जिन पुरानी बीमारीके मनुष्योंको आरोग्यकी बहुत धीमी गतिके कारण शरीरपर मांस न चढ़ता हो, पाचन-शक्ति कमजोर हो और नींद न आती हो, तो उनको सत्प्रकृतिके किसी मनुष्य द्वारा शरीरपर मालिश दिलवानेका भी उल्लेख किया जा सकता है। हाथ-पैर, वक्ष और पीठकी मांस-पेशियोंको अलग-अलग, धीरे-धीरे, दबवाने या मलवानेसे जीवनी-शक्ति जागरित हो उठती है तथा रक्त और रस वहन करनेवाली शिराओंमें वह जाकर उन्हें फिरसे बल प्रदान करती है। इसमें भी सम्मोहक शक्तिकी ही विशेषता है, परन्तु जो मनुष्य असहनशील हैं, उनपर इसका अधिक व्यवहार न करना चाहिये।

खुलासा—रोग आराम हो जानेपर भी यदि शरीरपर मांस न चढ़ता हो अथवा पाचन-शक्ति कमजोर हो या भरपूर नींद न आती हो, ऐसे रोगीके शरीरपर मालिश करने या धीरे-धीरे दबानेसे बहुत फायदा होता है। कारण यह है, कि मेस्मेरिज्मकी भाँति ही बलवान, स्वास्थ्य-सम्पन्न मनुष्यकी शक्ति रोगीके शरीरमें पहुँचती है और उसके शरीरमें बल बढ़ता है।

[२९१]

स्नानसे क्या होता है ?

साफ पानीमें नहानेपर, कुछ अंशोंमें थोड़ा और अल्प स्थायी लाभ पहुँचता है और कुछ अंशोंमें नयी तथा पुरानी बीमारीके आराम होनेके बाद, रोगीकी अवस्था, पानीकी गर्मी, स्नानका समय और परिमाण और फिर प्रयोग (दुबारा स्नान) होमियोपैथीके मतसे लाभदायक और स्वास्थ्यको प्राप्त करनेमें सहायक होते हैं ; पर इनका ठीक-ठीक प्रयोग होनेपर भी रोगी शरीरमें ये केवल शारीरिक परिवर्त्तन उत्पन्न करते हैं और वे वास्तवमें कोई लाभदायक औषध-रूपमें नहीं हैं। २५ से २७ डिगरीके थोड़े तापके स्नानसे, बरफके मारे, डूबे या श्वासरुद्ध हुए मृतवत् व्यक्तिमें स्नायुओंकी सुस्तीके कारण सोयी हुई ज्ञान-शक्ति जागरित हो उठती है। यद्यपि इससे क्षणस्थायी लाभ होता है, तथापि काफी पिलाने और हाथसे रगड़ने—इन दोनोंके संयोगसे काफी फायदा होता है। जहाँ उत्तेजना बहुत ही असम भावसे फैली हुई रहती है तथा हिस्टीरिया और बच्चोंकी अकड़नकी तरह शरीरके किसी अंशमें बहुत ज्यादा वह इकट्ठा हुई रहती है, वहाँ होमियोपैथी मतसे स्नान फायदा पहुँचा सकता है। इसी तरह १० से ६ डिगरीका शीतल स्नान, दवा खिलाकर पुरानी बीमारीके आरोग्य हुए रोगियोंको तथा जिनमें भीतरी गर्मीकी कमी रहती है, उनको सम-लक्षणके अनुसार सहायता पहुँचा सकता है। क्षणभरमें और इसके बाद बार-बार इस तरहके स्नानसे कमजोर शारीरिक तन्तुओंमें फिरसे शक्ति प्राप्त हो जाती है ; इसीलिये ऐसे स्नान क्षणभरसे अधिक कालतक, यहाँतक कि कई मिनटोंतक और धीरे-धीरे कम तापमें प्रयोग करना उचित है। इन सभी स्नानोंसे अल्पस्थायी लाभ होता है, पर इनकी क्रिया केवल वाह्य शरीरपर होती है, इसलिये उनकी उस ढङ्गकी

विपरीत क्रियाका भय नहीं रहता, जैसा कि सूक्ष्म-शक्ति-सम्पन्न औषधोंसे होता है।

खुलासा—औषधियों, उनके प्रयोग तथा अन्यान्य समस्त विषयोंपर विचार करते हुए, हैनिमैन कहते हैं, कि स्नानसे भी लाभ होता है, पर इसका प्रयोग रोगीकी अवस्था तथा जलके तापपर विचारकर करना चाहिये। ऐसा करनेपर स्वास्थ्य प्राप्त होता है। जिन्हें बरफका शीत लग जाता है या जो डूब जाते हैं और जिनका दम बन्द हो जाता है, ऐसे मनुष्योंको इस स्नानसे पुनर्जीवन प्राप्त होता है और उनके स्नायुओंकी सुस्ती दूर होकर उनमें चेतन आ जाती है। हिस्टीरियाकी रोगिणी तथा अकड़नवाले रोगी बच्चेको भी २५ से २७ डिगरीके थोड़े गर्म पानीके स्नानसे फायदा होता है। इसके अलावा, १० से डिगरीके ठण्डे पानीका स्नान, पुरानी बीमारीके रोगी तथा वे रोगी, जिनका शारीरिक ताप घट गया है, उनमें गर्मी बढ़ा देता है; पर इससे ऐसा न समझ लेना चाहिये, कि यह औषधकी क्रिया करेगा। इतना अवश्य है, कि बाहरी शरीरसे इसका सम्बन्ध रहनेके कारण, सूक्ष्म-शक्ति-सम्पन्न औषधकी भाँति इससे विपरीत क्रियाका काम नहीं होता और अस्थायी लाभ होता है।